भगवान श्री महावीर की २५वी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य मे

सप्ततिका प्रकरण नामक

कर्मग्रन्थ [षष्ठ भाग]

(मूल, शब्दार्थ गाथार्थ विशेषार्थ विवेचन, टिप्पण पारिभाषिक शब्दकोष आदि से युक्त)

व्याख्याकार
मरुधरकेसरी, प्रवर्तक
मुनि श्री मिश्रीमल जी महाराज

सम्पादक
श्रीचन्द सुराना 'सरस'
देवकुमार जैन

प्रकाशक
श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति
जोधपुर—ब्यावर

पुस्तक कर्मग्रन्थ [षष्ठ भाग]

पृष्ठ ६०६

सम्प्रेरक : विद्याविनोदी श्री सुकनमुनि

प्रकाशक श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति
पीपलिया बाजार, ब्यावर [राजस्थान]

प्रथम आवृत्ति : वीर निर्वाण सवत् २५०२
वि० स० २०३३, ज्येष्ठ पूर्णिमा
ई० सन् १६७६, जून

मुद्रक : श्रीचन्द सुराना के लिए
दुर्गा प्रिंटिग वर्क्स, आगरा–४

मूल्य . १५) पन्द्रह रुपये मात्र

सम्पादकीय

जनदशन को समझने की कुजी है—'कमसिद्धात । यह निश्चित है कि समग्र दशन एव तत्त्वज्ञान का आधार है आत्मा, और आत्मा की विविध दशाओ, स्वरूपो का विवेचन एव उसके परिवतनो का रहस्य उद्घाटित करता है 'कमसिद्धा त । इसलिए जनदशन को समझने के लिए 'कमसिद्धान्त' को समझना अनिवाय है।

कमसिद्धान्त का विवेचन करने वाले प्रमुख ग्रन्थो मे 'श्रीमद् देवेन्द्रसूरि रचित' कमग्रन्थ अपना विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। जन साहित्य म इनका अत्यन्त महत्त्वपूण स्थान है। तत्त्वजिज्ञासु भी कमग्रन्थो को आगम की तरह प्रतिदिन अध्ययन एव स्वाध्याय की वस्तु मानते है।

कमग्रन्थो की सस्कृत टीकाए बडी महत्त्वपूण हैं। इनके कई गुजराती अनुवाद भी हो चुके हैं। हिन्दी म कमग्रन्थो का सवप्रथम विवेचन प्रस्तुत किया था विद्वद्वरेण्य मनीषी प्रवर महाप्राज्ञ प० सुखलालजी ने। उनकी शली तुलनात्मक एव विद्वत्ताप्रधान है। प० सुखलालजी का विवचन आज प्राय दुष्प्राप्य-सा है। कुछ समय से आशुकविरत्न गुरुदेव श्री मरुधर केसरीजी महाराज की प्रेरणा मिल रही थी कि कमग्रन्थो का आधुनिक शली म विवचन प्रस्तुत करना चाहिए। उनकी प्रेरणा एव निदेशन से यह सम्पादन प्रारम्भ हुआ। विद्याविनोदी श्री सुकनमुनिजी की प्रेरणा से यह काय बडी गति के साथ आगे बढता गया। श्री देवकुमार जी जैन का सहयोग मिला और काय कुछ ही समय म आकार धारण करने योग्य बन गया।

इस सपादन काय म अनेक प्राचीन ग्रन्थलेखको, टीकाकारो, विवेचन कर्ताओ तथा विशपत प० सुखलाल जी के ग्रन्थो का सहयोग प्राप्त हुआ

और इतने गहन ग्रन्थ का विवेचन सहजगम्य बन सका। मैं उक्त सभी विद्वानों का असीम कृतज्ञता के साथ आभार मानता हूँ।

श्रद्धेय श्री मरुधरकेसरीजी महाराज का समय-समय पर मार्गदर्शन, श्री रजनमुनिजी एवं श्री सुकनमुनिजी की प्रेरणा एवं साहित्य समिति के अधिकारियों का सहयोग, विशेषकर समिति के व्यवस्थापक श्री सुजानमल जी सेठिया की सहृदयता पूर्ण प्रेरणा व सहकार से ग्रन्थ के संपादन-प्रकाशन में गतिशीलता आई है, मैं हृदय से आभार स्वीकार करूँ— यह सर्वथा योग्य ही होगा।

इस भाग के साथ कर्मग्रन्थ के छह भागों में जैन कर्मशास्त्र का समग्र विवेचन संपन्न हुआ है। छठा भाग सबसे बड़ा भी है और महत्त्वपूर्ण भी। इसमें पारिभाषिक शब्द-कोष, पिण्डप्रकृति सूचक शब्द-कोष तथा प्रयुक्त सहायक ग्रन्थ-सूची का समावेश हो जाने से इसकी उपयोगिता और भी बढ़ गई है।

विवेचन में कहीं त्रुटि, सैद्धान्तिक भूल, अस्पष्टता तथा मुद्रण आदि में अशुद्धि रही हो तो उसके लिए मैं क्षमाप्रार्थी हूँ और हंस-बुद्धि पाठकों से अपेक्षा है कि वे स्नेहपूर्वक सूचित कर अनुगृहीत करेंगे। भूल सुधार एवं प्रमाद-परिहार में सहयोगी बनने वाले अभिनन्दनीय होते ही हैं। बस इसी अनुरोध के साथ—

विनीत

श्रीचन्द सुराना 'सरस'

आमुख

जैनदर्शन के सम्पूर्ण चिन्तन, मनन और विवेचन का आधार आत्मा है। आत्मा सर्वतन्त्र स्वतन्त्र शक्ति है। अपने सुख दुःख का निर्माता भी वही है और उसका फल भोग करने वाला भी वही है। आत्मा स्वयं में अमूर्त है परम विशुद्ध है, किन्तु वह शरीर के साथ मूर्तिमान बनकर अशुद्ध दशा में संसार में परिभ्रमण कर रहा है। स्वयं परम आनन्दस्वरूप होने पर भी सुख-दुःख के चक्र में पिस रहा है। अजर-अमर होकर भी जन्म मृत्यु के प्रवाह में बह रहा है। आश्चर्य है कि जो आत्मा परम शक्तिसम्पन्न है वही दीन-हीन, दुःखी दरिद्र के रूप में संसार में यातना और कष्ट भी भोग रहा है। इसका कारण क्या है?

जैनदर्शन इस कारण की विवेचना करते हुए कहता है—आत्मा को संसार में भटकाने वाला कर्म है। कर्म ही जन्म मरण का मूल है—कम्मं च जाई मरणस्स मूलं—भगवान श्री महावीर का यह कथन अक्षरशः सत्य है, तथ्य है। कर्म के कारण ही यह विश्व विविध विचित्र घटनाचक्रों में प्रतिपल परिवर्तित हो रहा है। ईश्वरवादी दर्शनों ने इस विश्ववैचित्र्य एवं सुख दुःख का कारण जहाँ ईश्वर को माना है वहाँ जैनदर्शन ने समस्त सुख-दुःख एवं विश्ववैचित्र्य का कारण मूलतः जीव एवं उसका मुख्य सहायक कर्म माना है। कर्म स्वतन्त्र रूप से कोई शक्ति नहीं है वह स्वयं में पुद्गल है जड़ है। किन्तु राग-द्वेष वश वर्ती आत्मा के द्वारा कर्म किये जाने पर वे इतने बलवान और शक्तिसम्पन्न बन जाते हैं कि कर्ता को भी अपने बंधन में बांध लेते हैं। मालिक को भी नौकर की तरह नचाते हैं। यह कर्म की बड़ी विचित्र शक्ति है। हमारे जीवन और जगत के समस्त परिवर्तनों का यह मुख्य बीज कर्म क्या है? इसका स्वरूप क्या है? इसके विविध परिणाम कैसे होते हैं? यह बड़ा ही गम्भीर विषय है।

जैनदर्शन मे कर्म का बहुत ही विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। कर्म का सूक्ष्मातिसूक्ष्म और अत्यन्त गहन विवेचन जैन आगमो मे और उत्तरवर्ती ग्रन्थो मे प्राप्त होता है। वह प्राकृत एव सस्कृत भाषा मे होने के कारण विद्वद्भोग्य तो है, पर साधारण जिज्ञासु के लिए दुर्बोध है। थोकडो मे कर्मसिद्धान्त के विविध स्वरूप का वर्णन प्राचीन आचार्यो ने गूथा है, कठस्थ करने पर साधारण तत्त्व-जिज्ञासु के लिए अच्छा ज्ञानदायक सिद्ध होता है।

कर्मसिद्धान्त के प्राचीन ग्रन्थो मे कर्मग्रन्थ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्रीमद् देवेन्द्रसूरि रचित इसके पाच भाग अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण है। इनमे जैनदर्शन-सम्मत समस्त कर्मवाद, गुणस्थान, मार्गणा, जीव, अजीव के भेद-प्रभेद आदि समस्त जैनदर्शन का विवेचन प्रस्तुत कर दिया गया है। ग्रन्थ जटिल प्राकृत भाषा मे है और इसकी सस्कृत मे अनेक टीकाएँ भी प्रसिद्ध है। गुजराती मे भी इसका विवेचन काफी प्रसिद्ध है। हिन्दी भाषा मे इस पर विवेचन प्रसिद्ध विद्वान् मनीषी प० सुखलाल जी ने लगभग ४० वर्ष पूर्व तैयार किया था।

वर्तमान मे कर्मग्रन्थ का हिन्दी विवेचन दुष्प्राप्य हो रहा था, फिर इस समय तक विवेचन की शैली मे भी काफी परिवर्तन आ गया। अनेक तत्त्व-जिज्ञासु मुनिवर एव श्रद्धालु श्रावक परमश्रद्धेय गुरुदेव मरुधरकेसरी जी महाराज साहब से कई वर्षो से प्रार्थना कर रहे थे कि कर्मग्रन्थ जैसे विशाल और गम्भीर ग्रन्थ का नये ढग से विवेचन एव प्रकाशन होना चाहिए। आप जैसे समर्थ शास्त्रज्ञ विद्वान एव महास्थविर सत ही इस अत्यन्त श्रमसाध्य एव व्यय-साध्य कार्य को सम्पन्न करा सकते है। गुरुदेव श्री का भी इस ओर आकर्षण था। शरीर काफी वृद्ध हो चुका है। इसमे भी लम्बे-लम्बे विहार और अनेक सस्थाओ व कार्यक्रमो का आयोजन। व्यस्त जीवन मे आप १०-१२ घटा से अधिक समय तक आज भी शास्त्रस्वाध्याय, साहित्य-सर्जन आदि मे लीन रहते है। गत वर्ष गुरुदेव श्री ने इस कार्य को आगे बढाने का सकल्प किया। विवेचन लिखना प्रारम्भ किया। विवेचन को भाषा-शैली आदि दृष्टियो से सुन्दर एव रुचिकर बनाने तथा फुटनोट, आगमो के उद्धरण सकलन, भूमिका लेखन आदि कार्यो का दायित्व प्रसिद्ध विद्वान श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना को सौंपा गया। श्री सुराना जी गुरुदेव श्री के साहित्य एव विचारो से अतिनिकट सम्पर्क मे है। गुरुदेव के निर्देशन मे उन्होने अत्यधिक श्रम करके यह विद्वत्तापूर्ण तथा सर्व-साधारण जन के लिए उपयोगी विवेचन तैयार किया है। इस विवेचन मे एक

दीघकालीन अभाव की पूर्ति हो रही है। साथ ही समाज को एक सास्कृतिक एव दार्शनिक निधि नये रूप मे मिल रही है, यह अत्यधिक प्रसन्नता की बात है।

मुझे इस विषय मे विशेष रुचि है। मैं गुरुदेव को तथा सम्पादक बन्धुओ को इसकी सपूर्ति क लिए समय समय पर प्रेरित करता रहा। प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुथ और पचम भाग क पश्चात अब छठा भाग आज जनता के समक्ष आ रहा है। इसकी मुझे हार्दिक प्रसन्नता है।

पहले के पाँच भाग जिज्ञासु पाठको ने पसन्द किये हैं उनके तत्त्वज्ञान-वृद्धि म व सहायक बने है, ऐसी सूचनाएँ मिली हैं। यह छठा और अन्तिम भाग पहले के पाँचो भागो से भी अधिक विस्तृत बना है। विषय गहन है और गहन विषय की स्पष्टता के लिए विस्तार भी आवश्यक हो जाता है। विद्वान् सम्पादक बधुओ ने काफी श्रम और अनेक ग्रन्थो के पर्यालोचन से विषय का तलस्पर्शी विवेचन किया है। आशा है यह जिज्ञासु पाठकों की ज्ञानवृद्धि का हेतुभूत बनेगा।

—सुकन मुनि

प्रकाशकीय

श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति के विभिन्न उद्देश्यो मे से एक प्रमुख एव रचनात्मक उद्देश्य है—जैनधर्म एव दर्शन से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन करना। सस्था के मार्गदर्शक परमश्रद्धेय श्री मरुधरकेसरीजी महाराज स्वय एक महान विद्वान्, आशुकवि तथा जैन आगम तथा दर्शन के मर्मज्ञ है और उन्ही के मार्गदर्शन मे सस्था की विभिन्न लोकोपकारी प्रवृत्तियाँ चल रही हैं। गुरुदेवश्री साहित्य के मर्मज्ञ भी हैं, अनुरागी भी है। उनकी प्रेरणा से अब तक हमने प्रवचन, जीवनचरित्र, काव्य, आगम तथा गम्भीर विवेचनात्मक ग्रन्थो का प्रकाशन किया है। अब विद्वानो एव तत्त्वजिज्ञासु पाठको के सामने हम उनका चिर प्रतीक्षित ग्रन्थ 'कर्मग्रन्थ' विवेचन युक्त प्रस्तुत कर रहे है।

कर्मग्रन्थ जैनदर्शन का एक महान् ग्रन्थ है। इसमे जैन तत्त्वज्ञान का सर्वांग विवेचन समाया हुआ है। पूज्य गुरुदेव श्री के निर्देशन मे प्रसिद्ध लेखक-सपादक श्रीयुत् श्रीचन्द जी सुराना एव उनके सहयोगी श्री देवकुमार जी जैन ने मिलकर इसका सुन्दर सम्पादन किया है। तपस्वीवर श्री रजतमुनि जी एव विद्याविनोदी श्री सुकनमुनिजी की प्रेरणा से यह विराट कार्य समय पर सुन्दर ढग से सम्पन्न हो रहा है। हम सभी विद्वानो, मुनिवरो एव सहयोगी उदार सज्जनो के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करते है कि हम इस महान् ग्रन्थ के पाँचो भागो को पाठको के समक्ष रख सके। विद्वानो एव जिज्ञासु पाठको ने उनका स्वागत किया है। अब यह छठवाँ एव अन्तिम भाग भी पाठको के समक्ष प्रस्तुत है।

इसके साथ ही इस महान् कर्मग्रन्थ की समाप्ति हो गई है। अब सभी छहो भाग पाठको के समक्ष हैं। जिज्ञासुजन इनसे लाभ उठायेंगे, इसी विश्वास के साथ—

विनीत, मन्त्री—
श्री मरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति

प्रस्तावना

सप्ततिका प्रकरण' नामक छठा कर्मग्रन्थ पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने के साथ कर्मग्रन्थों के प्रकाशन का प्रयत्न पूर्ण हो रहा है। एतदर्थ 'श्रीमरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति' के संचालकों-सदस्यों का हम अभिनन्दन करते हैं कि समय, श्रम और व्ययसाध्य गौरवशाली साहित्य को प्रकाशित कर जैन वाङ्मय की श्रीवृद्धि का उन्होंने स्तुत्य प्रयास किया है।

पूर्वप्रकाशित पाँच कर्मग्रन्थों की प्रस्तावना में कर्मसिद्धान्त के बारे में यथा सम्भव विचार व्यक्त किये हैं। यहाँ कर्मग्रन्थों का परिचय प्रस्तुत है।

कर्मग्रन्थों का महत्त्व

जैनसाहित्य में कर्मग्रन्थों का महत्त्वपूर्ण स्थान होने के बारे में इतना ही संकेत कर देना पर्याप्त है कि जैनदर्शन में सृष्टि के कारण के रूप में काल स्वभाव आदि को मान्य करने के साथ कर्मवाद पर विशेष जोर दिया है। कर्म सिद्धान्त को समझे बिना जैनदर्शन के अन्तरहस्य का परिज्ञान सम्भव नहीं है और कर्मतत्त्व का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रारम्भिक मुख्य साधन कर्मग्रन्थों के सिवाय अन्य कोई नहीं है। कर्मप्रकृति, पंचसंग्रह आदि कर्मसाहित्य विषयक गम्भीर ग्रन्थों का अभ्यास करने के लिए कर्मग्रन्थों का अध्ययन करना अत्यावश्यक है। इसीलिए जैनसाहित्य में कर्मग्रन्थों का स्थान अति गौरव भरा है।

कर्मग्रन्थों का परिचय

इस सप्ततिका प्रकरण का कर्मग्रन्थों में क्रम छठा है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है। इस ग्रन्थ में सत्तर गाथाएँ होने से गाथाओं की संख्या के आधार से इसका नाम सप्ततिका रखा गया है। इसके कर्ता आदि के बारे में यथाप्रसंग विशेष रूप से जानकारी दी जा रही है। लेकिन इसके पूर्व श्रीमद् देवेन्द्रसूरि विरचित पाँच कर्मग्रन्थों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं।

श्रीमद् देवेन्द्रसूरि ने क्रमशः कर्मविपाक, कर्मस्तव, बंधस्वामित्व, षडशीति और शतक नामक पाँच कर्मग्रन्थों की रचना की है। ये पांचों नाम ग्रन्थ के विषय और उनकी गाथा संख्या को ध्यान मे रखकर ग्रन्थकार ने दिये है। प्रथम, द्वितीय और तृतीय कर्मग्रन्थ के नाम उनके वर्ण्य विषय के आधार से तथा चतुर्थ और पंचम कर्मग्रन्थ के नाम षडशीति और शतक उन-उन मे आगत गाथाओं की संख्या के आधार से रखे गये है। इस प्रकार से कर्मग्रन्थो के पृथक्-पृथक नाम होने पर भी सामान्य जनता उन कर्मग्रन्थो को प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और पंचम कर्मग्रन्थ के नाम से जानती है।

प्रथम कर्मग्रन्थ के नाम से ज्ञात कर्मविपाक नामक कर्मग्रन्थ मे ज्ञानावरण, दर्शनावरण आदि कर्मों, उनके भेद-प्रभेद और उनका स्वरूप अर्थात् विपाक अथवा फल का वर्णन दृष्टान्तपूर्वक किया गया है।

कर्मस्तव नामक द्वितीय कर्मग्रन्थ मे भगवान महावीर की स्तुति के द्वारा चौदह गुणस्थानो का स्वरूप और इन गुणस्थानो मे प्रथम कर्मग्रन्थ मे वर्णित कर्मप्रकृतियो के बन्ध, उदय और सत्ता का वर्णन किया गया है।

तीसरे बंधस्वामित्व नामक कर्मग्रन्थ मे गत्यादि मार्गणाओ के आश्रय से जीवो के कर्मप्रकृति-विषयक बन्धस्वामित्व का वर्णन किया गया है। दूसरे कर्मग्रन्थ मे गुणस्थानो के आधार से बंध का वर्णन किया गया है, जबकि इसमे गत्यादि मार्गणास्थानो के आधार से बन्धस्वामित्व का विचार किया गया है।

षडशीति नामक चतुर्थ कर्मग्रन्थ मे जीवस्थान, मार्गणास्थान, गुणस्थान, भाव और संख्या—इन पाँच विषयो का विस्तार से विवेचन किया गया है। इन पाँच विभागो मे से आदि के तीन विभागो मे अन्य सम्बन्धित विषयो का वर्णन किया गया है। अन्तिम दो विभागो, अर्थात् भाव और संख्या का वर्णन अन्य किसी विषय से मिश्रित—सम्बद्ध नही है। दोनो विषय स्वतन्त्र है।

शतक नामक पंचम कर्मग्रन्थ मे प्रथम कर्मग्रन्थ मे वर्णित प्रकृतियो का ध्रुवबंधी, अध्रुवबन्धिनी, ध्रुवोदय, अध्रुवोदय आदि अनेक प्रकार से वर्गीकरण करने के बाद उनका विपाक की अपेक्षा से वर्णन किया है। इसके बाद उक्त प्रकृतियो का प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग बन्ध का स्वरूप और उनके स्वामी का वर्णन किया गया है। अन्त मे उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि का निक्षेप रूप मे कथन किया है।

आधार और वणन का क्रम

श्रीमद् देवेन्द्रसूरि के पांच कमग्रन्थो की रचना के पहले आचाय शिवशम, चन्द्रर्षि महत्तर आदि भिन्न भिन्न आचार्यों द्वारा अलग अलग समय म कम विषयक छह प्रकरणो की रचना की जा चुकी थी और उक्त छह प्रकरणो म से पांच क आधार से श्रीमद् देवेन्द्रसूरि ने अपने पांच कमग्रन्थो की रचना की है। इसीलिए य कमग्रन्थ 'नवीन कमग्रन्थ' क नाम से जाने जाते हैं।

प्राचीन कमग्रन्थकारो न अपने ग्रन्थो मे जिन विषयो का वणन किया है और वणन का जो क्रम रखा है, प्राय वही विषय और वणन का क्रम श्रीमद् देवेन्द्र सूरि न रखा है। इनकी रचना म मात्र प्राचीन कमग्रन्थो के आशय को ही नही लिया गया है, बल्कि नाम, विषय, वणन शैली आदि का भी अनुसरण किया है।

नवीन कमग्रन्थो की विशेषता

प्राचीन कमग्रन्थकार आचार्यों ने अपने अपने ग्रन्थो म जिन जिन विषयो का वणन किया है, व ही विषय नवीन कमग्रन्थकार आचाय श्रीमद् देवेन्द्रसूरि ने अपने ग्रन्थो म वर्णित किय हैं। लेकिन श्री देवेन्द्रसूरि रचित कमग्रन्थो की यह विशेषता है कि प्राचीन कमग्रन्थकारो ने जिन विषयो को अधिक विस्तार स कहा है जिसस कठस्थ करने वाले अभ्यासियो को अरुचि होना सभव है उनको श्री देवेन्द्रसूरि ने अपने कमग्रन्थो म एक भी विषय को न छोडते हुए और साथ म अन्य विषयो का समावेश करके सरल भाषा पद्धति के द्वारा अति सक्षेप म प्रतिपादन किया है। इसस अभ्यास करने वालो को उदासीनता अथवा अरुचि भाव पदा नही होता है। प्राचीन कमग्रन्थो की गाथा सख्या क्रम से १६८ ५७, ५४ ८६ और १०२ हैं और नवीन कमग्रन्थो की क्रमश ६०, ३४, २४, ८६ और १०० है। चौथे और पाचवें कमग्रन्थो की गाथा सख्या प्राचीन कमग्रन्थो जितनी देखकर किसी को यह नही समझ लेना चाहिए कि प्राचीन चौथे और पांचवें कमग्रन्थ की अपेक्षा नवीन चतुथ और पचम कमग्रन्थ म शाब्दिक अन्तर क अतिरिक्त अन्य कुछ नही है किन्तु श्रीमद् देवेन्द्रसूरि ने अपने प्राचीन कम ग्रन्थों क विषयो को जितना सक्षिप्त किया जा सकता था उतना सक्षिप्त करने के बाद उनका पठनोनि और शतक य दोनो प्राचीन नाम रखने क विचार से कमग्रन्थो क अभ्यास करने वालो को सहायक अन्य विषयो का समावेश करके दियासा और सौ गाथाएँ पूरी की हैं। चतुथ कमग्रन्थ म भेद प्रभेदो क साथ

छह भावो का स्वरूप और भेद-प्रभेदो के वर्णन के साथ सख्यात, असख्यात और अनन्त इन तीन प्रकार की सख्याओ का वर्णन किया है तथा पचम कर्मग्रन्थ मे उद्धार, अद्धा और क्षेत्र इन तीन प्रकार के पल्योपमो का स्वरूप, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव—ये चार प्रकार के सूक्ष्म और वादर पुद्गल परावर्तो का स्वरूप एव उपशमश्रेणि तथा क्षपकश्रेणि का स्वरूप आदि नवीन विपयो का समावेश किया है। इस प्रकार प्राचीन कर्मग्रन्थो की अपेक्षा श्री देवेन्द्रसूरि विरचित नवीन कर्मग्रन्थो की मुख्य विशेपता यह है कि इन कर्मग्रन्थो मे प्राचीन कर्मग्रन्थो के प्रत्येक वर्ण्य विपय का समावेश होने पर भी प्रमाण अत्यल्प है और उसके साथ अनेक नवीन विषयो का सग्रह किया गया है।

नवीन कर्मग्रन्थो की टीकाएँ

श्रीमद् देवेन्द्रसूरि ने अपने नवीन कर्मग्रन्थो की स्वोपज्ञ टीकाएँ की थी, किन्तु उनमे से तीमरे कर्मग्रन्थ की टीका नष्ट हो जाने से वाद मे अन्य किसी विद्वान आचार्य ने अवचूरि नामक टीका की रचना की।

श्रीमद् देवेन्द्रसूरि की टीका-शैली इतनी मनोरजक है कि मूल गाथा के प्रत्येक पद या वाक्य का विवेचन किया गया है। इतना ही नही, वल्कि जिस पद का विस्तारपूर्वक अर्थ समझाने की आवश्यकता हुई, उसका उसी प्रमाण मे निरूपण किया है। इमके अतिरिक्त एक विशेषता यह भी देखने मे आती है कि व्याख्या को अधिक स्पष्ट करने के लिए आगम, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका और पूर्वाचार्यो के प्रकरण ग्रन्थो मे से सम्वन्धित प्रमाणो तथा अन्यान्य दर्शनो के उद्धरणो को प्रस्तुत किया है। इस प्रकार नवीन कर्मग्रन्थो की टीकाएँ इतनी विशद, सप्रमाण और कर्मतत्त्व के ज्ञान से युक्त है कि इनको देखने के वाद प्राचीन कर्मग्रन्थो और उनकी टीकाओ आदि को देखने की जिज्ञासा प्रायः शान्त हो जाती है। टीकाओ की भाषा सरल, सुवोध और प्राजल है।

पाँच कर्मग्रन्थो की सक्षेप मे जानकारी देने के वाद अव सप्ततिका (षष्ठ कर्मग्रन्थ) का विशेष परिचय देते है।

सप्ततिका परिचय

सप्ततिका के विचारणीय विपय का सक्षेप मे सकेत उसकी प्रथम गाथा मे किया गया है। इसमे आठ मूल कर्मो व अवान्तर भेदो के बन्धस्थानो, उदय-

स्थानो और सत्तास्थानो का स्वतंत्र रूप से व जीवसमास, गुणस्थानो और मार्गणास्थानो के आश्रय से विवेचन किया गया है और अंत म उपशमविधि और क्षपणविधि बतलाई है।

कर्मों की यथासभव दस अवस्थाए होती है। उनम से तीन मुख्य हैं—बंध उदय और सत्ता। शेष अवस्थाओ का इन तीन म अतर्भाव हो जाता है। इसलिए यदि यह कहा जाय कि ग्रंथ मे कर्मों की विविध अवस्थाओ उनके भेदो का इसमे सागोपाग विवेचन किया गया है तो कोई अयुक्ति नही होगी।

ग्रन्थ का जितना परिमाण है, उसको देखते हुए वणन करने की शैली की प्रशसा ही करनी पडती है। सागर का जल गागर म भर दिया गया है। इतने लघुकाय ग्रन्थ म विशाल और गहन विषयों का विवेचन कर देना हर किसी का काम नही है। इससे ग्रथकर्ता और ग्रथ—दोनो की महानता सिद्ध होती है।

पहली और दूसरी गाथा म विषय की सूचना दी गई है। तीसरी गाथा म आठ मूल कर्मों के सवेध भग बतलाकर चौथी और पाँचवीं गाथा म क्रम से जीवसमास और गुणस्थानो मे इनका विवेचन किया गया है। छठी गाथा में ज्ञानावरण और अन्तरायकम के अवान्तर भेदो के सवेध भग बतलाये है। सातवीं से नौवी गाथा के पूर्वार्द्ध तक ढाई गाथा मे दर्शनावरण के उत्तरभेदो के सवध भग बतलाय हैं और नौवी गाथा के उत्तरार्द्ध म वेदनीय आयु और गोत्र कम के सवेध भगो के कहने की सूचनामात्र करके मोहनीय के भग कहने की प्रतिज्ञा की गई है।

दसवी से लेकर तेईसवी गाथा तक मोहनीयकम के और चौबीसवीं से लेकर बत्तीसवीं गाथा तक नामकम के बधादि स्थानों व उनके सवेध भगो का विचार किया गया है। इसके अनन्तर तैतीसवी से लेकर बावनवीं गाथा तक अवान्तर प्रकृतियों के उनके सवेध भगों को जीवसमासों और गुणस्थानों में घटित करके बतलाया गया है। तिरपनवीं गाथा म गति आदि मार्गणाओ के साथ सत आदि आठ अनुयोगद्वारो म उन्हें घटित करने की सूचना दी गई है।

इसके अनन्तर वर्ण्य विषय का क्रम बदलता है। चौवनवीं गाथा म उदय म उदीरणा के स्वामी की विशेषता को बतलाने के बाद पचपनवीं गाथा म ४१ प्रकृतियाँ बतलाई हैं जिनम विशेषता है। पश्चात् छप्पन से उनसठवीं गाथा तक

प्रत्येक गुणस्थान में बंध प्रकृतियो की सख्या का संकेत किया है। इकसठवी गाथा मे तीर्थङ्कर नाम, देवायु और नरकायु इनका सत्त्व तीन-तीन गतियो मे ही होता है, किन्तु इनके सिवाय शेष प्रकृतियो की सत्ता सब गतियो मे पाई जाती है। इसके बाद की दो गाथाओ मे अनन्तानुबन्धी और दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियो के उपशमन और क्षपण के स्वामी का निर्देश करके चौसठवी गाथा मे क्रोधादि के क्षपण के विशेष नियम की सूचना दी है। इसके बाद पैंसठ से लेकर उनहत्तरवी गाथा तक चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थान मे प्रकृतियो के वेदन एव उदय सम्बन्धी विवेचन करने के अनन्तर सत्तरवी गाथा में सिद्धो के सुख का वर्णन किया है।

इस प्रकार ग्रन्थ के वर्ण्य विषय का कथन हो जाने के पश्चात् दो गाथाओ मे उपसहार और लघुता प्रकट करते हुए ग्रन्थ समाप्त किया गया है।

कर्म साहित्य मे सप्ततिका का स्थान

अब तक के प्राप्त प्रमाणो से यह कहा जा सकता है कि श्वेताम्बर और दिगम्बर जैन परम्पराओ मे उपलब्ध कर्म-साहित्य का आलेखन अग्रायणीय पूर्व की पाँचवी वस्तु के चौथे प्राभृत और ज्ञानप्रवाद तथा कर्मप्रवाद पूर्व के आधार से हुआ है। अग्रायणीय पूर्व के आधार से षट्खडागम, कर्मप्रकृति, शतक और सप्ततिका—इन ग्रन्थो का संकलन हुआ और ज्ञानप्रवाद पूर्व की दसवी वस्तु के तीसरे प्राभृत के आधार से कषायप्राभृत का सकलन किया गया है।

उक्त ग्रन्थो मे से कर्मप्रकृति ग्रन्थ श्वेताम्बर परम्परा मे तथा कषायप्राभृत और षट्खडागम दिगम्बर परम्परा मे माने जाते है तथा कुछ पाठभेद के साथ शतक और सप्ततिका—ये दोनो ग्रन्थ दोनो परम्पराओ मे माने जाते है।

गाथाओं या श्लोको की सख्या के आधार से ग्रन्थ का नाम रखने की परिपाटी प्राचीन काल से चली आ रही है। जैसे कि आचार्य शिवशर्म कृत 'शतक', आचार्य सिद्धसेन कृत द्वात्रिंशिका प्रकरण, आचार्य हरिभद्रसूरि कृत पचाशक प्रकरण, विंशति-विंशतिका प्रकरण, षोडशक प्रकरण, अष्टक प्रकरण, आचार्य जिन वल्लभ कृत षडशीति प्रकरण आदि अनेकानेक रचनाओ को उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत किया जा सकता है। सप्ततिका का नाम भी इसी आधार से रखा जान पड़ता है। इसे षष्ठ कर्मग्रन्थ भी कहने का कारण यह है कि वर्तमान मे कर्मग्रन्थो की गिनती के अनुसार इसका क्रम छठा आता है।

कर्मविषयक मूल साहित्य के रूप मे माने जाने वाले पांच ग्रन्थो मे से सप्ततिका भी एक है। सप्ततिका मे अनेक स्थलो पर मत भिन्नताओ का निर्देश किया गया है। जैसे कि एक मतभेद गाथा १९,२० और उसकी टीका म उदय विकल्प और पदवृन्दो की सख्या बतलाते समय तथा दूसरा मतभेद अयोगि केवली गुणस्थान मे नामकर्म की प्रकृतियो की सत्ता को लेकर आया है (गाथा ६६, ६७, ६८)। इससे यह प्रतीत होता है कि जब कर्मविषयक अनेक मतान्तर प्रचलित हो गए थे, तब इसकी रचना हुई होगी। लेकिन इसकी प्रथम गाथा मे इसे दृष्टिवाद अग की एक बूद के समान बतलाया गया है तथा इसकी टीका करते हुए सभी टीकाकार अग्रायणीय पूर्व की पाचवी वस्तु के चौथे प्राभृत से इसकी उत्पत्ति मानते हैं। एतदर्थ इसकी मूल साहित्य म गणना की गई है। दूसरी बात यह है कि सप्ततिका की गाथाओ म कर्म सिद्धान्त का समस्त सार सकलित कर दिया है। इस पर जब विचार करते हैं तब इसे मूल साहित्य मानना ही पडता है।

सप्ततिका की गाथा सख्या

यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थ का नाम 'सप्ततिका' गाथाओ की सख्या के आधार से रखा गया है लेकिन इसकी गाथाओ की सख्या को लेकर मतभिन्नता है। इस सस्करण मे ७२ गाथाएँ हैं। अन्तिम गाथाओ मे मूल प्रकरण के विषय की समाप्ति का सकेत किये जाने से यदि उन्हे गणना म न लें तो इस प्रकरण का 'सप्ततिका' यह नाम सुसगत और सार्थक है। किन्तु अभी तक इसके जितने सस्करण देखने म आये हैं, उन सबमे अलग अलग सख्या दी गई है। श्री जैन श्रेयस्कर मडल महेसाना की ओर से प्रकाशित सस्करण म इसकी सख्या ९१ दी है। प्रकरण रत्नाकर चौथे भाग मे प्रकाशित सस्करण म ९४ है तथा आचार्य मलयगिरि की टीका के साथ श्री आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला भावनगर की ओर से प्रकाशित सस्करण मे इसकी सख्या ७२ दी है। चूर्णि के साथ प्रकाशित सस्करण म ७१ गाथाओं का उल्लेख किया है।

इस प्रकार गाथाओ की सख्या म भिन्नता देखने को मिलती है। गाथा सख्या की भिन्नता के बारे म विचार करने पर इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि गुजराती टीकाकारो द्वारा अन्तर्भाष्य गाथाओ को मूलगाथा के रूप मे स्वीकार कर लिया गया है तथा कुछ गाथाएँ प्रकरण उपयोगी होने से मूलगाथा के रूप

मे मान ली गई है। परन्तु हमने श्री आत्मानन्द जैन ग्रन्थमाला के टीका सहित सप्ततिका को प्रमाण माना है और अन्त की दो गाथाएँ वर्ण्य विषय के बाद आई है, अत. उनकी गणना नही करने पर ग्रन्थ का नाम सप्ततिका सार्थक सिद्ध होता है।

ग्रन्थकर्ता

नवीन पाँच कर्मग्रन्थ और उनकी स्वोपज्ञ टीका के प्रणेता आचार्य श्रीमद् देवेन्द्रसूरि का विस्तृत परिचय प्रथम कर्मग्रन्थ की प्रस्तावना मे दिया जा चुका है। अत यहाँ सप्ततिका के कर्ता के बारे मे ही विचार करते हैं।

सप्ततिका के रचयिता कौन थे, उनके माता-पिता कौन थे, उनके दीक्षा गुरु और विद्या गुरु कौन थे, अपने जीवन से किस भूमि को पवित्र बनाया था आदि प्रश्नो का उत्तर प्राप्त करने के कोई साधन उपलब्ध नही हैं। इस समय सप्ततिका और उसकी जो टीकाएँ प्राप्त हैं, वे भी कर्ता के नाम आदि की जानकारी कराने मे सहायता नही देती हैं।

सप्ततिका प्रकरण मूल की प्राचीन ताडपत्रीय प्रति मे चन्द्रर्षि महत्तर के नाम से गर्भित निम्नलिखित गाथा देखने को मिलती है—

गाहग्गं सयरीए चंदमहत्तरमयाणुसारीए।
टीगाइ नियमियाणं एगूणा होइ नउई उ॥

लेकिन यह गाथा भी चन्द्रर्षि महत्तर को सप्ततिका के रचयिता होने की साक्षी नही देती है। इस गाथा से इतना ही ज्ञात होता है कि चन्द्रर्षि महत्तर के मत का अनुसरण करने वाली टीका के आधार से सप्ततिका की गाथाए (७० के बदले बढकर) नवासी (८९) हुई है। इस गाथा मे यही उल्लेख किया गया है कि सप्ततिका मे गाथाओ की वृद्धि का कारण क्या है ? किन्तु कर्त्ता के बारे मे कुछ भी नही कहा गया है। आचार्य मलयगिरि ने भी अपनी टीका के आदि और अन्त मे इसके बारे मे कुछ भी सकेत नही किया है। इस प्रकार सप्ततिका के कर्ता के बारे मे निश्चय रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता है।

चन्द्रर्षि महत्तर आचार्य ने तो पचसग्रह की रचना की है और उसमे सग्रह किये गये अथवा गर्भित शतक, सप्ततिका, कषाय-प्राभृत, सत्कर्म और कर्म प्रकृति—ये पाँचो ग्रन्थ चन्द्रर्षि महत्तर से पूर्व हो गए आचार्य कृति रूप

मे भी निर्देशित करते है कि अल्पश्रुत वाले अल्पज्ञ मैंने जो कुछ भी वधविधान का सार कहा है, उसे वधमोक्ष की विधि मे निपुण जन पूरा करके कथन करें।

इसके अतिरिक्त उक्त गाथाओ मे णिस्सद, अप्पागम, अप्पसुयमदमइ, पूरेऊण, परिकहतु—ये पद भी ध्यान देने योग्य हैं।

इन दोनो ग्रथो मे यह समानता अनायास ही नहीं है। ऐसी समानता उन्ही ग्रन्थो मे देखने को मिलती है या मिल सकती है, जो एक कर्तृक हो या एक-दूसरे के आधार से लिखे गये हो। इससे यह फलितार्थ निकलता है कि वहुत सम्भव है कि शतक और सप्ततिका एक ही आचार्य की कृति हो। शतक की चूर्णि मे आचार्य शिवशर्म को उसका कर्ता वतलाया है। ये वे ही आचार्य शिवशर्म हो सकते हैं, जो कर्मप्रकृति के कर्ता माने गए हैं। इस प्रकार विचार करने पर कर्मप्रकृति, शतक और सप्ततिका—इन तीनो ग्रन्थो के एक ही कर्ता सिद्ध होते हैं।

लेकिन जव कर्मप्रकृति और सप्ततिका का मिलान करते हैं, तव दोनो की रचना एक आचार्य के द्वारा की गई हो, यह प्रमाणित नही होता है। क्योकि इन दोनो ग्रन्थो मे विरुद्ध दो मतो का प्रतिपादन किया गया है। जैसे कि सप्ततिका मे अनन्तानुवन्धी चतुष्क को उपशम प्रकृति वतलाया है, किन्तु कर्मप्रकृति के उपशमना प्रकरण मे अनन्तानुवन्धी चतुष्क की उपशम विधि और अन्तरकरण विधि का निषेध किया है। अतएव सप्ततिका के कर्ता के वारे मे निश्चय करना असम्भव-सा प्रतीत होता है।

यह भी सम्भव है कि इनके सकलनकर्ता एक ही आचार्य हो और इनका सकलन विभिन्न दो आधारो से किया गया हो। जो कुछ भी हो, किन्तु उक्त आधार से तत्काल ही सप्ततिका के कर्ता शिवशर्म आचार्य हो, ऐसा निश्चित रूप से नही कहा जा सकता है।

इस प्रकार सप्ततिका के कर्ता कौन है, आचार्य शिवशर्म है या आचार्य चन्द्रर्षि महत्तर हैं अथवा अन्य कोई महानुभाव है—निश्चयपूर्वक कहना कठिन है। परन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि कोई भी इसके कर्ता हो, ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है और इसी कारण अनेक उत्तरवर्ती आचार्यो ने इस पर भाष्य, अन्त-

भाष्य, चूर्णि, टीका, वृत्ति आदि लिखकर ग्रन्थ के हार्द को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। सप्ततिका की टीकाओं आदि का संकेत आगे किया जा रहा है।

रचना काल

ग्रन्थकर्ता और रचनाकाल—ये दोनों एक दूसरे पर आधारित हैं। एक का निर्णय हो जाने पर दूसरे के निर्णय करने में सरलता होती है। पूर्व में ग्रन्थकर्ता का निर्देश करते समय यह सम्भावना अवश्य प्रगट की गई है कि या तो आचार्य शिवशर्म सूरि ने इसकी रचना की है या इसके पहले लिखा गया हो। साधारणतया आचार्य शिवशर्म सूरि का काल विक्रम की पाँचवीं शताब्दि माना गया है। इस हिसाब से विचार करने पर इसका रचनाकाल विक्रम की पाँचवीं या इससे पूर्ववर्ती काल सिद्ध होता है। श्री जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण ने अपनी विशेषणवती में अनेक स्थानों पर सप्ततिका का उल्लेख किया है और श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमण का समय विक्रम की सातवीं शताब्दि निश्चित है। अतएव पूर्वोक्त काल यदि अनुमानित ही मान लिया जाए तो यह निश्चित है कि सप्ततिका की रचना सातवीं शताब्दि से पूर्व हो गई थी।

इसके अलावा रचनाकाल के बारे में निश्चयात्मक रूप से कुछ भी कहना सम्भव नहीं है। इतना ही कहा जा सकता है कि सप्ततिका की रचना सातवीं शताब्दि के पूर्व हो चुकी थी और इस प्रकार मानने में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं करनी चाहिए।

सप्ततिका की टीकाएँ

पूर्व में यह संकेत किया गया है कि इस ग्रन्थ में कर्म सिद्धान्त के विभिन्न वर्ण्य विषयों का कथन करने से सप्ततिका का कर्म-साहित्य के मूल ग्रन्थों में माना जा सकता है। इसलिए इस पर अनेक उत्तरवर्ती आचार्यों ने भाष्य, टीका, चूर्णि आदि लिखकर इसके रहस्यों को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। अभी तक सप्ततिका की निम्नलिखित टीकाओं, भाष्य, चूर्णि आदि की जानकारी प्राप्त हुई है—

टीका का नाम	परिमाण	कर्ता	रचनाकाल
अन्तर्भाष्य गाथा	गाथा १०	अज्ञात	अज्ञात
भाष्य	गाथा १९१	अभयदेवसूरि	वि० १२-१३वी श
चूर्णि	पत्र १३२	अज्ञात	अज्ञात
चूर्णि	श्लोक २३००	चन्द्रर्षि महत्तर	अनु ७वी श.
वृत्ति	श्लोक ३७८०	मलयगिरिसूरि	वि० १२-१३वी श
भाष्यवृत्ति	श्लोक ४१५०	मेरतुग सूरि	वि० स० १४४९
टिप्पण	श्लोक ५७०	रामदेवगण	वि० १२वी. श
अवचूरि		गुणरत्न सूरि	वि० १५वी शता

इनमे से चन्द्रर्षि महत्तर की चूर्णि और आचार्य मलयगिरि की वृत्ति प्रकाशित हो चुकी है। इस हिन्दी व्याख्या मे आचार्य मलयगिरि सूरि की वृत्ति का उपयोग किया गया है।

टीकाकार आचार्य मलयगिरि

सप्ततिका के रचयिता के समान ही टीकाकार आचार्य मलयगिरि का परिचय भी उपलब्ध नही होता है कि उनकी जन्मभूमि, माता-पिता, गच्छ, दीक्षा-गुरु, विद्या-गुरु आदि कौन थे। उनके विद्याभ्यास, ग्रन्थरचना और विहार-भूमि के केन्द्रस्थान कहाँ थे। उनका शिष्य-परिवार था या नही, आदि के बारे मे कुछ भी नही कहा जा सकता है। परन्तु कुमारपाल प्रबन्ध मे आगत उल्लेख से उनके आचार्य हेमचन्द्र और महाराज कुमारपाल के समकालीन होने का अनुमान लगाया जा सकता है।

आचार्य मलयगिरि ने अनेक ग्रन्थो की टीकाएँ लिखकर साहित्यकोष को पल्लवित किया है। श्री जैन आत्मानन्द ग्रन्थमाला, भावनगर द्वारा प्रकाशित टीका से आचार्य मलयगिरि द्वारा रचित टीकाग्रन्थो की सख्या करीब २५ की

जानकारी मिलती है। इनमें से १७ ग्रन्थ तो मुद्रित हो चुके हैं और छह ग्रन्थ अलभ्य हैं।

उक्त टीकाओं को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने प्रत्येक विषय का प्रतिपादन बड़ी सरलता से किया है और जहाँ भी नये विषय का संकेत करते हैं वहाँ उसकी पुष्टि के प्रमाण अवश्य देते हैं। इसीलिए यह कहा जा सकता है कि वैदिक साहित्य के टीकाकारों में जो स्थान वाचस्पति मिश्र का है, जैन साहित्य में वही स्थान आचार्य मलयगिरि सूरि का है।

अन्य सप्ततिकाएँ

प्रस्तुत सप्ततिका के सिवाय एक सप्ततिका आचार्य चन्द्रर्षि महत्तर कृत पंचसंग्रह में संकलित है। पंचसंग्रह एक संग्रहग्रन्थ है और यह पाँच भागों में विभक्त है। उसके अंतिम प्रकरण का नाम सप्ततिका है।

पंचसंग्रह की सप्ततिका की अधिकतर गाथाएँ प्रस्तुत सप्ततिका से मिलती जुलती हैं और पंचसंग्रह की रचना प्रस्तुत सप्ततिका के बहुत बाद हुई है तथा उसका नाम सप्ततिका होते हुए भी १५६ गाथाएँ हैं। इससे ज्ञात होता है कि पंचसंग्रह की सप्ततिका का आधार यही सप्ततिका रहा है।

एक अन्य सप्ततिका दिगम्बर परम्परा में भी प्रचलित है जो प्राकृत पंचसंग्रह में उसके अंगरूप से पायी जाती है। प्राकृत पंचसंग्रह एक संग्रह ग्रन्थ है। इसमें अन्तिम प्रकरण सप्ततिका है। आचार्य अमितगति ने इसी के आधार से संस्कृत पंचसंग्रह की रचना की है जो गद्य-पद्य का उभय रूप है और इसमें १३०० से अधिक गाथाएँ हैं।

इनमें से इन दो प्रकरण शतक और सप्ततिका कुछ पाठ भेद के साथ श्वेताम्बर परम्परा में प्रचलित शतक और सप्ततिका से मिलते-जुलते हैं। प्रस्तुत सप्ततिका में ७२ और दिगम्बर परम्परा की सप्ततिका में ७१ गाथाएँ हैं। इनमें से ४० गाथाओं के करीब तो एक सी हैं, १४-१५ गाथाओं में कुछ पाठान्तर है और शेष गाथाएँ अलग-अलग हैं। इसका कारण मान्यता भेद और दोनों का

भेद हो सकता है। फिर भी ये मान्यता-भेद सम्प्रदाय-भेद पर आधारित नही हैं। इसी प्रकार कही-कही वर्णन करने की शैली मे भेद होने से गाथाओ मे अन्तर आ गया है। यह अन्तर उपशमना और क्षपण प्रकरण मे देखने को मिलता है।

इस प्रकार यद्यपि इन दोनो सप्ततिकाओ मे भेद पड जाता है, तो भी ये दोनो एक उद्गम स्थान से निकल कर और बीच-बीच मे दो धाराओ से विभक्त होती हुई अन्त मे एक रूप हो जाती है।

सप्ततिका के बारे मे प्राय. आवश्यक बातो पर प्रकाश डाला जा चुका है, अत॰ अब और अधिक कहने का प्रसग नही है।

इस प्रकार प्राक्कथनो के रूप मे कर्मसिद्धान्त और कर्मग्रन्थो के बारे मे अपने विचार व्यक्त किये है। विद्वद्वर्ग से सानुरोध आग्रह है कि कर्मसाहित्य का विशेष प्रचार एव अध्ययन अध्यापन के प्रति विशेष लक्ष्य देने की कृपा करें।

—श्रीचन्द सुराना

—देवकुमार जैन

□

अनुक्रमणिका

परिशिष्ट

तालिकाएँ

६

कर्मग्रन्थ

[सप्ततिका प्रकरण नामक छठा कर्मग्रन्थ]

श्री वीतरागाय नम

सप्ततिका प्रकरण

[षष्ठ कर्मग्रन्थ]

सप्ततिका प्रकरण के आधार, अभिधेय एवं अर्थगाभीर्य को प्रदर्शित करने वाली प्रतिज्ञा गाथा—

सिद्धपएहिं महत्थं बन्धोदयसन्तपयडिठाणाणं।
वोच्छं सुण संखेवं नीसंदं दिट्ठिवायस्स ॥१॥

शब्दार्थ—सिद्धपएहिं—सिद्धपद वाले ग्रन्थो से, महत्थं—महान अर्थ वाले, बंधोदयसंतपयडिठाणाणं—बंध, उदय और सत्ता प्रकृतियो के स्थानों को, वोच्छं—कहूंगा, सुण—सुनो, संखेवं—संक्षेप मे, नीसंदं—निस्यन्द रूप, बिन्दु रूप, दिट्ठिवायस्स—दृष्टिवाद अंग का।

गाथार्थ—सिद्धपद वाले ग्रन्थो के आधार से बंध, उदय और सत्ता प्रकृतियो के स्थानो को संक्षेप मे कहूंगा, जिसे सुनो। यह संक्षेप कथन महान् अर्थ वाला और दृष्टिवाद अंग रूपी महार्णव के निस्यन्द रूप—एक बिन्दु के समान है।

विशेषार्थ—गाथा मे ग्रन्थ की प्रामाणिकता, वर्ण्य विषय आदि का संकेत किया है। सर्वप्रथम ग्रन्थ की प्रामाणिकता का बोध कराने के लिये पद दिया है 'सिद्धपएहिं' यानी यह ग्रन्थ सिद्ध अर्थ के आधार से रचा गया है। इस ग्रन्थ मे वर्णित विषय मे किसी प्रकार से पूर्वापर विरोध नही है।

जिस ग्रन्थ, शास्त्र या प्रकरण का मूल आधार सर्वज्ञ वाणी होती है, वही ग्रन्थ विद्वानो के लिये आदरणीय है और उसकी प्रामाणिकता

अवाधित होती है। विद्वानो को निश्चिन्त होकर ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन, मनन और चिन्तन करना चाहिये। इसीलिये आचार्य मलयगिरि ने गाथागत 'सिद्धपएहिं' सिद्धपद के निम्नलिखित दो अर्थ किये है—

जिन ग्रन्थो के सव पद सर्वज्ञोक्त अर्थ का अनुसरण करने वाले होने से सुप्रतिष्ठित है, जिनमें निहित अर्थगाम्भीर्य को किसी भी प्रकार से विकृत नही किया जा सकता है, अथवा शंका पैदा नही होती है, वे ग्रन्थ सिद्धपद कहे जाते है।[1] अथवा जिनागम में जीवस्थान, गुणस्थान रूप पद प्रसिद्ध है, अतएव जीवस्थानो, गुणस्थानो का वोध कराने के लिये गाथा मे 'सिद्धपद' दिया गया है।[2]

उक्त दोनो अर्थों मे से प्रथम अर्थ के अनुसार 'सिद्धपद' शव्द कर्मप्रकृति आदि प्राभृतो का वाचक है, क्योकि इस सप्ततिका नामक प्रकरण का विपय उन ग्रथों के आधार से ग्रन्थकार ने सक्षेप रूप में निवद्ध किया है। इस वात को स्पष्ट करने के लिये गाथा के चौथे चरण मे सकेत दिया गया है—'नीसदं दिट्ठिवायस्स'—दृष्टिवादरूपी महार्णव की एक वूंद के समान है। दृष्टिवादरूपी महार्णव की एक वूंद जैसा वतलाने का कारण यह है कि दृष्टिवाद नामक वारहवे अंग के परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका यह पाँच भेद हैं। उनमे से पूर्वगत के उत्पादपूर्व आदि चौदह भेद हैं। उनमे दूसरे पूर्व का नाम अग्रायणीय है और उसके मुख्य चौदह अधिकार है, जिन्हे वस्तु

---

१ सिद्ध—प्रतिष्ठितं चालयितुमशक्यमित्येकोऽर्थ । तत. सिद्धानि पदानि येषु ग्रन्थेषु ते सिद्धपदा:।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १३९

२ स्वममये सिद्धानि—प्रसिद्धानि यानि जीवस्थान-गुणस्थानरूपाणि पदानि तानि सिद्धपदानि, तेभ्य· तान्याश्रित्य तेपु विपय इत्यर्थ ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १३९

कहते हैं। उनमे से पाँचवी वस्तु के बीस उप-अधिकार हैं जिन्हे प्राभृत कहते हैं और इनमे से चौथे प्राभृत का नाम कर्मप्रकृति है। इसी कर्म-प्रकृति का आधार लेकर इस सप्ततिका प्रकरण की रचना हुई है।

उक्त कथन मे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह प्रकरण सर्वज्ञ देव द्वारा कहे गये अर्थ का अनुसरण करने वाला होने से प्रामाणिक है। क्योकि सर्वज्ञदेव अर्थ का उपदेश देते हैं, तदनन्तर उसकी अवधारणा करके गणधरो द्वारा वह द्वादश अगो मे निबद्ध किया जाता है। अन्य आचार्य उन बारह अगो को साक्षात् पढकर या परम्परा से जानकर ग्रथ रचना करते हैं। यह प्रकरण भी गणधर देवो द्वारा निबद्ध सर्वज्ञ देव की वाणी के आधार से रचा गया है।

'सिद्धपद' का दूसरा अर्थ गुणस्थान, जीवस्थान लेने का तात्पर्य यह है कि इनका आधार लिये बिना कर्मप्रकृतियो के बध, उदय और सत्ता का वर्णन नही किया जा सकता है। अत उनका और उनमे बध, उदय, सत्ता स्थानो एव उनके सवेध भगो का बोध कराने के लिये 'सिद्धपद' का अर्थ जीवस्थान और गुणस्थान भी माना जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यद्यपि हम यह जान लेते हैं कि इस सप्ततिका नामक प्रकरण मे कर्मप्रकृति प्राभृत आदि के विषय का सक्षेप किया गया है, लेकिन इसका यह अर्थ नही कि इसमे अर्थगाम्भीर्य नही है। यद्यपि ऐसे बहुत से आख्यान, आलापक और सग्रहणी आदि ग्रन्थ हैं जो सक्षिप्त होकर भी अर्थगौरव से रहित होते हैं, किन्तु यह ग्रन्थ उनमे से नही है। अर्थात् ग्रथ को सक्षिप्त अवश्य किया गया है लेकिन इस सक्षेप रूप मे अर्थगाभीर्य पूर्णरूप मे भरा हुआ है। विशेषताओ मे किसी प्रकार की न्यूनता नही आई है। इसी बात का ज्ञान कराने के लिये ग्रन्थकार ने गाथा मे विशेषण रूप से 'महत्थ' महार्थ पद दिया है।

ग्रन्थकार ने ग्रथ की विशेषताओ को बतलाने के बाद विषय का

निर्देश करते हुए कहा है—'बंधोदयसंतपयडिठाणाण वोच्छं'—बंध, उदय और सत्ता प्रकृति स्थानो का कथन किया जा रहा है। जिनके लक्षण इस प्रकार है—लोहपिंड के प्रत्येक कण मे जैसे अग्नि प्रविष्ट हो जाती है, वैसे ही कर्म-परमाणुओं का आत्मप्रदेशों के साथ परस्पर जो एकक्षेत्रावगाही सम्वन्ध होता है, उसे बंध कहते हैं।[१] विपाक अवस्था को प्राप्त हुए कर्म-परमाणुओं के भोग को उदय कहते है।[२] बंध-समय से या सक्रमण-समय से लेकर जब तक उन कर्म-परमाणुओ का अन्य प्रकृतिरूप से सक्रमण नही होता या जब तक उनकी निर्जरा नही होती, तब तक उनका आत्मा के साथ संबद्ध रहने को सत्ता कहते है।[3]

स्थान शब्द समुदायवाची है, अत प्रकृतिस्थान पद से दो, तीन, आदि प्रकृतियों के समुदाय को ग्रहण करना चाहिये।[४] ये प्रकृति-स्थान बध, उदय और सत्व के भेद से तीन प्रकार के है। जिनका इस ग्रन्थ में विवेचन किया जा रहा है।

गाथा में आगत 'सुण' क्रियापद द्वारा ग्रन्थकार ने यह ध्वनित किया है कि आचार्य शिष्यों को सम्बोधित एव सावधान करके शास्त्र का व्याख्यान करे। क्योकि विना सावधान किये ही अध्ययन-

---

१ तत्र बंधो नाम—कर्मपरमाणूनामात्मप्रदेशै. सह वह्न्यय पिण्डवदन्योऽन्यानुगम.। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४०

२ कर्मपरमाणूनामेव विपाकप्राप्तानामनुभवनमुदय.। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४०

३ वन्धसमयात् सक्रमेणात्मलाभसमयाद्वा आरभ्य यावत् ते कर्मपरमाणवो नान्यत्र सक्रम्यन्ते यावद् वा न क्षयमुपगच्छन्ति तावत् तेषा स्वस्वरूपेण य सद्‌भाव सा सत्ता। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४०

४ प्रकृतीना स्थानानि—समुदाया प्रकृतिस्थानानि द्वित्र्यादिप्रकृतिसमुदाया इत्यर्थ, स्थानशब्दोऽत्र समुदायवाची।—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४०

पठन-पाठन किये जाने की स्थिति मे उसका लाभ शिष्य न उठा सकें और स्वय आचार्य खेदखिन्न हो जायें। अत वैसी स्थिति न बने और शिष्य आचार्य के व्याख्यान को यथाविधि हृदयगम कर सकें, इसी बात को बतलाने के लिये गाथा मे 'सुण' यह क्रियापद दिया गया है।

इस प्रकार से ग्रन्थ के वर्ण्य-विषय आदि का बोध कराने के पश्चात अब ग्रन्थ प्रारम्भ करते हैं। ग्रन्थ का वर्ण्य विषय बध, उदय और सत्व प्रकृतिस्थानो के सबध रूप सक्षेप मे कहना है। अत शिष्य आचार्य के समक्ष अपनी जिज्ञासा पूर्ति के लिये प्रश्न करते हैं कि—

कइ बधतो वेयइ कइ कइ वा पयडिसतठाणाणि।
मूलुत्तरपगईसु भगविगप्पा उ बोधव्वा ॥२॥

शब्दार्थ—कइ—कितनी प्रकृतियो का, बधतो—बध करने वाला, वेयइ—वेदन करता है, कइ-कइ—कितनी कितनी का—अथवा, पयडिसतठाणाणि—प्रकृतियो का सत्तास्थान, मूलुत्तरपगईसु—मूल और उत्तर प्रकृतियो के विषय मे, भगविगप्पा—भगों के विकल्प, उ—और, बोधव्वा—जानना चाहिए।

गाथार्थ—कितनी प्रकृतियो का बध करने वाले जीव के कितनी प्रकृतियो का वेदन होता है तथा कितनी प्रकृतियो का बध और वेदन करने वाले जीव के कितनी प्रकृतियो का सत्व होता है? तो मूल और उत्तर प्रकृतियो के विषय मे अनेक भग विकल्प जानना चाहिये।

विशेषार्थ—ग्रन्थ का वर्ण्य विषय बध आदि प्रकृतिस्थानो का कथन करना है। अत शिष्य प्रश्न प्रस्तुत करता है कि कितनी प्रकृतियो का बध होने समय कितनी प्रकृतियो का उदय होता है आदि। शिष्य की जिज्ञासा का समाधान करते हुए आचार्य उत्तर देते हैं कि मूल और उत्तर प्रकृतियो के विषय मे अनेक भग जानना चाहिए। अर्थात कर्मों की मूल और उत्तर प्रकृतियो में अनेक प्रकार के भग विकल्प

वनते हैं, किन्तु वाचाशक्ति की मर्यादा होने के कारण जिनका पूर्ण-रूपेण कथन किया जाना सम्भव नही होने से क्रमश मूल और उत्तर प्रकृतियो में सामान्यतया उन विकल्पो का कथन करते हैं।

इस प्रकार इस गाथा के वाच्यार्थ पर विचार करने पर दो वातो की सूचना मिलती है। प्रथम यह कि इस प्रकरण में मुख्यतया पहले मूल प्रकृतियो और इसके वाद उत्तर प्रकृतियो के वन्ध-प्रकृतिस्थानो, उदय-प्रकृतिस्थानो और सत्व-प्रकृतिस्थानो का तथा उनके परस्पर सवेध[1] और उनसे उत्पन्न हुए भगो का विचार किया गया है। दूसरी वात यह है कि उन भंग-विकल्पो को यथास्थान जीवस्थानो और गुण-स्थानों मे घटित करके वतलाया गया है।

इस विषय-विभाग को ध्यान मे रखकर टीका में सवसे पहले आठ मूल प्रकृतियो के वध-प्रकृतिस्थानो, उदय-प्रकृतिस्थानों और सत्व-प्रकृतिस्थानो का कथन किया गया है। क्योंकि इनका कथन किये विना आगे की गाथा मे वतलाये गये इन स्थानो के सवेव का सरलता से ज्ञान नही हो सकता है। साथ ही प्रसगानुसार इन स्थानो के स्वामी और काल का निर्देश किया गया है, जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

वधस्थान, स्वामी और उनका काल

कर्मों की मूल प्रकृतियो के निम्नलिखित आठ भेद हैं—१. ज्ञाना-वरण, २. दर्शनावरण, ३ वेदनीय, ४. मोहनीय, ५ आयु, ६. नाम, ७ गोत्र और ८ अंतराय। इनके स्वरूप, लक्षण पहले वतलाये जा चुके हैं। मूल कर्म प्रकृतियों के आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, छह

---

१ सवेधः परस्परमेककालामगमाविरोधेन मीलनम्।

—कर्मप्रकृति बन्धोदय०, पृ० ९५

प्रकृतिक और एक प्रकृतिक इस प्रकार कुल चार बंधस्थान होते हैं।[1]

इनमें से आठ प्रकृतिक बंधस्थान में सब मूल प्रकृतियों का, सप्त प्रकृतिक बंधस्थान में आयुकर्म के बिना सात का, छह प्रकृतिक बंधस्थान में आयु और मोहनीय कर्म के बिना छह का और एक प्रकृतिक बंधस्थान में सिर्फ एक वेदनीय कर्म का ग्रहण होता है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि आयुकर्म का बंध करने वाले जीव के आठों कर्मों का, मोहनीय कर्म को बांधने वाले जीव के आठों का या आयु के बिना सात का, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, नाम, गोत्र और अंतराय कर्म का बंध करने वाले जीव के आठ का, सात का या छह का तथा एक वेदनीय कर्म का बंध करने वाले जीव के आठ का, सात का, छह का या एक वेदनीय कर्म का बंध होता है।[2]

अब उक्त प्रकृतिक बंध करने वालों का कथन करते हैं।

आयुकर्म का बंध सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक होता है किन्तु मिश्र गुणस्थान में आयुबंध नहीं होने का नियम होने से मिश्र गुणस्थान के बिना शेष छह गुणस्थान वाले जीव आयुबंध के समय आठ प्रकृतिक बंधस्थान के स्वामी होते हैं। मोहनीय कर्म का बंध नौवें गुणस्थान तक होता है अतः पहले से लेकर नौवें गुणस्थान तक के जीव सात प्रकृतिक बंधस्थान के स्वामी हैं। किन्तु जिनके आयुकर्म का भी बंध होता हो वे सात प्रकृतिक बंधस्थान के स्वामी नहीं होते

---

1 तत्र मूलप्रकृतीनामुत्तरप्रकृतीनां बंध प्रतीत्य चत्वारि प्रकृतिस्थानानि। तद्यथा—अष्टौ सप्त षट् एका च।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४१

2 आउम्मि अट्ठ मोहेऽट्ठसत्त एक्कं च छाइ वा तइए।
बज्झंतयम्मि बज्झंति सेसएसु छ सत्तऽट्ठ॥

—पंचसंग्रह सप्ततिका, गा० २

हैं, आठ प्रकृतिक बंधस्थान के स्वामी माने जाते हैं। आयु और मोहनीय कर्म के बिना शेष छह कर्मों का बन्ध केवल दसवें गुणस्थान—सूक्ष्मसंपराय में होता है। अतः सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान वाले जीव छह प्रकृतिक बंधस्थान के स्वामी हैं। वेदनीय कर्म का बंध ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान में होता है, अतः उक्त तीन गुणस्थान वाले जीव एक प्रकृतिक बंधस्थान के स्वामी हैं।[1]

इन बंधस्थानों का काल इस प्रकार है कि आठ प्रकृतिक बंधस्थान आयुकर्म के बंध के समय होता है और आयुकर्म का जघन्य व उत्कृष्ट बंधकाल अन्तर्मुहूर्त है। अतः आठ प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जानना चाहिये।

सात प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि जो अप्रमत्तसंयत जीव आठ मूल प्रकृतियों का बन्ध करके सात प्रकृतियों के बंध का प्रारम्भ करता है, वह यदि उपशम श्रेणि पर आरोहण करके अन्तर्मुहूर्त काल में सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान को प्राप्त हो जाता है तो उसके सात प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है। इसका कारण यह है कि सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में छह प्रकृतिक स्थान का बंध होने लगता है तथा सात प्रकृतिक बंधस्थान

---

1 छसु सगविहमट्ठविहं कम्मं बंधंति तिसु य सत्तविहं।
छव्विहमेक्कट्ठाणे तिसु एक्कमबंधगो एक्को॥—गो० कर्मकांड ४५२

—मिश्र गुणस्थान के बिना अप्रमत्त गुणस्थान पर्यन्त छह गुणस्थानों में जीव आयु के बिना सात और आयु सहित आठ प्रकार के कर्मों को बाँधते हैं। मिश्र, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन तीन गुणस्थानों में आयु के बिना सात प्रकार के ही कर्म बाँधते हैं। सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में आयु, मोह के बिना छह प्रकार के कर्मों का बन्ध होता है। उपशान्तकषाय आदि तीन गुणस्थानों में एक वेदनीय कर्म का ही बन्ध होता है और अयोगि गुणस्थान बन्धरहित है अर्थात् उसमें किसी प्रकृति का बन्ध नहीं होता है।

का उत्कृष्ट काल, छह माह और अन्तर्मुहूर्त कम, एक पूर्व कोटि वर्ष का त्रिभाग अधिक तेतीस सागर है। क्योंकि जब एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण आयु वाले किसी मनुष्य या तिर्यंच के आयु का एक त्रिभाग शेष रहने पर अन्तर्मुहूर्त काल तक परभव सम्बन्धी आयु का बंध होता है, अनन्तर भुज्यमान आयु के समाप्त हो जाने पर वह जीव तेतीस सागर प्रमाण उत्कृष्ट आयु वाले देवों में या नारकों में उत्पन्न होकर और वहां आयु के छह माह शेष रहने पर पुनः परभव सम्बन्धी आयु का बंध करता है, तब उसके सात प्रकृतिक बंधस्थान का उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है।

छह प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसका कारण यह है कि छह प्रकृतिक बंधस्थान का स्वामी सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थानवर्ती जीव है। अतः उक्त गुणस्थान वाला जो उपशामक जीव उपशम श्रेणि पर चढ़ते समय या उतरते समय एक समय तक सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान में रहता है और मर कर दूसरे समय में अविरत सम्यग्दृष्टि देव हो जाता है, उसके छह प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्यकाल एक समय होता है तथा छह प्रकृतिक बंधस्थान का अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उत्कृष्ट काल सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान के उत्कृष्ट काल की अपेक्षा बताया है। क्योंकि सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थान का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

एक प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण है। जिसका स्पष्टीकरण यह है कि जो उपशम श्रेणि वाला जीव उपशान्तमोह गुणस्थान में एक समय तक रहता है और मर कर दूसरे समय में देव हो जाता है, उस उपशान्तमोह वाले जीव के एक प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है तथा एक पूर्व कोटि वर्ष की आयु वाला जो मनुष्य सात माह गर्भ में रहकर और तदनन्तर जन्म लेकर आठ वर्ष प्रमाण

काल व्यतीत होने पर संयम धारण करके एक अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर क्षीणमोह होकर सयोगिकेवली हो जाता है, उसके एक प्रकृतिक बंधस्थान का उत्कृष्ट काल आठ वर्ष, सात माह और अन्तर्मुहूर्त कम एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण प्राप्त होता है। बन्धस्थानों के भेद, स्वामी और काल प्रदर्शक विवरण इस प्रकार है—

बंधस्थान	मूल प्रकृति	स्वामी	काल	
			जघन्य	उत्कृष्ट
आठ प्रकृतिक	सब	मिश्र गुण के बिना अप्रमत्त गुणस्थान तक	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
सात प्रकृतिक	आयु के बिना	आदि के नौ गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	एक अन्तर्मुहूर्त और छह माह कम तथा पूर्व कोटि का त्रिभाग अधिक तेतीस सागर
छह प्रकृतिक	मोह व आयु के बिना	सूक्ष्म-संपराय	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
एक प्रकृतिक	वेदनीय	११, १२, १३वां गुणस्थान	एक समय	देशोन पूर्वकोटि

उदयस्थान, स्वामी और काल

बंध प्रकृतिस्थानों का कथन करने के पश्चात् अब उदय की अपेक्षा से प्रकृतिस्थानों का निरूपण करते हैं कि आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और चार प्रकृतिक, इस प्रकार मूल प्रकृतियों की अपेक्षा तीन उदयस्थान होते हैं।[1]

---

१ उदय प्रति त्रीणि प्रकृतिस्थानानि, तद्यथा—अष्टौ सप्त चतस्रः।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४२

आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे सब मूल प्रकृतियो का, सात प्रकृतिक उदयस्थान मे मोहनीय कर्म के बिना सात मूल प्रकृतियो का और चार प्रकृतिक उदयस्थान मे चार अघाती कर्मो का ग्रहण होता है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मोहनीय के उदय रहते आठो कर्मों का उदय होता है। मोहनीय के बिना शेष तीन घाती कर्मो का उदय रहते आठ या सात कर्मो का उदय होता है। आठ कर्मों का उदय सूक्ष्मसपराय नामक दसवे गुणस्थान तक होता है और सात का उदय उपशान्तमोह या क्षीणमोह गुणस्थान मे होता है। चार अघाती कर्मो का उदय रहते आठ, सात या चार का उदय होता है। इनमे से आठ का उदय सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक, सात का उदय उपशान्तमोह या क्षीणमोह गुणस्थान मे और चार का उदय सयोगि-केवली तथा अयोगिकेवली गुणस्थान मे होता है।[1]

उक्त उदयस्थानो के स्वामी इस प्रकार समझना चाहिये कि मोहनीय कर्म का उदय दसवे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक होता है अत आठ प्रकृतिक उदयस्थान के स्वामी प्रारम्भ से दस गुणस्थान तक के जीव हैं। मोहनीय के सिवाय शेष तीन घाती कर्मो का उदय बारहवे गुणस्थान तक होता है अत सात प्रकृतिक उदयस्थान के

---

१ (क) मोहस्सुदए अट्ठ वि सत्त य लब्भंति सेसयाणुदए।
सन्तोइण्णाणि अघाइयाण अट्ठ सत्त चउरो य ॥
—पचसग्रह सप्ततिका गा० ३

(ख) तत्र मोहनीयस्योदयेऽष्टानामप्युदय मोहनीयवर्जानां त्रयाणां घाति कर्मणामुदयेऽष्टानां सप्तानां वा। तत्राष्टानां सूक्ष्मसपरायगुणस्थानकं यावत् सप्तानामुपशान्तमोहे क्षीणमोहे वा वेदनीयाऽऽयुर्नामगोत्राणामुदयेऽष्टानां सप्तानां चतसृणां वा उदय। तत्राष्टानां सूक्ष्मसपराय यावत् सप्तानामुपशान्तमोहे क्षीणमोहे वा, चतसृणामेतासामेव वेदनीयादीनां सयोगिकेवलिनि अयोगिकेवलिनि च।
—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

स्वामी ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान के जीव है। चार अघाती कर्मों का उदय तेरहवे सयोगिकेवली और चौदहवे अयोगिकेवली गुणस्थान तक होता है। अतएव चार प्रकृतिक उदयस्थान के स्वामी सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जीव हैं।[1]

इन तीन उदयस्थानो मे से आठ प्रकृतिक उदयस्थान के काल के तीन विकल्प हैं—१ अनादि-अनन्त, २ अनादि-सान्त और ३. सादि-सान्त। इनमे से अभव्यो के अनादि-अनन्त, भव्यों के अनादि-सान्त और उपशान्तमोह गुणस्थान से गिरे हुए जीवों की अपेक्षा सादि-सान्त काल होता है।[2]

सादि-सान्त विकल्प की अपेक्षा आठ प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम अपार्धपुद्गल परावर्त प्रमाण है। जो जीव उपशमश्रेणि से गिरकर पुनः अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर उपशमश्रेणि पर चढ़कर उपशममोही हो जाता है, उस जीव के आठ प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होता है और जो जीव अपार्ध पुद्गल परावर्त काल के प्रारम्भ में उपशान्तमोही और अन्त मे क्षीणमोही हुआ है, उसके आठ प्रकृतिक

---

१ अट्ठुदओ सुहुमो त्ति य मोहेण विणा हु सतखीणेसु।
घादिदराण चउक्कस्सुदओ केवलिदुगे नियमा ॥

—गो० कर्मकांड, गा० ४५४

—सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक आठ प्रकृतियो का उदय है। उपशान्तकषाय और क्षीणकषाय इन दो गुणस्थानों मे मोहनीय के विना सात का उदय है तथा सयोगि और अयोगि इन दोनो मे चार अघातिया कर्मों का उदय नियम से जानना चाहिये।

२ तत्र सर्वप्रकृतिसमुदायोऽष्टौ, तासां चोदयोऽभव्यानधिकृत्य अनाद्यपर्यवसित., भव्यानधिकृत्यानादिसपर्यवसान., उपशान्तमोहगुणस्थानकात् प्रतिपतितान-धिकृत्य पुन सादिसपर्यवसानः। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४२

उदयस्थान का उत्कृष्टकाल कुछ कम अपार्ध पुद्गल परावर्त होता है।

सात प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सात मूल प्रकृतियों का उदय उपशान्तमोह और क्षीणमोह इन दो गुणस्थानों में होता है। परन्तु क्षीणमोह गुणस्थान में न तो मरण होता है और न उससे पतन होता है और क्षीणमोह गुणस्थानवर्ती जीव नियम से तीन घाती कर्मों का क्षय करके सयोगिकेवली हो जाता है। लेकिन उपशान्तमोह गुणस्थान में जीव का मरण भी होता है और उसमें प्रतिपात भी होता है। अतः जो जीव एक समय तक उपशान्तमोह गुणस्थान में रहकर और दूसरे समय में मरकर अविरति सम्यग्दृष्टि देव हो जाता है, उसके सात प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्यकाल एक समय माना जाता है तथा उपशान्तमोह या क्षीणमोह गुणस्थान का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः सात प्रकृतिक उदयस्थान का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त माना जाता है।

चार प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्व कोटि प्रमाण है। जो जीव सयोगिकेवली होकर एक अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर निर्वाण को प्राप्त कर लेता है उसकी अपेक्षा चार प्रकृतिक उदयस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है और उत्कृष्टकाल एक प्रकृति बंधस्थान काल की तरह देशोन पूर्व कोटि प्रमाण समझना चाहिये।[1] अर्थात् जैसे एक प्रकृतिक बंधस्थान का उत्कृष्टकाल बतलाया है कि एक पूर्व कोटि वर्ष की आयु वाला मनुष्य सात माह गर्भ में रहकर और तदनन्तर

---

१ घातिकर्मवर्जाश्चतस्र प्रकृतयः तासामुदयो जघन्येनान्तर्मौहूर्तिकः उत्कर्षेण तु देशोनपूर्वकोटिप्रमाणः। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४२

जन्म लेकर आठ वर्ष प्रमाण काल के व्यतीत होने पर संयम प्राप्त करके एक अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर क्षीणमोह, सयोगिकेवली हो जाता है तो वैसे ही आठ वर्ष, सात माह कम एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण समझना चाहिये। यहाँ इतनी विशेषता है कि इसमे क्षीणमोह गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त घटा कर उतना काल लेना चाहिये।

उदयस्थानो के स्वामी, काल आदि का विवरण इस प्रकार है—

उदयस्थान	मूल प्रकृति	स्वामी	काल	
			जघन्य	उत्कृष्ट
आठ प्रकृति	सभी	आदि के दस गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	कुछ कम अपार्ध पुद्गल परावर्त
सात प्रकृति	मोह के बिना	११वाँ, १२वाँ गुणस्थान	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
चार प्रकृति	चार अघाती	१३वाँ, १४वाँ गुणस्थान	अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वकोटि

सत्तास्थान, स्वामी और काल

बन्ध और उदयस्थानों को बतलाने के बाद अब सत्तास्थानो को बतलाते हैं। सत्ता प्रकृतिस्थान तीन हैं—आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और चार प्रकृतिक।[1] आठ प्रकृतिक सत्तास्थान मे ज्ञानावरण आदि अन्तरायपर्यन्त सब मूल प्रकृतियो का, सात प्रकृतिक सत्तास्थान मे मोहनीय के सिवाय शेष सात प्रकृतियों और चार प्रकृतिक सत्तास्थान में चार अघाती कर्मों का ग्रहण किया जाता है। इसका विशेष स्पष्टीकरण यह है कि मोहनीय कर्म के सद्भाव में आठो कर्मों की, ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अतराय की विद्यमानता में आठों

१ सत्ता प्रति त्रीणि प्रकृतिस्थानानि। तद्यथा—अष्टौ, सप्त चतस्र।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

कर्मों की या मोहनीय के बिना सात कर्मों की तथा वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र इन चार अघाती कर्मों के रहते हुए आठों की, मोहनीय के बिना सात की या चार अघाती कर्मों की सत्ता पाई जाती है।[1]

इन सत्तास्थानों के स्वामी इस प्रकार है—

चार अघाती कर्मों की सत्ता सयोगि और अयोगि केवलियों के होती है। अत चार प्रकृतिक सत्तास्थान के स्वामी सयोगिकेवली और अयोगिकेवली गुणस्थानवर्ती होते हैं।[2] मोहनीय के बिना शेष सात कर्मों की सत्ता बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान मे पाई जाती है, अत सात प्रकृतिक सत्तास्थान के स्वामी क्षीणमोह गुणस्थान वाले जीव हैं। आठ कर्मों की सत्ता पहले से लेकर ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थान तक पाई जाती है, अत आठ प्रकृतिक सत्तास्थान के स्वामी आदि के ग्यारह गुणस्थान वाले जीव है।[3]

---

१ मोहनीय सत्यष्टानामपि सत्ता, ज्ञानावरणदर्शनावरणान्तरायाणा सत्तायां अष्टाना सप्ताना वा सत्ता। वेदनीयाऽऽयुर्नामगोत्राणा सत्तायामष्टाना सप्ताना चतसृणां वा सत्ता। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

२ चतसृणा सत्ता वेदनीयादीनामेव सा, च सयोगिकेवलिगुणस्थानके अयोगिकेवलिगुणस्थानके च द्रष्टव्या। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

३ (क) तत्राष्टानामुपशान्तमोहगुणस्थानक यावत् मोहनीये क्षीणे सप्ताना, सा च क्षीणमोहगुणस्थानके। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

(ख) सतो त्ति अट्ठसत्ता खीणे सत्तेव होति सत्ताणि।
जोगिम्मि अजोगिम्मि य चत्तारि हवंति सत्ताणि॥

—गो० कर्मकांड गा० ४५७

उपशान्तकषाय गुणस्थान पर्यन्त आठों प्रकृतियों की सत्ता है। क्षीणकषाय गुणस्थान में मोहनीय के बिना सात कर्मों की ही सत्ता है और सयोगिकेवली व अयोगिकेवली इन दोनों में चार अघातिया कर्मों की सत्ता है।

इन तीन सत्तास्थानों में से आठ प्रकृतिक सत्तास्थान का काल अभव्य की अपेक्षा अनादि-अनन्त है, क्योंकि अभव्य के सिर्फ एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है और मिथ्यात्व गुणस्थान में किसी भी मूल प्रकृति का क्षय नहीं होता है। भव्य जीवों की अपेक्षा आठ प्रकृतिक सत्तास्थान का काल अनादि-सान्त है, क्योकि क्षपक सूक्ष्म-संपराय गुणस्थान मे ही मोहनीय कर्म का समूल उच्छेद कर देता है और उसके बाद क्षीणमोह गुणस्थान में सात प्रकृतिक सत्तास्थान की प्राप्ति होती है और क्षीणमोह गुणस्थान से प्रतिपतन नहीं होता है। जिससे यह सिद्ध हुआ कि भव्य जीवों की अपेक्षा आठ प्रकृतिक सत्तास्थान अनादि-सात है।[1]

सात प्रकृतिक सत्तास्थान बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान मे होता है और क्षीणमोह गुणस्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। अत सात प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण ही है।[2]

चार प्रकृतिक सत्तास्थान सयोगिकेवली और अयोगिकेवली गुणस्थानों मे पाया जाता है और इन गुणस्थानों का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्व कोटि वर्ष प्रमाण हैं। अतः चार प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण समझना चाहिये।

---

१ तत्र मर्वप्रकृतिसमुदायोऽष्टौ, एतासां चाष्टाना सत्ता अभव्यानधिकृत्य अनाद्यपर्यवसाना, भव्यानधिकृत्य अनादिसपर्यवसाना।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

२ मोहनीये क्षीणे सप्ताना सत्ता, सा च जघन्योत्कर्षेणान्तर्मुहूर्तप्रमाणा, सा हि क्षीणमोहे, क्षीणमोहगुणस्थानक चान्तर्मुहूर्तप्रमाणमिति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

यहाँ कुछ कम का मतलब आठ वर्ष, सात मास और अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।[1] सत्तास्थानों के स्वामी, काल आदि का विवरण इस प्रकार है—

सत्तास्थान	मूलप्रकृति	स्वामी	काल	
			जघन्य	उत्कृष्ट
आठ प्रकृतिक	सभी	आदि के ११ गुणस्थान	अनादि-सान्त	अनादि-अनन्त
सात प्रकृतिक	मोहनीय के बिना	क्षीणमोह गुणस्थान	अन्तमुहूर्त	अन्तमुहूर्त
चार प्रकृतिक	४ अघाति	१३वाँ, १४वाँ गुणस्थान	अन्तमुहूर्त	देशोन पूर्वकोटि

इस प्रकार मूल प्रकृतियों के पृथक्-पृथक् बंध, उदय और सत्ता प्रकृतिस्थानों को समझना चाहिये। अब आगे की गाथा में मूलकर्मों के संवेध भंगों का कथन करते हैं।

मूलकर्मों के संवेध भंग

> **अट्ठविहसत्तछब्बंधगेसु अट्ठेव उदयसंताइं।**
> **एगविहे तिविगप्पो एगविगप्पो अबंधम्मि ॥३॥**[2]

१ घातिकर्मचतुष्टयक्षये च चतसृणां सत्ता सा च जघन्येनान्तर्मुहूर्तप्रमाणा, उत्कर्षेण पुनर्देशोनपूर्वकोटिमाना। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

२ तुलना कीजिये—

अट्ठविहसत्तछब्बंधगेसु अट्ठेव उदयकम्मंसा।
एयविहे तिवियप्पो एय वियप्पो अबंधम्मि ॥ —गो० कर्मकाण्ड, ६२८

—मूल प्रकृतियों में से ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार के बंध वाले अथवा सात प्रकार के बंध वाले या छह प्रकार के बंध वाले जीवों के उदय और सत्त्व आठ-आठ प्रकार का जानना। जिसके एक प्रकार मूल प्रकृति का बंध है उसके तीन भेद होते हैं। जिसके एक प्रकृति का भी बंध नहीं होता उसके उदय और सत्त्व चार-चार प्रकार के होने से एक ही विकल्प है।

शब्दार्थ—अट्ठविहसत्तछब्बंधगेसु—आठ, सात और छह प्रकृतिक बंध के समय, अट्ठेव—आठों ही, उदयसंताइं—उदय और सत्ता, एगविहे—एकविध बंध के समय, तिविगप्पो—तीन विकल्प, एगविगप्पो—एक विकल्प, अबंधम्मि—बंध के न होने पर।

भावार्थ—आठ, सात और छह प्रकार के कर्मों का बंध होने के समय उदय और सत्ता आठों कर्मों की होती है। एकविध (एक का) बंध होते समय उदय व सत्ता की अपेक्षा तीन विकल्प होते हैं तथा बंध न होने पर उदय और सत्ता की अपेक्षा एक ही विकल्प होता है।

विशेषार्थ—इस गाथा में मूल प्रकृतियों के बंध, उदय और सत्ता के संवेध भंगों का कथन किया गया है।

आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और छह प्रकृतिक बंध होने के समय आठों कर्मों का उदय और आठों कर्मों की सत्ता होती है—'अट्ठेव उदयसंताइं'। अर्थात् सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक के जीव मिश्र गुणस्थान को छोड़कर आयुबंध के समय आठों कर्मों का बंध कर सकते हैं अतः उनके आठ प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता होती है। अनिवृत्तिबादर संपराय गुणस्थान तक के जीव आयुकर्म के बिना शेष सात कर्मों का बंध करते हैं किन्तु इनके उदय और सत्ता आठों कर्मों की हो सकती है और सूक्ष्मसंपराय संयत आयु व मोहनीय कर्म के बिना छह कर्मों का बंध करते हैं लेकिन इनके भी आठ कर्मों का उदय और सत्ता होती है।

इस प्रकार से कर्मों की बंध प्रकृतियों में भिन्नता होने पर उदय और सत्ता एक जैसी मानने का कारण यह है कि उपर्युक्त सभी जीव सराग होते हैं और सरागता का कारण मोहनीय कर्म का उदय और जब मोहनीय कर्म का उदय है तब उसकी सत्ता अवश्य ही

होगी। इसीलिये आठ, सात और छह प्रकार के कर्मों का बंध होते समय आठों कर्मों का उदय और सत्ता होती है।[1]

इस कथन से निम्नलिखित तीन भंग प्राप्त होते हैं—

१ आठ प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय, आठ प्रकृतिक सत्ता।

२ सात प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय, आठ प्रकृतिक सत्ता।

३ छह प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय, आठ प्रकृतिक सत्ता।

इन भंगों का स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

पहला भंग आयुकर्म के बंध के समय पहले मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक पाया जाता है। शेष गुणस्थानों में नहीं, क्योंकि अन्य गुणस्थानों में आयुकर्म का बंध नहीं होता है। किन्तु मिश्र गुणस्थान में आयु का बंध नहीं होने से उसको यहाँ ग्रहण नहीं करना चाहिये। अर्थात् मिश्र गुणस्थान में आयु का बंध नहीं होता अतः वहाँ पहला भंग सम्भव नहीं है। इसका काल जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

दूसरा भंग पहले गुणस्थान से लेकर नौवें अनिवृत्तिबादर संपराय गुणस्थान तक होता है। यद्यपि तीसरे मिश्र, आठवें अपूर्वकरण,

---

१ इहाष्टविधबन्धका अप्रमत्तान्ता सप्तविधबन्धका अनिवृत्तिबादर-संपरायपर्यवसाना षड्विधबन्धकाश्च सूक्ष्मसंपरायाः, एते च सर्वेऽपि सरागाः। सरागत्वं च मोहनीयोदयाद् उपजायते उदये च सत्यवश्यं सत्ता, ततो मोहनीयोदयसत्तासम्भवाद् अष्टविध—सप्तविध—षड्विध बन्धकेष्ववश्यमुदये सत्तायां चाष्टौ प्राप्यन्ते। एते च त्रयो भंगा दर्शिताः तद्यथा—अष्टविधो बन्धः अष्टविध उदयः अष्टविधा सत्ता। एष विकल्प आयुर्बन्धकाले। सप्तविधो बन्धोऽष्टविध उदयोऽष्टविधा सत्ता, एष विकल्प आयुर्बन्धाभावे। तथा षड्विधो बन्धोऽष्टविध उदयोऽष्टविधा सत्ता, एष विकल्पः सूक्ष्मसंपरायाणाम्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४३

नौवे अनिवृत्तिवादर गुणस्थान मे आयुकर्म का वध नही होता अतः वहाँ तो यह दूसरा भंग ही होता है किन्तु मिथ्यादृष्टि आदि अन्य गुणस्थानवर्ती जीवो के भी सर्वदा आयुकर्म का बंध नही होता, अतः वहाँ भी जव आयुकर्म का वध नही होता है तव दूसरा भंग वन जाता है। इस भग का काल जघन्य से अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट छह माह और अन्तर्मुहूर्त कम पूर्वकोटि का त्रिभाग अधिक तेतीस सागर है।

तीसरा भंग सूक्ष्मसपराय गुणस्थानवर्ती जीव को ही होता है। क्योंकि इनके आयु और मोहनीय कर्म के बिना शेप छह कर्मो का ही वंध होता है। इसका काल जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

यह तीनो भंग वंधस्थानों की प्रधानता से वनते हैं। अत. इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल पूर्व मे वताये वधस्थानो के काल के अनुरूप वतलाया है।

एक प्रकार के अर्थात् एक वेदनीय कर्म का वंध होने पर तीन विकल्प होते हैं—'एगविहे तिविगप्पो'। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

वेदनीय कर्म का वंध ग्यारहवे, वारहवे और तेरहवे—उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगिकेवली, इन तीन गुणस्थानो मे होता है। किन्तु उपशान्तमोह गुणस्थान मे सात का उदय और आठ की सत्ता, क्षीणमोह गुणस्थान मे सात का उदय और सात की सत्ता, सयोगिकेवली गुणस्थान मे एक का वध और चार का उदय, चार की सत्ता पाई जाती है। अतः एक—वेदनीय कर्म का वंध होने की स्थिति मे उदय और सत्ता की अपेक्षा तीन भग इस प्रकार प्राप्त होते हैं—

१ एक प्रकृतिक वध, सात प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता।

२ एक प्रकृतिक बंध, सात प्रकृतिक उदय और सात प्रकृतिक सत्ता।

३ एक प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता।

इनमे से पहला भंग उपशान्तमोह गुणस्थान मे होता है। क्योंकि वहा मोहनीय कर्म के बिना सात कर्मों का उदय होता है, किन्तु सत्ता आठो कर्मों की होती है। इसका काल जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

दूसरा भंग क्षीणमोह गुणस्थान मे होता है। क्योंकि मोहनीय कर्म का समूल क्षय क्षपक सूक्ष्मसंपराय संयत के हो जाता है। जिससे क्षीणमोह गुणस्थान मे उदय और सत्ता सात कर्मों की पाई जाती है। इसका काल जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

तीसरा भंग सयोगिकेवली गुणस्थान मे होता है। क्योंकि वहा बंध तो सिर्फ एक वेदनीय कर्म का ही होता है। किन्तु उदय और सत्ता चार अघाती कर्मों की पाई जाती है। इसका काल जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि प्रमाण समझना चाहिये।

इस प्रकार उक्त तीन भंग क्रमशः ग्यारहवें, बारहवें और तेरहवें गुणस्थान की प्रधानता से होते हैं।

'एगविगप्पो अबंधम्मि' अर्थात् अबन्धदशा मे सिर्फ एक ही विकल्प—भंग होता है। वह इस प्रकार समझना चाहिये कि अयोगिकेवली गुणस्थान मे किसी भी कर्म का बंध नही होता है किन्तु वहा उदय और सत्ता चार अघाती कर्मों की पाई जाती है। इसीलिये वहाँ चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता, यह एक ही भंग होता है।[1]

---

१ 'अबन्धे' बन्धाभावे एक एव विकल्प तद्यथा—चतुर्विध उदयश्चतुर्विधा सत्ता, एष चायोगिकेवलिगुणस्थानके प्राप्यते तत्र हि योगाभावाद् बन्धो न भवति, उदय-सत्ते चाघातिकर्मणा भवत ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४४

इस भंग का जघन्य और उत्कृष्ट काल अयोगिकेवली गुणस्थान के समान अन्तर्मुहूर्त प्रमाण समझना चाहिये।

इस प्रकार मूल प्रकृतियो के वंध, उदय और सत्ता प्रकृतिस्थानो की अपेक्षा संवेध भग सात होते है। स्वामी, काल, सहित उनका विवरण पृष्ठ २३ की तालिका मे दिया गया है।

मूल प्रकृतियो की अपेक्षा वन्ध, उदय और सत्ता प्रकृतिस्थानो के परस्पर सवेध भंगो को वतलाने के पश्चात् अव इन विकल्पो को जीवस्थानो मे वतलाते है।

सत्तट्ठबंधअट्ठुदयसंत तेरससु जीवठाणेसु।
एगम्मि पंच भंगा दो भंगा हुंति केवलिणो ॥४॥

शब्दार्थ—**सत्तट्ठबंध**—सात और आठ का वध, **अट्ठुदयसंत**—आठ का उदय, आठ की सत्ता, **तेरससु**—तेरह मे, **जीवठाणेसु**—जीवस्थानो मे, **एगम्मि**—एक (पर्याप्त सज्ञी) जीवस्थान मे, **पंचभंगा**—पाँच भग, **दो भंगा**—दो भग, **हुंति**—होते हैं, **केवलिणो**—केवली के।

गाथार्थ—आदि के तेरह जीवस्थानो मे सात प्रकृतिक और आठ प्रकृतिक वध मे आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्व यह दो-दो भग होते है। एक—सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे आदि के पाँच भग तथा केवलज्ञानी के अन्त के दो भंग होते है।

विशेषार्थ—सवेध भगों को जीवस्थानो मे वतलाया है। जीवस्थान का स्वरूप और भेद चौथे कर्मग्रन्थ मे वतलाये जा चुके है। जिनका सक्षिप्त सारांश यह है कि जीव अनन्त है और उनकी जातियाँ वहुत है, लेकिन उनका समान पर्याय रूप धर्मो के द्वारा सग्रह करने को जीवस्थान कहते है, और उसके चौदह भेद किये है—

१ अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, २ पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, ३ अपर्याप्त वादर एकेन्द्रिय, ४. पर्याप्त वादर एकेन्द्रिय, ५. अपर्याप्त

क्रम संख्या	बंधस्थान	उदय स्थान	सत्ता स्थान	स्वामी	काल	
					जघन्य	उत्कृष्ट
१	आठ प्रकृ०	आठ प्रक०	आठ प्रकृ०	मिश्र के सिवाय अप्र० गुणस्थान तक ६ गुणस्थान	अन्तमुहूर्त	अन्तमुहूर्त
२	सात प्रकृ०	आठ प्रक०	आठ प्रकृ०	आदि के ६ गुणस्थान	अन्तमुहूर्त	छह माह और अन्त० कम पूर्व कोटि का त्रिभाग अधिक तैतीस सागर
३	छह प्रकृ०	आठ प्रक०	आठ प्रकृ०	सूक्ष्म सम्पराय	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
४	एक प्रकृ०	सात प्रक०	आठ प्रकृ०	उपशान्त मोह	एक समय	अन्तमुहूर्त
५	एक प्रकृ०	सात प्रक०	सात प्रकृ०	क्षीणमोह	अन्तमुहूर्त	अन्तमुहूर्त
६	एक प्रकृ०	चार प्रक०	चार प्रकृ०	सयोगि केवली	अन्तमुहूर्त	देशोन पूर्व-कोटि
७	०	चार प्रक०	चार प्रकृ०	अयोगि केवली	अन्तमुहूर्त	अन्तमुहूर्त

द्वीन्द्रिय, ६ पर्याप्त द्वीन्द्रिय, ७ अपर्याप्त त्रीन्द्रिय, ८ पर्याप्त त्रीन्द्रिय, ९. अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय, १० पर्याप्त चतुरिन्द्रिय, ११ अपर्याप्त असज्ञी पचेन्द्रिय, १२ पर्याप्त असज्ञी पचेन्द्रिय, १३ अपर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय, १४ पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय।

जीवस्थान के उक्त चौदह भेदों में से आदि के तेरह जीवस्थानो मे दो-दो भग होते हैं—२ सात प्रकृतिक वध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता, २ आठ प्रकृतिक वंध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता। इन दोनों भगो को वताने के लिये गाथा मे कहा है—'सत्तट्ठवंधअट्ठुदयसत तेरससु जीवठाणेसु'।

इन तेरह जीवस्थानो में दो भग इस कारण होते है कि इन जीवो के दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय की उपशमना अथवा क्षपणा की योग्यता नही पाई जाती है और अधिकतर मिथ्यात्व गुणस्थान ही सम्भव है। यद्यपि इनमे से कुछ जीवस्थानो में दूसरा गुणस्थान भी हो सकता है, लेकिन उससे भगो में अन्तर नही पडता है।

उक्त दो भग-विकल्पों मे से सात प्रकृतिक वध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता वाला पहला भग जव आयुकर्म का वन्ध नही होता है तव पाया जाता है तथा आठ प्रकृतिक वन्ध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता वाला दूसरा भग आयु-कर्म के वन्ध के समय होता है। इनमें से पहले भग का काल प्रत्येक जीवस्थान के काल के वरावर यथायोग्य समझना चाहिये और दूसरे भग का जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है, क्योकि आयुकर्म के वन्ध का जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।[1]

---

१ सप्तविधो वन्ध. अष्टविध उदय अष्टविधा सत्ता, एष विकल्प आयुर्वन्धकाल मुक्त्वा शेपकाल सर्वदैव लभ्यते, अष्टविधो वन्ध अष्टविध उदय अष्टविधा सत्ता, एप विकल्प आयुर्वन्धकाले, एष चान्तर्मौहूर्तिक., आयुर्वन्धकालस्य जघन्ये-नोत्कर्षेण चान्तर्मुहूर्तप्रमाणत्वात्। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १४४

आदि के तेरह जीवस्थानो के दो दो भगो का विवरण इस प्रकार समझना चाहिये—

जीवस्थान	बंध	उदय	सत्ता
सू० ए० अ०	७/८	८	८
सू० ए० प०	७/८	८	८
बा० ए० अप०	७/८	८	८
बा० ए० प०	७/८	८	८
द्वी० अप०	७/८	८	८
द्वी० प०	७/८	८	८
त्री० अप०	७/८	८	८
त्री० प०	७/८	८	८
च० अप०	७/८	८	८
च० प०	७/८	८	८
असं० अप०	७/८	८	८
असं० प०	७/८	८	८
सं० अप०	७/८	८	८

'एगम्मि पचभगा' अर्थात् पूर्वोक्त तेरह जीवस्थानो से शेष रहे एक चौदहवें जीवस्थान मे पाँच भग होते हैं। इन पाँच भगो मे पूर्वोक्त दो भग—१ सात प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय व सत्ता, २ आठ प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता तो होते ही हैं। साथ मे १ छह प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता, २ एक प्रकृतिक बंध, सात प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता, एक प्रकृतिक बंध, सात प्रकृतिक उदय और सात प्रकृतिक सत्ता यह तीन भग और होते हैं। इस प्रकार पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय के कुल पाँच भग समझने चाहिये।

पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय के पांच भग इस प्रकार होते हैं—

बन्ध	८	७	६	१	१
उदय	८	८	८	७	७
सत्ता	८	८	८	८	७

इन पांच भंगो में से पहला भंग अनिवृत्ति गुणस्थान तक, दूसरा भंग अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक, तीसरा भंग उपशमश्रेणि या क्षपकश्रेणि मे विद्यमान सूक्ष्मसंपराय सयत के, चौथा भंग उपशान्तमोह गुणस्थान मे और पाँचवा भंग क्षीणमोह गुणस्थान मे होता है।

यद्यपि केवली जिन भी पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय हैं और उनके भी पाँच भग मानना चाहिये। लेकिन उनके भग अलग से वताने का कारण यह है कि केवली जीवो के क्षायोपशमिक ज्ञान नही रहते है अतः वे सज्ञी नही होते है। इसीलिये उनके सज्ञित्व का निषेध करने के लिये गाथा मे उनके भगों का पृथक् से निर्देश किया है—'दो भगा हुंति केवलिणो'। उनके एक प्रकृतिक वध, चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता—यह एक भग तथा चार प्रकृतिक उदय व चार प्रकृतिक सत्ता, लेकिन बंध एक भी प्रकृति का नही, यह दूसरा भंग ही होता है। पहला भग सयोगिकेवली के पाया जाता है, वहाँ सिर्फ एक वेदनीय कर्म का ही बंध होता है, किन्तु उदय और सत्ता चार अघाति कर्मों की रहती है। दूसरा भग अयोगिकेवली के होता है। क्योंकि इनके एक भी कर्म का वंध न होकर सिर्फ चार अघाति कर्मों का उदय व सत्ता पाई जाती है।

जीवस्थानों में भंगों का विवरण इस प्रकार समझना चाहिये—

बंध प्रकृति	उदय प्रकृति	सत्ता प्रकृति	जीवस्थान	काल	
				जघन्य	उत्कृष्ट
८	८	८	१४	अन्तमुहूर्त	अन्तमुहूर्त
७	८	८	१४	,	यथायोग्य
६	८	८	संज्ञी पर्याप्त	एक समय	अन्तमुहूर्त
१	७	८	संज्ञी पर्याप्त	एक समय	अन्तमुहूर्त
१	७	७	,	,	,
१	४	४	सयोगि केवली	अन्तमुहूर्त	देशोन पूर्वकोटि
०	४	४	अयोगि केवली	पाँच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण कालप्रमाण	पाँच ह्रस्व स्वरों के उच्चारण कालप्रमाण

इस प्रकार से जीवस्थानों में मूल कर्मों के संवेध भंग समझना चाहिये। अब गुणस्थानों में संवेध भंगों को बतलाते हैं।

गुणस्थानों में मूलकर्मों के संवेध भंग

अट्ठसु एगविगप्पो छस्सु वि गुणसन्निएसु दुविगप्पो ।
पत्तेयं पत्तेयं बंधोदयसंतकम्माणं ॥५॥

शब्दार्थ—अट्ठसु—आठ गुणस्थानों में, एगविगप्पो—एक विकल्प, छस्सु—छह में, वि—और, गुणसन्निएसु—गुणस्थानों में, दुविगप्पो—दो विकल्प, पत्तेयं-पत्तेयं—प्रत्येक के, बंधोदयसंतकम्माणं—बंध, उदय और सत्ता प्रकृतिस्थानों के।

गाथार्थ—आठ गुणस्थानों में प्रत्येक का बंध, उदय और सत्ता रूप कर्मों का एक-एक भंग होता है और छह गुणस्थानों में प्रत्येक के दो-दो भंग होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में चौदह गुणस्थानों में पाये जाने वाले संवेध भंगों का कथन किया है।

मोह और योग के निमित्त से ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप आत्मा के गुणों की जो तरतमरूप अवस्थाविशेष होती है, उसे गुणस्थान कहते हैं। अर्थात् गुण+स्थान से निष्पन्न शब्द गुणस्थान है और गुण का मतलब है आत्मा के ज्ञान, दर्शन आदि गुण और स्थान यानि उन गुणों की मोह के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम के कारण होने वाली तरतम रूप अवस्थाये विशेष।

गुणस्थान के चौदह भेद होते हैं। जिनके नाम इस प्रकार हैं—१. मिथ्यात्व, २ सासादन सम्यग्दृष्टि, ३. सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र), ४. अविरत सम्यग्दृष्टि, ५ देशविरत, ६ प्रमत्तविरत, ७ अप्रमत्तविरत, ८ अपूर्वकरण, ९ अनिवृत्तिबादर, १०. सूक्ष्मसपराय, ११. उपशान्तमोह, १२. क्षीणमोह, १३ सयोगिकेवली, १४ अयोगिकेवली। इन चौदह भेदो मे आदि के बारह भेद मोहनीय कर्म के उदय, उपशम आदि के निमित्त से होते है तथा तेरहवाँ सयोगिकेवली और चौदहवाँ अयोगिकेवली यह दो अन्तिम गुणस्थान योग के निमित्त से होते हैं। सयोगिकेवली गुणस्थान योग सद्भाव की अपेक्षा से और अयोगिकेवली गुणस्थान योग के अभाव की अपेक्षा से होता है।

उक्त चौदह गुणस्थानो मे से आठ गुणस्थानो मे बध, उदय और सत्ता रूप कर्मो का अलग-अलग एक-एक भग होता है—'अट्ठसु एगविगप्पो'। जिसका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र), अपूर्वकरण, अनिवृत्तिबादर, सूक्ष्मसंपराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, सयोगिकेवली, अयोगिकेवली, इन आठ गुणस्थानों मे बन्ध, उदय और सत्ता प्रकृति स्थानो का एक-एक विकल्प होता है। इनमे एक-एक विकल्प होने का कारण यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिबादर इन तीन गुणस्थानो मे आयुकर्म के योग्य अध्यवसाय नही होने के कारण सात प्रकृतिक बध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता यह एक ही भंग होता है।

सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में छह प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता यह एक भंग होता है। क्योंकि इस गुणस्थान में बादर कषाय का उदय न होने से आयु और मोहनीय कर्म का बंध नहीं होता है किन्तु शेष छह कर्मों का ही बन्ध होता है।

उपशान्तमोह गुणस्थान में मोहनीय कर्म के उपशान्त होने से सात कर्मों का ही उदय होता है और एक प्रकृतिक बंध, सात प्रकृतिक उदय व आठ प्रकृतिक सत्ता, यह एक भंग पाया जाता है।

क्षीणमोह गुणस्थान में एक प्रकृतिक बंध, सात प्रकृतिक उदय और सात प्रकृतिक सत्ता यह एक ही भंग होता है। क्योंकि सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में ही मोहनीय कर्म का समूलोच्छेद हो जाने से इसका उदय और सत्व नहीं है।

सयोगिकेवली गुणस्थान में एक प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता, यह एक भंग होता है। क्योंकि इस गुणस्थान में चार घातिकर्मों का उदय व सत्ता नहीं रहती है।

अयोगिकेवली गुणस्थान में योग का अभाव हो जाने से किसी भी कर्म का बंध नहीं होता है, किन्तु चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता रूप एक भंग होता है।

इस प्रकार से आठ गुणस्थानों में भंग विकल्पों को बतलाने के बाद अब शेष रहे छह गुणस्थानों के भंग विकल्पों को कहते हैं कि—'छस्सु वि गुणठाणेसु दुविगप्पो'—छह गुणस्थानों में दो-दो विकल्प होते हैं। उन छह गुणस्थानों के नाम इस प्रकार हैं—मिथ्यात्व, सासादन, अविरत सम्यग्दृष्टि देशविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत। इनमें चार आठ वाले विकल्प ये हैं—१ आठ प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता तथा २ सात प्रकृतिक बंध, आठ प्रकृतिक उदय और आठ प्रकृतिक सत्ता। इन दोनों भंगों में से

शब्दार्थ—बंधोदयसंतंसा—बंध, उदय और सत्ता रूप अंश, नाणावरणंतराइए—ज्ञानावरण और अंतराय कर्म में, पंच—पांच, बंधोवरमे—बंध के अभाव में, वि—भी, तहा—तथा, उदसंता—उदय और सत्ता, हुंति—होती है, पंचेव—पांच की।

गाथार्थ—ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म में बंध, उदय और सत्ता रूप अंश पाँच प्रकृतियों के होते हैं। बंध के अभाव में भी उदय और सत्ता पाँच प्रकृत्यात्मक ही होती है।

विशेषार्थ—पूर्व में मूल प्रकृतियों के सामान्य तथा जीवस्थान व गुणस्थानों की अपेक्षा संवेध भगों को बतलाया गया है। अब इस गाथा से उन मूल कर्मों की उत्तर प्रकृतियों के संवेध भंगों का कथन प्रारम्भ करते हैं।

ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय यह आठ मूल कर्मप्रकृतियाँ हैं। इनके क्रमशः पांच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, ब्यालीस, दो और पांच भेद होते हैं। जो उन मूल कर्मप्रकृतियों की उत्तर प्रकृतियां कहलाती हैं। इनके नाम आदि का विवेचन प्रथम कर्मग्रन्थ में किया गया है।

इस गाथा में ज्ञानावरण और अंतराय कर्म की उत्तर प्रकृतियों के भंगों को बतलाया है।

ज्ञानावरण की पांचों उत्तर प्रकृतियां तथा अंतराय की पांचों उत्तर प्रकृतियां कुल मिलाकर इन दस प्रकृतियों का बंध दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान तक होता है तथा इनका बंध-विच्छेद दसवें गुणस्थान के अन्त में तथा उदय व सत्ता का विच्छेद बारहवें गुणस्थान के अन्त में होता है।

ज्ञानावरण और अंतराय कर्म की पांच-पांच प्रकृति रूप बंध, उदय और सत्व सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान पर्यन्त है और बंध का अभाव होने पर भी उन दोनों की उपशान्तमोह और क्षीणमोह में उदय तथा सत्व रूप प्रकृतियां पांच-पांच ही हैं।

अत इन दोनो कर्मों में से प्रत्येक का दसवें गुणस्थान तक पाच प्रकृतिक बंध, पाच प्रकृतिक उदय और पाच प्रकृतिक सत्ता, यह एक भग होता है तथा ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान मे पाच प्रकृतिक उदय, पाच प्रकृतिक सत्ता यह एक भग होता है। इस प्रकार पाचो ज्ञानावरण, पाचो अतराय की अपेक्षा कुल दो सवेध भग होते हैं।

उक्त दो भगो मे से पाच प्रकृतिक बध, पाच प्रकृतिक उदय और पाच प्रकृतिक सत्ता इस भग के काल के अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीन विकल्प प्राप्त होते हैं। इनमे से अनादि-अनन्त विकल्प अभव्यो की अपेक्षा है। जो अनादि मिथ्यादृष्टि या उपशान्तमोह गुणस्थान को प्राप्त नही हुआ। सादि मिथ्यादृष्टि जीव सम्यग् दर्शन और चारित्र को प्राप्त करके तथा श्रेणि पर आरोहण करके उपशान्तमोह या क्षीणमोह हो जाते हैं, उनके अनादि-सान्त विकल्प होता है। उपशान्तमोह गुणस्थान से पतित जीवो की अपेक्षा सादि-सान्त विकल्प है।

पाच प्रकृतिक उदय और पाच प्रकृतिक सत्ता, इस दूसरे विकल्प का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि यह भग उपशान्तमोह गुणस्थान मे होता है और उपशान्तमोह गुणस्थान का जघन्य काल एक समय है, अत इस भग का भी जघन्य काल एक समय माना है। उपशान्तमोह और क्षीणमोह गुणस्थान का उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अत इस भग का भी उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त माना गया है।

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के सवेधभगो का विवरण जीवस्थान और गुणस्थान के समय सहित इस प्रकार समझना चाहिए—

भग क्रम	वध	उदय	सत्ता	गुणस्थान	जीवस्थान	काल	
						जघन्य	उत्कृष्ट
१	५	५	५	१ से १० गुणस्थान	१४	अन्तर्मुहूर्त	देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त[1]
२	०	५	५	११ वाँ १२ वाँ	१ सज्ञी पर्याप्त	एक समय	अन्तर्मुहूर्त

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म की उत्तर प्रकृतियो के सवेध भग वतलाने के वाद अव दर्शनावरण कर्म के सवेध भगो को वतलाते है।

दर्शनावरण कर्म

वंधस्स य संतस्स य पगइट्ठाणाइं तिन्नि तुल्लाइं।
उदयट्ठाणाइं दुवे चउ पणगं दंसणावरणं ॥७॥

शब्दार्थ—**वंधस्स**—वध के, **य**—और, **संतस्स**—सत्ता के, **य**—और, **पगइट्ठाणाइं**—प्रकृतिस्थान, **तिन्नि**—तीन, **तुल्लाइ**—समान, **उदयट्ठाणाइं**—उदयस्थान, **दुवे**—दो, **चउ**—चार, **पणग**—पाच, **दसणावरणे**—दर्शनावरण कर्म मे।

---

१ पहले भग का जो उत्कृष्ट काल देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त वतलाया है, वह काल के सादि-सान्त विकल्प की अपेक्षा वताया है। क्योकि जो जीव उपशान्तमोह गुणस्थान से च्युत होकर अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर उपशान्तमोह या क्षीणमोह हो जाता है, उसके उक्त भग का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है तथा जो अपार्ध पुद्गल परावर्त काल के प्रारभ मे सम्यग्दृष्टि होकर और उपशमश्रेणि चढकर उपशान्तमोह हो जाता है। अनन्तर जव ससार मे रहने का काल अन्तर्मुहूर्त शेप रहता है तव क्षपकश्रेणि पर चढकर क्षीणमोह हो जाता है, उसके उक्त भग का उत्कृष्ट काल देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त प्रमाण प्राप्त होता है।

गाथार्थ—दर्शनावरण कर्म के बंध और सत्ता के प्रकृतिस्थान तीन एक समान होते हैं। उदयस्थान चार तथा पाँच प्रकृतिक इस प्रकार दो होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियों के संवेध भंग बतलाये हैं। दर्शनावरण कर्म की कुल उत्तर प्रकृतियां नौ हैं। जिनके बंधस्थान तीन होते हैं—नौ प्रकृतिक, छह प्रकृतिक और चार प्रकृतिक। इसी प्रकार सत्तास्थान के भी उक्त तीन प्रकार होते हैं—नौ प्रकृतिक, छह प्रकृतिक, चार प्रकृतिक। जिसका स्पष्टीकरण नीचे किया जाता है।

नौ प्रकृतिक बंधस्थान में दर्शनावरण कर्म की सब प्रकृतियों का बंध होता है। छह प्रकृतिक बंधस्थान में स्त्यानर्द्धित्रिक को छोड़कर शेष छह प्रकृतियों का तथा चार प्रकृतिक बंधस्थान में पांच निद्राओं को छोड़कर शेष चक्षुदर्शनावरण आदि केवलदर्शनावरण पर्यन्त चार प्रकृतियों का बंध होता है।[1]

उक्त तीन बंधस्थानों में से नौ प्रकृतिक बंधस्थान पहले और दूसरे—मिथ्यात्व, सासादन—गुणस्थान में होता है। छह प्रकृतिक बंधस्थान तीसरे सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान के पहले भाग तक तथा चार प्रकृतिक बंधस्थान अपूर्वकरण गुणस्थान के दूसरे समय से लेकर दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान तक होता है।[2]

---

१ तत्र नवप्रकृतिसमुदायो नव, ता एव नव स्त्यानर्द्धित्रिकहीना षट् ताश्च निद्राप्रचलाहीनाश्चतस्र। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १८६

२ तत्र नवप्रकृत्यात्मकं बन्धस्थानं मिथ्यादृष्टौ सासादने वा। षट्प्रकृत्यात्मकं बन्धस्थानं सम्यग्मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकादारभ्यापूर्वकरणस्य प्रथमभागं यावत्। चतुष्प्रकृत्यात्मकं तु बन्धस्थानमपूर्वकरणद्वितीयभागादारभ्य सूक्ष्मसंपरायं यावत्। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १५६

नौ प्रकृतिक बंधस्थान के काल की अपेक्षा तीन विकल्प हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। इनमें अनादि-अनन्त विकल्प अभव्यों में होता है, क्योंकि अभव्यों के नौ प्रकृतिक बंधस्थान का कभी भी विच्छेद नहीं पाया जाता है। अनादि-सान्त विकल्प भव्यों में होता है, क्योंकि भव्यों के नौ प्रकृतिक बंधस्थान का कालान्तर में विच्छेद पाया जाता है तथा सादि-सान्त विकल्प सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुए जीवों के पाया जाता है। इस सादि-सान्त विकल्प का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त है। जिसे इस प्रकार समझना चाहिए कि सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ जो जीव अन्तर्मुहूर्त काल के पश्चात् सम्यग्दृष्टि हो जाता है, उसके नौ प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है तथा जो जीव अपार्ध पुद्गल परावर्त काल के प्रारम्भ में सम्यग्दृष्टि होकर और अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यक्त्व के साथ रहकर मिथ्यात्व को प्राप्त हो जाता है, अनन्तर अपार्ध पुद्गल परावर्त काल में अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर जो पुनः सम्यग्दृष्टि हो जाता है, उसके उत्कृष्ट काल देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त प्रमाण प्राप्त होता है।

छह प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल एक सौ बत्तीस सागर है। वह इस प्रकार है कि जो जीव सकल संयम के साथ सम्यक्त्व को प्राप्त कर अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर उपशम या क्षपक श्रेणि पर चढ़कर अपूर्वकरण के प्रथम भाग को व्यतीत करके चार प्रकृतिक बंध करने लगता है, उसके छह प्रकृतिक बंधस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त होता है, अथवा जो उपशम सम्यग्दृष्टि स्वल्पकाल तक उपशम सम्यक्त्व में रहकर पुनः मिथ्यात्व में चला जाता है, उसके भी जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त देखा जाता है। उत्कृष्ट काल एक सौ बत्तीस सागर इस प्रकार समझना चाहिये कि

क्षपकश्रेणि में होता है और क्षपकश्रेणि से जीव का प्रतिपात नहीं होता है।

छह प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि यह स्थान क्षपक अनिवृत्ति के दूसरे भाग से लेकर क्षीणमोह गुणस्थान के उपान्त्य समय तक होता है और उसका जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

चार प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल एक समय है। क्योंकि यह स्थान क्षीणमोह गुणस्थान के अन्तिम समय में पाया जाता है।

दर्शनावरण कर्म के उदयस्थान दो हैं—चार प्रकृतिक और पाँच प्रकृतिक—'उदयट्ठाणाइं दुवे चउ पणगं'। चार प्रकृतिक उदयस्थान—चक्षु, अचक्षु, अवधि और केवल दर्शनावरण—का उदय क्षीणमोह गुणस्थान तक सर्वदा पाया जाता है। इसीलिए इन चारों का समुदाय रूप एक उदयस्थान है। इन चार में निद्रा आदि पांचों में से किसी एक प्रकृति के मिला देने पर पांच प्रकृतिक उदयस्थान होता है। निद्रादिक ध्रुवोदया प्रकृतियां नहीं हैं, क्योंकि उदययोग्य काल के प्राप्त होने पर उनका उदय होता है। अतः यह पाँच प्रकृतिक उदयस्थान कदाचित् प्राप्त होता है।

दर्शनावरण के चार और पाँच प्रकृतिक, यह दो ही उदयस्थान होने तथा छह, सात आदि प्रकृतिक उदयस्थान न होने का कारण यह है कि निद्राओं में दो या दो से अधिक प्रकृतियों का एक साथ उदय नहीं होता है, किन्तु एक काल में एक ही प्रकृति का उदय होता है।[1]

---

१ न हि निद्रादयो द्वित्रादिका युगपदुदयमायान्ति किन्त्वेकस्मिन् काले एकैवान्यतमा काचित्। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १५७

दर्शनावरण कर्म के बन्ध, उदय, सत्ता स्थानों का विवरण इस प्रकार समझना चाहिये—

बंध	९	६	४
उदय	४		५
सत्ता	९	६	४

अब दर्शनावरण कर्म के बंध, उदय और सत्ता स्थानों के परस्पर संवेध से उत्पन्न भंगों का कथन करते हैं।

बीयावरणे नवबंधगेसु चउ पंच उदय नव संता।
छच्चउबंधे चेव चउ बंधुदए छलंसा य ॥८॥
उवरयबंधे चउ पण नवंस चउरुदय छच्च चउसंता।[1]

---

१ तुलना कीजिये—

विदियावरणे णवबंधगेसु चदुपंचउदय णवसत्ता।
छब्बंधगेसु एवं तह चदुबंधे छडंसा य ॥
उवरदबंधे चदुपंचउदय णव छच्च सत्त चदु जुगलं।

—गो० कर्मकांड गा० ६३१, ६३२

दूसरे आवरण (दर्शनावरण) की ९ प्रकृतियों के बंध करने वाले के उदय ५ का या ४ का और सत्ता ९ की होती है। इसी प्रकार ६ प्रकृतियों के बंधक के भी उदय और सत्व जानना। चार प्रकृतियों के बंध करने वाले के पूर्वोक्त प्रकार उदय चार या पांच का सत्व नौ का तथा छह का भी सत्व पाया जाता है। जिसके बंध का अभाव है उसके उदय तो चार व पांच का है और सत्व नौ का व छह का है तथा उदय-सत्व दोनों ही चार चार के भी हैं।

शब्दार्थ—**बीयावरणे**—दूसरे आवरण—दर्शनावरण में, **नवबंधगेसु**—नौ के बंध के समय, **चउपंच**—चार या पांच का, **उदय**—उदय, **नवसंता**—नौ प्रकृतियों की सत्ता, **छच्चउबंधे**—छह और चार के बंध में, **चेवं**—इसी प्रकार से उदय और सत्ता, **चउबंधुदए**—चार के बंध और चार के उदय में, **छलंसा**—छह की सत्ता, **य**—और, **उवरयबंधे**—बंध का विच्छेद होने पर **चउपण**—चार अथवा पांच का उदय **नवंस**—नौ की सत्ता, **चउरुदय**—चार का उदय, **छ**—छह, **च**—और, **चउसंता**—चार की सत्ता।

गाथार्थ—दर्शनावरण की नौ प्रकृतियों का बंध होते समय चार या पांच प्रकृतियों का उदय तथा नौ प्रकृतियों की सत्ता होती है। छह और चार प्रकृतियों का बंध होते समय उदय और सत्ता पूर्ववत् होती है। चार प्रकृतियों का बंध और उदय रहते सत्ता छह प्रकृतियों की होती है एवं बंधविच्छेद हो जाने पर चार या पांच प्रकृतियों का उदय रहते सत्ता नौ की होती है। चार प्रकृतियों का उदय रहने पर सत्ता छह और चार की होती है।

विशेषार्थ—गाथा में दर्शनावरण कर्म के संवेध भंगों का विवेचन किया गया है।

दर्शनावरण की नौ उत्तर प्रकृतियों का बंध पहले और दूसरे—मिथ्यात्व व सासादन—गुणस्थान में होता है, तब चार या पांच प्रकृतियों का उदय तथा नौ प्रकृतियों की सत्ता होती है—'बीयावरणे नव बंधगेसु चउ पंच उदय नव संता'। चार प्रकृतिक उदयस्थान में चक्षुदर्शनावरण आदि केवलदर्शनावरण पर्यन्त चार ध्रुवोदयी प्रकृतियों का ग्रहण किया गया है तथा पांच प्रकृतिक उदयस्थान उक्त चार प्रकृतियों के साथ किसी एक निद्रा को मिला देने से प्राप्त होता है। इस प्रकार दर्शनावरण कर्म के नौ प्रकृतिक बंध, नौ प्रकृतिक सत्ता रहते उदय की अपेक्षा दो भंग प्राप्त होते हैं—

१ नौ प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता। यह भंग पांच निद्राओं में से किसी के उदय के बिना होता है।

२ नौ प्रकृतिक बंध, पांच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता। यह भंग निद्रादिक में से किसी एक निद्रा के उदय के सद्भाव में होता है।

छह प्रकृतिक बंध और चार प्रकृतिक बंध के समय भी उदय और सत्ता पूर्ववत समझना चाहिए। अर्थात छह प्रकृतिक बंध, चार या पांच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता तथा चार प्रकृतिक बंध, चार या पांच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता। इनमें से छह प्रकृतिक बंध, चार या पांच प्रकृतिक उदय, नौ प्रकृतिक सत्तास्थान, तीसरे सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर उपशामक अपूर्वकरण (आठवें) गुणस्थान के पहले भाग तक में जीवों में होता है और दूसरा चार प्रकृतिक बंध, चार या पांच प्रकृतिक उदय, नौ प्रकृतिक सत्तास्थान उपशामक अपूर्वकरण गुणस्थान के दूसरे भाग से लेकर सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान तक के जीवों के होता है। इन दोनों स्थानों की अपेक्षा कुल चार भंग इस प्रकार होते हैं—

१—छह प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता।

२—छह प्रकृतिक बंध, पांच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता।

३—चार प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता।

४—चार प्रकृतिक बंध, पांच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता।

उक्त चार भंगों में से क्षपकश्रेणि में कुछ विशेषता है। क्योंकि

क्षपक जीव अत्यन्त विशुद्ध होता है, अतः उसके निद्रा और प्रचला प्रकृति का उदय नही होता है, जिससे उसमे पहला और तीसरा यह दो भंग प्राप्त होते है। पहला भंग—छह प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता—क्षपक जीवो के अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग तक होता है तथा तीसरा भंग—चार प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता—क्षपक जीवो के नौवे अनिवृत्तिबादरसंपराय गुणस्थान के संख्यात भागो तक होता है।

क्षपक जीवों के लिये एक और विशेषता समझना चाहिये कि अनिवृत्तिबादर संपराय गुणस्थान मे स्त्यानर्द्धित्रिक का क्षय हो जाने से आगे नौ प्रकृतियो का सत्व नही रहता है। अतः अनिवृत्तिबादर-संपराय गुणस्थान के संख्यात भागों से लेकर सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान के अन्तिम समय तक चार प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता, यह एक और भंग होता है—'चउबंधुदए छलंसा य'। यह भंग उपर्युक्त चार भगो से पृथक् है।

इस प्रकार दर्शनावरण की उत्तर प्रकृतियो का यथासंभव बंध रहते हुए कितने भंग संभव है, इसका विचार किया। अब उदय और सत्ता की अपेक्षा दर्शनावरण कर्म के संभव भंगो का विचार करते हैं।

'उवरयबंधे चउ पण नवंस'—बंध का विच्छेद हो जाने पर विकल्प से चार या पाँच का उदय तथा नौ की सत्ता वाले दो भंग होते हैं। उक्त दो भंग इस प्रकार हैं—

१—चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता।

२—पांच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता।

इन दोनो भंगो के बनने का कारण यह है कि उपशान्तमोह गुण-स्थान में दर्शनावरण की सभी नौ प्रकृतियों की सत्ता पाई जाती है और उदय विकल्प से चार या पाँच प्रकृतियो का पाया जाता है।

क्षपकश्रेणि और क्षीणमोह गुणस्थान मे निद्राद्विक का उदय नही होता है। कर्मप्रकृति[1] तथा पचसग्रह के कर्ताओ का भी यही मत है। किन्तु पचसंग्रह के कर्ता क्षपकश्रेणि और क्षीणमोह गुणस्थान मे पाच प्रकृति का भी उदय होता है, इस मत से परिचित थे और उसका उल्लेख उन्होंने "पचण्ह वि केइ इच्छंति"[2] इस पद से किया है। आचार्य मलयगिरि ने इसे कर्मस्तवकार का मत बताया है।[3] इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि कर्मस्तवकार के सिवाय प्रायः सभी कार्मग्रन्थिकों का यही मत रहा है कि क्षपकश्रेणि और क्षीणमोह गुणस्थान मे निद्रा-द्विक का उदय नही होता है।

दिगम्बर परम्परा मे सर्वत्र विकल्प वाला मत पाया जाता है। कषायपाहुड चूर्णि मे इतना संकेत किया गया है कि "क्षपकश्रेणि पर चढने वाला जीव आयु और वेदनीय कर्म को छोडकर उदयप्राप्त शेष सब कर्मो की उदीरणा करता है।[4] इस पर टीका करते हुए वीर-सेन स्वामी ने जयधवला क्षपणाधिकार मे लिखा है कि क्षपकश्रेणि वाला जीव पाँच ज्ञानावरण और चार दर्शनावरण का नियम से वेदक है किन्तु निद्रा और प्रचला का कदाचित् वेदक है, क्योकि इनका कदाचित् अव्यक्त उदय होने मे कोई विरोध नही आता है।[5] अमिति-

---

१ निद्दापयलाण खीणरागखवगे परिच्चज्ज। —कर्मप्रकृति उ० गा० १०

२ पचसग्रह सप्ततिका गा० १४

३ कर्मस्तवकारमतेन पञ्चानामप्युदयो भवति।

—पंचसंग्रह सप्ततिका टीका, गा० १४

४ आउगवेदणीयवज्जाण वेदिज्जमाणाणकम्माणं पवेसगो।

—कषायपाहुड चूर्णि (यतिवृषभ)

५ पचण्ह णाणावरणीयाण चदुण्हं दसणावरणीयाण णियमा वेदगो, णिद्दापय-लाण सिया, तासिमवत्तोदयस्स कदाइ सभवे विरोहाभावादो।

—जयधवला (क्षपणाधिकार)

गति आचार्य ने भी अपने पंचसंग्रह में यही मत स्वीकार किया है कि क्षपकश्रेणि और क्षीणमोह में दर्शनावरण की चार या पांच प्रकृतियों का उदय होता है।[1] गो० कर्मकांड में भी इसी मत को स्वीकार किया गया है।[2]

इस प्रकार दिगम्बर परम्परा की मान्यतानुसार चार प्रकृतिक बंध, पांच प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता, यह एक भंग नौवें, दसवें गुणस्थान में तथा पांच प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता यह एक भंग क्षीणमोह गुणस्थान में बढ़ जाता है। इसलिये दर्शनावरण कर्म के संवेध भंग बतलाने के प्रसंग में इन दोनों भंगों को मिलाने से तेरह भंग दिगम्बर परम्परा में माने जाते हैं, लेकिन श्वेताम्बर परम्परा में ग्यारह तथा मतान्तर से तेरह भंगों के दो विकल्प हैं।

दर्शनावरण कर्म के बंध, उदय, सत्ता के संवेध ११ अथवा १३ भंगों का विवरण इस प्रकार समझना चाहिये—

क्रम	बंध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	९	४	९	१,२
२	९	५	९	१,२
३	६	४	९	३,४,५,६,७,८
४	६	५	९	३,४,५,६,७,८
५	४	४	९	८,९,१०[3]

१ द्वयोर्नव द्वयोः षट्कं चतुर्षु च चतुष्टयम्।
पञ्च पञ्चसु शून्यानि भङ्गाः सन्ति नयोदश॥

—पंचसंग्रह, अमितगति, श्लोक ३८८

२ गो० कर्मकांड गा० ६३१, ६३२, जो पृ० ३९ पर उद्धृत हैं।

३ पांचवां भंग उपशम और क्षपक दोनों श्रेणि में होता है लेकिन इतनी विशेषता है कि क्षपकश्रेणि में इस नौवें गुणस्थान के संख्यात भागों तक ही जानना। आगे क्षपकश्रेणि में सातवां भंग प्रारम्भ हो जाता है।

६	४	५	९	८,९,१० उपशमश्रेणि
७	४	४	६	९ १० क्षपक
८	४	५	६	९,१० मतान्तर से[1]
९	०	४	९	११ उपशामक
१०	०	५	९	११ उपशामक
११	०	४	६	१२ द्विचरम समय पर्यन्त
१२	०	५	६	मतान्तर से
१३	०	४	४	१२ चरम समय मे

दर्शनावरण कर्म के सवेध भंगों का कथन करने के अनन्तर अब वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के संवेध भग बतलाते है—

वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म

वेयणियाउयगोए विभज्ज[2] मोहं परं वोच्छं ॥९॥

---

१ इन भंगो मे आठवा और बारहवा भग कर्मस्तव के अभिप्राय के अनुसार बतलाया है और शेष ग्यारह भग इस ग्रन्थ के अनुसार समझना चाहिये।

२ किन्ही विद्वान ने वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भगो की सख्या बतलाने के लिये मूल प्रकरण के अनुसधान मे निम्नलिखित गाथा प्रक्षिप्त की है—

(क) गोयम्मि सत्त भगा अट्ठ य भगा हवति वेयणिए।
पण नव नव पण भगा आउचउक्के वि कमसोउ ॥

यह गाथा मूल प्रकरण मे नही है।

(ख) वेयणिये अडभगा गोदे सत्तेव होति भगा हु।
पण णव णव पण भगा आउचउक्केसु विसरित्था ॥
—गो० कर्मकांड ६५१

वेदनीय के आठ और गोत्र के सात भग होते हैं तथा चारो आयुओ के क्रम से पाँच, नौ, नौ और पाच भग होते है।

शब्दार्थ—वेयणियाउयगोए—वेदनीय आयु और गोत्र कर्म के, विभज्ज—बंधादिस्थान और उनके संवेध भंग कहकर मोह—मोहनीय कर्म के, पर—पश्चात्, वोच्छं—कथन करेंगे।

गाथार्थ—वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के बंधादि स्थान और उनके संवेध भंग कहकर बाद में मोहनीय कर्म के बंधादि स्थानों का कथन करेंगे।

विशेषार्थ—गाथा मे वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म में विभाग करने की सूचना दी है, लेकिन किस कर्म के अपनी उत्तर प्रकृतियों की अपेक्षा कितने बंधादि स्थान और उनके कितने संवेध भंग होते हैं, इसको नहीं बताया है। किन्तु टीकाकार आचार्य मलयगिरि ने अपनी टीका मे इनके भंगों का विस्तृत विचार किया है। अतः टीका के अनुसार वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भंगों को यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

वेदनीय कर्म के संवेध भंग

वेदनीय कर्म के दो भेद हैं—साता और असाता। ये दोनों प्रकृतियाँ परस्पर विरोधिनी है, अतः इनमे से एक काल में किसी एक का बंध और किसी एक का उदय होता है। एक साथ दोनों का बंध और उदय संभव नहीं है। लेकिन किसी एक प्रकृति की सत्ता का विच्छेद होने तक सत्ता दोनों प्रकृतियों की पाई जाती है तथा किसी एक प्रकृति की सत्ता व्युच्छिन्न हो जाने पर किसी एक ही प्रकृति की सत्ता पाई जाती है।[1] अर्थात् वेदनीय कर्म का उत्तर प्रकृतियों की अपेक्षा

---

1 तत्र वेदनीयस्य सामान्येनैकं बंधस्थानम्, तद्यथा—सातमसातं वा, द्वयोः परस्परविरुद्धत्वेन युगपद्बंधाभावात्। उदयस्थानमपि एकम्, तद्यथा—सातमसातं वा, द्वयोर्युगपदुदयाभावात् परस्परविरुद्धत्वात्। सत्तास्थाने द्वे, तद्यथा—द्वे एकं च। तत्र यावदेकमन्यतरद् न क्षीयते तावद् द्वे अपि सती, अन्यतरस्मिंश्च क्षीणे एकमिति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १५६

वंधस्थान और उदयस्थान सर्वत्र एक प्रकृतिक होता है किन्तु सत्ता-स्थान दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक, इस प्रकार दो होते है।

वेदनीय कर्म के संवेध भग इस प्रकार है—१. असाता का वंध, असाता का उदय और दोनों की सत्ता, २, असाता का वंध, साता का उदय और दोनो की सत्ता, ३. साता का वंध, साता का उदय और दोनो की सत्ता और ४. साता का वध, असाता का उदय और दोनों की सत्ता।

उक्त चार भग वध रहते हुए होते है। इनमें से आदि के दो पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर छठे प्रमत्तसयत गुणस्थान तक होते है। क्योकि प्रमत्तसयत गुणस्थान मे असाता का वधविच्छेद हो जाने से आगे इसका वध नही होता है। जिससे सातवे अप्रमत्तसयत आदि गुणस्थानो मे आदि के दो भंग प्राप्त नही होते है। अत के दो भग अर्थात् तीसरा और चौथा भग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर सयोगि-केवली गुणस्थान तक होते है। क्योकि साता वेदनीय का बध तेरहवे सयोगिकेवली गुणस्थान तक ही होता है। बध का अभाव होने पर उदय व सत्ता की अपेक्षा निम्नलिखित चार भंग होते है—

१. असाता का उदय और दोनो की सत्ता।

२ साता का उदय और दोनो की सत्ता।

३ असाता का उदय और असाता की सत्ता।

४ साता का उदय और साता की सत्ता।

इनमे से आदि के दो भग अयोगिकेवली गुणस्थान के द्विचरम समय तक होते है। क्योकि अयोगिकेवली के द्विचरम समय तक दोनो की सत्ता पाई जाती है। अन्त के दो भग—तीसरा और चौथा—चरम समय मे होता है। जिसके द्विचरम समय मे साता का क्षय होता है उसके अन्तिम समय मे तीसरा भग—असाता का उदय, असाता की सत्ता—पाया जाता है तथा जिसके द्विचरम समय मे असाता का क्षय

हो गया है, उसके अन्तिम समय मे—साता का उदय, साता की सत्ता यह चौथा भग पाया जाता है। इस प्रकार वेदनीय कर्म के कुल आठ भग होते हैं।[1] जिनका विवरण इस प्रकार समझना चाहिये—

भग क्रम	बध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	अ०	अ०	सा० असा० २	१, २, ३, ४, ५, ६,
२	अ०	सा०	२	१, २, ३, ४, ५, ६,
३	सा०	अ०	२	१ से १३ तक
४	सा०	सा०	२	१ से १३ तक
५	०	असा०	२	१४ द्विचरम समयपर्यन्त
६	०	सा०	२	१४ द्विचरम समयपर्यन्त
७	०	अ०	अ०	१४ चरम समय मे
८	०	सा०	सा०	१४ चरम समय मे

आयुकर्म के सवेध भग

अब गाथा मे बताये गये क्रम के अनुसार आयुकर्म के बधादि स्थान और उनके सवेध भगो का विचार करते हैं। आयुकर्म के चार भेदो मे क्रम से पाँच, नौ, नौ, पाच भग होते हैं। अर्थात् नरकायु के

---

१ (क) तेरसमछट्ठएएस सायासायाण बधवोच्छेओ।
मतउइण्णाइ पुणो सायासायाइ सन्तसु॥
बधइ उइण्णय चि य इयर वा दो वि सत चउभगो।
सत मुइण्णमबधे दो दोण्णि दुसत इइ अट्ठ॥
—पचसग्रह सप्तितिका गा० १७, १८

(ख) सादासादेक्कदर बधुदया होति सभवट्ठाणे।
दोसत्त जोगित्ति य चरिमे उदयागद सत्त॥
छट्ठोत्ति चारि भगा दो भगा होति जाव जोगिजिण।
चउभगाऽजोगिजिणे ठाण पडि वयणीयस्स॥
—गो० कर्मकाड, गा० ६३३, ६३४

पाँच, तिर्यंचायु के नौ, मनुष्यायु के नौ और देवायु के पाच सवेध भंग होते है। जिनका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

एक पर्याय मे किसी एक आयु का उदय और उसके उदय मे बंधने योग्य किसी एक आयु का ही बंध होता है, दो या दो से अधिक का नही। इसलिये वध और उदय की अपेक्षा आयु का एक प्रकृतिक वंधस्थान और एक प्रकृतिक उदयस्थान होता है किन्तु सत्तास्थान दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक इस प्रकार दो होते है। क्योकि जिसने परभव की आयु का वध कर लिया है, उसके दो प्रकृतिक तथा जिसने परभव की आयु का वध नही किया है, उसके एक प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।[1]

अव आयुकर्म के सवेध भंगो को वतलाते है। आयुकर्म की तीन अवस्थाएँ होती हैं—

१ परभव सम्वन्धी आयुकर्म के वंधकाल से पूर्व की अवस्था।

२. परभव सम्वन्धी आयु के वधकाल की अवस्था।

३ परभव सम्वन्धी आयुवध के उत्तर-काल की अवस्था।[2]

इन तीनो अवस्थाओ को क्रमश अवन्धकाल, वधकाल और उपरतकाल कहते हैं। सर्वप्रथम नरकायु के सवेध भगो का विचार करते हैं।

---

१ आयुपि सामान्येनैकं वधस्थानं चतुर्णामन्यतमत्, परस्परविरुद्धत्वेन युगपद द्वित्रायुपा वन्वाभावत्। उदयस्थानमप्येकम्, तदपि चतुर्णामन्यतमत्, युगपद् द्वित्रायुपा उदयाभावात्। द्वे सत्तास्थाने, तद्यथा—द्वे एक च। तत्रैकं चतुर्णामिन्यतमत् यावदन्यत् परभवायुर्न वध्यते, परभवायुपि च वद्धे यावदन्यत्रे परभवे नोत्पद्यते तावद् द्वे सती।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १५६

२ तत्रायुपस्तिस्रोऽवस्था, तद्यथा—परभवायुर्वन्वकालात् पूर्वावस्था परभवायुर्वन्धकालावस्था परभवायुर्वन्धोत्तरकालावस्था च।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १५६

नरकायु के संवेध भंग—नारकियो के अबंधकाल मे नरकायु का उदय और नरकायु का सत्त्व, यह एक भंग होता है। नारको मे पहले चार गुणस्थान होते हैं, शेष गुणस्थान नही होने से यह भंग प्रारम्भ के चार गुणस्थानो मे सम्भव है।

बंधकाल मे १ तिर्यंचायु का बंध, नरकायु का उदय तथा तिर्यंच-नरकायु का सत्त्व एवं २ मनुष्य आयु का बंध, नरकायु का उदय और मनुष्य-नरकायु का सत्त्व, यह दो भंग होते हैं। नारक जीव के देव आयु के बंध का नियम नही होने से[1] उक्त दो विकल्प ही सम्भव हैं। इनमे से पहला भंग मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान मे होता है, क्योकि तिर्यंचायु का बंध दूसरे गुणस्थान तक ही होता है तथा दूसरा भंग मिश्र गुणस्थान मे आयु बंध का नियम न होने से, उसको छोडकर मिथ्यात्व, सासादन और अविरत सम्यग्दृष्टि इन तीन गुणस्थानो मे होता है। क्योकि नारको के उक्त तीन गुणस्थानो मे मनुष्य-आयु का बंध पाया जाता है।

उपरतबंधकाल मे १ नरकायु का उदय और नरक-तिर्यचायु का सत्त्व तथा २ नरकायु का उदय, नरक मनुष्यायु का सत्त्व, यह दो भंग होते हैं। नारको के यह दोनो भंग आदि के चार गुणस्थानो मे सम्भव हैं। क्योकि तिर्यचायु के बंधकाल के पश्चात नारक अविरत सम्यग्-दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो सकता है। अविरत सम्यग्दृष्टि नारक के भी मनुष्यायु का बंध होता है और बंध के पश्चात ऐसा जीव सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान को भी प्राप्त हो सकता है, जिससे दूसरा भंग भी प्रारम्भ के चार गुणस्थानो मे सम्भव है।

---

१ इह नारका देवायु नारकायुश्च भवप्रत्ययादेव न बध्नन्ति तत्रोत्पत्त्यभावात् ।
—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १५६

इस प्रकार नरकगति में आयु के अवन्ध में एक, वंध में दो और उपरतवध मे दो, कुल मिलाकर पाँच भग होते है।

नरकगति की आयुबंध सम्बन्धी विशेषता

नारक जीवों के उक्त पॉच भग होने के प्रसंग में इतना विशेष जानना चाहिये कि नारक भवस्वभाव से ही नरकायु और देवायु का वध नही करते है। क्योकि नारक मर कर नरक और देव पर्याय में उत्पन्न नही होते है, ऐसा नियम है।[१] आशय यह है कि तिर्यंच और मनुष्य गति के जीव तो मरकर चारों गतियो मे उत्पन्न होते है किन्तु देव और नारक मरकर पुन· देव और नरक गति मे उत्पन्न नही होते है, वे तो केवल तिर्यंच और मनुष्य गति मे ही उत्पन्न होते है। नरकगति के आयुकर्म के सवेध भगो का विवरण इस प्रकार है—

भग क्रम	काल	वध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	अवधकाल	०	नरक	नरक	१, २, ३, ४
२	वधकाल	तिर्यंच	नरक	न० ति०	१, २
३	वंधकाल	मनुष्य	नरक	न० म०	१, २, ४
४	उप० वधकाल	०	नरक	न० ति०	१, २, ३, ४
५	उप० वधकाल	०	नरक	न० म०	१, २, ३, ४

देवायु के संवेध भंग—यद्यपि नरकगति के पश्चात तिर्यंचगति के आयुकर्म के संवेध भगो का कथन करना चाहिये था। लेकिन जिस प्रकार नरकगति मे अवन्ध, वन्ध और उपरतवध की अपेक्षा पाँच भग व उनके गुणस्थान वतलाये है, उसी प्रकार देवगति मे भी होते

१ "देवा नारगा वा देवेसु नारगेसु वि न उववज्जति इति"। ततो नारकाणा परभवायुर्वन्धकाले वन्धोत्तरकाले च देवायु-नारकायुर्भ्याम् विकल्पाभावात् सर्वसंख्यया पंचैव विकल्पा भवन्ति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६०

है। परन्तु इतनी विशेषता है कि नरकायु के स्थान में सबन देवायु कहना चाहिये। जैसे देवायु का उदय, देवायु की सत्ता आदि।[1] देवायु के पाच भगो का कथन इस प्रकार होगा—

१ देवायु का उदय और देवायु की सत्ता (अबन्धकाल)।
२ तिर्यंचायु का बध, देवायु का उदय और तिर्यंच देवायु की सत्ता (बधकाल)।
३ मनुष्यायु का बध, देवायु का उदय और मनुष्य देवायु की सत्ता (बधकाल)।
४ देवायु का उदय और देव तियचायु का सत्त्व (उपरत बधकाल)।
५ देवायु का उदय और देव मनुष्यायु का सत्त्व (उपरत-बधकाल) उक्त भगो का विवरण इस प्रकार है—

भगक्रम	काल	बध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	अब धकाल	०	देव	देव	१ २ ३,४
२	बधकाल	तियच	देव	ति० देव	१ २
३	बधकाल	मनुष्य	दव	देव, म०	१,२,४
४	उप० बधकाल	०	देव	दे० ति०	१ २,३ ४
५	उप० बधकाल	०	देव	दे० म०	१ २ ३,४

तियचायु के सवेध भग—तिर्यंचगति मे आयुकर्म के सवध भग-विकल्प नौ होते है। जिनका कथन इस प्रकार है कि अबन्धकाल मे तिर्यंचायु का उदय और तिर्यंचायु की सत्ता यह एक भग होता है, जो

---

१ एव देवानामपि पच विकल्पा भावनीया। नवर नारकायु स्थाने देवायुरिति वक्तव्यम। तद्यथा—देवायुष उदयो देवायुष सत्ता इत्यादि।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६०

प्रारंभ के पाँच गुणस्थानो मे पाया जाता है। क्योंकि तिर्यचगति में आदि के पाँच गुणस्थान ही होते है, शेष गुणस्थान नही होते है।

तिर्यचगति मे बन्धकाल के समय निम्नलिखित चार भग होते है—१ नरकायु का बंध, तिर्यचायु का उदय और नरक-तिर्यचायु की सत्ता। २. तिर्यचायु का वध, तिर्यंचायु का उदय और तिर्यच-तिर्यचायु की सत्ता, ३ मनुष्यायु का वन्ध, तिर्यचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यंचायु की सत्ता तथा—४. देवायु का बन्ध, तिर्यचायु का उदय और देव-तिर्यचायु की सत्ता।

इनमें से पहला भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे होता है, क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के सिवाय अन्यत्र नरकायु का बध नही होता है। दूसरा भग मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानों मे होता है, क्योंकि तिर्यचायु का बध सासादन गुणस्थान तक ही होता है। तीसरा भग भी पहले और दूसरे गुणस्थान—मिथ्यात्व और सासादन तक होता है, क्योंकि तिर्यच जीव मनुष्यायु का वध मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान में ही करते है, अविरत सम्यग्दृष्टि और देश-विरत गुणस्थान मे नही। चौथा भग तीसरे सम्यग्मिथ्यादृष्टि (मिश्र) गुणस्थान को छोडकर पाँचवे देशविरत गुणस्थान तक चार गुणस्थानों मे होता है। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे आयुकर्म का वध न होने से उसका यहा ग्रहण नही किया गया है।

इसी प्रकार उपरतबधकाल मे भी चार भग होते है। जो इस प्रकार है—१ तिर्यचायु का उदय और नरक-तिर्यचायु की सत्ता, २ तिर्यचायु का उदय और तिर्यच-तिर्यचायु की सत्ता, ३ तिर्यचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यचायु की सत्ता और ४ तिर्यंचायु का उदय तथा देव-तिर्यंचायु की सत्ता।

ये चारो भग प्रारम्भ के पाँच गुणस्थानों में होते है, क्योंकि जिस तिर्यच ने नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु का बध कर लिया

है, उसके अन्य गुणस्थानों का पाया जाना सम्भव है। इस प्रकार तिर्यंचगति में अबन्ध, बंध और उपरतबंध की अपेक्षा कुल नौ भंग होते हैं। तिर्यंचगति में आयुकर्म के भंगों का विवरण इस प्रकार है—

भंग क्रम	काल	बंध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	अबन्ध	०	तिर्यंच	तिर्यंच	१,२,३,४,५
२	बंध	नरक	तिर्यंच	न० ति०	१
३	बंधकाल	तिर्यंच	तिर्यंच	तिर्यंच ति०	१,२
४	,,	मनुष्य	तिर्यंच	म० ति०	१ २
५	,	देव	तिर्यंच	देव ति०	१,२,४,५
६	उप० बंध	०	तिर्यंच	ति० न०	१ २,३ ४ ५
७	,	०	तिर्यंच	तिर्यंच ति०	१,२,३,४ ५
८	,,	०	तिर्यंच	ति० म०	१,२,३ ४ ५
९	,	०	तिर्यंच	ति० दे०	१ २,३ ४ ५

मनुष्यायु के संवेध भंग—नरक, देव और तिर्यंचायु के संवेध भंगों का कथन किया जा चुका है। अब शेष रही मनुष्यायु के भंगों को बतलाते हैं। मनुष्यायु के भी नौ भंग हैं। जो इस प्रकार समझना चाहिये—

मनुष्यगति में अबन्धकाल में एक ही भंग—मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता—होता है। यह भंग पहले से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक सभी गुणस्थानों में होता है। क्योंकि मनुष्यगति में यथासम्भव सभी चौदह गुणस्थान होते हैं।

बंधकाल में—१ नरकायु का बंध, मनुष्यायु का उदय और नरक-मनुष्यायु की सत्ता। २ तिर्यंचायु का बंध, मनुष्यायु का उदय और तिर्यंच मनुष्यायु की सत्ता ३ मनुष्यायु का बंध, मनुष्यायु का उदय और मनुष्य-मनुष्यायु की सत्ता तथा ४ देवायु का बंध, मनुष्यायु का उदय और देव मनुष्यायु की सत्ता, यह चार भंग होते हैं।

इनमे से पहला भंग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे होता है, क्योकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के सिवाय अन्यत्र नरकायु का वध सम्भव नही है। तिर्यचायु का वध दूसरे गुणस्थान तक होता हे, अत: दूसरा भग मिथ्यात्व, सासादन इन दो गुणस्थानो मे होता है। तीसरा भग भी मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थानो मे ही पाया जाता है, क्योकि मनुष्य तिर्यचायु के समान मनुष्यायु का वन्ध भी दूसरे गुणस्थान तक ही करते हैं। चौथा भग मिश्र गुणस्थान को छोड़कर अप्रमत्तसयत सातवे गुणस्थान तक छह गुणस्थानो मे होता है। क्योंकि मनुष्यगति मे देवायु का वध अप्रमत्तसयत गुणस्थान तक पाया जाता है।

उपरतवधकाल मे—१. मनुष्यायु का उदय और नरक-मनुष्यायु का सत्त्व, २ मनुष्यायु का उदय और तिर्यच-मनुष्यायु का सत्त्व, ३ मनुष्यायु का उदय और मनुष्य-मनुष्यायु का सत्त्व तथा ४ मनुष्यायु का उदय और देव-मनुष्यायु का सत्त्व, यह चार भग होते हैं।

उक्त चार भगों मे से आदि के तीन भग सातवे अप्रमत्तसयत गुणस्थान तक पाये जाते है। क्योकि यद्यपि मनुष्यगति मे नरकायु का वध पहले गुणस्थान मे, तिर्यचायु का वध दूसरे गुणस्थान तक तथा इसी प्रकार मनुष्यायु का वध भी दूसरे गुणस्थान तक ही होता है, तथापि वध करने के वाद ऐसे जीव सयम को तो धारण कर सकते है, किन्तु श्रेणि-आरोहण नही करते है। इसलिये उपरतवंध की अपेक्षा नरक, तिर्यच और मनुष्य आयु इन तीन आयुयो का सत्त्व अप्रमत्त गुणस्थान तक वतलाया है। चौथा भग प्रारम्भ के ग्यारह गुणस्थानो तक पाया जाना सम्भव है, क्योकि देवायु का जिस मनुष्य ने वध कर लिया है, उसके उपशमश्रेणि पर आरोहण सम्भव है। इस प्रकार मनुष्यगति मे अवन्ध, वंध और उपरतवंध की अपेक्षा आयुकर्म के कुल नौ भग होते है।

मनुष्यगति के उपरतबंध भंगों की विशेषता

तिर्यंचगति में उपरतबंध की अपेक्षा नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु की सत्ता पाँचवें गुणस्थान तक तथा मनुष्यगति में उपरत-बंध की अपेक्षा नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु की सत्ता सातवें अप्रमत्त गुणस्थान तक बतलाई है। इस सम्बन्ध में मतभिन्नता है।

देवेन्द्रसूरि ने दूसरे कर्मग्रन्थ 'कर्मस्तव' के सत्ताधिकार में लिखा है कि दूसरे और तीसरे गुणस्थान के सिवाय पहले से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक १४८ प्रकृतियों की सत्ता सम्भव है[1] तथा आगे इसी ग्रन्थ में यह भी लिखा है कि चौथे से सातवें गुणस्थान पर्यन्त चार गुणस्थानों में अनन्तानुबंधीचतुष्क की विसंयोजना और दर्शनमोहत्रिक का क्षय हो जाने पर १४१ की सत्ता होती है और अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानों में अनन्तानुबंधीचतुष्क, नरकायु और तिर्यंचायु इन छह प्रकृतियों के बिना १४२ प्रकृतियों की सत्ता होती है।[2]

उक्त कथन का सारांश यह है कि १ उपरतबंध की अपेक्षा चारों आयुओं की सत्ता ग्यारहवें गुणस्थान तक सम्भव है और २ उपरतबंध की अपेक्षा नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु की सत्ता सातवें गुणस्थान तक पाई जाती है। इस प्रकार दो मत फलित होते हैं।

पंचसंग्रह सप्ततिका संग्रह नामक प्रकरण की गाथा १०६ तथा बृहत्कर्मस्तव भाष्य से दूसरे मत की पुष्टि होती है, किन्तु पंचसंग्रह में इसी प्रकरण की छठी गाथा में इन दोनों से भिन्न एक अन्य मत भी दिया है कि नरकायु की सत्ता चौथे गुणस्थान तक, तिर्यंचायु की

---

१ गाथा २५ द्वितीय कर्मग्रन्थ।
२ गाथा २६ द्वितीय कर्मग्रन्थ।

सत्ता पाँचवें गुणस्थान तक, देवायु की सत्ता ग्यारहवें गुणस्थान तक और मनुष्यायु की सत्ता चौदहवें गुणस्थान तक पाई जाती है। गो० कर्मकाड मे भी इसी मत को माना है। अन्य दिगम्बर ग्रन्थों मे भी यही एक मत पाया जाता है।

यहाँ जो वर्णन किया गया है वह दूसरे मत—उपरतबध की अपेक्षा नरकायु, तिर्यंचायु और मनुष्यायु की सत्ता सातवे गुणस्थान तक पाई जाती है—के अनुसार किया है। आचार्य मलयगिरि ने इसी मत के अनुसार सप्ततिका प्रकरण टीका मे विवेचन किया है—"वन्धे तु व्यवच्छिन्ने मनुष्यायुप उदयो नारक-मनुष्यायुपी सती, एप विकल्पोऽप्रमत्तगुणस्थानक यावत्, नारकायुर्वन्धानन्तर सयमप्रतिपत्तेरपि सम्भवात्। मनुष्यायुप उदयस्तिर्यङ्-मनुष्यायुपी सती, एपोऽपि विकल्पोऽप्रमत्तगुणस्थानक यावत्। मनुष्यायुप उदयो मनुष्य-मनुष्यायुपी सती, एपोऽपि विकल्प प्राग्वत्। मनुष्यायुप उदयो देव-मनुष्यायुपी सती, एप विकल्प उपशान्तमोहगुणस्थानक यावत्, देवायुपि बद्धेऽप्युपशमश्रेण्यारोह सम्भवात्।" —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६०

श्वेताम्बर कर्म साहित्य मे इसी मत की मुख्यता है। मनुष्यगति के नौ सवेध भगो का विवरण निम्न प्रकार समझना चाहिये—

भग क्रम	काल	बध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	अबन्ध	०	मनुष्य	मनुष्य	सभी चौदह गुण०
२	वधकाल	नरक	,,	नरक, मनुष्य	१
३	,,	तिर्यंच	,,	म० तिर्यं०	१,२
४	,,	मनुष्य	,,	म० म०	१,२
५	,,	देव	,,	म० दे०	१,२,४,५,६,७
६	उप० वन्ध	०	,,	म० न०	१,२,३,४,५,६,७
७	,,	०	,,	म० ति०	१,२,३,४,५,६,७
८	,,	०	,,	म० म०	१,२,३,४,५,६,७
९	,,	०	,,	म० दे०	१ से ११ गुण० तक

इस प्रकार चारो गतियो के ५+६+६+५=२८, कुल मिलाकर आयुकर्म के अट्ठाईस भग होते हैं।[1] प्रत्येक गति मे आयु के भग लाने के लिये गो० कर्मकाड गा० ६४५ मे एक नियम सूत्र दिया है—

एक्काउस्स तिभगा सम्भवआऊहि ताडिदे णाणा ।
जीवे इगिभवभगा रूऊणगुणूणमसरित्थे ॥

इसका साराश यह है कि जिस गति म जितनी आयुयो का बध होता है, उस सख्या को तीन से गुण कर दें और जहा जो लब्ध आये उसम से एक कम बधने वाली आयुयो की सख्या घटा दें तो प्रत्येक गति मे आयु के अबन्ध, बध और उपरतबध की अपेक्षा कुल भग प्राप्त हो जाते है। जसे कि—देव और नारक मे दो दो आयु का ही बध सम्भव है, अत उन दोनो मे छह-छह भग होते हैं। अब इनमे एक एक कम बधने वाली आयुयो की सख्या को कम कर दिया तो नरकगति के पाँच भग और देवगति के पाँच भग आ जाते हैं। मनुष्य और तिर्यचगति मे चार आयुयो का बध होता है। अत चार को तीन से गुणा करने पर बारह होते हैं। अब इनमे से एक कम बधने वाली आयुयो की सख्या तीन को घटा दें तो मनुष्य और तिर्यचगति के नौ नौ भग आ जाते हैं। अतएव देव, नारक मे पाँच-पाँच और मनुष्य, तियच म नौ-नौ भग अपुनरुक्त समझना चाहिये।

उक्त अपुनरुक्त भग नरकादि गति मे चारो आयुयो के क्रम से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे समझना चाहिये। दूसरे गुणस्थान मे नरकायु के बिना बध रूप भग होते हैं अत वहाँ ५,८,८,५ भग जानना। पूर्व मे जो आयुबध की अपेक्षा भग कह गये हैं, वे सब कम

---

[1] नारयसुराउउदओ चउ पचम तिरि मणुस्स चोद्दसम ।
आसम्मदेसजोगी उवसता सतयाऊण ॥
अबधे इगि सत दो दो बद्धाउ बज्झमाणाण ।
चउसु वि एक्कस्सुदओ पण नव नव पच इइ भेया ॥
—पचसग्रह सप्ततिका ८,६

करने पर मिश्र गुणस्थान मे नरकादि गतियो में क्रम से ३,५,५,३, भग होते है और चौथे गुणस्थान मे देव, नरक गति मे तो तिर्यंचायु का वध रूप भग नही होने से चार-चार भग है तथा मनुष्य-तिर्यंच-गति मे आयु बंध की अपेक्षा नरक, तिर्यंच, मनुष्य आयु वधरूप तीन भग न होने से छह-छह भग है, क्योकि इनके वध का अभाव सासादन गुणस्थान मे हो जाता है। देशविरत गुणस्थान मे तिर्यंच और मनुष्यो के वध, अवध और उपरतवध की अपेक्षा तीन-तीन भंग होते है। छठवे, सातवे गुणस्थान मे मनुष्य के ही और देवायु के बध की ही अपेक्षा तीन-तीन भङ्ग होते है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि आदि सात गुणस्थानो मे सव मिलाकर अपुनरुक्त भङ्ग क्रम से २८,२६,१६, २०,६,३,३ है।[1]

वेदनीय और आयु कर्म के सवेध भङ्गो का विचार करने के अनन्तर अव गोत्रकर्म के भङ्गों का विचार करते है।

गोत्रकर्म के संवेध भंग

गोत्र कर्म के दो भेद है—उच्चगोत्र, नीचगोत्र। इनमे से एक जीव के एक काल मे किसी एक का वध और किसी एक का उदय होता है। क्योंकि दोनो का वध या उदय परस्पर विरुद्ध है। जव उच्च गोत्र का वध होता है तव नीच गोत्र का बध नही और नीच गोत्र के वध के समय उच्च गोत्र का बंध नही होता है।

---

१ इन भगो के अतिरिक्त गो० कर्मकाड मे उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि की अपेक्षा मनुष्यगति मे आयुकर्म के कुछ और भग वतलाये है कि उपशमश्रेणि मे देवायु का भी वंध न होने से देवायु के अवन्ध, उपरत-वध की अपेक्षा दो-दो भग है तथा क्षपकश्रेणि मे उपरतवध के भी न होने से अवन्ध की अपेक्षा एक-एक ही भग है। अत उपशमश्रेणि वाले चार गुणस्थानो मे दो-दो भग और उसके वाद क्षपकश्रेणि मे अपूर्वकरण से लेकर अयोगिकेवलीगुणस्थान तक एक-एक भग कहा गया है।

इसी प्रकार उदय के बारे मे समझना चाहिये। दोनो मे से एक समय मे एक का बध या उदय होने का कारण इनका परस्पर विरोधनी प्रकृतिया होना है, किन्तु सत्ता दोनो प्रकृतियो की एक साथ पाई जा सकती है। दोनो की एक साथ सत्ता पाये जाने मे कोई विरोध नही है।[1] लेकिन इतनी विशेषता है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीव उच्चगोत्र की उद्‌वलना भी करते हैं अत उद्‌वलना करने वाले इन जीवो के अथवा जब ये जीव अन्य एकेन्द्रिय आदि मे उत्पन्न हो जाते हैं तब उनके भी कुछ काल के लिये सिर्फ एक नीचगोत्र की ही सत्ता पाई जाती है। उसके बाद उच्चगोत्र को बाधने पर दोनो की सत्ता होती है।[2] अयोगिकेवली भी अपने उपान्त्य समय मे नीचगोत्र का क्षय कर देते हैं, उस समय उनके सिर्फ एक उच्चगोत्र की ही सत्ता पाई जाती है।

गोत्रकर्म के बध, उदय और सत्ता स्थानो के सम्बन्ध मे उक्त कथन का साराश यह है कि अपेक्षा से गोत्रकर्म का बधस्थान भी एक प्रकृतिक होता है, उदयस्थान भी एक प्रकृतिक होता है, किन्तु सत्तास्थान दो प्रकृतिक भी होता है और एक प्रकृतिक भी होता है।[3]

---

१ णीचुच्चाणेगदरं बधुदया होति समवट्ठाणे ।
दोसत्ता जोगित्ति य चरिमे उच्च हवे सत्त ॥—गो० कर्मकाड, गाथा ६३५

२ उच्चुव्वेलिदतेऊ वाउम्मि य णीचमेव सत्त तु ।
सेसिगिवियले सयले णीच च दुग च सत्त तु ॥
उच्चुव्वेल्लिदतेऊ वाऊ सत्त य वियलसयलेसु ।
उप्पण्णपढमकाले णीच एयं हवे सत्त ॥

—गो० कर्मकाड गा० ६३६, ६३७

३ तथा गोत्र सामान्येनैव बन्धस्थानम् तद्यथा—उच्चर्गोत्रं, नीचर्गोत्रं वा, द्वयो परस्पर विरुद्धत्वेन युगपद्वन्धाभावात। उदयस्थानमप्येकम् तदपि द्वयोरन्यतरत् परस्परविरुद्धत्वेन युगपद् द्वयोरुदयाभावात।

गोत्रकर्म के सामान्य से भंग बतलाने के पश्चात् अब इन स्थानों के संवेध भङ्ग बतलाते हैं। गोत्रकर्म के सात संवेध भङ्ग इस प्रकार हैं—

१. नीचगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय और नीचगोत्र की सत्ता।
२. नीचगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय और नीच-उच्च गोत्र की सत्ता।
३. नीचगोत्र का बंध, उच्चगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता।
४ उच्चगोत्र का बंध, नीचगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता।
५. उच्च गोत्र का बंध, उच्चगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता।
६ उच्चगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता।
७ उच्चगोत्र का उदय और उच्चगोत्र की सत्ता।

इनमे से पहला भङ्ग उच्चगोत्र की उद्वलना करने वाले अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो के होता है तथा ऐसे जीव एकेन्द्रिय, विकलत्रय और पचेन्द्रिय तिर्यचो में उत्पन्न होते हैं तो उनके भी अन्तर्मुहूर्त काल तक के लिये होता है। क्योकि अन्तर्मुहूर्त काल के पश्चात् इन एकेन्द्रिय आदि जीवो के उच्चगोत्र का बंध नियम से हो जाता है। दूसरा और तीसरा भङ्ग मिथ्यादृष्टि और सासादन इन दो गुणस्थानो में पाया जाता है, क्योकि नीचगोत्र का बंधविच्छेद

द्वे सत्तास्थाने, तद्यथा—द्वे एकं च। तत्र उच्चैर्गोत्र-नीचैर्गोत्रे समुदिते द्वे, तेजस्कायिक-वायुकायिकावस्थाया उच्चैर्गोत्रे उद्वलिते एकम्, अथवा नीचैर्गोत्रेऽयोगिकेवलिद्विचरमसमये क्षीणे एकम्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६१

दूसरे गुणस्थान मे हो जाता है। इन दोनो भगो का सम्बन्ध नीच-गोत्र के बध से है, अत इनका सद्भाव पहले और दूसरे गुणस्थान मे बताया है, आगे तीसरे सम्यग्मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानो मे नही बताया है। चौथा भङ्ग आदि के पाच गुणस्थानो मे सम्भव है क्योकि नीचगोत्र का उदय पाचवे गुणस्थान तक सम्भव है, अत प्रमत्तसयत आदि आगे के गुणस्थानो मे इसका अभाव बतलाया है। उच्चगोत्र का बध दसवे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक होता है, अत पाचवा भङ्ग आदि के दस गुणस्थानो मे सम्भव है, क्योकि इस भङ्ग मे उच्चगोत्र का बध विवक्षित है। जिससे आगे के गुणस्थानो मे इसका निषेध किया है। छठा भङ्ग—उच्चगोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता—उपशान्तमोह गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान के द्विचरम समय तक होता है। क्योकि नीचगोत्र की सत्ता यही तक पाई जाती है और इस भङ्ग मे नीचगोत्र की सत्ता गर्भित है। सातवा भङ्ग अयोगिकेवली गुणस्थान के अतिम समय मे होता है। क्योकि उच्चगोत्र का उदय और उच्चगोत्र की सत्ता अयोगिकेवली गुणस्थान के अतिम समय मे पाई जाती है और इस भङ्ग मे उच्चगोत्र का उदय और सत्ता सकलित है।

गोत्रकर्म के उक्त सात भगो का विवरण इस प्रकार है—

भगक्रम	बध	उदय	सत्ता	गुणस्थान
१	नीच	नीच	नीच	१
२	नीच	नीच	नीच-उच्च	१,२
३	नीच	उच्च	,, ,,	१,२
४	उच्च	नीच	,, ,,	१,२ ३,४ ५
५	उच्च	उच्च	,,	१ से १० गुणस्थान
६	०		,, ,,	११ १२ १३ व १४ द्विचरम समय
७	०		उच्च	१४ वें का चरम समय

गुणस्थानों की अपेक्षा गोत्रकर्म के भङ्ग मिथ्यादृष्टि और सासादन गुणस्थान मे क्रम से पाँच और चार होते है। मिश्र आदि तीन गुणस्थानो मे दो-दो भङ्ग हैं। प्रमत्त आदि आठ गुणस्थानों मे गोत्र-कर्म का एक-एक भङ्ग है और अयोगिकेवली गुणस्थान मे दो भङ्ग होते हैं।[1]

इस प्रकार से वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भगों को वतलाने के पश्चात अव पूर्व सूचनानुसार—मोह परं वोच्छं—मोहनीय कर्म के वंधस्थानो आदि का कथन करते हैं।

मोहनीय कर्म

वावीस एक्कवीसा, सत्तरसा तेरसेव नव पंच।
चउ तिग दुगं च एक्क वंधट्ठाणाणि मोहस्स ॥१०॥[2]

शब्दार्थ—वावीस—बाईस, एक्कवीसा—इक्कीस, सत्तरसा—सत्रह, तेरसेव—तेरह, नव—नौ, पंच—पाच, चउ—चार, तिग—

---

१ (क) वधड ऊइण्णय चि य इयर वा दो वि मत चऊ भगा।
नीएसु तिसु वि पढमो अवंधगे दोण्णि उच्चुदए॥
—पंचसंग्रह सप्ततिका, गा० १६

(ख) मिच्छादि गोदभगा पण चदु तिसु दोण्णि अट्ठठाणेसु।
एक्केक्का जोगिजिणे दो भगा होंति णियमेण॥
—गो० कर्मकांड, गा० ६३८

२ तुलना कीजिये—

(क) वावीसमेक्कवीस सत्तारस तेरसेव णव पच।
चदुतियदुग च एक्क ववट्ठाणाणि मोहस्स॥
—गो० कर्मकांड ४६३

(ख) दुगइगवीसा सत्तर तेरस नव पंच चउर ति दु एगो।
वधो इगि दुग चउत्थय पणउणवमेसु मोहस्स॥
—पंचसंग्रह सप्ततिका, गा० १९

तीन, दुग—दो, च—और, एवर—एक प्रकृतिक, बंधट्ठाणाणि—बंध स्थान, मोहस्स—मोहनीय कर्म के।

गाथार्थ—मोहनीय कर्म के बाईस प्रकृतिक इक्कीस प्रकृतिक, सत्रह प्रकृतिक, तेरह प्रकृतिक, नौ प्रकृतिक, पांच प्रकृतिक, चार प्रकृतिक, तीन प्रकृतिक, दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक, इस प्रकार दस बंधस्थान हैं।

विशेषार्थ—गाथा में 'मोहस्स बंधट्ठाणाणि' मोहनीय कर्म के बंधस्थानों का वर्णन किया जा रहा है। वे बंधस्थान बाईस, इक्कीस आदि प्रकृतिक कुल मिलाकर दस हैं। जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृतियाँ अट्ठाईस हैं। इनमें दर्शन मोहनीय की सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्व यह तीन प्रकृतियाँ हैं। इनमें से सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों का बंध नहीं होने से कुल बंधयोग्य छब्बीस प्रकृतियां रहती हैं और उनमें से कुछ प्रकृतियों का बंध के समय परस्पर विरोधनी होने तथा गुणस्थानों में विच्छेद होते जाने के कारण बाईस प्रकृतिक आदि दस बंधस्थान[1] मोहनीय कर्म की प्रकृतियों के होते हैं।

---

१ मोहनीय कर्म के बाईस प्रकृतिक आदि दस बंधस्थानों में प्रकृतियों की संग्राहक गाथायें इस प्रकार हैं—

मिच्छं कसायसोलस भयकुच्छा तिण्हवेयमन्नयरं।
हासरइ इयरजुयलं च बंधपयडी य बावीसं ॥
इगवीसा मिच्छविणा नपुबंधविणा उ सासणे बंधे।
अणरहिया सत्तरस न बंधि थिइ तुरि अठाणम्मि ॥
वियसपरायऊणा तेरस तह तइयऊण नव बंधे।
भय कुच्छ-जुगलं चाए पण बंधे चायरे ठाणे ॥
तह पुरिस कोह-हकार मायालोभस्स बंधवोच्छेए।
चउ तिन्दुग एग बंधे कमेण मोहस्स दसठाणा ॥

—षष्ठ कर्मग्रन्थ प्राकृत टिप्पण, रामदेवगणि विरचित, गाथा २२ से २५

मोहनीय कर्म के दस बंधस्थानों में से पहला स्थान बाईस प्रकृतिक है। इसका कारण यह है कि तीन वेदों का एक साथ बंध नहीं होता है, किन्तु एक काल में एक ही वेद का बंध होता है। चाहे वह पुरुषवेद का हो, स्त्रीवेद का हो या नपुंसकवेद का हो तथा हास्य-रति युगल और अरति-शोक युगल, इन दोनों युगलों में से एक समय में एक युगल का बंध होगा। दोनों युगल एक साथ बंध को प्राप्त नहीं होते हैं। अतः छब्बीस प्रकृतियों में से दो वेद और दो युगलों में से किसी एक युगल के कम करने पर बाईस प्रकृतियाँ शेष रहती हैं। इन बाईस प्रकृतियों का बंध मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होता है।

उक्त बाईस प्रकृतिक बंधस्थान में से मिथ्यात्व को कम कर देने पर इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। यह स्थान सासादन गुणस्थान में होता है। क्योंकि मिथ्यात्व का विच्छेद पहले मिथ्यात्व गुणस्थान में हो जाता है। यद्यपि दूसरे सासादन गुणस्थान में नपुंसकवेद का भी बंध नहीं होता है, लेकिन पुरुषवेद या स्त्रीवेद के बंध से उसकी पूर्ति हो जाने से संख्या इक्कीस ही रहती है।

अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्क का बन्ध दूसरे गुणस्थान तक ही होता है। अतः इक्कीस प्रकृतियों में से अनन्तानुबन्धी चतुष्क को कम कर देने से मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि—तीसरे, चौथे—गुणस्थान में सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान प्राप्त होता है। यद्यपि इन गुणस्थानों में स्त्रीवेद का बंध नहीं होता है, तथापि पुरुषवेद का वहाँ बंध होते रहने से सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान बन जाता है।

देशविरति गुणस्थान में तेरह प्रकृतिक बंधस्थान होता है। क्योंकि अप्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क का बन्ध चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक ही होता है। अतः सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान में से अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क को कम कर देने पर पाँचवें देशविरत गुणस्थान में तेरह प्रकृतिक बंधस्थान प्राप्त होता है।

प्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क का बंध पाचवे देशविरति गुणस्थान तक होता है। अत पूर्वोक्त तेरह प्रकृतियो मे से प्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क को कम कर देने पर छठवें, सातवे और आठवे—प्रमत्त-सयत, अप्रमत्तसयत और अपूर्वकरण—गुणस्थान मे नौ प्रकृतिक बंधस्थान होता है। यद्यपि अरति-शोक युगल का बंध छठे गुणस्थान तक ही होता है, लेकिन सातवे और आठवें गुणस्थान मे इनकी पूर्ति हास्य व रति से हो जाने के कारण नौ प्रकृतिक बंधस्थान ही रहता है।

हास्य, रति, भय और जुगुप्सा इन चार प्रकृतियो का बंध आठवे गुणस्थान के अंतिम समय तक होता है। अत पूर्वोक्त नौ प्रकृतिक बंधस्थान मे से इन चार प्रकृतियो को कम कर देने पर नौवें अनिवृत्तिबादर सपराय गुणस्थान के प्रथम भाग म पाच प्रकृतिक बंधस्थान होता है। दूसरे भाग मे पुरुषवेद का बंध नही होता, अत वहाँ चार प्रकृतिक, तीसरे भाग मे सज्वलन क्रोध का बंध नही होता है अत वहा तीन प्रकृतिक, चौथे भाग मे सज्वलन मान का बंध नही होने से दो प्रकृतिक और पाँचवें भाग मे सज्वलन माया का बंध नही होने से एक प्रकृतिक बंधस्थान होता है। इस प्रकार नौवे अनिवृत्तिबादर सपराय गुणस्थान के पाच भागो मे पाच प्रकृतिक, चार प्रकृतिक, तीन प्रकृतिक, दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक, ये पाँच बंधस्थान होते हैं।

इसके आगे दसवें सूक्ष्मसपराय गुणस्थान म एक प्रकृतिक बंधस्थान का भी अभाव है। क्योकि वहाँ मोहनीय कर्म के बंध के कारणभूत बादर कषाय नही पाया जाता है। इस प्रकार मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृतियो के कुल दस बंधस्थान हैं।

दस बंधस्थानों का समय व स्वामी

बाईस प्रकृतिक बंधस्थान का स्वामी—मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवर्ती

जीव है। इस वधस्थान के काल की अपेक्षा तीन भङ्ग हैं—अनादि-अनन्त, अनादि सान्त और सादि-सान्त। इनमे से अनादि-अनन्त विकल्प अभव्यो की अपेक्षा होता है। क्योकि उनके बाईस प्रकृतिक वधस्थान का कभी अभाव नही पाया जाता है। भव्यो की अपेक्षा अनादि-सान्त विकल्प है। क्योकि कालान्तर मे उनके बाईस प्रकृतिक वधस्थान का वधविच्छेद सम्भव है तथा जो जीव सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व को प्राप्त हुए है और कालान्तर मे पुनः सम्यक्त्व को प्राप्त हो जाते है, उनके सादि-सान्त विकल्प पाया जाता है। क्योकि यह विकल्प कादाचित्क है, अत इसका आदि भी पाया जाता है और अन्त भी। इस सादि-सान्त विकल्प की अपेक्षा बाईस प्रकृतिक वधस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त प्रमाण होता है।

इक्कीस प्रकृतिक वधस्थान का स्वामी सासादन गुणस्थानवर्ती जीव है। सासादन गुणस्थान का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल छह आवली है, अत इस वधस्थान का भी उक्त काल-प्रमाण समझना चाहिये। सत्रह प्रकृतिक वधस्थान के स्वामी तीसरे और चौथे गुणस्थानवर्ती जीव हे। इस स्थान का जघन्यकाल अन्त-र्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर है। तेरह प्रकृतिक वधस्थान का स्वामी देशविरत गुणस्थानवर्ती जीव है और देश-विरत गुणस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल देशोन पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण होने से तेरह प्रकृतिक वधस्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल उतना समझना चाहिये। नौ प्रकृतिक वधस्थान छठवे, सातवे और आठवे गुणस्थान मे पाया जाता है। इस बधस्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल देशोन पूर्वकोटि वर्ष प्रमाण है। यद्यपि छठे, सातवे और आठवे गुणस्थान का उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त से अधिक नही है, फिर भी परिवर्तन क्रम से छठे और

सातवें गुणस्थान मे एक जीव देशोन पूर्वकोटि प्रमाण रह सकता है। इसीलिये नौ प्रकृतिक बंधस्थान का उत्कृष्टकाल उक्त प्रमाण है। पांच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक बंधस्थान नौवें अनिवृत्तिबादर संपराय गुणस्थान के पांच भागों मे होते हैं और इन सभी प्रत्येक बंधस्थान का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अंतर्मुहूर्त है। क्योंकि नौवें गुणस्थान के प्रत्येक भाग का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्ट काल अंतर्मुहूर्त है। मोहनीय कर्म के दस बंधस्थानों का स्वामी व काल सहित विवरण इस प्रकार है—

बंधस्थान	गुणस्थान	काल	
		जघन्य	उत्कृष्ट
२२ प्र०	पहला	अंतर्मुहूर्त	देशोन अपार्ध
२१ प्र०	दूसरा	एक समय	छह आवली
१७ प्र०	३, ४ था	अंतर्मुहूर्त	साधिक ३३ सागर
१३ प्र०	५ वां	"	देशोन पूर्वकोटि
६ प्र०	६, ७, ८ वा	"	"
५ "	नौवें का पहला भाग	एक समय	अंतर्मुहूर्त
४ "	" " दूसरा भाग	"	"
३ "	" " तीसरा भाग	"	"
२ "	" चौथा भाग	"	"
१ "	पाँचवाँ भाग	"	"

मोहनीय कर्म के दस बंधस्थानों को बतलाने के बाद अब उदयस्थानों का कथन करते हैं।

एक्क व दो व चउरो एत्तो एक्काहिया दसुक्कोसा।
ओहेण मोहणिज्जे उदयट्ठाणा नव हवंति ॥११॥[1]

---

१ तुलना कीजिये—
दस णव अट्ठ य सत्त य छप्पण चत्तारि दोण्णि एक्कं च।
उदयट्ठाणा मोहे णव चेव य होंति णियमेण ॥
—गो० कर्मकांड, गा० ४७५

शब्दार्थ—एक्कं—एक, व—और, दो—दो, व—और, चउरो—चार, एत्तो—इससे आगे, एक्काहिया—एक-एक प्रकृति अधिक, दस—दस तक, उक्कोसा—उत्कृष्ट से, ओहेण—सामान्य से, मोहणिज्जे—मोहनीय कर्म में, उदयट्ठाणा—उदयस्थान, नव—नौ, हवंति—होते हैं।

गाथार्थ—एक, दो और चार और चार से आगे एक-एक प्रकृति अधिक उत्कृष्ट दस प्रकृति तक के नौ उदयस्थान मोहनीय कर्म के सामान्य से होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में मोहनीय कर्म के उदयस्थानों की संख्या बतलाई है कि वे नौ होते हैं। इन उदयस्थानों की संख्या एक, दो, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ और दस प्रकृतिक है।

ये उदयस्थान पश्चादानुपूर्वी के क्रम से बतलाये हैं। गणनानुपूर्वी के तीन प्रकार हैं—१. पूर्वानुपूर्वी, २. पश्चादानुपूर्वी और ३. यत्रतत्रानुपूर्वी।[1] इनकी व्याख्या इस प्रकार है कि जो पदार्थ जिस क्रम से उत्पन्न हुआ हो या जिस क्रम से सूत्रकार के द्वारा स्थापित किया गया हो, उसकी उसी क्रम से गणना करना पूर्वानुपूर्वी है। विलोमक्रम से अर्थात् अन्त से लेकर आदि तक गणना करना पश्चादानुपूर्वी है और अपनी इच्छानुसार जहाँ कहीं से अपने इच्छित पदार्थ को प्रथम मानकर गणना करना यत्रतत्रानुपूर्वी कहलाता है। यहाँ ग्रन्थकार ने उक्त तीन गणना की आनुपूर्वियों में से पश्चादानुपूर्वी के क्रम से मोहनीय कर्म के उदयस्थान गिनाये हैं।

मोहनीय कर्म का उदय दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान तक होता है। अतः पश्चादानुपूर्वी गणना क्रम से एक प्रकृतिक उदयस्थान सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में होता है क्योंकि वहाँ संज्वलन लोभ का उदय है। वह इस प्रकार समझना चाहिये कि नौवें गुणस्थान के अपगत वेद

१ गणणाणुपुव्वी तिविहा पण्णत्ता तं जहा—पुव्वाणुपुव्वी, पच्छाणुपुव्वी, अणाणुपुव्वी।

—अनुयोगद्वार सूत्र ११६

के प्रथम समय से लेकर सूक्ष्मसपराय गुणस्थान के अतिम समय तक सज्वलन लोभ का उदय पाया जाता है, जिससे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे एक प्रकृतिक उदयस्थान बतलाया है।

उक्त एक प्रकृतिक उदयस्थान मे तीन वेदो मे से किसी एक वेद को मिला देने पर दो प्रकृतिक उदयस्थान होता है जो नौवें अनिवृत्ति-बादर सपराय गुणस्थान के प्रथम समय से लेकर सवेदभाग के अतिम समय तक होता है।

इस दो प्रकृतिक उदयस्थान म हास्य-रति युगल अथवा अरति-शोक युगल म से किसी एक युगल को मिलाने से चार प्रकृतिक उदयस्थान होता है। तीन प्रकृतिक उदयस्थान इसलिये नही होता है कि दो प्रकृतिक उदयस्थान मे हास्य रति या अरति शोक युगलो मे से किसी एक युगल के मिलाने से जोड (योग) चार होता है। अत चार प्रकृतिक उदयस्थान बताया है। इस चार प्रकृतिक उदयस्थान मे भय प्रकृति को मिलाने से पाच प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसमे जुगुप्सा प्रकृति के मिलाने से छह प्रकृतिक उदयस्थान होता है। ये तीनो उदयस्थान छठे, सातवे और आठवे गुणस्थान मे होते है।

इस छह प्रकृतिक उदयस्थान मे प्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क की किसी एक प्रकृति को मिलाने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। जो पाचवे गुणस्थान मे होता है। इसमे अप्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क की किसी एक प्रकृति को मिलाने पर आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान चौथे और तीसरे गुणस्थान म होता है। इस आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे अनन्तानुबधी कषाय चतुष्क की किसी प्रकृति को मिलाने से नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह स्थान दूसरे गुणस्थान मे होता ह और इस नौ प्रकृतिक

उदयस्थान मे मिथ्यात्व को मिलाने पर दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में होता है।[1]

मोहनीय कर्म के उक्त नौ उदयस्थान सामान्य से बतलाये हैं। क्योकि तीसरे मिश्र गुणस्थान मे मिश्र मोहनीय का और चौथे से सातवे गुणस्थान तक वेदक सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्व मोहनीय का उदय हो जाता है। इसलिये सभी विकल्पो को न बतलाकर यहाँ तो सूचना मात्र की है। विशेष विस्तार से वर्णन आगे किया जा रहा है। प्रत्येक उदयस्थान का जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।

मोहनीय कर्म के उदयस्थानो का विवरण इस प्रकार है—

उदयस्थान	गुणस्थान	काल	
		जघन्य	उत्कृष्ट
१ प्र०	नौवें का अवेद भाग व दसवां	एक समय	अन्तर्मुहूर्त
२ ,,	नौवें का सवेद भाग	,,	,,
४ ,,	६, ७, ८	,,	,,
५ ,,	६, ७, ८	,,	,,
६ ,,	६, ७, ८	,,	,,
७ ,,	पाचवा	,,	,,
८ ,,	४, ३	,,	,,
९ ,,	२	,,	,,
१० ,,	१	,,	,,

१ मोहनीय कर्म के नौ उदयस्थानों की सग्रहगीय गाथायें इस प्रकार है—

(क) एगयर सपराय वेयजुयं दोण्णि जुयलजुय चउरो।
पच्चक्खाणेगयरे छट्ठे पंचेव पयडीओ॥

मोहनीय कर्म के उदयस्थानों को बतलाने के पश्चात् अब सत्तास्थानों का कथन करते हैं।

अट्ठगसत्तगछच्चउतिगदुगएगाहिया भवे वीसा ।
तेरस बारिक्कारस इत्तो पचाइ एक्कूणा ॥१२॥
सतस्स पगइठाणाइ ताणि मोहस्स हुंति पन्नरस ।
बन्धोदयसते पुण भंगविगप्पा बहू जाण ॥१३॥

शब्दार्थ—अट्ठग सत्तग छच्चउतिग दुग एगाहिया—आठ, सात, छह, चार, तीन, दो, और एक अधिक, भवे—होते हैं, वीसा—बीस, तेरस—तेरह, बारिक्कारस—बारह और ग्यारह प्रकृति का, इत्तो—इसके बाद, पचाइ—पांच प्रकृति से लेकर, एक्कूणा—एक एक प्रकृति न्यून।

सतस्स—सत्ता के, पगइठाणाइ—प्रकृति स्थान, ताणि—वे, मोहस्स—मोहनीय कर्म के, हुंति—होते हैं, पन्नरस—पन्द्रह, बंधोदयसंते—बंध, उदय और सत्ता स्थान, पुण—तथा, भंगविगप्पा—भंगविकल्प, बहू—अनेक, जाण—जानो।

गाथार्थ—मोहनीय कर्म के बीस के बाद क्रमशः आठ, सात, छह, चार, तीन, दो और एक अधिक संख्या वाले तथा तेरह, बारह, ग्यारह और इसके बाद पांच से लेकर एक-एक प्रकृति कम, इस प्रकार सत्ता प्रकृतियों के पन्द्रह स्थान होते हैं। इन बंधस्थानों, उदयस्थानों और सत्तास्थानों की अपेक्षा भंगों के अनेक विकल्प होते हैं।

[illegible] ।
[illegible] ॥
—रामदेवगणिकृत सप्ततिका प्राकृत टिप्पण, गा० २६, २७

(ख) [illegible] ।
[illegible] ॥
—पंचसंग्रह सप्ततिका गा० २३

विशेषार्थ—उक्त दो गाथाओ मे मोहनीय कर्म की प्रकृतियो के सत्ता-स्थानो मे प्रकृतियो की सख्या वतलाई है कि अमुक सत्तास्थान इतनी प्रकृतियो का होता है। सत्तास्थानो के भेदो का सकेत करने के वाद वध, उदय और सत्ता स्थानो के सवेध भगो की अनेकता की सूचना दी है। जिनका वर्णन आगे यथाप्रसग किया जा रहा है।

मोहनीय कर्म के कितने सत्तास्थान होते है, इसका सकेत करते हुए ग्रथकार ने वताया है कि 'सतस्स पगइठाणाइं ताणि मोहस्स हुति पन्नरस'—मोहनीय कर्म प्रकृतियो के सत्तास्थान पन्द्रह होते है। ये पन्द्रह सत्तास्थान कितनी-कितनी प्रकृतियो के है, उनका स्पष्टीकरण क्रमश इस प्रकार है—अट्ठाईस, सत्ताईस, छव्वीस, चौवीस, तेईस, वाईस, इक्कीस, तेरह, वारह, ग्यारह, पॉच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक।[1] कुल मिलाकर ये पन्द्रह सत्तास्थान[2] होते है।

---

१ (क) अट्ठगसत्तगच्छक्कग चउतिगदुगएक्कगाहिया वीसा।
तेरस वारेक्कारस सते पचाइ जा एक॥
—पंचसग्रह सप्ततिका गा० ३५

(ख) अट्ठयसत्तयछक्कय चदुतिदुगेगाधिगाणि वीसाणि।
तेरस वारेयार पणादि एगूणय सत्त॥
—गो० कर्मकाड गा० ५०८

२ इन पन्द्रह सत्तास्थानो मे से प्रत्येक स्थान मे ग्रहण की गई प्रकृतियो की सग्रह गाथायें इस प्रकार है—

नव नोकसाय सोलस कसाय दसणतिग ति अडवीसा।
सम्मत्तुव्वलणेण मिच्छे मीसे य सगवीसा॥
छव्वीसा पुण दुविहा मीसुव्वलणें अणाइ मिच्छत्ते।
सम्मद्दिट्ठऽडवीसा अणक्खए होइ चउवीसा॥
मिच्छे मीसे सम्मे खीणे ति-दुवीस एक्कवीसा य।
अट्ठकमाए तेरस नपुक्खए होइ वारसग॥
थीवेयि खीणिगारस हासाइ पचचउ पुरिसखीणे।
कोहे माणे माया लोभे खीणे य कमसो उ॥
तिगु दुग एग असत मोहे पन्नरस सतठाणाणि।
—पष्ठ कर्मग्रन्थ प्राकृत टिप्पण, गा० २८-३२

इनमे से अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान म मोहनीय कर्म की सब प्रकृतिया का ग्रहण किया गया है। यह स्थान मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर ग्यारहवे उपशान्तमोह गुणस्थान तक पाया जाता है। इस स्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक एकसौ बत्तीस सागर है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

छब्बीस प्रकृतियो की सत्ता वाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव जब उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करके अट्ठाईस प्रकृतियो की सत्ता प्राप्त कर लेता है और अन्तर्मुहूर्तकाल के भीतर वेदक सम्यक्त्व पूर्वक अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसयोजना करके चौबीस प्रकृति की सत्ता वाला हो जाता है, तब अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है तथा उत्कृष्टकाल साधिक एक सौ बत्तीस सागर इस प्रकार समझना चाहिये कि कोई मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करके अट्ठाईस प्रकृति की सत्ता वाला हुआ, अनन्तर वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त करके प्रथम छियासठ सागर काल तक सम्यक्त्व के साथ परिभ्रमण किया और फिर अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यगमिथ्यात्व मे रहकर फिर वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त करके दूसरी बार छियासठ सागर सम्यक्त्व के साथ परिभ्रमण किया। अन्त मे मिथ्यात्व को प्राप्त करके सम्यक्त्व प्रकृति के सबसे उत्कृष्ट पल्य के असख्यातवे भाग प्रमाण काल के द्वारा सम्यक्त्व प्रकृति की उद्वलना करके सत्ताईस प्रकृतिक सत्ता वाला हुआ। इस प्रकार अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्टकाल पल्य के असख्यातवे भाग से अधिक एक सौ बत्तीस सागर होता है। ऐसा जीव यद्यपि मिथ्यात्व मे न जाकर क्षपक श्रेणि पर भी चढता है और अन्य सत्तास्थानो को प्राप्त करता है। परन्तु इससे उक्त उत्कृष्ट काल प्राप्त नही होता है, अत यहाँ उसका उल्लेख नही किया है।

अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना : जयधवला

अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसंयोजना करने से जब चौवीस प्रकृतिक सत्ता वाला होता है, तब प्राप्त होता है। वेदक सम्यग्दृष्टि जीव के अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्क की विसयोजना करने मे श्वेताम्बर और दिगम्बर आचार्य एकमत है। किन्तु इसके अतिरिक्त जयधवला टीका मे एक मत का उल्लेख और किया गया है। वहाँ बताया गया है कि उपशम सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसयोजना करते हैं, इस विषय मे दो मत है। एक मत का यह मानना है कि उपशम सम्यक्त्व का काल थोडा है और अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसयोजना का काल बडा है, अत उपशम सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसयोजना नही करता है तथा दूसरा मत है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्क के विसयोजना काल से उपशम सम्यक्त्व का काल बड़ा है इसलिये उपशम सम्यग्दृष्टि जीव भी अनन्तानुबन्धी चतुष्क की विसयोजना करता है। जिन उच्चारणा वृत्तियो के आधार से जयधवला टीका लिखी गई है, उनमे इस दूसरे मत को प्रधानता दी है।

अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्ट काल, मतभिन्नता

पचसग्रह के सप्ततिका-सग्रह की गाथा ४५ व उसकी टीका मे अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्टकाल पल्य का असख्यातवा भाग अधिक एक सौ बत्तीस सागर बतलाया है। लेकिन दिगम्बर परम्परा मे उसका उत्कृष्ट काल पल्य के तीन असख्यातवे भाग अधिक एक सौ बत्तीस सागर बतलाया है। इस मतभेद का स्पष्टीकरण यह है—

श्वेताम्बर साहित्य मे बताया है कि छब्बीस प्रकृतिक सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि ही मिथ्यात्व का उपशम करके उपशम सम्यग्दृष्टि होता है। तदनुसार केवल सम्यक्त्व की उद्वलना के अतिम काल मे जीव

उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त नही कर सकता है। जिससे २८ प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्टकाल पल्य का असख्यातवा भाग अधिक १३२ सागर ही प्राप्त होता है। क्योकि जो २८ प्रकृतियो की सत्ता वाला ६६ सागर तक वेदक सम्यक्त्व के साथ रहा और पश्चात् सम्यग्दृष्टि हुआ, तत्पश्चात् पुन ६६ सागर तक वेदक सम्यक्त्व के साथ रहा और अत मे जिसने मिथ्यादृष्टि होकर पल्य के असख्यातवें भाग काल तक सम्यक्त्व की उद्वलना की, उसके २८ प्रकृतिक सत्ता स्थान इससे अधिक काल नही पाया जाता, क्योकि इसके बाद वह नियम से २७ प्रकृतिक सत्तास्थान वाला हो जाता है।

लेकिन दिगम्बर साहित्य की यह मान्यता है कि २६ और २७ प्रकृतियो की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि तो नियम से उपशम सम्यक्त्व को ही उत्पन्न करता है, किन्तु २८ प्रकृतियो की सत्ता वाला वह जीव भी उपशम सम्यक्त्व को ही उत्पन्न करता है जिसके वेदक सम्यक्त्व के योग्य काल समाप्त हो गया है। तदनुसार यहा २८ प्रकृतिक सत्ता स्थान का उत्कृष्टकाल पल्य के तीन असख्यातवें भाग अधिक १३२ सागर बन जाता है। यथा—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करके २८ प्रकृतियो की सत्ता वाला हुआ। अनन्तर मिथ्यात्व को प्राप्त होकर सम्यक्त्व के सबसे उत्कृष्ट उद्वलना काल पल्य के असख्यातवें भाग के व्यतीत होने पर वह २७ प्रकृतिक सत्ता वाला होना पर ऐसा न होकर वह उद्वलना के अतिम समय मे पुन उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ। तदनन्तर प्रथम ६६ सागर काल तक सम्यक्त्व के साथ परिभ्रमण करके और मिथ्यात्व को प्राप्त होकर पुन सम्यक्त्व के सबसे उत्कृष्ट पल्य के असख्यातवें भाग प्रमाण उद्वलना काल के अतिम समय मे उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ, तदनन्तर दूसरी बार ६६ सागर काल तक सम्यक्त्व के साथ परिभ्रमण करके और अत मे मिथ्यात्व को प्राप्त होकर पल्य के असख्यातवें

भाग काल के द्वारा सम्यक्त्व की उद्वलना करके २७ प्रकृतियों की सत्ता वाला हुआ। इस प्रकार २८ प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्ट काल पल्य के तीन असंख्यातवें भाग अधिक १३२ सागर प्राप्त होता है।

इस प्रकार से कुछ मतभिन्नताओं का संकेत करने के बाद मोहनीय कर्म के सत्ताईस प्रकृतिक आदि शेष सत्तास्थानो को स्पष्ट करते हैं।

उक्त अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान मे से सम्यक्त्व प्रकृति की उद्वलना हो जाने पर सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह स्थान मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि को होता है तथा इसका काल पल्य के असख्यातवे भाग प्रमाण है। इसका कारण यह है कि सम्यक्त्व प्रकृति की उद्वलना हो जाने के पश्चात् सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति की उद्वलना मे पल्य का असख्यातवा भाग काल लगता है और जब तक सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति की उद्वलना होती रहती है तब तक वह जीव सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान वाला रहता है। इसीलिये सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान का काल पल्य के असख्यातवें भाग प्रमाण बताया है।

सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान मे से उद्वलना द्वारा सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृति को घटा देने पर छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह स्थान भी मिथ्यादृष्टि जीव को होता है। काल की दृष्टि से इस स्थान के तीन विकल्प है—१ अनादि-अनन्त, २ अनादि-सान्त, ३ सादि-सान्त। इनमे से अनादि-अनन्त विकल्प अभव्यो की अपेक्षा है, क्योकि उनके छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान का आदि और अन्त नही पाया जाता है। अनादि-सान्त विकल्प भव्यो के पाया जाता है। क्योकि अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य जीव के छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान आदि रहित अवश्य है, लेकिन जब वह सम्यक्त्व प्राप्त कर लेता है

तब उसके इस स्थान का अन्त देखा जाता है। सादि-सान्त विकल्प सादि मिथ्यादृष्टि जीव के होता है। क्योंकि अट्ठाईस प्रकृतिक सत्ता वाले जिस सादि मिथ्यादृष्टि जीव ने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वलना करके छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान को प्राप्त किया है, उसके इस छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान का पुन नाश देखा जाता है।

छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान के काल के उक्त तीन विकल्पो मे से सादि-सान्त विकल्प का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल देशोन अपार्ध पुद्गल परावर्त है। जो इस प्रकार फलित होता है—जो छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान को प्राप्त कर लेने के बाद त्रिकरण द्वारा अन्तर्मुहूर्त मे सम्यक्त्व को प्राप्त करके पुन अट्ठाईस प्रकृतियो की सत्ता वाला हो गया, उसके उक्त स्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है तथा कोई अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हुआ और मिथ्यात्व मे जाकर उसने पल्य के असख्यातवे भाग प्रमाण काल के द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वलना करके छब्बीस प्रकृतियो के सत्त्व को प्राप्त किया, पुन वह शेष अपार्ध पुद्गल परावर्त काल तक मिथ्यादृष्टि रहा किन्तु जब ससार मे रहने का काल अन्तर्मुहूर्त शेष रहा तब पुन वह सम्यग्दृष्टि हो गया तो इस प्रकार छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्टकाल पल्य का असख्यातवा भाग कम अपार्ध पुद्गल परावर्त प्रमाण प्राप्त होता है।

मोहनीय कर्म की अट्ठाईस प्रकृतियो मे से अनन्तानुबधी कषाय चतुष्क की विसयोजना हो जाने पर चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है। यह स्थान तीसरे से लेकर ग्यारहवें गुणस्थान तक पाया जाता है। इसका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल एक सौ बत्तीस सागर है। जघन्यकाल तब प्राप्त होता है जब जीव ने अनन्तानुबधी चतुष्क की विसयोजना करके चौबीस प्रकृतिक सत्ता-

स्थान प्राप्त किया और सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल के भीतर मिथ्यात्व का क्षय कर देता है तो उसके चौवीस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त देखा जाता है तथा अनन्तानुवंधी की विसंयोजना करने के वाद जो वेदक सम्यग्दृष्टि ६६ सागर तक वेदक (क्षायोपशमिक) सम्यक्त्व के साथ रहा, फिर अन्तर्मुहूर्त के लिये सम्यग्मिथ्यादृष्टि हुआ और इसके वाद पुन॰ ६६ सागर काल तक वेदक सम्यग्दृष्टि रहा। अनन्तर मिथ्यात्व की क्षपणा की। इस प्रकार अनन्तानुवन्धी की विसयोजना होने के समय से लेकर मिथ्यात्व की क्षपणा होने तक के काल का योग एक सौ वत्तीस सागर होता है। इसीलिये चौवीस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्टकाल एक सौ वत्तीस सागर वताया है।

चौवीस प्रकृतिक सत्तास्थान मे से मिथ्यात्व के क्षय हो जाने पर तेईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है और यह स्थान चौथे से लेकर सातवे गुणस्थान तक पाया जाता है। सम्यग्मिथ्यात्व की क्षपणा का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होने से इस स्थान का जघन्य व उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

तेईस प्रकृतिक सत्तास्थान मे से सम्यग्मिथ्यात्व के क्षय हो जाने से वाईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह स्थान भी चौथे से लेकर सातवे गुणस्थान तक पाया जाता है। इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। क्योकि सम्यक्त्व की क्षपणा मे इतना काल लगता है।

वाईस प्रकृतिक सत्तास्थान मे से सम्यक्त्व मोहनीय प्रकृति का क्षय हो जाने पर इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह चौथे से लेकर ग्यारहवे गुणस्थान तक पाया जाता है। इसका जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर प्रमाण है। जघन्य-काल अन्तर्मुहूर्त इसलिये माना जाता है कि क्षायिक सम्यग्दर्शन को

प्राप्त करके अंतर्मुहूर्त काल के भीतर क्षपक श्रेणी पर चढ़कर मध्य की आठ कषायों का क्षय होना सम्भव है। उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर इसलिये है कि उक्त समयप्रमाण तक जीव इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान के साथ रह सकता है।

इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान में से अप्रत्याख्यानावरण चतुष्क और प्रत्याख्यानावरण चतुष्क, इन आठ प्रकृतियों का क्षय हो जाने पर तेरह प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह स्थान क्षपक श्रेणी के नौवें गुणस्थान में प्राप्त होता है। इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। क्योंकि तेरह प्रकृतिक सत्तास्थान से बारह प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त करने में अंतर्मुहूर्त काल लगता है।

इस तेरह प्रकृतिक सत्तास्थान में से नपुंसक वेद के क्षय हो जाने पर बारह प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह भी नौवें गुणस्थान में प्राप्त होता है और इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। क्योंकि बारह प्रकृतिक सत्तास्थान से ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थान के प्राप्त होने में अन्तर्मुहूर्त काल लगता है।

जो जीव नपुंसक वेद के उदय के साथ क्षपक श्रेणी पर चढ़ता है, उसके नपुंसक वेद की क्षपणा के साथ स्त्रीवेद का भी क्षय होता है। अतः ऐसे जीव के बारह प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं पाया जाता है। जिसने नपुंसक वेद के क्षय से बारह प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त किया, उसके स्त्रीवेद का क्षय हो जाने पर ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इसकी प्राप्ति नौवें गुणस्थान में होती है। इसका जघन्य व उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है। क्योंकि हास्यादि छह नोकषायों के क्षय होने में अन्तर्मुहूर्त समय लगता है।

ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थान में से छह नोकषायों का क्षय हो जाने पर पांच प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल

दो समय कम दो आवली प्रमाण है। क्योंकि छह नोकषायो के क्षय होने पर पुरुषवेद का दो समय कम दो आवली काल तक सत्त्व देखा जाता है। इसके बाद पुरुषवेद का क्षय हो जाने से चार प्रकृतिक, चार प्रकृतिक में से सज्वलन क्रोध का क्षय होने पर तीन प्रकृतिक और तीन प्रकृतिक मे से सज्वलन मान का क्षय हो जाने पर दो प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। ये नौवे गुणस्थान मे प्राप्त होते है। इनका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

दो प्रकृतिक सत्तास्थान मे से सज्वलन माया का क्षय होने पर एक प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह नौवे और दसवे गुणस्थान मे प्राप्त होता है तथा इसका काल जघन्य व उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।

मोहनीय कर्म के उक्त अट्ठाईस प्रकृतिक आदि पन्द्रह सत्तास्थानो का क्रम आचार्य मलयगिरि ने सक्षेप मे बतलाया है। उपयोगी होने से उक्त अश यहाँ अविकल रूप में प्रस्तुत करते है—

'तत्र सर्वप्रकृतिसमुदायोऽष्टाविंशति। ततः सम्यक्त्वे उद्वलिते सप्तविंशतिः। ततोऽपि सम्यग्मिथ्यात्वेउद्वलिते षड्विंशति., अनादिमिथ्यादृष्टेर्वा षड्विंशतिः। अष्टाविंशतिसत्कर्मणोऽनन्तानुबन्धिचतुष्टयक्षये चतुर्विंशतिः। ततोऽपि मिथ्यात्वे क्षपिते त्रयोविंशतिः। ततोऽपि सम्यग्मिथ्यात्वे क्षपिते द्वाविंशतिः। ततः सम्यक्त्वे क्षपिते एकविंशतिः। ततोऽष्टस्वप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानावरणसज्ञेषु कषायेषु क्षीणेषु त्रयोदशः। ततो नपुंसक वेदे क्षपिते द्वादश। ततोऽपि स्त्रीवेदे क्षपिते एकादश। ततः षट्सु नोकषायेषु क्षीणेषु पञ्च। ततोऽपि पुरुषवेदे क्षीणे चतस्रः। ततोऽपि सज्वलनक्रोधे क्षपिते तिस्रः। ततोऽपि संज्वलनमाने क्षपिते द्वे। ततोऽपि सज्वलन मायायां क्षपितायामेका प्रकृतिः सतीति।'[1]

सत्तास्थानों के स्वामी और काल सम्बन्धी दिगम्बर साहित्य का मत

श्वेताम्बर कार्मग्रन्थिक मत के समान ही दिगम्बर कर्मसाहित्य

---

१ सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६३

मे भी मोहनीय कर्म के अट्ठाईस प्रकृतिक आदि पन्द्रह सत्तास्थान माने हैं। उनके स्वामी और काल के बारे मे भी दोनो साहित्य मे अधिकतर समानता है। लेकिन कुछ स्थानो के बारे मे दिगम्बर साहित्य मे भिन्न मत देखने मे आता है। जिसको पाठको की जानकारी के लिए प्रस्तुत किया जा रहा है।

अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान के काल के बारे मे दिगम्बर साहित्य के मत का पूर्व मे उल्लेख किया गया है। शेष स्थानो के बारे मे यहाँ बतलाते हैं।

श्वेताम्बर साहित्य मे सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान का स्वामी मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव को बतलाया है। लेकिन दिगम्बर परम्परा के अनुसार कषायप्राभृत की चूर्णि मे इस स्थान का स्वामी मिथ्यादृष्टि जीव ही बतलाया है—

सत्तावीसाए विहत्तिओ को होदि ? मिच्छाइट्ठी।

पचसग्रह के सप्ततिका सग्रह की गाथा ४५ की टीका मे सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान का काल पल्य के असख्यातवें भाग प्रमाण बतलाया है। लेकिन जयधवला मे सकेत है कि सत्ताईस प्रकृतियो की सत्तावाला भी उपशम सम्यग्दृष्टि हो सकता है। कषायप्राभृत की चूर्णि से भी इसकी पुष्टि होती है। तदनुसार सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य काल एक समय भी बन जाता है। क्योकि सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान के प्राप्त होने के दूसरे समय मे ही जिसने उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त कर लिया, उसके सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान एक समय तक ही देखा जाता है।

श्वेताम्बर साहित्य मे सादि-सान्त छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बताया है। लेकिन कषायप्राभृत की चूर्णि मे उक्त स्थान का जघन्य काल एक समय बताया है—

'छव्वीसविहत्ती केवचिर कालादो ? जहण्णेण एगसमओ।

इसका तात्पर्य यह है कि सम्यक्त्व की उद्वलना में अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर जो त्रिकरण क्रिया का प्रारम्भ कर देता है, और उद्वलना होने के बाद एक समय का अन्तराल देकर जो उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त हो जाता है, उसके छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है।

कर्मग्रन्थ में चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान का उत्कृष्ट काल एक सौ बत्तीस सागर बताया है, जबकि कषायप्राभृत की चूर्णि में उक्त स्थान का उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ बत्तीस सागर बताया है—

'चउवीसविहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वे छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि।'

इसका स्पष्टीकरण जयधवला टीका में किया गया है कि उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त करके जिसने अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना की। अनन्तर छियासठ सागर काल तक वेदक सम्यक्त्व के साथ रहा, फिर अन्तर्मुहूर्त तक सम्यग्मिथ्यादृष्टि रहा। अनन्तर मिथ्यात्व की क्षपणा की। इस प्रकार अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना हो चुकने के समय से लेकर मिथ्यात्व की क्षपणा होने तक के काल का योग साधिक एक सौ बत्तीस सागर होता है।

इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्यकाल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्टकाल साधिक तेतीस सागर दोनों परम्पराओं में समान रूप से माना है। कषायप्राभृत चूर्णि में लिखा है—

'एक्कवीसाए विहत्ती केवचिरं कालादो ? जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीस सागरोवमाणि सादिरेयाणि।'

इस उत्कृष्ट काल का जयधवला में स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि कोई सम्यग्दृष्टि देव या नारक मर कर एक पूर्वकोटि की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ। अनन्तर आठ वर्ष के बाद अन्त-

मुहूर्त में उसने क्षायिक सम्यग्दर्शन को उत्पन्न किया। फिर आयु के अन्त में मर कर वह तेतीस सागर की आयु वाले देवों में उत्पन्न हुआ। इसके बाद तेतीस सागर आयु को पूरा करके एक पूर्वकोटि की आयु वाले मनुष्यों में उत्पन्न हुआ और वहां जीवन भर इक्कीस प्रकृतियों की सत्ता के साथ रहकर जब जीवन में अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहा तब क्षपक श्रेणि पर चढ़कर तेरह आदि सत्तास्थानों को प्राप्त हुआ। उसके आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्त कम दो पूर्वकोटि वर्ष अधिक तेतीस सागर काल तक इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है।

इस प्रकार दिगम्बर साहित्य में साधिक तेतीस सागर प्रमाण का स्पष्टीकरण किया गया है।

श्वेताम्बर साहित्य में बारह प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। जबकि दिगम्बर साहित्य में बारह प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य काल एक समय बताया है। जैसा कि कषायप्राभृत चूर्णि में उल्लेख किया गया है—

णवरि बारसण्ह विहत्ती केवचिरं कालादो? जहण्णेण एगसमओ।

इसकी व्याख्या जयधवला टीका में इस प्रकार की गई है कि नपुंसक वेद के उदय से क्षपक श्रेणि पर चढ़ा हुआ जीव उपान्त्य समय में स्त्रीवेद और नपुंसक वेद के सब सत्कर्म का पुरुषवेद रूप से संक्रमण कर देता है और तदनन्तर एक समय के लिए बारह प्रकृतिक सत्तास्थान वाला हो जाता है, क्योंकि इस समय नपुंसक वेद की उदय स्थिति का विनाश नहीं होता है।

इस प्रकार से कुछ सत्तास्थानों के स्वामी तथा समय के बारे में मतभिन्नता जानना चाहिए। तुलनात्मक अध्ययन करने वालों के लिए यह जिज्ञासा का विषय है।

मोहनीय कर्म के पन्द्रह सत्तास्थानों का गुणस्थान, काल सहित विवरण इस प्रकार है—

सत्ता स्थान	गुणस्थान	जघन्यकाल	उत्कृष्टकाल
२८	१ से ११	अन्तर्मुहूर्त	साधिक १३२ सागर
२७	पहला व तीसरा	पल्य का असं० भाग	पल्य का असंख्यातवां भाग
२६	१	अन्तर्मुहूर्त	देशोन अपार्ध पुद्० परावर्त
२४	३ से ११	अन्तर्मुहूर्त	१३२ सागर
२३	४ से ७	"	अन्तर्मुहूर्त
२२	४ से ७	"	"
२१	४ से ११	"	साधिक ३३ सागर
१३	९ वां	"	अन्तर्मुहूर्त
१२	"	"	"
११	"	"	"
५	"	दो समय कम दो आवली	दो समय कम दो आवली
४	"	अन्तर्मुहूर्त	अन्तर्मुहूर्त
३	"	"	"
२	"	"	"
१	नौवां व दसवां	"	"

इस प्रकार मोहनीय कर्म के पश्चादानुपूर्वी से बन्ध और सत्ता स्थानों तथा पूर्वानुपूर्वी से उदयस्थानों को बतलाने के बाद अब इनके भंग और अवान्तर विकल्पों का निर्देश करते हैं। सबसे पहले बंध-स्थानों का निरूपण करते हैं।

छब्बावीसे चउ इगवीसे सत्तरस तेरसे दो दो।
नववधगे वि दोन्नि उ एक्केक्कमओ पर भगा ॥१४॥

शब्दार्थ—छ—छह, बावीसे—बाईस के बंधस्थान के, चउ—चार, इगवीसे—इक्कीस के बंधस्थान के सत्तरस—सत्रह के बंध स्थान के तेरसे—तेरह के बंधस्थान के, दो दो—दो दो, नवबंधगे—नौ के बंधस्थान के, वि—भी दोन्नि उ—दो विकल्प, एक्केक्क—एक एक अओ—इससे, पर—आगे, भगा—भंग।

गाथार्थ—बाईस प्रकृतिक बंधस्थान के छह, इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान के चार, सत्रह और तेरह प्रकृतिक बंध-स्थान के दो-दो, नौ प्रकृतिक बंधस्थान के भी दो भंग हैं। इसके आगे पाँच प्रकृतिक आदि बंधस्थानों में से प्रत्येक का एक-एक भंग है।

विशेषार्थ—इस गाथा में मोहनीय कर्म के बंधस्थानों में से प्रत्येक स्थान के यथासंभव बनने वाले भंगों की संख्या का निर्देश किया है।

पूर्व में मोहनीय कर्म के बाईस, इक्कीस, सत्रह, तेरह, नौ, पाँच, चार तीन, दो और एक प्रकृतिक इस प्रकार से दस बंधस्थान बतलाये हैं। उनमें से यहाँ प्रत्येक स्थान में होने वाले भंग विकल्पों को बतलाते हुए सबसे प्रथम बाईस प्रकृतिक बंधस्थान के छह भंग बतलाये हैं—छब्बावीसे। अनन्तर क्रमशः इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान के चार भंग, सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान के दो भंग, तेरह प्रकृतिक बंधस्थान

के दो भंग, नौ प्रकृतिक बंधस्थान के दो भंग, पाँच प्रकृतिक बंधस्थान का एक भंग, चार प्रकृतिक बंधस्थान का एक भङ्ग, तीन प्रकृतिक बंधस्थान का एक भंग, दो प्रकृतिक बंधस्थान का एक भंग और एक प्रकृतिक बंधस्थान का एक भंग होता है।[1] जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

बाईस प्रकृतिक बंधस्थान में मिथ्यात्व, सोलह कषाय, तीन वेदों में से कोई एक वेद, हास्य-रति युगल और शोक-अरति युगल, इन दो युगलों में से कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा, इन बाईस प्रकृतियों का ग्रहण होता है। यहाँ छह भंग होते हैं। जो इस प्रकार हैं कि हास्य-रति युगल और शोक-अरति युगल, इन दो युगलों में से किसी एक युगल को मिलाने से बाईस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। अतः ये दो भंग हुए। एक भंग हास्य-रति युगल सहित वाला और दूसरा भंग अरति-शोक युगल सहित वाला। ये दोनों भंग भी तीनों वेदों के विकल्प से प्राप्त होते हैं, अतः दो को तीन से गुणित कर देने पर छह भंग हो जाते हैं।[2]

उक्त बाईस प्रकृतिक बंधस्थान में से मिथ्यात्व को घटा देने पर इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। क्योंकि नपुंसक वेद का बंध मिथ्यात्व के उदयकाल में होता है और सासादन सम्यग्दृष्टि को मिथ्यात्व का उदय नहीं होता है। स्त्रीवेद और पुरुषवेद, इन दो

---

१ छब्बावीसे चदु इगिवीसे दो दो हवंति छट्ठो त्ति।
एक्केक्कमदो भंगो बंधट्ठाणेसु मोहस्स॥
—गो० कर्मकाण्ड, गा० ४६७

२ हासरइअरइसोगाण बंधया आणवं दुहा सव्वे।
वेयविभज्जंता पुण दुगइगवीसा छहा चउहा॥
—पंचसंग्रह सप्ततिका, गा० २०

वेदो मे से कोई एक वेद कहना चाहिए। अतः यहा दो युगलो को दो वेदो से गुणित कर देने पर चार भंग होते हैं।

इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान मे से अनन्तानुबंधी चतुष्क को घटा देने पर सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान होता है। इसके बंधक तीसरे और चौथे गुणस्थानवर्ती जीव हैं। अनन्तानुबंधी कषाय का उदय नही होने से इनको स्त्रीवेद का बंध नही होता है। अतः यहा हास्य-रति युगल और शोक-अरति युगल, इन दो युगलो के विकल्प से दो भंग होते हैं।

तेरह प्रकृतिक बंधस्थान मे भी दो भंग होते हैं। यह बंधस्थान सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान मे से अप्रत्याख्यानावरण कषाय चतुष्क के कम करने से प्राप्त होता है। यहा पुरुषवेद का ही बंध होता है अतः दो युगलो के निमित्त से दो ही भंग प्राप्त होते हैं।

तेरह प्रकृतिक बंधस्थान मे से प्रत्याख्यानावरण चतुष्क के कम करने पर नौ प्रकृतिक बंधस्थान होता है। यह स्थान छठे, सातवें और आठवें—प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण—गुणस्थान मे पाया जाता है। यहाँ इतनी विशेषता है कि अरति और शोक का बंध प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक ही होता है, आगे नही। अतः प्रमत्तसंयत गुणस्थान मे इस स्थान के दो भंग होते हैं, जो पूर्वोक्त ही तथा अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण मे हास्य-रति रूप एक ही भंग पाया जाता है।[1]

पाँच प्रकृतिक बंधस्थान उक्त नौ प्रकृतिक बंधस्थान मे से हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, इन चार प्रकृतियो को कम करने से होता है। यहाँ

---

१ नवबंधके द्वौ भंगौ तौ च प्रमत्त एव, यदि हास्यरत्यौ अप्रमत्तापूर्वकरणयो एक एव भंग हास्यरतियुगलरूप, अरतिशोकयुगलस्य बंधासम्भवात्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका पृ० १६४

एक ही भग होता है। क्योकि इसमे बधने वाली प्रकृतियो के विकल्प नही है। इसी प्रकार बधने वाली प्रकृतियों के विकल्प नही होने से चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक बधस्थानो मे भी एक-एक ही विकल्प होता है—एक्केक्कमओ पर भगा।

इस प्रकार मोहनीय कर्म के दस बधस्थानो के कुल भग ६+४+२+२+२+१+१+१+१+१=२१ होते है।

मोहनीय कर्म के दस बधस्थानो का निर्देश करने के बाद अब आगे की तीन गाथाओ मे इन बंधस्थानो मे से प्रत्येक मे प्राप्त होने वाले उदयस्थानो को बतलाते है।

मोहनीय कर्म के बधस्थानो में उदयस्थान

दस बावीसे नव इक्कवीस सत्ताइ उदयठाणाइं।
छाई नव सत्तरसे तेरे पंचाइ अट्ठेव ॥१५॥
चत्तारिमाइ नवबंधगेसु उक्कोस सत्त उदयंसा।
पंचविहबंधगे पुण उदओ दोण्हं मुणेयव्वो ॥१६॥
इत्तो चउबंधाई इक्केक्कुदया हवंति सव्वे वि।
बंधोवरमे वि तहा उदयाभावे वि वा होज्जा ॥१७॥

शब्दार्थ—**दस**—दस पर्यन्त, **बावीसे**—बाईस प्रकृतिक बधस्थान मे, **नव**—नौ तक, **इक्कवीस**—इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान मे, **सत्ताइ**—सात से लेकर, **उदयठाणाइं**—उदयस्थान, **छाई नव**—छह से नौ तक, **सत्तरसे**—सत्रह प्रकृतिक बधस्थान मे, **तेरे**—तेरह प्रकृतिक बंधस्थान मे, **पंचाइ**—पाच से लेकर, **अट्ठेव**—आठ तक।

चत्तारिमाइ—चार से लेकर, **नवबंधगेसु**—नौ प्रकृतिक बधस्थानो मे, **उक्कोस**—उत्कृष्ट, **सत्त**—सात तक, **उदयसा**—उदयस्थान, **पंचविहबंधगे**—पाँच प्रकृतिक बधस्थान मे, **पुण**—तथा, **उदओ**—उदय, **दोण्हं**—दो प्रकृति का, **मुणेयव्वो**—जानना चाहिए।

इत्तो—इसके बाद चउवधाई—चार आदि प्रकृतिक वधस्थानों में, इक्केक्कुदया—एक-एक प्रकृति का उदय वाला, हवंति—होते हैं, सव्वेवि—सभी, बंधोवरमे—बंध के अभाव में, वि—भी, तहा—उसी प्रकार, उदयाभावे—उदय के अभाव में, वि—भी, वा—विकल्प होज्जा—होते हैं।

गाथार्थ—बाईस प्रकृतिक बंधस्थान में सात से लेकर दस तक, इक्कीस प्रकृतिक बंधस्थान में सात से लेकर नौ तक, सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान में छह से लेकर नौ तक और तेरह प्रकृतिक बंधस्थान में पांच से लेकर आठ तक—

नौ प्रकृतिक बंधस्थान में चार से लेकर उत्कृष्ट सात प्रकृतियों तक के चार उदयस्थान होते हैं तथा पाँच प्रकृतिक बंधस्थान में दो प्रकृतियों का उदय जानना चाहिये।

इसके बाद (पाँच प्रकृतिक बंधस्थान के बाद) चार आदि (४,३,२,१) प्रकृतिक बंधस्थानों में एक प्रकृति का उदय होता है। बंध के अभाव में भी इसी प्रकार एक प्रकृति का उदय होता है। उदय के अभाव में भी मोहनीय की सत्ता विकल्प से होती है।

विशेषार्थ—पूर्व में मोहनीय कर्म के बाईस, इक्कीस आदि प्रकृतिक दस बंधस्थान बतलाये हैं। यहाँ तीन गाथाओं में उक्त स्थानों में से प्रत्येक में कितनी कितनी प्रकृतियों का उदय होता है, इसको स्पष्ट किया है।

सर्वप्रथम बाईस प्रकृतिक बंधस्थान में उदयस्थानों का कथन करते हुए कहा है—सात प्रकृतिक, आठ प्रकृतिक, नौ प्रकृतिक और दस प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान हैं। जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

सात प्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार है कि एक मिथ्यात्व, दूसरी अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि में से कोई एक, तीसरी प्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि में से कोई एक, चौथी संज्वलन क्रोध आदि में से कोई एक, पाँचवी हास्य, छठी रति अथवा हास्य, रति के स्थान पर अरति, शोक और सातवी तीनो वेदो मे से कोई एक वेद, इन सात प्रकृतियों का उदय बाईस प्रकृतियो का बंध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव को नियम से होता है।

यहाँ चौबीस भंग होते हैं। वे इस प्रकार है—क्रोध, मान, माया और लोभ, ये चारो प्रकृतियाँ उदय की अपेक्षा परस्पर विरोधनी होने से इनका उदय एक साथ नही होता है। अत: क्रोधादिक के उदय रहते मानादिक का उदय नही होता किन्तु किसी एक प्रकार के क्रोध का उदय रहते, उससे आगे के दूसरे प्रकार के सभी क्रोधो का उदय अवश्य होता है। जैसे कि अनन्तानुबंधी क्रोध का उदय रहते अप्रत्याख्यानावरण आदि चारो प्रकार के क्रोधो का उदय एक साथ होता है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध के उदय रहते प्रत्याख्यानावरण आदि तीनों प्रकार के क्रोधो का उदय रहता है। प्रत्याख्यानावरण क्रोध के उदय रहते दोनो प्रकार के क्रोधो का उदय एक साथ रहता है और संज्वलन क्रोध का उदय रहते हुए एक ही क्रोध उदय रहता है। इस तरह यहाँ सात प्रकृतिक उदयस्थान मे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि तीनो क्रोधो का उदय होता है। इसी प्रकार अप्रत्यख्यानावरण मान का उदय रहते तीन मान का उदय होता है, अप्रत्याख्यानावरण माया का उदय रहते तीन माया का उदय होता है तथा अप्रत्याख्यानावरण लोभ का उदय रहते तीन लोभ का उदय होता है।

उक्त क्रोध, मान, माया और लोभ, इन चार भंगो का उदय स्त्रीवेद के साथ होता है और यदि स्त्रीवेद के बजाय पुरुषवेद का

उदय हो तो पुरुषवेद के उदय के साथ होता है और यदि नपु सक वेद का उदय है तो उसके साथ इन चार का उदय होता है। इस प्रकार प्रत्येक वेद के उदय के साथ चार-चार भग प्राप्त हो जाते हैं, जो कुल मिलाकर बारह होते हैं। ये बारह भग हास्य और रति के उदय के साथ भी होते हैं और यदि हास्य और रति के स्थान मे शोक और अरति का उदय हुआ तो उनके साथ भी होते ह। इस प्रकार बारह को दो से गुणा करने पर चौबीस भग हो जाते हैं।

पूर्व मे बताई गई चौबीस भगो की गणना इस प्रकार भी की जा सकती है कि हास्य रति युगल के साथ स्त्रीवेद का एक भग तथा शोक-अरति युगल के साथ स्त्रीवेद का एक भग, इस प्रकार स्त्रीवेद के साथ दो भग तथा इसी प्रकार पुरुषवेद और नपुसक वेद के साथ भी दो दो भग होंगे। कुल मिलाकर ये छह भग हुए। ये छहो भग, क्रोध के उदय मे क्रोध के साथ होगे। क्रोध के बजाय मान का उदय होने पर मान के साथ होगे। मान के स्थान पर माया का उदय होने पर माया के साथ भी होगे और माया के स्थान पर लोभ का उदय होने पर लोभ के साथ भी होगे। इस प्रकार से पूर्वोक्त छहो भगो को क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार से गुणित करने पर कुल चौबीस भग हुए। अर्थात क्रोध के छह भग, मान के छह भग, माया के छह भग और लोभ के छह भग। यह एक चौबीसी हुई।

इन सात प्रकृतियो के उदय मे भय, जुगुप्सा और अनन्तानुबधी चतुष्क मे से कोई एक कषाय, इस प्रकार इन तीन प्रकृतियो मे से क्रमश एक-एक प्रकृति के उदय को मिलाने पर आठ प्रकृतिक उदय तीन प्रकार से प्राप्त होता है। सात प्रकृतिक उदय मे भय को मिलाने से पहला आठ प्रकृतियो का उदय, सात प्रकृतिक उदय मे जुगुप्सा को मिलाने से दूसरा आठ प्रकृतियो का उदय और अनन्तानुबधी क्रोधादि

तथा उत्कृष्ट अवाधाकाल चार हजार वर्ष है। अतः बंधावलि के बाद ही अनन्तानुबन्धी का उदय कैसे सम्भव है ?

समाधान—बंध समय से ही अनन्तानुबन्धी की सत्ता हो जाती है और सत्ता के हो जाने पर प्रवर्तमान बन्ध मे पतद्ग्रहता आ जाती है और पतद्ग्रहपने को प्राप्त हो जाने पर शेष समान जातीय प्रकृति दलिकों का संक्रमण होता है जो पतद्ग्रह प्रकृति रूप से परिणत हो जाता है जिसका संक्रमावलि के बाद उदय होता है। अत आवलिका के बाद अनन्तानुबन्धी का उदय होने लगता है, अतः यह कहना विरोध को प्राप्त नही होता है।

उक्त शका समाधान का यह तात्पर्य है कि अनन्तानुबन्धी चतुष्क विसंयोजना प्रकृति है और वैसे तो विसयोजना क्षय ही है, किन्तु विसयोजना और क्षय में यह अन्तर है कि विसयोजना के हो जाने पर कालान्तर मे योग्य सामग्री के मिलने पर विसंयोजित प्रकृति की पुन. सत्ता हो सकती है किन्तु क्षय को प्राप्त प्रकृति की पुनः सत्ता नही होती है। सत्ता दो प्रकार मे होती है—बंध से और संक्रम से, किन्तु बंध और संक्रम मे अन्योन्य सम्बन्ध है। जिस समय जिसका बंध होता है, उस समय उसमे अन्य सजातीय प्रकृति दलिक का संक्रमण होता है। ऐसी प्रकृति को पतद्ग्रह प्रकृति कहते हैं। पतद्ग्रह प्रकृति का अर्थ है आकर पडने वाले कर्मदल को ग्रहण करने वाली प्रकृति। ऐसा नियम है कि संक्रम से प्राप्त हुए कर्म-दल का संक्रमावलि के बाद उदय होता है। जिससे अनन्तानुबन्धी का एक आवली के बाद उदय मानने में कोई आपत्ति नही है। यद्यपि नवीन बंधावलि के बाद अबाधाकाल के भीतर भी अपकर्षण हो सकता है और यदि ऐसी प्रकृति उदय-प्राप्त हुई हो तो उस अपकर्षित कर्मदल का उदय-समय से निरपेक्ष भी हो सकता है, अत नवीन बंधे हुए कर्मदल का

प्रयोग विशेष से अबाधाकाल के भीतर भी उदीरणोदय हो सकता है, इसमे कोई बाधा नही आती है।

पहले जो सात प्रकृतिक उदयस्थान बताया है, उसमे भय और जुगुप्सा के या भय और अनन्तानुबन्धी के अथवा जुगुप्सा और अनन्तानुबन्धी के मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान तीन प्रकार से प्राप्त होता है। इन तीन विकल्पो मे भी पूर्वोक्त क्रम से भगो की एक-एक चौबीसी होती है। इस प्रकार नौ प्रकृतिक उदयस्थान मे भी भगो की तीन चौबीसी जानना चाहिए।

पूर्वोक्त सात प्रकृतिक उदयस्थान मे एक साथ भय, जुगुप्सा और अनन्तानुबन्धी के मिलाने पर दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्वोक्त प्रकार से भगो की एक चौबीसी होती है।

इस प्रकार सात प्रकृतिक उदयस्थान की एक चौबीसी, आठ प्रकृतिक उदयस्थान की तीन, नौ प्रकृतिक उदयस्थान की तीन और दस प्रकृतिक उदयस्थान की एक चौबीसी होती है। कुल मिला कर बाईस प्रकृतिक बधस्थान मे आठ चौबीसी होती हैं—सवसरया द्वाविंशतिबधे अष्टौ चतुर्विंशतय ।

बाईस प्रकृतिक बधस्थान मे उदयस्थानो का निर्देश करने के बाद अब इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान मे उदयस्थान बतलाते हैं कि—'नव इगवीस सत्ताइ उदयठाणाइ'—अर्थात् इक्कीस प्रकृतिक बध स्थान म सात प्रकृतिक, आठ प्रकृतिक और नौ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान हैं। वे इस प्रकार हैं—इनमे अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और सज्वलन प्रकार की क्रोधादि चार कषायो म से कोई एक जाति की चार कषायें, तीन वेदो में से कोई एक वेद और दो युगलो म से कोई एक युगल, इन सात प्रकृतियो का उदय इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान मे नियम से होता है। यहाँ भी पूर्वोक्त

क्रम से भगो की एक चौवीसी प्राप्त होती है। इस सात प्रकृतिक उदयस्थान में भय के या जुगुप्सा के मिला देने पर आठ प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार से प्राप्त होता है। इस प्रकार आठ प्रकृतिक उदयस्थान के दो विकल्प होते है। यहाँ एक विकल्प मे एक चौवीसी और दूसरे विकल्प मे एक चौवीसी, इस प्रकार आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगों की दो चौवीसी होती है। नौ प्रकृतिक उदयस्थान पूर्वोक्त सात प्रकृतिक उदयस्थान मे युगपद भय और जुगुप्सा को मिलाने से प्राप्त होता है। यह एक ही प्रकार का होने मे इसमें भगो की एक चौवीसी प्राप्त होती है।

इस प्रकार इक्कीस प्रकृतिक वंधस्थान मे सात प्रकृतिक उदयस्थान की एक, आठ प्रकृतिक उदयस्थान की दो और नौ प्रकृतिक उदयस्थान की एक, कुल मिलाकर भगो की चार चौवीसी होती है।

यह इक्कीस प्रकृतिक वंधस्थान सासादन सम्यग्दृष्टि जीव के ही होता है और सासादन सम्यग्दृष्टि के दो भेद है—श्रेणिगत और अश्रेणिगत। जो जीव उपशमश्रेणि से गिर कर सासादन गुणस्थान को प्राप्त होता है, उसे श्रेणिगत सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं तथा जो उपशम सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणि चढा ही नही किन्तु अनन्तानुवन्धी के उदय से सासादन भाव को प्राप्त हो गया, वह अश्रेणिगत सासादन सम्यग्दृष्टि कहलाता है। यहाँ जो इक्कीस प्रकृतिक वंधस्थान मे सात, आठ और नौ प्रकृतिक, यह तीन उदयस्थान वतलाये है वे अश्रेणिगत सासादन सम्यग्दृष्टि जीव की अपेक्षा समझना चाहिये।[1]

---

१ अयं चैकविंशतिवंधः सासादने प्राप्यते। सासादनश्च द्विधा, श्रेणिगतोऽश्रेणिगतश्च। तत्राश्रेणिगत सासादनमाश्रित्यामूनि सप्तादीनि उदयस्थानान्यवगन्तव्यानि। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६६

श्रेणिगत सासादन सम्यग्दृष्टि जीव के विषय मे दो कथन पाये जाते हैं। कुछ आचार्यों का मत है कि जिसके अनन्तानुबधी की सत्ता है, ऐसा जीव भी उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है। इन आचार्यों के मत से अनन्तानुबधी की भी उपशमना होती है।[1] जिसकी पुष्टि निम्नलिखित गाथा से होती है—

अणदसणपुसित्थीवेयछक्कं च पुरिसवेयं च।[2]

अर्थात् पहले अनन्तानुबधी कषाय का उपशम करता है। उसके बाद दर्शन मोहनीय का उपशम करता है, फिर क्रमश नपुसक वेद, स्त्रीवेद, छह नोकषाय और पुरुषवेद का उपशम करता है।

ऐसा जीव श्रेणि से गिरकर सासादन भाव को भी प्राप्त होता है, अत इसके भी पूर्वोक्त तीन उदयस्थान होते है।

किन्तु अन्य आचार्यों का मत है कि जिसने अनन्तानुबधी की विसयोजना कर दी, ऐसा जीव ही उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है, अनन्तानुबधी की सत्ता वाला नही। इनके मत से ऐसा जीव उपशमश्रेणि से गिरकर सासादन भाव को प्राप्त नही होता है, क्योंकि उसके अनन्तानुबधी का उदय सभव नही है और सासादन सम्यक्त्व की

---

१ (क) केचिदाहु —अनन्तानुबधिसत्कर्मसहितोऽप्युपशमश्रेणि प्रतिपद्यते तेषा मतेनानन्तानुबधिनामप्युपशमना भवति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका पृ० १६६

(ख) दिगम्बर परम्परा म अनन्तानुबधी की उपशमना वाले मत का षट्खडागम कषायप्राभृत और उसकी टीकाओ म उल्लेख नही मिलता है किन्तु गो० कर्मकाण्ड म इस मत का उल्लेख किया गया है। वहा उपशमश्रेणि मे २८ २४ और २१ प्रकृतिक, तीन सत्तास्थान बतलाये हैं—अडचउरेक्कवीस उवसमसेढिम्मि ॥५११॥

२ आवश्यक नियुक्ति गा० ११६

प्राप्ति तो अनन्तानुबंधी के उदय से होती है, अन्यथा नहीं। कहा भी है—अणंताणुबंधुदयरहियस्स सासणभावो न संभवइ।

अर्थात् अनन्तानुबंधी के उदय के बिना सासादन सम्यक्त्व की प्राप्ति होना संभव नहीं है।

जिज्ञासु प्रश्न करता है कि—

अथोच्यते—यदा मिथ्यात्वं प्रत्यभिमुखो न चाद्यापि मिथ्यात्व प्रतिपद्यते तदानीमनन्तानुबन्ध्युदयरहितोऽपि सासादनस्तेषां मतेन भविष्यतीति किमत्रायुक्तम्? तदयुक्तम्, एवं सति तस्य षडादीनि नवपर्यन्तानि चत्वार्युदयस्थानानि भवेयुः, न च भवन्ति, सूत्रे प्रतिषेधात्, तैरप्यनभ्युपगमाच्च, तस्मादनन्तानुबन्ध्युदयरहितः सासादनो न भवतीत्यवश्यं प्रत्येयम्।[1]

प्रश्न—जिस समय कोई एक जीव मिथ्यात्व के अभिमुख तो होता है किन्तु मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं होता है, उस समय उन आचार्यों के मतानुसार उसके अनन्तानुबंधी के उदय के बिना भी सासादन गुणस्थान की प्राप्ति हो जायेगी। ऐसा मान लिया जाना उचित है।

समाधान—यह मानना ठीक नहीं है, क्योंकि ऐसा मानने पर उसके छह प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, आठ प्रकृतिक और नौ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान प्राप्त होते हैं। किन्तु आगम में ऐसा बताया नहीं है और वे आचार्य भी ऐसा नहीं मानते हैं। इससे सिद्ध है कि अनन्तानुबंधी के उदय के बिना सासादन सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है।

"अनन्तानुबंधी की विसयोजना करके जो जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ता है, वह गिर कर सासादन गुणस्थान को प्राप्त नहीं होता।" यह कथन आचार्य मलयगिरि की टीका के अनुसार किया गया है, तथापि कर्मप्रकृति आदि के निम्न प्रमाणों से ऐसा ज्ञात होता है कि ऐसा जीव भी सासादन गुणस्थान को प्राप्त होता है। जैसा कि कर्मप्रकृति की चूर्णि में लिखा है—

चरित्तुवसमणं काउंकामो जति वेयगसम्मद्दिट्ठी तो पुव्वं अणंताणुबंधिणो

---

१ सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६६

नियमा विसजोएति । एएण कारणेण विरयाण अणताणुबधिविसजोयणा भन्नति ।[1]

अर्थात् जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव चारित्र मोहनीय की उपशमना करता है, वह नियम से अनन्तानुबधी चतुष्क की विसयोजना करता है और इसी कारण से विरत जीवो के अनन्तानुबधी की विसयोजना कही गई है। आगे उसी के मूल मे लिखा है—

आसाण वा वि गच्छेज्जा ।[2]

अर्थात्—ऐसा जीव उपशमश्रेणि से उतर कर सासादन गुणस्थान को भी प्राप्त होता है। उक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि कर्मप्रकृति कर्त्ता का यही मत रहा है कि अनन्तानुबधी की विसयोजना किये बिना उपशमश्रेणि पर आरोहण करना सभव नही है और वहाँ से उतरने वाला जीव सासादन गुणस्थान को भी प्राप्त करता है। पचसग्रह के उपशमना प्रकरण से भी कर्मप्रकृति के मत की पुष्टि होती है। लेकिन उसके सक्रमप्रकरण मे इसका समर्थन नही होता है। वहाँ सासादन गुणस्थान मे २१ मे २५ का ही सक्रमण बतलाया है।[3]

सग्रह प्रकृति के बधस्थान के रहते—'छाई नव सत्तरसे'—छह

१ कर्मप्रकृति चूर्णि उपशम गाथा ३०

२ कर्मप्रकृति उपशम गा० ६२

३ दिगम्बर सम्प्रदाय मे षट्खडागम और कषायप्राभृत की परम्परायें है। षट्खडागम की परम्परा के अनुसार उपशमश्रेणि से च्युत हुआ जीव सासादन गुणस्थान को प्राप्त नहीं होता है। वीरसेन स्वामी ने धवला टीका मे भगवान पुष्पदन्त भूतबलि के उपदेश का इसी रूप से उल्लेख किया है— भूदबलि भयवतस्सुवएसेण उवसमसेढीदो ओदिण्णो ण सासणत्त पडिवज्जदि।
—जीव० चू० पृ० ३३१

प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, आठ प्रकृतिक और नौ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं।

सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान तीसरे मिश्र और चौथे अविरत सम्यक्दृष्टि इन दो गुणस्थानों मे होता है। उनमे से मिश्र गुणस्थान मे सात प्रकृतिक, आठ प्रकृतिक, नौ प्रकृतिक, ये तीन उदयस्थान होते हैं।[1]

सात प्रकृतिक उदयस्थान मे अनन्तानुबंधी को छोडकर अप्रत्याख्यानावरण आदि तीन प्रकारो के क्रोधादि कषाय चतुष्को मे से कोई एक क्रोधादि, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल और सम्यग्मिथ्यात्व, इन सात प्रकृतियों का नियम से उदय रहता है।[2] यहाँ भी पहले के समान भंगो की एक चौबीसी प्राप्त होती है। इस सात प्रकृतिक उदयस्थान में भय या जुगुप्सा के मिलाने से आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह स्थान दो प्रकार

किन्तु कषायप्राभृत की परम्परा के अनुसार जो जीव उपशमश्रेणि पर चढा है, वह उससे च्युत होकर सासादन गुणस्थान को भी प्राप्त हो सकता है। तथापि कषायप्राभृत की चूर्णि मे अनन्तानुबंधी उपशमना प्रकृति है, इसका निषेध किया गया है और साथ मे यह भी लिखा है कि वेदक सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबंधी चतुष्क की विसयोजना किये बिना कषायो को उपशमाता नही है। मूल कषायप्राभृत मे भी इस मत की पुष्टि होती है।

१ सप्तदशबन्धका हि द्वये सम्यग्मिथ्यादृष्टयोऽविरतसम्यग्दृष्टयश्च। तत्र सम्यग्मिथ्यादृष्टीना त्रीणि उदयस्थानानि तद्यथा—सप्त, अष्ट, नव।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६६

२ तत्रानन्तानुबन्धिवर्जा: त्रयोऽन्यतमे क्रोधादय; त्रयाणा वेदानामन्यतमो वेद:, द्वयोर्युगलयोरन्यतरद् युगलम्, सम्यग्मिथ्यात्वं चेति सप्ताना प्रकृतीनामुदय सम्यग्मिथ्यादृष्टिपु ध्रुव।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६६

से प्राप्त होता है अत यहा दो चौबीसी प्राप्त होती हैं। उक्त सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भय और जुगुप्सा को युगपद् मिलाने से नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा विकल्प न होने से एक चौबीसी होती है।

इस प्रकार मिश्र गुणस्थान म सत्रह प्रकृतिक बधस्थान के रहते सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की एक चौबीसी, आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की दो चौबीसी और नौ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की एक चौबीसी, कुल मिलाकर चार चौबीसी प्राप्त होती हैं।

मिश्र गुणस्थान म सत्रह प्रकृतिक बध मे उदयस्थानो के विकल्प बतलाने के बाद अब चौथे गुणस्थान मे उदयस्थान बतलाते ह। चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे सत्रह प्रकृतिक बध होते हुए छह प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, आठ प्रकृतिक और नौ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। वे इस प्रकार जानना चाहिए कि—

अनन्तानुबधी को छोडकर शेष तीन कषाय प्रकारो के क्रोधादि चतुष्क मे से कोई एक कषाय, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल, इन छह प्रकृतियो का अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे निश्चित रूप से उदय होने से छह प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसमे भगो की एक चौबीसी होती है।

इस छह प्रकृतिक उदयस्थान म भय या जुगुप्सा या सम्यक्त्व मोहनीय इन तीन प्रकृतियो मे से किसी एक प्रकृति के मिलाने पर सात प्रकृतिक उदयस्थान तीन प्रकार से प्राप्त होता है। यहाँ एक-एक भेद मे एक-एक चौबीसी होती है, अत सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की तीन चौबीसी प्राप्त होती हैं।

आठ प्रकृतिक उदयस्थान पूर्वोक्त छह प्रकृतिक उदयस्थान म भय और जुगुप्सा अथवा भय और सम्यक्त्वमोहनीय अथवा जुगुप्सा

और सम्यक्त्वमोहनीय इन दो प्रकृतियो के मिलाने से प्राप्त होता है। इस स्थान के तीन प्रकार से प्राप्त होने के कारण प्रत्येक भेद मे भगो की एक-एक चौवीसी होती है। जिससे आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की तीन चौवीसी हुई।

उक्त छह प्रकृतिक उदयस्थान में भय, जगुप्सा और सम्यक्त्व-मोहनीय, इन तीनो प्रकृतियों को एक साथ मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस स्थान मे विकल्प न होने से भगो की एक चौवीसी वनती है।

इस प्रकार चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे सत्रह प्रकृतिक वंधस्थान मे छह प्रकृतिक उदयस्थान की भंगो की एक चौवीसी, सात प्रकृतिक उदयस्थान की भगो की तीन चौवीसी, आठ प्रकृतिक उदय-स्थान की भगो की तीन चौवीसी और नौ प्रकृतिक उदयस्थान की भगो की एक चौवीसी, इस प्रकार कुल मिलाकर भगो की आठ चौवीसी प्राप्त हुई। जिसमे से चार चौवीसी सम्यक्त्वमोहनीय के उदय विना की होती हैं और चार चौवीसी सम्यक्त्वमोहनीय के उदय सहित की होती हैं। इनमे से जो सम्यक्त्वमोहनीय के उदय विना की होती है, वे उपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवो के जानना चाहिये और जो सम्यक्त्वमोहनीय के उदय सहित की होती है, वे वेदक सम्यग्दृष्टि जीवों के जानना चाहिये।

अव तेरह प्रकृतिक वंधस्थान के उदयस्थानो के विकल्पो को वतलाते है कि 'तेरे पंचाइ अट्ठेव'—तेरह प्रकृतिक वधस्थान के रहते पाँच प्रकृतिक, छह प्रकृतिक, सात प्रकृतिक और आठ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते है। उनमे से पहला पाँच प्रकृतिक उदयस्थान इस प्रकार होता है कि प्रत्याख्यानावरण, सज्वलन प्रकारो के क्रोधादि कपाय चतुष्क मे से कोई एक-एक कपाय, तीन वेदों मे से कोई एक

वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल, इन पाच प्रकृतियो का सदैव उदय रहता है। यह स्थान पाँचवें गुणस्थान मे होता है। इसमे भगो की एक चौबीसी होती है। पांच प्रकृतिक उदयस्थान मे भय, जुगुप्सा व सम्यक्त्व मोहनीय, इन तीन प्रकृतियो मे से कोई एक प्रकृति को मिलाने से छह प्रकृतिक उदयस्थान प्राप्त होता है। तीन प्रकार से इस स्थान के होने से तीन चौबीसी होती हैं। अनन्तर पांच प्रकृतिक उदयस्थान मे भय और जुगुप्सा या भय और सम्यक्त्वमोहनीय या जुगुप्सा और सम्यक्त्वमोहनीय, इन दो प्रकृतियो को मिलाने पर सात प्रकृतिक उदयस्थान प्राप्त होता है। इस उदयस्थान को तीन प्रकार से प्राप्त होने के कारण तीन चौबीसी प्राप्त हो जाती हैं। आठ प्रकृतिक उदयस्थान पांच प्रकृतिक उदयस्थान के साथ भय, जुगुप्सा और सम्यक्त्वमोहनीय को युगपद मिलाने से होता है। इस स्थान मे विकल्प न होने से यहाँ भगो की एक चौबीसी होती है।

इस प्रकार पांचवें गुणस्थान मे तेरह प्रकृतिक बधस्थान के रहते उदयस्थानो की अपेक्षा एक, तीन, तीन, एक, कुल मिलाकर भगो की आठ चौबीसी होती हैं। जिनमे चार चौबीसी उपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवो तथा चार चौबीसी वेदक सम्यग्दृष्टि जीवो के होती हैं। वेदक सम्यग्दृष्टि के सम्यक्त्वमोहनीय के उदय वाली चार चौबीसी होती हैं।

अभी तक बाईस, इक्कीस, सत्रह और तेरह प्रकृतिक बधस्थानो मे उदयस्थानो का निर्देश किया है। अब आगे नौ प्रकृतिक आदि बधस्थानो मे उदयस्थानो का स्पष्टीकरण करते हैं।

'चत्तारिमाइ नवबंधगेसु उक्कोस सत्त उदयंसा' अर्थात् नौ प्रकृतिक बधस्थान मे उदयस्थान चार से प्रारम्भ होकर सात तक होते हैं। यानि नौ प्रकृतिक बधस्थान मे चार प्रकृतिक, पांच प्रकृतिक, छह प्रकृ-

तिक और सात प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान है। यह बधस्थान छठे, सातवे और आठवे गुणस्थानो मे होता है।

चार प्रकृतिक उदयस्थान मे ग्रहण की गई प्रकृतियाँ इस प्रकार है कि सज्वलन कपाय चतुष्क मे से कोई एक कपाय, तीन वेदो में से कोई एक वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल, इन चार प्रकृतियो का उदय क्षायिक सम्यग्दृष्टियो, औपशमिक सम्यग्दृष्टियो को छठे आदि गुणस्थानो मे नियम से होता है। विकल्प नही होने से इसमें एक चौवीसी होती है। इसमे भय, जुगुप्सा, सम्यक्त्वमोहनीय इन तीन प्रकृतियो मे से किसी एक प्रकृति को क्रम से मिलाने पर पॉच प्रकृतिक उदयस्थान तीन प्रकार से प्राप्त होता है। इसमे तीन विकल्प हैं और एक विकल्प की भगो की एक चौवीसी होने से भगों की तीन चौवीसी प्राप्त होती है। पूर्वोक्त चार प्रकृतिक उदयस्थान मे भय और जुगुप्सा, भय और सम्यक्त्वमोहनीय या जुगुप्सा और सम्यक्त्वमोहनीय इन दो-दो प्रकृतियो को क्रम से मिलाने पर छह प्रकृतिक उदयस्थान तीन प्रकार से प्राप्त होता है और तीन विकल्प होने से एक-एक भेद में भगो की एक-एक चौवीसी प्राप्त होती है, जिससे छह प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की कुल तीन चौवीसी प्राप्त हुई। फिर चार प्रकृतिक उदयस्थान मे भय, जुगुप्सा और सम्यक्त्वमोहनीय इन तीनों को एक साथ मिलाने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह सात प्रकृतिक उदयस्थान एक ही प्रकार का है, अत· यहा भगो की एक चौवीसी प्राप्त होती है।

इस प्रकार नौ प्रकृतिक वंधस्थान मे उदयस्थानो की अपेक्षा चार प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की एक चौवीसी, पॉच प्रकृतिक उदयस्थानो मे भगों की तीन चौवीसी, छह प्रकृतिक उदयस्थानों मे भंगो की तीन चौवीसी और सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की एक चौवीसी होने से कुल मिलाकर आठ चौवीसी प्राप्त होती है। इनमे से चार

चौबीसी उपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवो के और चार चौबीसी वेदक सम्यग्दृष्टि जीवो के होती हैं।

पाच प्रकृतिक बधस्थान मे सज्वलन क्रोध, मान, माया और लोभ इनमे से कोई एक तथा तीन वेदो मे से कोई एक वेद, इस प्रकार दो प्रकृतियो का एक उदयस्थान होता है—'पचविहबधगे पुण उदओ दोण्ह।' इस स्थान मे चारो कषायो को तीनो वेदो से गुणित करने पर बारह भग होते है। ये बारह भग नौवें गुणस्थान के पाँच भागो मे से पहले भाग मे होते है।

पाच प्रकृतिक बधस्थान के बाद के जो चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक बधस्थान हैं, उनमे एक एक प्रकृति वाला उदयस्थान होता है। अर्थात उन उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे एक एक प्रकृति का उदय होता है—'इत्तो चउबधाई इक्केक्कुदया हवति सव्वे वि।' जिसका स्पष्टीकरण नीचे करते हैं।

पाँच प्रकृतिक बधस्थान मे से पुरुषवेद का बधविच्छेद और उदय विच्छेद एक साथ होता है, अत चार प्रकृतिक बध के समय चार सज्वलनो मे से किसी एक प्रकृति का उदय होता है। इस प्रकार यहाँ चार भग प्राप्त होते हैं। क्योकि कोई जीव सज्वलन क्रोध के उदय से श्रेणि आरोहण करते हैं, कोई सज्वलन मान के उदय से, कोई सज्वलन माया के उदय से और कोई सज्वलन लोभ के उदय से श्रेणि चढते हैं। इस प्रकार चार भग होते हैं।

यहाँ पर कितने ही आचार्य यह मानते हैं कि चार प्रकृतिक बध के सक्रम के समय तीन वेदो मे से किसी एक वेद का उदय होता है। अत उनके मत से चार प्रकृतिक बध के प्रथम काल मे दो प्रकृतियो का उदय होता है और इस प्रकार चार कषायो को तीन वेदो से गुणित

करने पर बारह भंग होते हैं।[1] इसी बात की पुष्टि पचसंग्रह की मूल टीका मे भी की गई है—

"चतुर्विधवन्धकस्यात्याद्यविभागे त्रयाणां वेदानामन्यतमस्य वेदस्योदयं केचिदिच्छन्ति, अतश्चतुर्विधवंधकस्यापि द्वादश द्विकोदयान् जानीहि।

अर्थात्—कितने ही आचार्य चार प्रकृतियों का वन्ध करने वाले जीवों के पहले भाग मे तीन वेदों में से किसी एक वेद का उदय मानते है, अत· चार प्रकृतियो का वन्ध करने वाले जीव के भी दो प्रकृतियों के उदय से वारह भग जानना चाहिए।

इस प्रकार उन आचार्यों के मत से दो प्रकृतियों के उदय मे चौवीस भग हुए। वारह भग तो पाँच प्रकृतिक वन्धस्थान के समय के और वारह भग चार प्रकृतिक वन्धस्थान के समय के, इस प्रकार चौवीस भग हुए।

सज्वलन क्रोध के वन्धविच्छेद हो जाने पर तीन प्रकृतिक वन्ध और एक प्रकृतिक उदय होता है। यहाँ तीन भग होते है। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ सज्वलन क्रोध को छोड़कर शेप तीन प्रकृतियो मे से किसी एक प्रकृति का उदय कहना चाहिए, क्योंकि सज्वलन क्रोध के उदय मे सज्वलन क्रोध का वन्ध अवश्य होता है। कहा भी है—जे वेयइ ते वंधई—जीव जिसका वेदन करता है, उसका वन्ध अवश्य करता है।

इसलिए जव सज्वलन क्रोध का वन्धविच्छेद हो गया तो उसका उदयविच्छेद भी हो जाता है। इसलिए तीन प्रकृतिक वन्ध के समय

---

१ इह केचिच्चतुर्विधवधसंक्रमकाले त्रयाणां वेदानामन्यतमस्य वेदस्योदयमिच्छन्ति ततस्तन्मतेन चतुर्विधवधकस्यापि प्रथमकाले द्वादश द्विकोदयभंगा लभ्यन्ते।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६८

सज्वलन मान आदि तीनों मे से किसी एक प्रकृति का उदय होता है, ऐसा कहना चाहिए।

सज्वलन मान के बन्धविच्छेद हो जाने पर दो प्रकृतिक बन्ध और एक प्रकृतिक उदय होता है। किन्तु वह उदय सज्वलन माया और लोभ मे से किसी एक का होता है, अत यहाँ दो भग प्राप्त होते है। सज्वलन माया के बन्धविच्छेद हो जाने पर एक सज्वलन लोभ का बन्ध होता है और उसी का उदय। यह एक प्रकृतिक बन्ध और उदयस्थान है। अत यहाँ उसमे एक भग होता है।

यद्यपि चार प्रकृतिक बन्धस्थान आदि मे सज्वलन क्रोध आदि का उदय होता है अत भगो मे कोई विशेषता उत्पन्न नही होती है, फिर भी बन्धस्थाना के भेद से उनमे भेद मानकर पृथक पृथक कथन किया गया है।

इसी प्रकार से बन्ध के अभाव मे भी सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे मोहनीय कर्म की एक प्रकृति का उदय समझना चाहिये—'बधोवरमे वि तहा' इसलिए एक भग यह हुआ। इस प्रकार चार प्रकृतिक बन्धस्थान आदि मे कुल भग ४+३+२+१+१=११ हुए।

यद्यपि सूक्ष्मसपराय गुणस्थान के अन्त मे मोहनीय का उदय विच्छेद हो जाने पर भी उपशान्तमोह गुणस्थान मे उसका सत्त्व पाया जाता है। यहाँ बन्धस्थान और उदयस्थानो के परस्पर सवेध का विचार किया जा रहा है जिसमे गाथा म सत्तास्थान के उल्लेख की आवश्यकता नही थी, फिर भी प्रसगवश यहाँ उसका भी सकेत किया गया है—'सतसाइ जि जा सजला'—मोहनीय कर्म की सत्ता विरल्स म रहती है।

अब आगे की गाथा म पाच प्रकार प्रकृतिक उदयस्थानो म कितने भग प्राप्त है उनका निर्देश करते है।

एक्कग छक्केक्कारस दस सत्त चउक्क एक्कगा चेव ।
एए चउवीसगया चउवीस दुगेक्कमिक्कारा ॥१८॥

शब्दार्थ—एक्कग—एक, छक्केक्कारस—छह, ग्यारह, दस—दस, सत्त—सात, चउक्क—चार, एक्कगा—एक, चेव—निश्चय से, एए—ये भग, चउवीसगया—चौवीस की संख्या वाले होते है, चउवीस—चौवीस, दुग—दो के उदय होने पर, इक्कमिक्कारा—एक के उदय मे ग्यारह भग ।

गाथार्थ—दस प्रकृतिक आदि उदयस्थानो में क्रम से एक, छह, ग्यारह, दस, सात, चार और एक, इतने चौवीस विकल्प रूप भग होते है तथा दो प्रकृतिक उदयस्थान में चौवीस और एक प्रकृतिक उदयस्थान मे ग्यारह भग होते हैं ।

विशेषार्थ—गाथा मे दस प्रकृतिक आदि प्रत्येक उदयस्थानों मे चौवीस विकल्प रूप भगों की संख्या वतलाई है । यद्यपि पहले दस प्रकृतिक आदि उदयस्थानो मे कहाँ कितनी भंगों की चौवीसी होती है, वतला आये है, लेकिन यहाँ उनकी कुल (सम्पूर्ण) सख्या इस कारण वतलाई है कि जिससे यह ज्ञात हो जाता है कि मोहनीय कर्म के सव उदयस्थानो में सव भगों की चौवीसी कितनी हैं और फुटकर भंग कितने होते है ।

गाथा मे वताई गई भगो की चौवीसी की संख्या का उदयस्थानो के साथ यथासख्य समायोजन करना चाहिये । जैसे दस के उदय में एक चौवीसी, नौ के उदय में छह चौवीसी आदि । इसका स्पष्टीकरण नीचे करते है ।

दस प्रकृतिक उदयस्थान मे भंगो की एक चौवीसी होती है—'एक्कग' । इसका कारण यह है कि दस प्रकृतिक उदयस्थान मे प्रकृति-विकल्प नहीं होते है । इसीलिये एक चौवीसी वतलाई है ।

नौ प्रकृतिक उदयस्थान मे 'छक्क'—भगो की कुल छह चौबीसी होती हैं। वे इस प्रकार हैं—बाईस प्रकृतिक बधस्थान मे जो नौ प्रकृतिक उदयस्थान है, उसकी तीन चौबीसी होती हैं। इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान के समय जो नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसकी एक चौबीसी, मिश्र गुणस्थान मे सत्रह प्रकृतिक बधस्थान के समय जो नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भगो की एक चौबीसी और चौथे गुणस्थान मे सत्रह प्रकृतिक बध के समय जो नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भगो की एक चौबीसी। इस प्रकार नौ प्रकृतिक उदयस्थान के भगो की कुल छह चौबीसी हुईं।

आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की ग्यारह चौबीसी होती हैं—'एक्कारस'। वे इस प्रकार हैं—बाईस प्रकृतिक बधस्थान के समय जो आठ प्रकृतिक उदयस्थान होते हैं उसके भगो की तीन चौबीसी, इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान मे जो आठ प्रकृतिक उदयस्थान हैं उसके भगो की दो चौबीसी, मिश्र गुणस्थान मे सत्रह प्रकृतिक बधस्थान के समय जो आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है उसके भगो की दो चौबीसी, चौथे गुणस्थान मे जो सत्रह प्रकृतिक बधस्थान है, उसमे आठ प्रकृतिक उदयस्थान के भगो की कुल तीन चौबीसी और पाचवें गुणस्थान मे तेरह प्रकृतिक बधस्थान के समय आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की एक चौबीसी। इस प्रकार आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की कुल ग्यारह चौबीसी हुई।

सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की कुल दस चौबीसी होती हैं। वे इस प्रकार हैं—बाईस प्रकृतिक बधस्थान के समय जो सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है उसकी एक चौबीसी। इक्कीस प्रकृतिक बधस्थान के समय जो सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है उसके भगो की एक चौबीसी, मिश्र गुणस्थान मे सत्रह प्रकृतिक बधस्थान के समय होने वाले सात प्रकृतिक उदयस्थान के भगो की एक चौबीसी, चौथे गुण-

स्थान में जो सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान है, उसके सात प्रकृतिक उदयस्थान के भंगो की तीन चौबीसी, तेरह प्रकृतिक बंधस्थान के समय जो सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भंगो की तीन चौबीसी और नौ प्रकृतिक बंधस्थान के समय जो सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भगो की एक चौबीसी होती है। इस प्रकार सात प्रकृतिक उदयस्थान में भंगों की कुल दस चौबीसी होती है।

छह प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की कुल सात चौबीसी इस प्रकार होती है—अविरत सम्यग्दृष्टि के सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान के समय जो छह प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भगो की एक चौबीसी, तेरह प्रकृतिक और नौ प्रकृतिक बंधस्थान मे जो छह प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भगो की तीन-तीन चौबीसी होती है। इस प्रकार छह प्रकृतिक उदयस्थान के भंगो की कुल सात चौबीसी हुईं।

पाच प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की कुल चार चौबीसी होती है। वे इस प्रकार है—तेरह प्रकृतिक बंधस्थान मे जो पाँच प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उसके भंगो की एक चौबीसी और नौ प्रकृतिक बंधस्थान मे जो पांच प्रकृतिक उदयस्थान है, उसके भङ्गों की कुल तीन चौबीसी होती हैं। इस प्रकार पांच प्रकृतिक उदयस्थान मे भङ्गो की कुल चार चौबीसी होती है।

नौ प्रकृतिक बंधस्थान के समय चार प्रकृतिक उदय के भङ्गो की एक चौबीसी होती है।

इस प्रकार दस से लेकर चार पर्यन्त उदयस्थानो के भगो की कुल संख्या १+६+११+१०+७+४+१=४० चौबीसी होती है।

पाँच प्रकृतिक बंध के समय दो प्रकृतिक उदय के बारह भंग होते हैं और चार प्रकृतिक बंध के समय भी दो प्रकृतिक उदय संभव है, ऐसा कुछ आचार्यों का मत है, अतः इस प्रकार दो प्रकृतिक उदयस्थान के बारह भंग हुए। जिससे दो प्रकृतिक उदयस्थान के भंगो की एक

चौबीसी होती है तथा चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक बंधस्थान के तथा अबन्ध के समय एक प्रकृतिक उदयस्थान के क्रमश चार, तीन, दो, एक और एक भग होते हैं। इनका जोड ग्यारह है। अत एक प्रकृतिक उदयस्थान के कुल ग्यारह भग होते हैं।

इस प्रकार से गाथा मे मोहनीय कर्म के सब उदयस्थानो मे भगो की चौबीसी और फुटकर भगो को स्पष्ट किया गया है।

सप्ततिका नामक षष्ठ कर्मग्रन्थ के टबे मे इस गाथा का चौथा चरण दो प्रकार से निर्दिष्ट किया गया है। स्वमत से 'बार दुगिक्कमि इक्कारा' और मतान्तर से 'चउवीस दुगिक्कमिक्कारा' निर्दिष्ट किया है। प्रथम पाठ के अनुसार स्वमत से दो प्रकृतिक उदयस्थान मे बारह भग और दूसरे पाठ के अनुसार मतान्तर से दो प्रकृतिक उदयस्थान मे चौबीस भग प्राप्त होते हैं। आचार्य मलयगिरि ने अपनी टीका में इसी अभिप्राय की पुष्टि इस प्रकार की है—

"द्विकोदये चतुर्विंशतिरेका भगकानाम, एतच्च मतान्तरेणोक्तम अन्यथा स्वमते द्वादशैव भगा वेदितव्या ।"

अर्थात् दो प्रकृतिक उदयस्थान मे चौबीस भग होते हैं। सो यह कथन अन्य आचार्यों के अभिप्रायानुसार किया गया है। स्वमत से तो दो प्रकृतिक उदयस्थान मे बारह ही भग होते हैं।

यहाँ गाथा १६ मे पाँच प्रकृतिक बंधस्थान के समय दो प्रकृतिक उदयस्थान और गाथा १७ मे चार प्रकृतिक बंधस्थान के समय एक प्रकृतिक उदयस्थान बतलाया है। इसमे जो स्वमत से बारह और मतान्तर मे चौबीस भगो का निर्देश किया है, उसकी पुष्टि होती है। पचसग्रह सप्ततिका प्रकरण और गो० कर्मकाड मे भी इन मतभेदों का निर्देश किया गया है।

बंधस्थान उदयस्थानो के सवेध भगो का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

शब्दार्थ—नवपचाणउइसए—नौ सौ पचानवै उदयविगप्पेहिं—उदयविकल्पों से, मोहिया—मोहित हुए जीवा—जीव, अउणत्तरिएगुत्तरि—उनहत्तर सौ इकहत्तर, पयविंदसएहिं—पदवृन्दों सहित, विन्नेया—जानना चाहिये ।

गाथार्थ—समस्त ससारी जीवों को नौ सौ पचानवै उदयविकल्पों तथा उनहत्तर सौ इकहत्तर पदवृन्दों से मोहित जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—पूर्व मे मोहनीय कर्म के उदयस्थानों के भंगों और उन उदयस्थानो के भंगों की कहाँ कितनी चौबीसी होती हैं, यह बतलाया गया है । अब इस गाथा मे उनकी कुल सख्या एव उनके पदवृन्दों को स्पष्ट किया जा रहा है ।

प्रत्येक चौबीसी मे चौबीस भंग होते हैं और पहले जो उदयस्थानों की चौबीसी बतलाई हैं, उनकी कुल सख्या इकतालीस है । अत इकतालीस को चौबीस मे गुणित करने पर कुल सख्या नौ-सौ चौरासी प्राप्त होती है—४१ × २४ = ९८४ । इस सख्या मे एक प्रकृतिक उदय स्थान के भंग सम्मिलित नही हैं । वे भंग ग्यारह हैं । अत उन ग्यारह भंगों को मिलाने पर भंगों की कुल सख्या नौ सौ पचानवैं होती है । इन भंगों में से किसी-न-किसी एक भंग का उदय दसवें गुणस्थान तक के जीवों के अवश्य होता है । यहाँ दसवें सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक के जीवों को ही ग्रहण करने का कारण यह है कि मोहनीय कर्म का उदय वहीं तक पाया जाता है । यद्यपि ग्यारहवें उपशान्तमोह गुणस्थानवर्ती जीव का जब स्व-स्थान से पतन होता है तब उसको भी मोहनीय कर्म का उदय हो जाता है, लेकिन कम-से-कम एक समय और अधिक-से-अधिक अन्तर्मुहूर्त के लिये मोहनीय कर्म का उदय न रहने से उसका ग्रहण नही करके दसवें गुणस्थान तक के जीवों का

उक्त नौसौ पंचानवै भगों में से यथासंभव किसी न किसी एक भग से मोहित होना कहा गया है।

मोहनीयकर्म की मिथ्यात्व, अनन्तानुवन्धी क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध आदि प्रत्येक प्रकृति को पद कहते है और उनके समुदाय का नाम पदवृन्द है। इसी का दूसरा नाम प्रकृतिविकल्प भी है। अर्थात् दस प्रकृतिक आदि उदयस्थानों में जितनी प्रकृतियो का ग्रहण किया गया है, वे सव पद हैं और उनके भेद से जितने भग होगे, वे सव पदवृन्द या प्रकृतिविकल्प कहलाते है। यहाँ उनके कुल भेद ६९७१ वतलाये है। जिसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

दस प्रकृतिक उदयस्थान एक है, अतः उसकी दस प्रकृतियाँ हुईं। नौ प्रकृतिक उदयस्थान छह हैं अतः उनकी ९×६=५४ प्रकृतियाँ हुईं। आठ प्रकृतिक उदयस्थान ग्यारह हैं अत. उनकी अठासी प्रकृतियाँ हुईं। सात प्रकृतिक उदयस्थान दस हैं अतः उनकी सत्तर प्रकृतियाँ हुईं। छह प्रकृतिक उदयस्थान सात है अतः उनकी वयालीस प्रकृतियाँ हुईं। पांच प्रकृतिक उदयस्थान चार है अतः उनकी वीस प्रकृतियाँ हुईं। चार प्रकृतिक उदयस्थान के एक होने से उसकी चार प्रकृतियाँ हुईं और दो प्रकृतिक उदयस्थान एक है अत· उसकी दो प्रकृतियाँ हुईं। इन सव प्रकृतियो को मिलाने पर १०+५४+८८+७०+४२+२०+४+२=कुल जोड २९० होता है।

उक्त २९० प्रकृतियो मे से प्रत्येक मे चौवीस-चौवीस भग प्राप्त होते हैं अतः २९० को २४ से गुणित करने पर कुल ६९६० होते है। इस सख्या मे एक प्रकृतिक उदयस्थान के ग्यारह भंग सम्मिलित नही हैं। अत· उन ग्यारह भगों के मिलाने पर कुल सख्या ६९७१ हो जाती है। यहाँ यह विशेप जानना चाहिये कि पहले जो मतान्तर से चार

प्रकृतिक बंध के संक्रमकाल के समय दो प्रकृतिक उदयस्थान में बारह भंग बतलाये थे, उनको सम्मिलित करके यह उदयस्थानों की संख्या और पदसंख्या बताई है। अर्थात् उदयस्थानों में से मतान्तर वाले बारह भंग कम कर दिये जायें तो ९८३ उदयविकल्प होते हैं और द्विप्रकृतिक उदयस्थान के बारह-बारह भंग कम कर दिये जायें तो पदों की कुल संख्या ६९४७ होती है। विशेष स्पष्टीकरण आगे की गाथा में किया जा रहा है। अब बारह भंगों को छोड़कर उदयस्थानों की संख्या और पदसंख्या का निर्देश करते हैं।

नवतेसीयसएहिं उदयविगप्पेहिं मोहिया जीवा।
अउणत्तरिसीयाला पयविंदसएहिं विन्नेया ॥२०॥

शब्दार्थ—नवतेसीयसएहिं—नौ सौ तिरासी, उदयविगप्पेहिं—उदयविकल्पों से, मोहिया—मोहित हुए, जीवा—जीव, अउणत्तरिसीयाला—उनहत्तर सौ सैंतालीस, पयविंदसएहिं—पदों के समूह, विन्नेया—जानना चाहिये।

गाथार्थ—संसारी जीव नौ सौ तिरासी उदयविकल्पों से और उनहत्तर सौ सैंतालीस पद समुदायों से मोहित हो रहे हैं, ऐसा जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पूर्व गाथा में मतान्तर की अपेक्षा उदयविकल्पों और पदवृन्दों की संख्या बतलाई है। इस गाथा में स्वमत से उदयविकल्पों और पदवृन्दों की संख्या का स्पष्टीकरण करते हैं।

पिछली गाथा में उदयविकल्प ९९५ और पदवृन्द ६९७१ बतलाये हैं और इस गाथा में उदयविकल्प ९८३ और पदवृन्द ६९४७ कहे हैं। इसका कारण यह है—चार प्रकृतिक बंध के संक्रम के समय दो प्रकृतिक उदयस्थान होता है, यदि इस मतान्तर को मुख्यता न दी जाये और इसे मत में दो प्रकृतिक उदयस्थान में उदयविकल्प और

पदवृन्दों को छोड दिया जाये तो क्रमशः उनकी संख्या ६८३ और ६६४७ होती है।

यहाँ मोहनीय कर्म के उदयविकल्प दो प्रकार से वतलाये है, एक ६६५ और दूसरे ६८३। इनमे से ६६५ उदयविकल्पों मे दो प्रकृतिक उदयस्थान के २४ भग तथा ६८३ उदयविकल्पो मे दो प्रकृतिक उदयस्थान के १२ भग लिये है। पचसंग्रह सप्ततिका मे भी ये उदयविकल्प वतलाये है, किन्तु वहाॅ तीन प्रकार से वतलाये है। पहले प्रकार में यहाँ वाले ६६५, दूसरे मे यहाॅ वाले ६८३ प्रकार से कुछ अन्तर पड़ जाता है। इसका कारण यह है कि यहाँ एक प्रकृतिक उदय के वन्धावन्ध की अपेक्षा ग्यारह भंग लिये है और पचसंग्रह सप्ततिका मे उदय की अपेक्षा प्रकृति भेद से चार भग लिये है, जिससे ६८३ मे से ७ घटा देने पर कुल ६७६ उदय-विकल्प रह जाते हैं। तीसरे प्रकार से उदय-विकल्प गिनाते हुए गुणस्थान भेद से उनकी सख्या १२६५ कर दी है।

गो० कर्मकाण्ड मे भी इनकी सख्या वतलाई है। किन्तु वहाॅ इनके दो भेद कर दिये है—पुनरुक्त भग और अपुनरुक्त भग। पुनरुक्त भग १२८३ गिनाये है। इनमे से १२६५ तो वही है जो पचसग्रह सप्ततिका मे गिनाये है और चार प्रकृतिक वध मे दो प्रकृतिक उदय की अपेक्षा १२ भग और लिये है तथा पचसंग्रह सप्ततिका मे एक प्रकृतिक उदय के जो पाँच भग लिये है, वे यहाँ ११ कर दिये गये है। इस प्रकार पचसंग्रह सप्ततिका से १८ भग वढ जाने से कर्मकाण्ड में उनकी सख्या १२८३ हो गई तथा कर्मकाण्ड मे अपुनरुक्त भग ६७७ गिनाये है। सो एक प्रकृतिक उदय का गुणस्थान भेद से एक भंग अधिक कर दिया गया है। जिससे ६७६ के स्थान पर ६७७ भग हो जाते है।

इसी प्रकार यहाँ मोहनीय के पदवृन्द दो प्रकार से वतलाये है—

६९७१ और ६९४७। जब चार प्रकृतिक बन्ध के समय कुछ काल तक दो प्रकृतिक उदय होता है, तब इस मत को स्वीकार कर लेने पर ६९७१ पदवृन्द होते हैं और इस मत को छोडने पर ६९४७ पदवृन्द होते हैं। पंचसंग्रह सप्ततिका में ये दोनों संख्यायें बतलाई हैं, किन्तु इनके अतिरिक्त साथ ही चार प्रकार के पदवृन्द और बतलाये हैं। उनमें पहला प्रकार ६९४० का है, जिसमें बन्धाबन्ध के भेद से एक प्रकृतिक उदय के ११ भंग न होकर कुल ४ भंग लिये जाते हैं। इस प्रकार ६९४७ में से ७ भंग कम होकर ६९४० संख्या होती है। शेष तीन प्रकार के पदवृन्द गुणस्थान भेद से बताये हैं जो क्रमशः ८४७७, ८४८३ और ८५०७ होते हैं।

गो० कर्मकाण्ड में पदवृन्द को प्रकृतिविकल्प संज्ञा दी है। उदयविकल्पों की तरह ये प्रकृतिविकल्प भी पुनरुक्त और अपुनरुक्त दो प्रकार से बताये हैं। पुनरुक्त उदयविकल्पों की अपेक्षा इनकी संख्या ८५०७ और अपुनरुक्त उदयविकल्पों की अपेक्षा इनकी संख्या ६९४१ बताई है। पंचसंग्रह सप्ततिका में जो ६९४० पदवृन्द बतलाये हैं, उनमें गुणस्थान भेद से १ भंग और मिला देने पर ६९४१ प्रकृतिविकल्प हो जाते हैं। यद्यपि पंचसंग्रह सप्ततिका में एक प्रकृतिक उदयस्थान के कुल चार भंग लिये गये हैं और कर्मकाण्ड[1] में गुणस्थान भेद से पाँच लिये गये हैं। जिससे एक भंग बढ़ जाता है।

ऊपर जो कथन किया गया है उसमें जो संख्याओं का अन्तर दिखता है, वह विवक्षाभेदकृत है, मान्यताभेद नहीं है।

इस प्रकार से स्वमत और मतान्तर तथा अन्य कार्मग्रन्थिकों के

---

१ मोहनीय कर्म के उदयस्थानों उनके विकल्पों और प्रकृतिविकल्पों की जानकारी के लिए गो० कर्मकांड गा० ४७५ से ४८९ तक देखिए।

मतो से उदयविकल्पों और प्रकृतिविकल्पों के भगो का कथन करने के बाद अब उदयस्थानों के काल का निर्देश करते हैं।

दस आदिक जितने उदयस्थान और उनके भग वतलाये हैं, उनका जघन्यकाल एक समय और उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त है।[1]

चार प्रकृतिक उदयस्थान से लेकर दस प्रकृतिक उदयस्थान तक के प्रत्येक उदयस्थान मे किसी एक वेद और किसी एक युगल का उदय होता है और वेद तथा युगल का एक मुहूर्त के भीतर अवश्य ही परिवर्तन हो जाता है। इसी बात को पंचसग्रह की मूल टीका में भी वतलाया है—

"वेदेन युगलेन वा अवश्यं मुहूर्तादारतः परावर्तितव्यम्।"

अर्थात् एक मुहूर्त के भीतर किसी एक वेद और किसी एक युगल का अवश्य परिवर्तन होता है।

इससे निश्चित होता है कि इन चार प्रकृतिक आदि उदयस्थानो का और उनके भंगो का जो उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है, वह ठीक है। दो और एक प्रकृतिक उदयस्थान भी अधिक-से-अधिक अन्तर्मुहूर्त काल तक पाये जाते हैं। अत. उनका भी उत्कृष्टकाल अन्तर्मुहूर्त ही है।

इन सब उदयस्थानो का जघन्यकाल एक समय इस प्रकार समझना चाहिये कि जब कोई जीव किसी विवक्षित उदयस्थान मे या उसके किसी एक विवक्षित भग में एक समय तक रहकर दूसरे समय में मर कर या परिवर्तन क्रम से किसी अन्य गुणस्थान को प्राप्त होता है तब उसके गुणस्थान में भेद हो जाता है, बन्धस्थान भी बदल जाता है और गुणस्थान के अनुसार उसके उदयस्थान और उसके भंगो में भी अन्तर पड़ जाता है। अत. सब उदयस्थानों और उसके सब भंगो का जघन्यकाल एक समय प्राप्त होता है।

---

१ इह दशादय उदयास्तद्भगाश्च जघन्यत एकसामयिका उत्कर्षत आन्तर्मौहूर्तिका.।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७०

मोहनीय कर्म के उदयविकल्पों और पदविकल्पों का विवरण इस प्रकार है—

उदयस्थान	चौबीसी संख्या	चौबीसी के कुल भंगों की संख्या	उदयपद	पदविकल्प
दस के उदय में	१	२४	१०	२४०
नौ ,, ,,	६	१४४	५४	१२९६
आठ ,, ,,	११	२६४	८८	२११२
सात ,, ,,	१०	२४०	७०	१६८०
छह ,, ,,	७	१६८	४२	१००८
पाँच ,, ,,	४	९६	२०	४८०
चार ,, ,,	१	२४	४	९६
दो ,, ,,	०	सिर्फ १२ भंग	०	२४
एक ,, ,,	०	,, ११ ,,	०	११
कुल योग	४०	९८३	२८८	६९४७
मतान्तर से	१	२४	२	४८
दो के उदय में		(१२ भंग पूर्व में मिलाने से यहाँ सिर्फ १२ भंग लेना)		(२४ भंग पहले के लिए अतः यहाँ २४ भंग लेना)
	४१	९९५	२९०	६९७१

इस प्रकार से बन्धस्थानों का उदयस्थानों के साथ परस्पर संवेध

भगों का कथन करने के अनन्तर अब आगे सत्तास्थानों के साथ वन्ध-स्थानों का कथन करते है।

तिन्नेव य बावीसे इगवीसे अट्ठवीस सत्तरसे।
छ च्चेव तेरनवबंधगेसु पंचेव ठाणाइं ॥२१॥
पंचविहचउविहेसुं छ छक्क सेसेसु जाण पंचेव।
पत्तेयं पत्तेयं चत्तारि य बंधवोच्छेए ॥२२॥

शब्दार्थ—तिन्नेव—तीन सत्तास्थान, य—और, बावीसे—बाईस प्रकृतिक वन्धस्थान मे, इगवीसे—इक्कीस प्रकृतिक वन्धस्थान मे, अट्ठवीस—अट्ठाईस का सत्तास्थान, सत्तरसे—सत्रह के वन्धस्थान मे, छच्चेव—छह का, तेरनवबंधगेसु—तेरह और नौ प्रकृतिक वन्ध-स्थान मे, पंचेव—पांच ही, ठाणाणि—सत्तास्थान।

पचविह—पाँच प्रकृतिक वन्धस्थान मे, चउविहेसुं—चार प्रकृतिक वन्धस्थान मे, छ छक्क—छह-छह, सेसेसु—बाकी के वन्ध-स्थानो मे, जाण—जानो, पचेव—पाँच ही, पत्तेय-पत्तेयं—प्रत्येक मे, (एक-एक मे), चत्तारि—चार, य—और, बंधवोच्छेए—वन्ध का विच्छेद होने पर भी।

गाथार्थ—बाईस प्रकृतिक वन्धस्थान में तीन, इक्कीस प्रकृतिक वन्धस्थान मे अट्ठाईस प्रकृति वाला एक, सत्रह प्रकृतिक वन्धस्थान में छह, तेरह प्रकृतिक और नौ प्रकृतिक वन्धस्थान में पांच-पाच सत्तास्थान होते है।

पाँच प्रकृतिक और चार प्रकृतिक वन्धस्थानो मे छह-छह सत्तास्थान तथा शेष रहे बंधस्थानों में से प्रत्येक के पांच-पांच सत्तास्थान जानना चाहिये और वन्ध का विच्छेद हो जाने पर चार सत्तास्थान होते है।

विशेषार्थ—पहले १५, १६ और १७वी गाथा मे मोहनीय कर्म के वन्धस्थानो और उदयस्थानो के परस्पर संवेध का कथन कर आये हैं।

अब यहाँ दो गाथाओ मे मोहनीय कम के बधस्थान और सत्तास्थानो के परस्पर सवेध का निर्देश किया गया है। साथ ही बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थानो के परस्पर सवेध का कथन करना आवश्यक होने से बधस्थान और सत्तास्थानो के परस्पर सवेध को बतलाते हुए प्राप्त होने वाले उदयस्थानो का भी उल्लेख करेंगे।

मोहनीय कर्म के बाईस, इक्कीस, सत्रह, तेरह, नौ, पाँच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक कुल दस बधस्थान हैं। उनमे क्रमश सत्तास्थानो का स्पष्टीकरण करते हैं।

'तिन्नेव य बावीसे'—बाईस प्रकृतिक बधस्थान के समय तीन सत्तास्थान होते हैं २८, २७ और २६ प्रकृतिक। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—बाईस प्रकृतियो का बध मिथ्यादृष्टि जीव को होता है और उसके उदयस्थान चार होते है—७, ८, ९ और १० प्रकृतिक। इनमे से ७ प्रकृतिक उदयस्थान के समय २८ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। क्योकि सात प्रकृतिक उदयस्थान अनतानुबधी के उदय के बिना ही होता है और मिथ्यात्व मे अनतानुबधी के उदय का अभाव उसी जीव के होता है, जिसने पहले सम्यग्दृष्टि रहते अनन्तानुबधी चतुष्क की विसयोजना की और कालातर मे परिणामवश मिथ्यात्व मे जाकर मिथ्यात्व के निमित्त से पुन अनन्तानुबधी के बध का प्रारम्भ किया हो। उसके एक आवली प्रमाण काल तक अनन्तानुबधी का उदय नही होता है। किन्तु ऐसे जीव के नियम से अट्ठाईस प्रकृतियो की सत्ता पाई जाती है। जिससे सात प्रकृतिक उदयस्थान मे एक अट्ठाईस प्रकृतिक उदयस्थान ही होता है।

आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भी उक्त तीनो सत्तास्थान होते हैं। क्योकि आठ प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार का होता है—१ अनता-

नुवन्धी के उदय से रहित और २ अनन्तानुवन्धी के उदय से सहित ।[1] इनमें से जो अनन्तानुवन्धी के उदय से रहित वाला आठ प्रकृतिक उदयस्थान है, उसमे एक अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान ही प्राप्त होता है। इसका स्पष्टीकरण सात प्रकृतिक उदयस्थान के प्रसंग में ऊपर किया गया है तथा जो अनन्तानुवन्धी के उदय सहित आठ प्रकृतिक उदयस्थान है, उसमे उक्त तीनो ही सत्तास्थान वन जाते हैं। वे इस प्रकार हैं—१ जव तक सम्यक्त्व की उद्वलना नही होती तव तक अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। २. सम्यक्त्व की उद्वलना हो जाने पर सत्ताईस प्रकृतिक और ३ सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वलना हो जाने पर छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह छब्बीस प्रकृतिक सत्तास्थान अनादि मिथ्यादृष्टि जीव को भी होता है।[2]

नौ प्रकृतिक उदयस्थान भी अनन्तानुवन्धी के उदय से रहित और अनन्तानुवन्धी के उदय से सहित होता है। अनन्तानुवन्धी के उदय से रहित नौ प्रकृतिक उदयस्थान मे तो एक अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है, किन्तु जो नौ प्रकृतिक उदयस्थान अनन्तानुवन्धी के उदय सहित है उसमे तीनो सत्तास्थान पूर्वोक्त प्रकार से वन जाते है।

दस प्रकृतिक उदयस्थान अनन्तानुवन्धी के उदय वाले को ही होता है। अन्यथा दस प्रकृतिक उदयस्थान ही नही वनता है। अतः उसमे २८, २७ और २६ प्रकृतिक तीनो सत्तास्थान प्राप्त हो जाते है।

इक्कीस प्रकृतिक वन्धस्थान के समय सत्तास्थान एक अट्ठाईस

---

१ यतोऽष्टोदयो द्विधा—अनन्तानुवन्ध्युदयरहितोऽनन्तानुवन्ध्युदयसहितश्च ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७१

२ ......तत्र यावद् नाद्यापि सम्यक्त्वमुद्वलयति तावदष्टाविंशति, सम्यक्त्वे उद्वलिते सप्तविंशति, सम्यग्मिथ्यात्वेऽप्युद्वलिते षड्विंशति. अनादिमिथ्यादृष्टेर्वा षड्विंशति. ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७१

प्रकृतिक ही होता है—इगवीसे अट्ठवीस। इसका कारण यह है कि इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान सासादन सम्यग्दृष्टि को ही होता है और सासादन सम्यक्त्व उपशम सम्यक्त्व मे च्युत हुए जीव को होता है, किन्तु ऐसे जीव के दर्शनमोहनीय के तीनो भेदो की सत्ता अवश्य पाई जाती है, क्योंकि यह जीव सम्यक्त्व गुण के निमित्त से मिथ्यात्व के तीन भाग कर देता है, जिन्हे क्रमश मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व कहते हैं। अत इसके दर्शन मोहनीय के उक्त तीनो भेदो की सत्ता नियम से पाई जाती है। यहा उदयस्थान सात, आठ और नौ प्रकृतिक, ये तीन होते हैं। अत इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान के समय तीन उदयस्थानो के रहते हुए एक अट्ठाईस प्रकृतिक ही सत्तास्थान होता है।[1]

सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान के समय छह सत्तास्थान होते हैं—'सत्तरसे छच्चेव' जो २८, २७, २६, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक होते हैं। सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टि और अविरतसम्यग्दृष्टि, इन दो गुणस्थानो म होता है।

इनमें से सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवो के ७, ८ और ९ प्रकृतिक यह तीन उदयस्थान होते हैं और अविरत सम्यग्दृष्टि जीवो के चार उदयस्थान होते हैं—६, ७, ८ और ९ प्रकृतिक।[2] इनमे से छह प्रकृतिक

---

१ एकविंशतिबन्धो हि सासादनसम्यग्दृष्टेर्भवति सासादनत्व चजीवस्यौपशमिक सम्यक्त्वात् प्रच्यवमानस्योपजायत सम्यक्त्वगुणेन च मिथ्यात्व त्रिधाकृतम, तद्यथा—सम्यक्त्व मिश्र मिथ्यात्व च, ततो दर्शनत्रिकस्यापि सत्कर्मतया प्राप्यमाणत्वाद् एकविंशतिबन्ध त्रिष्वप्युदयस्थानेष्वष्टाविंशतिरेक सत्तास्थान भवति। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७१

२ सप्तदशबन्धो हि द्वयाना भवति, तद्यथा—सम्यग्मिथ्यादृष्टिनामविरत सम्यग्दृष्टीना च। तत्र सम्यग्मिथ्यादृष्टीना त्रीण्युदयस्थानानि तद्यथा—सप्त अष्टौ नव। अविरतसम्यग्दृष्टिना चत्वारि, तद्यथा—षट् सप्त अष्टौ नव। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७१

उदयस्थान उपशम सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवो को ही प्राप्त होता है। उपशम सम्यग्दृष्टि जीव को अट्ठाईस और चौबीस प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान प्रथमोपशम सम्यक्त्व के समय होता है तथा जिसने अनन्तानुबंधी की उद्वलना की उस औपशमिक अविरत सम्यग्दृष्टि के चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है किन्तु क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव के इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। क्योकि अनन्तानुबंधी चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक इन सात प्रकृतियों के क्षय होने पर ही उसकी प्राप्ति होती है।[1] इस प्रकार छह प्रकृतिक उदयस्थान मे २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के सात प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २७ और २४ ये तीन सत्तास्थान होते हैं। इनमें से अट्ठाईस प्रकृतियों की सत्ता वाला जो जीव सम्यग्मिथ्यात्व को प्राप्त होता है, उसके अट्ठाईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है, किन्तु जिस मिथ्यादृष्टि ने सम्यक्त्व की उद्वलना करके सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान को प्राप्त कर लिया किन्तु अभी सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वलना नही की, वह यदि मिथ्यात्व से निवृत्त होकर परिणामो के निमित्त से सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान[2] को प्राप्त होता है तो उस सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव

---

१ क्षायिकसम्यग्दृष्टीनां त्वेकविंशतिरेव, क्षायिक हि सम्यक्त्व सप्तकक्षये भवति, सप्तकक्षये च जन्तुरेकविंशतिसत्कर्मेति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७२

२ सम्यग्मिथ्यादृष्टि के २७ प्रकृतिक सत्तास्थान होने के मत का उल्लेख दिगम्बर परम्परा मे देखने मे नही आया है। गो० कर्मकाड मे वेदककाल का निर्देश किया गया है, उस काल मे कोई भी मिथ्यादृष्टि जीव वेदक सम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि हो सकता है, पर यह काल सम्यक्त्व की उद्वलना के चालू रहते हुए निकल जाता है। अत वहा २७ प्रकृतिक सत्ता वाले को न तो वेदक सम्यक्त्व की प्राप्ति बतलाई है और न सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान की।

के सत्ताईस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है तथा सम्यग्दृष्टि रहते हुए जिसने अनन्तानुबंधी की विसंयोजना की है, वह यदि परिणामवशात् सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान को प्राप्त करता है तो उसके चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है। ऐसा जीव चारों गतियों में पाया जाता है। क्योंकि चारों गतियों का सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करता है।[1]

कर्मप्रकृति में कहा भी है—

"चउगइया पज्जत्ता तिन्नि वि संजोयणे विजोयंति।
करणेहिं तीहिं सहिया नंतरकरणं उवसमो वा ॥"[2]

अर्थात् चारों गति के पर्याप्त जीव तीन करणों को प्राप्त होकर अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करते हैं किन्तु इनके अनन्तानुबंधी का अन्तरकरण और उपशम नहीं होता है।

यहाँ विशेषता इतनी है कि अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में चारों गति के जीव, देशविरति में तिर्यंच और मनुष्य जीव तथा सर्वविरति में केवल मनुष्य जीव अनन्तानुबंधी चतुष्क की विसंयोजना करते हैं।[3] अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करने के बाद कितने ही जीव परिणामों के वश से सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थान को भी प्राप्त होते हैं। जिससे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों के चौबीस प्रकृतिक सत्तास्थान होता है यह सिद्ध हुआ।

लेकिन अविरत सम्यग्दृष्टि जीव के सात प्रकृतिक उदयस्थान रहते २८, २४, २३, २२ और २१ ये पांच सत्तास्थान होते हैं। उनमें से २८

---

1 चतुर्गतिका अपि सम्यग्दृष्टयोऽनन्तानुबन्धिनो विसंयोजयन्ति।
—सप्ततिका प्रकरण टीका पृ० १७२

2 कर्मप्रकृति उ० गा० ३१

3 अत्र विशेषः—अविरता देशविरताः सर्वविरता वा यथायोग्यम्।
—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७२

और २४ प्रकृतिक तो उपशम सम्यग्दृष्टि और वेदक सम्यग्दृष्टि जीवों के होते है, किन्तु यह विशेषता है कि २४ प्रकृतिक सत्तास्थान, जिसने अनन्तानुवधी चतुष्क की विसंयोजना कर दी है, उसको होता है।[1] २३ और २२ प्रकृतिक सत्तास्थान वेदक सम्यग्दृष्टि जीवों के ही होते है। क्योंकि आठ वर्ष या इससे अधिक आयु वाला जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव क्षपणा के लिये उद्यत होता है, उसके अनन्तानुवंधी चतुष्क और मिथ्यात्व का क्षय हो जाने पर २३ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है और फिर उसी के सम्यग्मिथ्यात्व का क्षय हो जाने पर २२ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। यह २२ प्रकृतिक सत्ता वाला जीव सम्यक्त्व प्रकृति का क्षय करते समय जव उसके अन्तिम भाग में रहता है और कदाचित् उसने पहले परभव सम्बन्धी आयु का वंध कर लिया हो तो मर कर चारों गतियो मे उत्पन्न होता है।[2] कहा भी है—

"पट्ठवगो उ मणूसो निट्ठवगो चउसु वि गईसु।

अर्थात् दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ केवल मनुष्य ही करता है, किन्तु उसकी समाप्ति चारो गतियों मे होती है।

इस प्रकार २२ प्रकृतिक सत्तास्थान चारों गतियों में प्राप्त होता है किन्तु २१ प्रकृतिक सत्तास्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव को ही प्राप्त होता है। क्योकि अनन्तानुबंधी चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक, इन सात प्रकृतियो का क्षय होने पर ही क्षायिक सम्यग्दर्शन होता है।

इसी प्रकार आठ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए भी सम्यग्मिथ्या-

---

१ नवरमनन्तानुवन्धिविसयोजनानन्तर सा अवगन्तव्या।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७२

२ स च द्वाविंशतिसत्कर्मा सम्यक्त्व क्षपयन् तच्चरमग्रासे वर्तमान. कश्चित् पूर्ववद्धायुष्क· कालमपि करोति, कालं च कृत्वा चतसृणा गतीनामन्यतमस्या गतावुत्पद्यते।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृष्ठ १७२

दृष्टि और अविरत सम्यग्दृष्टि जीवों के क्रमशः पूर्वोक्त तीन और पांच सत्तास्थान होते हैं। नौ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए भी इसी प्रकार जानना चाहिये, लेकिन इतनी विशेषता है कि अविरतों के नौ प्रकृतिक उदयस्थान वेदक सम्यग्दृष्टि जीवों के ही होता है और वेदक सम्यग्दृष्टि जीवों के २८, २४, २३ और २२ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान पाये जाते हैं, अतः यहां भी उक्त चार सत्तास्थान होते हैं।

सत्रह प्रकृतिक बंधस्थान सम्बन्धी उक्त कथन का सारांश यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि के १७ प्रकृतिक एक बंधस्थान और ७, ८, ९ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान तथा २८, २७ और २४ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि में उपशम सम्यग्दृष्टि के १७ प्रकृतिक एक बंधस्थान और ६, ७, ८ प्रकृतिक तीन उदयस्थान तथा २८ और २४ प्रकृतिक दो सत्तास्थान होते हैं। क्षायिक सम्यग्दृष्टि के एक १७ प्रकृतिक बंधस्थान तथा ६, ७ और ८ प्रकृतिक, ये तीन उदयस्थान तथा २१ प्रकृतिक एक सत्तास्थान होता है। वेदक सम्यग्दृष्टि के १७ प्रकृतिक एक बंधस्थान तथा ७, ८ और ९ प्रकृतिक तीन उदयस्थान तथा २८, २४, २३ और २२ प्रकृतिक चार सत्तास्थान होते हैं। संवेध भंगों का पूर्व में निर्देश किया जा चुका है, अतः यहां जितने विकल्प बंधादि स्थान होते हैं, उनका निर्देश मात्र किया है।

तेरह और नौ प्रकृतिक बंधस्थान के रहते पांच पांच सत्तास्थान होते हैं—'तेरसनवबंधगेसु पंचेव ठाणाइं'। वे पांच सत्तास्थान २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक होते हैं। पहले तेरह प्रकृतिक बंधस्थान के सत्तास्थानों को स्पष्ट करते हैं।

तेरह प्रकृतियों का बंध देशविरतों को होता है और देशविरत दो प्रकार के होते हैं—तिर्यंच और मनुष्य।[1] तिर्यंच देशविरतों को

---

[1] तत्र त्रयोदशबन्धका देशविरताः, ते च द्विधा—तिर्यञ्चो मनुष्याश्च।
—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७३

उनके चारों ही उदयस्थानो में २८ और २४ प्रकृतिक, ये दो सत्ता-स्थान होते हैं। २८ प्रकृतिक सत्तास्थान तो उपशम सम्यग्दृष्टि और वेदक सम्यग्दृष्टि, इन दोनो प्रकार के ही तिर्यच देशविरतों के होता है। उसमे भी जो प्रथमोपशम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने के समय ही देश-विरत को प्राप्त कर लेता है, उसी देशविरत के उपशम सम्यक्त्व के रहते हुए २८ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। क्योंकि अन्तरकरण काल मे विद्यमान कोई भी औपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव देशविरत को प्राप्त करता है और कोई मनुष्य सर्वविरत को भी प्राप्त करता है, ऐसा नियम है। जैसाकि शतक बृहच्चूर्णि मे कहा भी है—

उवसमसम्मद्दिट्ठी अन्तरकरणे ठिओ कोई देसविरइं कोई पमत्तापमत्तभावं पि गच्छइ, सासायणो पुण न किमवि लहई।

अर्थात् अन्तरकरण मे स्थित कोई उपशम सम्यग्दृष्टि जीव देशविरति को प्राप्त होता है और कोई प्रमत्तसंयम और अप्रमत्तभाव को भी प्राप्त होता है, परन्तु सासादन सम्यग्दृष्टि जीव इनमे से किसी को भी प्राप्त नही होता है।

इस प्रकार उपशम सम्यग्दृष्टि जीव को देशविरति गुणस्थान की प्राप्ति के बारे में बताया कि वह कैसे प्राप्त होता है। किन्तु वेदक सम्यक्त्व के साथ देशविरति होने मे कोई विशेष बाधा नही है। जिससे देशविरति गुणस्थान मे वेदक सम्यग्दृष्टि के २८ प्रकृतिक सत्ता-स्थान बन ही जाता है। किन्तु २४ प्रकृतिक सत्तास्थान अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करने वाले तिर्यचो के होता है, और वे वेदक सम्यग्-दृष्टि होते है। क्योंकि तिर्यचगति मे औपशमिक सम्यग्दृष्टि[1] के

---

१ जयधवला टीका में स्वामी का निर्देश करते समय चारो गतियो के जीवो को २४ प्रकृतिक सत्तास्थान का स्वामी बतलाया है। इसके अनुसार प्रत्येक गति का उपशम सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना कर सकता है। कर्मप्रकृति के उपशमना प्रकरण गा० ३१ से भी इसी मत की पुष्टि होती है। वहाँ चारो गति के जीवों को अनन्तानुबंधी की विसंयोजना करने वाला बताया है।

२४ प्रकृतिक सत्तास्थान की प्राप्ति संभव नहीं है। इन दो सत्तास्थानों के अतिरिक्त तिर्यंच देशविरत के शेष २३ आदि सब सत्तास्थान नहीं होते हैं, क्योंकि वे क्षायिक सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले जीवों के ही होते हैं और तिर्यंच क्षायिक सम्यग्दर्शन को उत्पन्न नहीं करते हैं। इसे तो केवल मनुष्य ही उत्पन्न करते हैं।[1]

तेईस प्रकृतिक आदि सत्तास्थान तिर्यंचों के नहीं मानने को लेकर जिज्ञासु प्रश्न पूछता है—

अथ मनुष्याः क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पाद्य यदा तिर्यक्षूत्पद्यन्ते तदा तिरश्चोऽप्येकविंशतिः प्राप्यत एव, तत् कथमुच्यते शेषाणि त्रयोविंशत्यादीनि सर्वाण्यपि न सम्भवन्ति ? इति तद् अयुक्तम्, यतः क्षायिकसम्यग्दृष्टिस्तिर्यक्षु न सङ्ख्येयवर्षायुष्केषु मध्ये समुत्पद्यते, किन्त्वसङ्ख्येयवर्षायुष्केषु न च तत्र देशविरतिः तदभावाच्च न त्रयोदशबन्धकत्वम्। अत्र त्रयोदशबन्धे सत्तास्थानानि चिन्त्यमानानि वर्तन्ते ततः एकविंशतिरपि त्रयोदशबन्धे तिर्यक्षु न प्राप्यते।

प्रश्न—यह ठीक है कि तिर्यंचों के २३ प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होता है, तथापि जब मनुष्य क्षायिक सम्यग्दर्शन को उत्पन्न करते हुए या उत्पन्न करके तिर्यंचों में उत्पन्न होते हैं तब तिर्यंचों के भी २२ और २१ प्रकृतिक सत्तास्थान पाये जाते हैं। अतः यह कहना युक्त नहीं है कि तिर्यंचों के २३ आदि प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होते हैं।

उत्तर—यद्यपि यह ठीक है कि क्षायिक सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाला २२ प्रकृतिक सत्ता वाला जीव या क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर तिर्यंचों में उत्पन्न होता है, किन्तु यह जीव संख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचों में उत्पन्न न होकर असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचों

1 शेषाणि तु सर्वाण्यपि त्रयोविंशत्यादीनि सत्तास्थानानि तिरश्चां न सम्भवन्ति तानि हि क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पादयतां प्राप्यन्ते न च तिर्यंचः क्षायिकसम्यक्त्वमुत्पादयन्ति, किन्तु मनुष्या एव।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७३

मे ही उत्पन्न होता है और उनके देशविरति नही होती है और देश-विरति के न होने से उनके तेरह प्रकृतिक बधस्थान नही पाया जाता है। परन्तु यहाँ तेरह प्रकृतिक बधस्थान मे सत्तास्थानो का विचार किया जा रहा है। अत ऊपर जो यह कहा गया है कि तिर्यंचो के २३ आदि प्रकृतिक सत्तास्थान नही होते है, वह १३ प्रकृतिक बंधस्थान की अपेक्षा से ठीक ही कहा गया है। चूर्णि मे भी कहा है—

एगवीसा तिरिक्खेसु संजयाऽसंजएसु न संभवइ। कहं? भण्णइ—संखेज्ज-वासाउएसु तिरिक्खेसु खाइगसम्मद्दिट्ठी न उववज्जइ असंखेज्जवासाउएसु उववज्जेज्जा, तस्स देसविरई नत्थि।

अर्थात्—तिर्यंच संयतासंयतो के २१ प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होता, क्योंकि क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव संख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचो मे उत्पन्न नही होता है। असंख्यात वर्ष की आयु वाले तिर्यंचो मे उत्पन्न होता है, किन्तु वहाँ उनके देशविरति नही होती है।

इस प्रकार से तिर्यंचो की अपेक्षा विचार करने के बाद अब मनुष्यो की अपेक्षा विचार करते है।

जो देशविरत मनुष्य है, उनके पाँच प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है। छह प्रकृतिक और सात प्रकृतिक उदयस्थान के रहते प्रत्येक मे २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक, ये पाँच सत्तास्थान होते है। आठ प्रकृतिक उदय-स्थान के रहते २८, २४, २३ और २२ प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते है। उदयस्थानगत प्रकृतियो को ध्यान मे रखने से इनके कारणो का निश्चय सुगमतापूर्वक हो जाता है। अर्थात् जैसे अविरत सम्य-ग्दृष्टि गुणस्थान मे कथन किया गया है, वैसे ही यहाँ भी समझ लेना चाहिये। अत. अलग से कथन न करके किस उदयस्थान मे कितने सत्तास्थान होते है, इसका सिर्फ संकेतमात्र किया गया है।

नौ प्रकृतिक बंधस्थान प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवों के होता है। इनके ४, ५, ६ और ७ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। चार प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि यह उदयस्थान उपशम सम्यग्दृष्टि और क्षायिक सम्यग्दृष्टि को ही प्राप्त होता है। पांच प्रकृतिक और छह प्रकृतिक उदयस्थान के रहते पांच पांच सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि ये उदयस्थान तीनों प्रकार के सम्यग्दृष्टियों—औपशमिक, क्षायिक और वेदक को संभव हैं। किन्तु सात प्रकृतिक उदयस्थान वेदक सम्यग्दृष्टियों के संभव होने से यहां २१ प्रकृतिक सत्तास्थान संभव न होकर शेष चार ही सत्तास्थान होते हैं।[1]

'पंचविह चउविहेसु छ छक्क'—पांच प्रकृतिक और चार प्रकृतिक बंधस्थान में छह छह सत्तास्थान होते हैं। अर्थात पांच प्रकृतिक बंधस्थान के छह सत्तास्थान हैं और चार प्रकृतिक बंधस्थान के भी छह सत्तास्थान हैं। लेकिन दोनों के सत्तास्थानों की प्रकृतियों की संख्या में अन्तर है जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

सर्वप्रथम पाँच प्रकृतिक बंधस्थान के सत्तास्थानों को बतलाते हैं। पाँच प्रकृतिक बंधस्थान के छह सत्तास्थानों की संख्या इस प्रकार है—२८, २४, २१, १३, १२ और ११।[2] इनका स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

---

१ एवं नवबंधकानामपि प्रमत्ताऽप्रमत्तानां प्रत्येकं चतुर्ष्वप्युदयस्थानेषु त्रीणि त्रीणि सत्तास्थानानि, तद्यथा—अष्टाविंशति चतुर्विंशति एकविंशतिश्च। पञ्चकोदये षट्कोदये च प्रत्येकं पंच पंच सत्तास्थानानि। सप्तोदये त्वेकविंशति वर्जानि शेषाणि चत्वारि सत्तास्थानानि वाच्यानि।

—सप्ततिका प्रकरण टीका पृ० १७४

२ तत्र पंचविधे बंधे अमूनि, तद्यथा—अष्टाविंशति चतुर्विंशति एकविंशति त्रयोदश द्वादश एकादश च। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७४

पाँच प्रकृतिक बंधस्थान उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि मे अनिवृत्तिबादर जीवों के पुरुषवेद के बंधकाल तक होता है और पुरुषवेद के बंध के समय तक छह नोकषायो की सत्ता पाई जाती है, अत. पाँच प्रकृतिक बंधस्थान मे पाँच आदि सत्तास्थान नही पाये जाते है।[1] अब रहे शेष सत्तास्थान सो उपशमश्रेणि की अपेक्षा यहाँ २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान पाये जाते है। २८ और २४ प्रकृतिक सत्तास्थान तो उपशम सम्यग्दृष्टि को उपशमश्रेणि मे और २१ प्रकृतिक सत्तास्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि को उपशमश्रेणि मे पाया जाता है।[2] क्षपकश्रेणि मे भी जब तक आठ कषायो का क्षय नही होता तब तक २१ प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है। अर्थात् उपशमश्रेणि की अपेक्षा २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है। लेकिन इतनी विशेषता है कि २८ और २४ प्रकृतिक सत्तास्थान तो उपशम सम्यग्दृष्टि जीव को ही उपशमश्रेणि मे होते हैं, किन्तु २१ प्रकृतिक सत्तास्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव को उपशमश्रेणि मे भी होता है और क्षपकश्रेणि मे भी आठ कषायो के क्षय न होने तक पाया जाता है।[3]

---

१ पंचादीनि तु सत्तास्थानानि पचविधबन्धे न प्राप्यन्ते, यत· पचविधबन्ध. पुरुषवेदे बध्यमाने भवति, यावच्च पुरुषवेदस्य बधस्तावत् षड् नोकषाया. सन्त एवेति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७४

२ तत्राष्टाविंशति. चतुर्विंशतिश्चौपशमिकसम्यग्दृष्टेरुपशमश्रेण्याम्। एकविंशतिरुपशमश्रेण्या क्षायिकसम्यग्दृष्टे।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७४

३ क्षपकश्रेण्या पुनरष्टौ कषाया यावद् न क्षीयन्ते तावदेकविंशति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७४

क्षपकश्रेणि में १३, १२ और ११ प्रकृतिक सत्तास्थान तो होते ही हैं और उनके साथ २१ प्रकृतिक सत्तास्थान को और मिला देने पर क्षपकश्रेणि में २१, १३, १२ और ११, ये चार सत्तास्थान होते हैं। आठ कषायों के क्षय न होने तक २१ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है और आठ कषायों के क्षय हो जाने पर १३ प्रकृतिक सत्तास्थान। इसमें से नपुंसकवेद का क्षय हो जाने पर १२ प्रकृतिक तथा बारह प्रकृतिक सत्तास्थान में से स्त्रीवेद का क्षय हो जाने पर ११ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

इस प्रकार पांच प्रकृतिक बंधस्थान में २८, २४, २१, १३, १२ और ११ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते हैं। अब चार प्रकृतिक बंधस्थान के छह सत्तास्थानों को स्पष्ट करते हैं।

चार प्रकृतिक बंधस्थान में २८, २४, २१, ११, ५ और ४ प्रकृतिक ये छह सत्तास्थान होते हैं।[1] चार प्रकृतिक बंधस्थान भी उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि दोनों में होता है। उपशमश्रेणि में पाये जाने वाले २८, २४ और २१ प्रकृतिक सत्तास्थानों का पहले जो स्पष्टीकरण किया गया वैसा यहां भी समझ लेना चाहिए। अब रहा क्षपकश्रेणि का विचार, सो उसके लिये यह नियम है कि जो जीव नपुंसकवेद के उदय के साथ क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है, वह नपुंसकवेद और स्त्रीवेद का क्षय एक साथ करता है और इसके साथ ही पुरुषवेद का बंधविच्छेद हो जाता है। तदनन्तर इसके पुरुषवेद और हास्यादि षट्क का एक साथ क्षय होता है। यदि कोई जीव स्त्रीवेद के उदय

---

१ चतुर्विधबन्धे पुनरमूनि षट् सत्तास्थानानि तद्यथा—अष्टाविंशति, चतुर्विंशति एकविंशति, एकादश पंच चतस्र।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७४

के साथ क्षपकश्रेणि पर चढता है तो वह जीव पहले नपुंसक वेद का क्षय करता है, तदनन्तर अन्तर्मुहूर्त काल मे स्त्रीवेद का क्षय करता है, फिर पुरुपवेद और हास्यादि पट्क का एक साथ क्षय होता है। किन्तु इसके भी स्त्रीवेद की क्षपणा के समय पुरुप-वेद का वधविच्छेद हो जाता है। इस प्रकार स्त्रीवेद और नपुंसकवेद के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए जीव के या तो स्त्रीवेद की क्षपणा के अन्तिम समय मे या स्त्रीवेद और नपुसकवेद की क्षपणा के अतिम समय मे पुरुपवेद का वन्धविच्छेद हो जाता है, जिससे इस जीव के चार प्रकृतिक वधस्थान मे वेद के उदय के विना एक प्रकृति का उदय रहते ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है तथा यह जीव पुरुपवेद और हास्यादि पट्क का क्षय एक साथ करता है। अत इसके पाँच प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त न होकर चार प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है। किन्तु जो जीव पुरुप-वेद के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढता है, उसके छह नोकपायो के क्षय होने के समय ही पुरुपवेद का वधविच्छेद होता है, जिससे उसके चार प्रकृतिक वधस्थान मे ग्यारह प्रकृतिक सत्तास्थान नही होता किन्तु पांच प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है। इसके यह सत्तास्थान दो समय कम दो आवली काल तक रहकर,[1] अनन्तर अन्तर्मुहूर्त काल तक चार प्रकृतिक सत्तास्थान प्राप्त होता है।

---

१ कपायप्राभृत की चूर्णि मे पाँच प्रकृतिक सत्तास्थान का जघन्य और उत्कृष्ट दोनो प्रकार का काल एक समय कम दो आवली प्रमाण वतलाया है—

"पचण्ह विहत्तिओ केविचिर कालादो ? जहण्णुक्कस्सेण दो आवलियाओ समयूणाओ ॥"

होगा किन्तु जव तक क्षय नही हुआ तव तक तीन प्रकृतिक वधस्थान मे चार प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है और इसके क्षय हो जाने पर तीन प्रकृतिक वधस्थान में तीन प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है, जो अन्तर्मुहूर्त काल तक रहता है।

इस प्रकार तीन प्रकृतिक वधस्थान मे २८, २४, २१, ४ और ३ प्रकृतिक, ये पाच सत्तास्थान होते है। द्विप्रकृतिक वंधस्थान मे पाँच सत्तास्थान इस प्रकार है–२८, २४, २१, ३ और २ प्रकृतिक। सज्वलन मान की भी इसी प्रकार प्रथम स्थिति एक आवली प्रमाण शेष रहने पर वध, उदय और उदीरणा, इन तीनो का एक साथ विच्छेद हो जाता है, उस समय दो प्रकृतिक वधस्थान प्राप्त होता है, पर उस समय सज्वलन मान के एक आवली प्रमाण प्रथम स्थितिगत दलिक को और दो समय कम दो आवली प्रमाण समयप्रवद्ध को छोडकर अन्य सव का क्षय हो जाता है। यद्यपि वह शेष सत्कर्म दो समय कम दो आवली प्रमाण काल के द्वारा क्षय को प्राप्त होगा किन्तु जव तक इसका क्षय नही हुआ, तव तक दो प्रकृतिक वधस्थान मे तीन प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाता है। पश्चात् इसके क्षय हो जाने पर दो प्रकृतिक वधस्थान मे दो प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है।

इस प्रकार दो प्रकृतिक वधस्थान मे २८, २४, २१, ३ और २ प्रकृतिक, ये पाच सत्तास्थान होते है।

एक प्रकृतिक वंधस्थान मे होने वाले पाँच सत्तास्थान इस प्रकार है—२८, २४, २१, २ और १ प्रकृतिक। इनमे से २८, २४ और २१ प्रकृतिक सत्तास्थान तो उपशमश्रेणि की अपेक्षा समझ लेना चाहिये। शेष २ और १ प्रकृतिक सत्तास्थानो का विवरण इस प्रकार है कि इसी तरह सज्वलन माया की प्रथम स्थिति एक आवली प्रमाण शेष रहने पर वध, उदय और उदीरणा का एक साथ विच्छेद हो जाता है और

उसके बाद एक प्रकृतिक बंध होता है, परन्तु उस समय संज्वलन माया के एक आवली प्रमाण प्रथम स्थितिगत दलिक को और दो समय कम दो आवली प्रमाण समयप्रबद्ध को छोड़कर शेष सबका क्षय हो जाता है। यद्यपि यह शेष सत्कर्म भी दो समय कम दो आवली प्रमाण काल के द्वारा क्षय को प्राप्त होगा, किन्तु जब तक इसका क्षय नहीं हुआ तब तक एक प्रकृतिक बंधस्थान में दो प्रकृतियों की सत्ता पाई जाती है। पश्चात् इसका क्षय हो जाने पर एक प्रकृतिक बंधस्थान में सिर्फ एक संज्वलन लोभ की सत्ता रहती है।

इस प्रकार एक प्रकृतिक बंधस्थान में २८, २४, २१, २ और १ प्रकृतिक, ये पांच सत्तास्थान होते हैं। अब बंध के अभाव में भी विद्यमान सत्तास्थानों का विचार करते हैं। इसके लिये गाथा में कहा गया है—'चत्तारि य बंधवोच्छेए'—अर्थात बंध के अभाव में चार सत्तास्थान होते हैं। वे चार सत्तास्थान इस प्रकार हैं—२८, २४, २१ और १ प्रकृतिक। बंध का अभाव दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में होता है। जो उपशमश्रेणि पर चढ़कर सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान को प्राप्त होता है, यद्यपि उसके मोहनीय कर्म का बंध तो नहीं होता, किन्तु उसके २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान संभव हैं तथा जो क्षपक श्रेणि पर आरोहण करके सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान को प्राप्त करता है, उसके संज्वलन लोभ की सत्ता पाई जाती है। इसीलिये बंध के अभाव में २८, २४, २१ और १ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान माने जाते हैं।[1]

इस प्रकार से मोहनीय कर्म के बंध, उदय और सत्तास्थानों के संवेध भंगों का निर्देश किया गया। उनके समस्त विवरण का स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

---

१ बंधाभावे सूक्ष्मसम्परायगुणस्थाने चत्वारि सत्तास्थानानि तद्यथा—अष्टाविंशति चतुर्विंशति एकविंशति एका च। तत्राद्यानि त्रीणि प्रागिवोपशमश्रेण्याम। एका तु संज्वलनलोभरूपा प्रकृति क्षपकश्रेण्याम्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७५

गुण-स्थान	बध-स्थान	भग	उदयस्थान	जोड	उदय चौबीसी	जोड	उदयभग	जोड	उदयपद	जोड	उदय पद-वृन्द सख्या	जोड	सत्तास्थान	
१	२२	६	७		१		२४		७		१६८		१	२८
			८	४	३	८	७२	१९२	२४	६८	५७६	१६३२	३	२८, २७, २६
			९		३		७२		२७		६४८		३	२८, २७, २६
			१०		१		२४		१०		२४०		३	२८, २७, २६
२	२१	४	७		१		२४		७		१६८		१	२८
			८	३	२	४	४८	९६	१६	३२	३८४	७६८	१	२८
			९		१		२४		९		२१६		१	२८
३–४	१७	२	६		१		२४		६		१४४		३	२८, २४, २१
			७	४	४	१२	९६		२८		६७२		६	२८, २७, २४, २३, २२, २१
			८		५		१२०	२८८	४०	९२	९६०	२२०८	६	२८,२७,२४,२३,२२,२१
			९		२		४८		१८		४३२		५	२८,२७,२४,२३,२२
५	१३	२	५		१		२४		५		१२०		३	२८, २४, २१
			६	४	३	८	७२	१९२	१८	५२	४३२	१२४८	५	२८,२४,२३,२२,२१
			७		३		७२		२१		५०४		५	२८,२४,२३,२२,२१
			८		१		२४		८		१९२		४	२८, २४, २३, २२
६	९	२	४		१		२४		४		९६		३	२८, २४, २१
७			५	४	३	८	७२	१९२	१५	४४	३६०	१०५६	५	२८,२४,२३,२२,२१
८			६		३		७२		१८		४३२		५	२८,२४,२३,२२,२१
			७		१		२४		७		१६८		४	२८, २४, २३, २२

गुण स्थान	बंध स्थान	भंग	उदयस्थान		उदय चौबीसी		उदयभंग		उदयपद		उदय पद वृन्द संख्या		सत्तास्थान	
				जोड		जोड		जोड		जोड		जोड		
९	५	१	२	१	×	×	१२	१२	×	×	२४	२४	६	२८,२४,२१,१३,१२,११
,,	४	१	१	×	×	×	४	४	×	×	४	४	६	२८ २४, २१, ११, ५,४
,,	३	१	१	×	×	×	३	३	×	×	३	३	५	२८, २४, २१, ४, ३
,,	२	१	१	×	×	×	२	२	×	×	२	२	५	२८, २४, २१, ३, २
,,	१	१	१	×	×	×	१	१	×	×	१	१	५	२८ २४, २१ २, १
१०	०	०	१	×	×	×	१	१	×		१	१	४	२८, २४, २१, १
११	०	×	०	×	×	×	×	×	×	×	×	×	३	२८ २४ २१
कुल जोड		२१		२५		४०		९८३		२८८		९९४७	१०१	

नोट—जिन आचार्यों का मत है कि चार प्रकृतिक बंधस्थान मे दो और एक प्रकृतिक उदयस्थान होता है, उनके मत से १२ उदयपद और २४ उदयपदवृन्द बढकर उनकी संख्या क्रम से ९९५ और ९९७१ हो जाती है।

तिर्यंचगति के योग्य वध करने वाले जीवो के सामान्य से २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक पाँच वधस्थान होते है।[१] उनमे से भी एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो का वध करने वाले जीवो के २३, २५ और २६ प्रकृतिक, ये तीन वधम्थान होते है।[२]

उनमे से २३ प्रकृतिक वधम्थान मे तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुड-सस्थान, वर्ण, रस, गध, स्पर्श, अगुरुलघु, उपघात नाम, स्थावर नाम, सूक्ष्म और वादर मे से कोई एक, अपर्याप्त नाम, प्रत्येक और साधारण इनमे से कोई एक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयश.कीर्ति और निर्माण, इन तेईस प्रकृतियो का वध होता है। इन तेईस प्रकृतियो के समुदाय को तेईस प्रकृतिक वधस्थान कहते है और यह वधस्थान अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो का वध करने वाले मिथ्यादृष्टि तिर्यच और मनुष्य को होता है।

यहाँ चार भग प्राप्त होते है। ऊपर वताया है कि वादर और सूक्ष्म मे से किसी एक का तथा प्रत्येक और साधारण मे से किसी एक का वध होता है। अत. यदि किसी ने एक वार वादर के साथ प्रत्येक का और दूसरी वार वादर के साथ साधारण का वध किया। इसी

१—(क) तत्र तिर्यग्गतिप्रायोग्य वध्नत सामान्येन पच वधस्थानानि, तद्यथा त्रयोविंशति पचविंशति पड्विंशति एकोनत्रिंशत् त्रिंशत्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७६

(ख) तिरिक्खगदिणामाए पचट्ठाणाणि तीसाए एगूणतीसाए छव्वीसाए पणुवीसाए तेवीसाए ट्ठाण चेदि।

—जी० चू०, ठा०, सू० ६३

२ तत्राप्येकेन्द्रियप्रायोग्य वध्नतस्त्रीणि वन्धस्थानानि, तद्यथा—त्रयोविंशति: पचविंशति पड्विंशति।

सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७६

प्रकार किसी ने एक वार सूक्ष्म के साथ साधारण का बध किया और दूसरी वार सूक्ष्म के साथ प्रत्येक का वध किया तो इस प्रकार तेईस प्रकृतिक बधस्थान मे चार भग हो जाते हैं।

पच्चीस प्रकृतिक वधस्थान मे तियचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, हुडसस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, स्थावर, वादर और सूक्ष्म मे से कोई एक, पर्याप्त, प्रत्येक और साधारण मे से कोई एक, स्थिर और अस्थिर मे से कोई एक, शुभ और अशुभ मे मे कोई एक, यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से कोई एक, दुभग, अनादेय और निर्माण, इन पच्चीस प्रकृतियो का वध होता है। इन पच्चीस प्रकृतियो के समुदाय को एक पच्चीस प्रकृतिक बधस्थान कहते हैं। यह बधस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतिया का बध करने वाले मिथ्यादृष्टि तियच, मनुष्य और देव के होता है।

इस वधस्थान मे वीस भग होते है। वे इस प्रकार हैं—जब कोई जीव वादर, पर्याप्त और प्रत्येक का बध करता है तब उसके स्थिर और अस्थिर मे मे किसी एक का, शुभ और अशुभ मे से किसी एक का तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से किसी एक का वध होने के कारण आठ भग होते हैं तथा जब कोई जीव वादर, पर्याप्त और साधारण का वध करता है, तब उसके यश कीर्ति का वध न होकर अयश कीर्ति का ही वध होता है—

नो सुहुमतिगेण जस

अर्थात् सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्त इन तीन मे से किसी एक का भी बध होते समय यश कीर्ति का वध नही होता है। जिससे यहाँ यश कीर्ति और अयश कीर्ति के निमित्त से वनने

वाले भग सभव नही है। अव रहे स्थिर-अस्थिर और शुभ-अशुभ, ये दो युगल। सो इनका विकल्प से वंध संभव है यानी स्थिर के साथ एक वार शुभ का, एक वार अशुभ का तथा इसी प्रकार अस्थिर के साथ भी एक वार शुभ का तथा एक वार अशुभ का वध सभव है, अत. यहाँ कुल चार भग होते है। जब कोई जीव सूक्ष्म और पर्याप्त का वंध करता है, तव उसके यश कीर्ति और अयश कीर्ति इनमे से एक अयश कीर्ति का ही वंध होता है किन्तु प्रत्येक और साधारण मे से किसी एक का, स्थिर और अस्थिर मे से किसी एक का तथा शुभ और अशुभ मे से किसी एक का वध होने के कारण आठ भग होते हैं। इस प्रकार पच्चीस प्रकृतिक वंधस्थान मे ८+४+८=२० भग होते है।

छव्वीस प्रकृतियों के समुदाय को छव्वीस प्रकृतिक वंधस्थान कहते है। यह वधस्थान पर्याप्त और वादर एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का आतप और उद्योत मे से किसी एक प्रकृति के साथ वध करने वाले मिथ्यादृष्टि तिर्यंच, मनुष्य और देव को होता है। छव्वीस प्रकृतिक वधस्थान मे ग्रहण की गई प्रकृतियाँ इस प्रकार है—तिर्यंच-गति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस, कार्मण शरीर, हुंडसस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, पराघात, उपघात, उच्छ्-वास, स्थावर, आतप और उद्योत मे से कोई एक, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर मे से कोई एक, शुभ और अशुभ मे से कोई एक, दुर्भग, अनादेय, यश कीर्ति और अयश.कीर्ति मे से कोई एक तथा निर्माण।

इस वंधस्थान मे सोलह भग होते है। ये भंग आतप और उद्योत मे से किसी एक प्रकृति का, स्थिर और अस्थिर मे से किसी एक का, शुभ और अशुभ मे से किसी एक का तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति में से किसी एक का वध होने के कारण वनते है। आतप और उद्योत

के साथ सूक्ष्म और साधारण का बंध नहीं होता है। इसलिये यहां सूक्ष्म और साधारण के निमित्त से प्राप्त होने वाले भंग नहीं कहे गये हैं।

इस प्रकार एकेन्द्रिय प्रायोग्य २३, २५ और २६ प्रकृतिक, इन तीन बंधस्थानों के कुल भंग ४+२०+१६=४० होते हैं। कहा भी है—

चत्तारि वीस सोलस भंगा एगिंदियाण चत्ताला।

अर्थात्—एकेन्द्रिय सम्बन्धी २३ प्रकृतिक बंधस्थान के चार, २५ प्रकृतिक बंधस्थान के बीस और २६ प्रकृतिक बंधस्थान के सोलह भंग होते हैं। ये सब मिलकर चालीस हो जाते हैं।

एकेन्द्रिय प्रायोग्य बंधस्थानों का कथन करने के अनन्तर द्वीन्द्रियों के बंधस्थानों को बतलाते हैं।

द्वीन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों को बांधने वाले जीव के २५, २९ और ३० प्रकृतिक, ये तीन बंधस्थान होते हैं।[1]

जिनका विवरण इस प्रकार है—पच्चीस प्रकृतियों के समुदाय रूप बंधस्थान को पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान कहते हैं। इस स्थान के बंधक अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों को बांधने वाले मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यच होते हैं। पच्चीस प्रकृतियों के बंधस्थान की प्रकृतियों के नाम इस प्रकार हैं—

तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, द्वीन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, हुंडसंस्थान, सेवार्त संहनन, औदारिक अंगोपांग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, त्रस, बादर, अपर्याप्त, प्रत्येक, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयशःकीर्ति और निर्माण। यहां अपर्याप्त प्रकृति के साथ केवल अशुभ प्रकृतियों का ही बंध होता है, शुभ प्रकृतियों का नहीं, जिससे एक ही भंग होता है।

---

१ द्वीन्द्रियप्रायोग्य बध्नतो बंधस्थानानि त्रीणि, तद्यथा—पंचविंशति एकोनत्रिंशत् त्रिंशत्। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७७

उक्त पच्चीस प्रकृतियो मे से अपर्याप्त को कम करके पराघात, उच्छ्‌वास, अप्रशस्त विहायोगति, पर्याप्त और दु.स्वर, इन पाँच प्रकृतियो को मिला देने पर उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। उनतीस प्रकृतियों का कथन इस प्रकार करना चाहिये—तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, द्वीन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, औदारिक अगोपाग, हुडसम्थान, सेवार्त संहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, पराघात, उपघात, उच्छ्‌वास, अप्रशस्त विहायोगति, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर मे से कोई एक, शुभ और अशुभ मे से कोई एक, दुर्भग, दु:स्वर, अनादेय, यश·कीर्ति और अयश.कीर्ति मे से कोई एक, निर्माण। ये उनतीस प्रकृतियाँ उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान मे होती है। यह बधस्थान पर्याप्त द्वीन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो को बाँधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव को होता है।

इस बंधस्थान मे स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यश·कीर्ति अयश:कीर्ति, इन तीनो युगलो मे से प्रत्येक प्रकृति का विकल्प से बध होता है, अत: आठ भङ्ग प्राप्त होते है।

इन उनतीस प्रकृतियो में उद्योत प्रकृति को मिला देने पर तीस प्रकृतिक बधस्थान होता है। इस स्थान को भी पर्याप्त द्वीन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों को बाँधने वाला मिथ्यादृष्टि ही बाधता है। यहाँ भी आठ भङ्ग होते है। इस प्रकार १+८+८=१७ भङ्ग होते हैं।

त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो को बाँधने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के भी पूर्वोक्त प्रकार से तीन-तीन बधस्थान होते है। लेकिन इतनी विशेषता समझना चाहिए कि त्रीन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो मे त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो में चतुरिन्द्रिय जाति कहना चाहिए। भङ्ग भी प्रत्येक के सत्रह-सत्रह है, अर्थात् त्रीन्द्रिय के सत्रह और चतुरिन्द्रिय के सत्रह भङ्ग होते है। इस प्रकार से विकलत्रिक के इक्यावन भङ्ग होते है। कहा भी है—

एगट्ठ अट्ठ विगलिंदियाण इगवण्ण तिण्ह पि ।

अर्थात्—विकलत्रयों में से प्रत्येक में बंधने वाले जो २५, २९ और ३० प्रकृतिक बंधस्थान हैं, उनमें से प्रत्येक में क्रमशः एक, आठ और आठ भंग होते हैं तथा तीनों के मिलाकर कुल इक्यावन भंग होते हैं।

अब तक एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के तिर्यंचगति के बंधस्थानों का कथन किया गया। अब तिर्यंचगति पंचेन्द्रिय के योग्य बंधस्थानों को बतलाते हैं।

तिर्यंचगति पंचेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीव के २५, २९ और ३० प्रकृतिक, ये तीन बंधस्थान होते हैं।[1] इनमें से २५ प्रकृतिक बंधस्थान तो वही है जो द्वीन्द्रिय के योग्य पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान बतला आये हैं। किन्तु वहाँ जो द्वीन्द्रियजाति कही है उसके स्थान पर पंचेन्द्रिय जाति कहना चाहिये। यहाँ एक भंग होता है।

उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान में उनतीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, पंचेन्द्रियजाति, औदारिकशरीर, औदारिक अंगोपांग, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थानों में से कोई एक संस्थान, छह संहननों में से कोई एक संहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति में से कोई एक, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर में से कोई एक, शुभ और अशुभ में से कोई एक, सुभग और दुर्भग में से कोई एक, सुस्वर और दुःस्वर में से कोई एक, आदेय अनादेय में से कोई एक, यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति में से कोई एक तथा निर्माण। यह बंधस्थान पर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का बंधन करने वाले चारों गति

---

१ तिर्यग्गतिपंचेन्द्रियप्रायोग्यं बध्नतस्त्रीणि बंधस्थानानि, तद्यथा—पंचविंशतिः, एकोनत्रिंशत् त्रिंशत् ।   —सप्ततिका प्रकरण टीका पृ० १७७

के मिथ्यादृष्टि जीव को होता है। यदि इस बंधस्थान का बधक सासादन सम्यग्दृष्टि होता है तो उसके आदि के पॉच सहननो मे से किसी एक सहनन का तथा आदि के पाँच सस्थानो मे से किसी एक सस्थान का वंध होता है। क्योकि हुण्डसस्थान और सेवार्त सहनन को सासादन सम्यग्दृष्टि जीव नही वाँधता है—

हुंडं असंपत्त व सासणो न वंधइ।

अर्थात्—सासादन सम्यग्दृष्टि जीव हुडसस्थान और असप्राप्त-संहनन को नही वाँधता है।

इस उनतीस प्रकृतिक बधस्थान मे सामान्य से छह सस्थानो मे से किसी एक सस्थान का, छह सहननो मे से किसी एक सहनन का, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति में से किसी एक विहायोगति का, स्थिर और अस्थिर मे से किसी एक का, शुभ और अशुभ मे से किसी एक का, सुभग और दुर्भग मे से किसी एक का, सुस्वर और दु स्वर मे से किसी एक का, आदेय और अनादेय मे से किसी एक का, यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से किसी एक का बध होता है। अतः इन सब सख्याओ को गुणित कर देने पर—६×६×२×२×२×२×२×२×२=४६०८ भग प्राप्त होते है।

इस स्थान का बधक सासादन सम्यग्दृष्टि भी होता है, किन्तु उसके पाँच सहनन और पॉच सस्थान का वध होता है, इसलिये उसके ५×५×२×२×२×२×२×२×२=३२०० भग प्राप्त होते है। किन्तु इनका अन्तर्भाव पूर्वोक्त भगो में ही हो जाने से इन्हे अलग से नही गिनाया है।

उक्त उनतीस प्रकृतिक बधस्थान मे एक उद्योत प्रकृति को मिला देने पर तीस प्रकृतिक बंधस्थान होता है। जिस प्रकार उनतीस प्रकृतिक बधस्थान मे मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा

विशेषता है, उसी प्रकार यहां भी वही विशेषता समझना चाहिये। यहां भी सामान्य से ४६०८ भंग होते हैं—

'गुणतीसे तीसे वि य भंगा अट्ठाहिया छयालसया।
पंचिंदियतिरिजोगे पणवीसे बंधि भंगिक्को॥'

अर्थात्—पंचेन्द्रिय तिर्यंच के योग्य उनतीस और तीस प्रकृतिक बंधस्थान में ४६०८ और ४६०८ और पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान में एक भंग होता है।

इस प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच के योग्य तीनों बंधस्थानों के कुल भंग ४६०८+४६०८+१=९२१७ होते हैं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच के उक्त ९२१७ भंगों में एकेन्द्रिय के योग्य बंधस्थानों के ४०, द्वीन्द्रिय के योग्य बंधस्थानों के १७, त्रीन्द्रिय के योग्य बंधस्थानों के १७ और चतुरिन्द्रिय के योग्य बंधस्थानों के १७ भंग मिलाने पर तिर्यंचगति सम्बन्धी बंधस्थानों के कुल भंग ९२१७+४० +१७+१७+१७=९३०८ होते हैं।

इस प्रकार से तिर्यंचगति योग्य बंधस्थानों और उनके भंगों को बतलाने के बाद अब मनुष्यगति के बंधस्थानों और उनके भंगों का कथन करते हैं।

मनुष्यगति के योग्य प्रकृतियों को बांधने वाले जीवों के २५, २९ और ३० प्रकृतिक बंधस्थान होते हैं।[1]

पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान वही है जो अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के योग्य बंध करने वाले जीवों को बतलाया है। किन्तु इतनी विशेषता समझना

---

1 (क) मनुष्यगति प्रायोग्यं बध्नतः त्रीणि बंधस्थानानि, तद्यथा—पंचविंशतिः एकोनत्रिंशत् त्रिंशत्। —सप्ततिका प्रकरण टीका पृ० १७८

(ख) मणुसगदिणामाए तिण्णि ट्ठाणाणि तीसाए एगुणतीसाए पणुवीसाए ट्ठाणं चेदि। —जी० चू० ट्ठा०, सूत्र ८४

चाहिये कि यहाँ तिर्यचगति, तिर्यंचानुपूर्वी और द्वीन्द्रिय के स्थान पर मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी और पचेन्द्रिय कहना चाहिये।

उनतीस प्रकृतिक वधस्थान तीन प्रकार का है—एक मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा से, दूसरा सासादन सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से और तीसरा सम्यग्मिथ्यादृष्टि या अविरत सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा से। इनमे से मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि के तिर्यचप्रायोग्य उनतीस प्रकृतिक वधस्थान वताया गया है, उसी प्रकार यहाँ भी समझ लेना चाहिये, किन्तु यहाँ तिर्यंचगतिप्रायोग्य प्रकृतियों के वदले मनुष्यगति के योग्य प्रकृतियो को मिला देना चाहिये।

तीसरे प्रकार के उनतीस प्रकृतिक वधस्थान मे—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वज्रऋपभनाराच सहनन, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर मे से कोई एक, शुभ और अशुभ मे से कोई एक, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश - कीर्ति और अयश कीर्ति मे से कोई एक तथा निर्माण, इन उनतीस प्रकृतियो का वध होता है। इन तीनों प्रकार के उनतीस प्रकृतिक वधस्थान मे सामान्य से ४६०८ भग होते हैं। यद्यपि गुणस्थान के भेद से यहाँ भगो मे भेद हो जाता है, किन्तु गुणस्थान भेद की विवक्षा न करके यहाँ ४६०८ भग कहे गये है।

उक्त उनतीस प्रकृतिक वधस्थान मे तीर्थंकर नाम को मिला देने पर तीस प्रकृतिक वधस्थान होता है। इस वधस्थान में स्थिर और

---

१ एकोनत्रिंशत् त्रिधा—एका मिथ्यादृष्टीन् वधकानाश्रित्य वेदितव्या, द्वितीया सासादनान्, तृतीया सम्यग्मिथ्यादृष्टीन् अविरतसम्यग्दृष्टीन् वा।
—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७८

अस्थिर में से किसी एक का, शुभ और अशुभ में से किसी एक का तथा यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति में से किसी एक का बंध होने से इन सब संख्याओं को गुणित करने पर २×२×२=८ भंग प्राप्त होते हैं। अर्थात् तीस प्रकृतिक बंधस्थान के आठ भंग होते हैं।

इस प्रकार मनुष्यगति के योग्य २५, २९ और ३० प्रकृतिक बंधस्थानों में कुल भंग १+४६०८+८=४६१७ होते हैं—

पणुवीसयम्मि एक्को छायालसया अडुत्तर गुनीसे।
मणुतीसऽट्ठ उ सव्वे छायालसया उ सत्तरसा॥

अर्थात्—मनुष्यगति के योग्य पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान में एक, उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान में ४६०८ और तीस प्रकृतिक बंधस्थान में ८ भंग होते हैं। ये कुल भंग ४६१७ होते हैं।

अब देवगति योग्य बंधस्थानों का कथन करते हैं। देवगति के योग्य प्रकृतियों के बंधक जीवों के २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये चार बंधस्थान होते हैं।[1]

अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान में—देवगति, देवानुपूर्वी, पंचेन्द्रियजाति, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्रसंस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, पराघात, उपघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर और अस्थिर में से कोई एक, शुभ और अशुभ में से कोई एक, सुभग, आदेय, सुस्वर, यशःकीर्ति और अयशःकीर्ति में से कोई एक तथा निर्माण, इन अट्ठाईस प्रकृतियों का बंध होता है। इसीलिये इनके समुदाय को एक बंधस्थान कहते हैं। यह बंधस्थान देवगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले मिथ्यादृष्टि, सासादन सम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत और सर्वविरत जीवों को होता है।

---

[1] देवगतिसहगताः प्रकृतीर्बध्नतः चत्वारि बंधस्थानानि तद्यथा—अष्टाविंशतिः एकोनत्रिंशत् त्रिंशत् एकत्रिंशत्। —सप्ततिका प्रकरण टीका पृ० १७६

इस वंधस्थान मे स्थिर और अस्थिर मे से किसी एक का, शुभ और अशुभ मे से किसी एक का तथा यश.कीर्ति और अयश.कीर्ति में से किसी एक का वंध होता है। अत उक्त संख्याओ को परस्पर गुणित करने पर २×२×२=८ भंग प्राप्त होते हैं।

उक्त अट्ठाईस प्रकृतिक वधस्थान मे तीर्थंकर प्रकृति को मिलाने पर उनतीस प्रकृतिक वधस्थान होता है। तीर्थंकर प्रकृति का वध अविरत सम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानो मे होता है। जिससे यह वंधस्थान अविरत सम्यग्दृष्टि आदि जीवो के ही वनता है। यहाँ भी २८ प्रकृतिक ववस्थान के समान ही आठ भग होते हैं।

तीस प्रकृतियों के समुदाय को तीस प्रकृतिक वधस्थान कहते है। इस वधस्थान में ग्रहण की गई प्रकृतियाँ इस प्रकार है—देवगति, देवानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, आहारकद्विक वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, शुभ, स्थिर, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश.कीर्ति और निर्माण। इसका वंधक अप्रमत्तसयत या अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती को जानना चाहिये।[1] इस स्थान मे सव शुभ कर्मो का वंध होता है, अतः यहाँ एक ही भंग होता है।

तीस प्रकृतिक वंधस्थान मे एक तीर्थंकर नाम को मिला देने पर इकतीस प्रकृतिक वधस्थान होता है। यहाँ भी एक ही भग होता है। इस प्रकार देवगति के योग्य वंधस्थानो मे ८+८+१+१=१८ भंग होते हैं। कहा भी है—

अट्ठऽट्ठ एक्क एक्कग भंगा अट्ठार देवजोगेसु।

---

१ एतच्च देवगतिप्रायोग्य वध्नतोऽप्रमत्तसयतस्याऽपूर्वकरणस्य वा वेदितव्यम्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १७९

चउ पणवीसा सोलस नव वाणउईसया य अडयाला ।
एयालुत्तर छायालसया एक्केक्क वंधविही ॥२५॥

शब्दार्थ—चउ—चार, पणवीसा—पच्चीस, सोलस—सोलह, नव—नौ, वाणउईसया—वानवैसौ, य—और, अडयाला—अडतालीस, एयालुत्तर छायालसया—छियालीस सौ एकतालीस, एक्केक—एक-एक, वंधविही—वध के प्रकार, भग ।

गाथार्थ—तेईस प्रकृतिक आदि वधस्थानो मे क्रम में चार, पच्चीस, सोलह, नौ, वानवैसौ अडतालीस, छियालीस सौ इकतालीस, एक और एक भंग होते है ।

विशेषार्थ—पूर्व गाथा में नामकर्म के वधस्थानो का विवेचन करके प्रत्येक के भगो का उल्लेख किया है । परन्तु उनसे प्रत्येक वधस्थान के समुच्चय रूप से भगो का वोध नही होता है। अत. प्रत्येक वधस्थान के समुच्चय रूप से भंगों का वोध इस गाथा द्वारा कराया जा रहा है ।

नामकर्म के पूर्व गाथा मे २३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक, ये आठ वधस्थान वतलाये गये है और इस गाथा मे सामान्य से प्रत्येक वधस्थान के भगो की अलग-अलग सख्या वतला दी गई है कि किस वंधस्थान मे कितने भग होते है। किन्तु यह स्पष्ट नही होता है कि वे किस प्रकार होते है। अत· उन भगो के होने का विचार पूर्व मे वताये गये वधस्थानो के क्रम से करते है ।

पहला वधस्थान तेईस प्रकृतिक है । इस स्थान में चार भग होते है । क्योकि यह स्थान अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो के वाधने वाले जीव के ही होता है, अन्यत्र तेईस प्रकृतिक वधस्थान नही पाया जाता है। इसके चार भंग पहले वता आये है। अत· तेईस प्रकृतिक वंधस्थान मे वे ही चार भंग जानना चाहिये ।

पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान मे कुल पच्चीस भंग होते है। क्योकि एकेंद्रिय के योग्य पच्चीस प्रकृतियो का बंध करने वाले जीव के बीस भंग होते है तथा अपर्याप्त द्वींद्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिंद्रिय, तिर्यंच पचेंद्रिय और मनुष्यगति के योग्य पच्चीस प्रकृतियो का बंध करने वाले जीवो के एक एक भंग होते है। अत पूर्वोक्त बीस भंगो मे इन पाच भंगो को मिलाने पर पच्चीस प्रकृतिक बंधस्थान मे कुल पच्चीस भंग होते हैं।

छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थान के कुल सोलह भंग है। क्योकि यह एकेंद्रिय के योग्य प्रकृतियो का बंध करने वाले जीव के ही होता है और एकेन्द्रियप्रायोग्य छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थान मे पहले सोलह भंग बता आये हैं अत वे ही सोलह भंग इस छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थान मे जानना चाहिये।

अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान मे कुल नौ भंग होते हैं। क्योकि देवगति के योग्य प्रकृतियो का बंध करने वाले जीव के २८ प्रकृतिक बंधस्थान के आठ भंग होते हैं और नरकगति के योग्य प्रकृतियो का बंध करने वाले जीव के अट्ठाईस प्रकृतिक बंधस्थान का एक भंग। यह स्थान देव और नारक के सिवाय अन्य जीवो को किसी भी प्रकार से प्राप्त नहीं होता है। अत इसके कुल नौ भंग होते हैं।

उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान के ६२४८ भंग होते हैं। इसका कारण यह है कि तिर्यंच पचेंद्रिय के योग्य उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान के ४६०८ भंग होते हैं तथा मनुष्यगति के योग्य उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान के ४६०८ भंग हैं और द्वींद्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय के योग्य एव तीर्थंकर नाम सहित देवगति के योग्य उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान के आठ आठ भंग होते हैं। इस प्रकार उक्त सब भंगो को मिलाने पर उनतीस प्रकृतिक बंधस्थान के कुल भंग ४६०८+४६०८+८+८+८+८=९२४८ होते हैं।

तीस प्रकृतिक वन्धस्थान के कुल भंग ४६४१ होते है। क्योकि तिर्यचगति के योग्य तीस प्रकृतिक वध करने वाले के ४६०८ भग होते हैं तथा द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और मनुष्यगति के योग्य तीस प्रकृति का व ध करने वाले जीवो के आठ-आठ भग है और आहारक के साथ देवगति के योग्य तीस प्रकृति का वन्ध करने वाले के एक भग होता है। इस प्रकार उक्त भगो को मिलाने पर तीस प्रकृतिक वन्धस्थान के कुल भग ४६०८+८+८+८+८+१=४६४१ होते हैं।

इकतीस प्रकृतिक और एक प्रकृतिक वन्धस्थान का एक-एक भग होता है।

इस प्रकार से इन सव वन्धस्थानो के भग १३९४५ होते है। वे इस तरह समझना चाहिये—४+२५+१६+९+९२४८+४६४१+१+१=१३९४५।

नामकर्म के वन्धस्थान और उनके कुल भगों का विवरण पृष्ठ १५९ की तालिका मे देखिये।

नामकर्म के वधस्थानो का कथन करने के पश्चात् अव उदयस्थानो को वतलाते है।

वीसिगवीसा चउवीसगाइ एगाहिया उ इगतीसा।
उदयट्ठाणाणि भवे नव अट्ठ य हुंति नामस्स ॥[1] २६॥

---

१ तुलना कीजिये—

(क) अडनववीसिगवीमा चउवीमेगहिय जाव इगितीसा।
चउगइएसु वारस उदयट्ठाणाइ नामस्स ॥
—पंचसंग्रह सप्ततिका, गा० ७३

(ख) वीसं इगिचउवीस तत्तो इकितीसओ त्ति एयविय।
उदयट्ठाणा एव णव अट्ठ य होंति णामस्स ॥
—गो० कर्मकांड, ५९२

क्रम	बंधस्थान	भंग १३९४५	आगामी भवप्रायोग्य	बंधक
१	२३	४	अपर्याप्त एकेन्द्रिय प्रायोग्य ४	तिर्यंच, मनुष्य ४
२	२५	२५	एकेन्द्रिय २०, द्वीन्द्रिय १, त्रीन्द्रिय १, चतुरिन्द्रिय १, पंचेन्द्रिय तिर्यंच १, मनुष्य १	तिर्यंच, मनुष्य २५, देव ८
३	२६	१६	पर्याप्त एकेन्द्रिय प्रायोग्य १६	तिर्यंच, मनुष्य व देव १६
४	२८	९	देवगति प्रायोग्य ८, नरकगति प्रायोग्य १	पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य ९
५	२९	९२४८	द्वीन्द्रिय ८, त्रीन्द्रिय ८, च ८, पं० ति ४६०८, मनुष्य ४६०८, देव ८	तिर्यंच ९२४०, मनुष्य ९२४८, देव ९२१६, ना ९२१६
६	३०	४६४१	द्वी ८, त्री ८, च ८, प ति ४६०८, मनुष्य ८, देव १	तिर्यंच ४६३२, मनुष्य ४६३३ देव ४६१६, ना ४६१६
७	३१	१	देव प्रायोग्य १	मनुष्य १
८	१	१	अप्रायोग्य १	मनुष्य १

शब्दार्थ—वीसिगवीसा—वीस और इक्कीस का, चउवीसगाइ—चौवीस से लेकर, एगाहिया—एक-एक अधिक, य—और, इगतीसा—इकतीस तक, उदयट्ठाणाणि—उदयस्थान, भवे—होते हैं, नव अट्ठय —नौ और आठ प्रकृति का, हुंति—होते है, नामस्स—नामकर्म के।

गाथार्थ—नामकर्म के वीस, इक्कीस और चौवीस से लेकर एक, एक प्रकृति अधिक इकतीस तक तथा आठ और नौ प्रकृतिक, ये वारह उदयस्थान होते है।

विशेषार्थ—नामकर्म के वधस्थान वतलाने के वाद इस गाथा मे उदयस्थान वतलाये है। वे उदयस्थान वारह है। जिनकी प्रकृतियो की सख्या इस प्रकार है—२०, २१, २४, २५, २६, २७, २८, २६, ३०, ३१, ८ और ९। इन उदयस्थानों का स्पष्टीकरण तिर्यंच, मनुष्य, देव और नरकगति के आधार से नीचे किया जा रहा है।

नामकर्म के जो वारह उदयस्थान कहे है, उनमे से एकेन्द्रिय जीव के २१, २४, २५, २६ और २७ प्रकृतिक, ये पॉच उदयस्थान होते है। यहाँ तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्णचतुष्क और निर्माण ये वारह प्रकृतियाँ उदय की अपेक्षा ध्रुव हैं। क्योंकि तेरहवे सयोगिकेवली गुणस्थान तक इनका उदय नियम से सवको होता है। इन ध्रुवोदया वारह प्रकृतियों मे तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, स्थावर, एकेन्द्रिय जाति, वादर-सूक्ष्म मे से कोई एक, पर्याप्त-अपर्याप्त मे से कोई एक, दुर्भग, अनादेय तथा यशःकीर्तिअयश कीर्ति मे से कोई एक, इन नौ प्रकृतियो के मिला देने पर इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान भव के अपान्तराल में विद्यमान एकेन्द्रिय के होता है।

इस उदयस्थान मे पाच भग होते है, जो इस प्रकार है—वादर र्याप्त, वादर अपर्याप्त, सूक्ष्म पर्याप्त, सूक्ष्म अपर्याप्त, इन चारों

भगों को अयश कीर्ति के साथ कहना चाहिये जिससे चार भंग होते हैं तथा बादर पर्याप्त को यश कीर्ति के साथ कहने पर एक भंग और होता है। इस प्रकार कुल पांच भंग होते हैं। यद्यपि उपर्युक्त २१ प्रकृतियों में विकल्परूप तीन युगल होने के कारण २×२×२=८ भंग होते हैं। किन्तु सूक्ष्म और अपर्याप्त के साथ यश कीर्ति का उदय नहीं होता है, जिससे तीन भंग कम हो जाते हैं। भव के अपान्तराल में पर्याप्तियों का प्रारम्भ ही नहीं होता, फिर भी पर्याप्त नामकर्म का उदय पहले समय से ही हो जाता है और इसलिये अपान्तराल में विद्यमान ऐसा जीव लब्धि से पर्याप्तक ही होता है, क्योंकि उसके आगे पर्याप्तियों की पूर्ति नियम से होती है।

इन इक्कीस प्रकृतियों में औदारिक शरीर, हुंडसंस्थान, उपघात तथा प्रत्येक और साधारण इनमें से कोई एक, इन चार प्रकृतियों को मिलाने पर तथा तिर्यंचानुपूर्वी प्रकृति को कम कर देने से शरीरस्थ एकेन्द्रिय जीव के चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ पूर्वोक्त पांच भंगों को प्रत्येक और साधारण से गुणा करके पर दस भंग होते हैं तथा वायुकायिक जीव के वैक्रिय शरीर को करते समय औदारिक शरीर के स्थान पर वैक्रिय शरीर का उदय होता है, अतः इसके वैक्रिय शरीर के साथ भी चौबीस प्रकृतियों का उदय और इसके केवल बादर, पर्याप्त, प्रत्येक और अयश कीर्ति, ये प्रकृतियाँ ही कहना चाहिये, इसलिये इसकी अपेक्षा एक भंग हुआ। तेजस्कायिक और वायुकायिक जीव के साधारण और यश कीर्ति का उदय नहीं होता अतः वायुकायिक को इसकी अपेक्षा भंग नहीं बनाये हैं। इस प्रकार चौबीस प्रकृतिक उदयस्थान में कुल ग्यारह भंग होते हैं।

अनन्तर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हो जाने के बाद २४ प्रकृतिक उदयस्थान के साथ पराघात प्रकृति को मिला देने पर २५ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ बादर के प्रत्येक और साधारण तथा यश

कीर्ति और अयश कीर्ति के निमित्त से चार भंग होते है तथा सूक्ष्म के प्रत्येक और साधारण की अपेक्षा अयश:कीर्ति के साथ दो भग होते है। जिससे छह भग तो ये हुए तथा वैक्रिय शरीर को करने वाला वादर वायुकायिक जीव जव शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हो जाता है, तव उसके २४ प्रकृतियो मे पराघात के मिलाने पर पच्चीस प्रकृतियों का उदय होता है। इसलिये एक भंग इसका होता है। इस प्रकार पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान में सब मिलकर सात भग होते है।

अनन्तर प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के पूर्वोक्त २५ प्रकृतियो मे उच्छ्वास के मिलाने पर छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहां भी पूर्व के समान छह भंग होते है। अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जिस जीव के उच्छ्वास का उदय न होकर आतप और उद्योत मे से किसी एक का उदय होता है, उसके छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी छह भंग होते है। वे इस प्रकार है—आतप और उद्योत का उदय वादर के ही होता है, सूक्ष्म के नही, अत: इनमे से उद्योत सहित वादर के प्रत्येक और साधारण तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति, इनकी अपेक्षा चार भग हुए तथा आतप सहित प्रत्येक के यश कीर्ति और अयश.कीर्ति, इनकी अपेक्षा दो भग हुए। इस प्रकार कुल छह भंग हुए। आतप का उदय वादर पृथ्वीकायिक के ही होता है, किन्तु उद्योत का उदय वनस्पतिकायिक के भी होता है और वादर वायुकायिक के वैक्रिय शरीर को करते समय उच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त होने पर २५ प्रकृतियो मे उच्छ्वास को मिलाने पर २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। अत यह एक भंग हुआ। इतनी विशेपता समझना चाहिये कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो के आतप, उद्योत और यश कीर्ति का उदय नही होता है। इस प्रकार छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल १३ भग होते हैं।

उक्त छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान मे प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त जीव के आतप और उद्योत मे से किसी एक प्रकृति के मिला देने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भी छह भग होते हैं, जिनका स्पष्टीकरण आतप और उद्योत मे से किसी एक प्रकृति के साथ छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान मे किया जा चुका है।

इस प्रकार एकेन्द्रिय के पाच उदयस्थानो के कुल भग ५+११+७+१३+६=४२ होते हैं। इसकी सग्रह गाथा मे कहा भी है—

> एगिदयउदएसु पच य एक्कार सत्त तेरस या।
> छक्कं कमसो भगा बायला हुति सव्वे वि॥

अर्थात् एकेन्द्रिय के जो २१, २४, २५, २६ और २७ प्रकृतिक पाँच उदयस्थान बतलाये हैं उनमे क्रमश ५, ११, ७, १३ और ६ भग होते हैं और उनका कुल जोड ४२ होता है।

इस प्रकार से एकेन्द्रिय तिर्यंचो के उदयस्थानो का कथन करने के बाद अब विकलत्रिक और पचेन्द्रिय तियचो के उदयस्थानो को बतलाते है।

द्वीन्द्रिय जीवो के २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते हैं।

पहले जो नामकर्म की बारह ध्रुवोदय[1] प्रकृतियाँ बतला आये हैं, उनमे तियचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, द्वीन्द्रियजाति, त्रस, बादर पर्याप्त और अपर्याप्त मे से कोई एक, दुभग, अनादेय तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से कोई एक, इन नौ प्रकृतियो को मिलाने पर इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान भव के अपान्तराल मे विद्यमान जीव के होता है। यहाँ तीन भग होते हैं क्योकि अपर्याप्त

---

[1] तैजस, कार्मण, अगुरुलघु स्थिर, अस्थिर शुभ अशुभ वर्णचतुष्क और निर्माण ये बारह प्रकृतियाँ उदय की अपेक्षा ध्रुव है।

के एक अयश:कीर्ति का उदय होता है, अत: एक भंग हुआ तथा पर्याप्त के यश:कीर्ति और अयश:कीर्ति के विकल्प से इन दोनो का उदय होता है अत: दो भग हुए। इस प्रकार इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल तीन भंग हुए।

इस इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान मे औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपाग, हुडसंस्थान सेवार्तसंहनन, उपघात और प्रत्येक इन छह प्रकृतियों को मिलाने और तिर्यचानुपूर्वी को कम करने पर शरीरस्थ द्वीन्द्रिय जीव के छव्वीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान के भगो के समान तीन भग होते हैं।

छव्वीस प्रकृतिक उदयस्थान मे शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए द्वीन्द्रिय जीव के अप्रशस्त विहायोगति और पराघात इन दो प्रकृतियो के मिला देने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ यश:कीर्ति और अयश:कीर्ति की अपेक्षा दो भंग होते हैं। इसके अपर्याप्त नाम का उदय न होने से उसकी अपेक्षा भग नही कहे हैं।

अनन्तर श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से पर्याप्त होने पर पूर्वोक्त २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे उच्छ्वास प्रकृतिक के मिलाने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होना है। यहाँ भी यश कीर्ति और अयश.कीर्ति की अपेक्षा दो भग होते है अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उद्योत का उदय होने पर उच्छ्वास के विना २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी यश:कीर्ति और अयश:कीर्ति की अपेक्षा दो भग हो जाते हैं। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल चार भग होते है।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास सहित २९ प्रकृतियो मे सुस्वर और दु:स्वर इनमे से कोई एक के मिला देने पर ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ पर सुस्वर और दु:स्वर तथा यश.-कीर्ति और अयश:कीर्ति के विकल्प मे चार भग होते है अथवा प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के स्वर का उदय न होकर यदि

उसके स्थान पर उद्योत का उदय हो गया तो भी ३० प्रकृतिक उदय स्थान होता है। यहां यश कीर्ति और अयश कीर्ति के विकल्प से दो ही भंग होते हैं। इस प्रकार तीस प्रकृतिक उदयस्थान में छह भंग होते हैं।

अनन्तर स्वर सहित ३० प्रकृतिक उदयस्थान में उद्योत के मिलाने पर इकतीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहां सुस्वर और दुःस्वर तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति के विकल्प से चार भंग होते हैं।

इस प्रकार द्वीन्द्रिय जीवों के छह उदयस्थानों (२१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक) में क्रमशः ३+३+२+४+६+४ कुल २२ भंग होते हैं। इसी प्रकार से त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों में से प्रत्येक के छह छह उदयस्थान और उनके भंग घटित कर लेना चाहिये। अर्थात् द्वीन्द्रिय की तरह ही त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवों के भी प्रकृतिक उदयस्थान तथा उनमें से प्रत्येक के भंग समझना चाहिये, लेकिन इतनी विशेषता कर लेना चाहिये कि द्वीन्द्रिय जाति के स्थान पर त्रीन्द्रिय के लिये त्रीन्द्रिय जाति और चतुरिन्द्रिय के लिये चतुरिन्द्रिय जाति का उल्लेख कर लेवें।

कुल मिलाकर विकलत्रिकों के ६६ भंग होते हैं। कहा भी है—

तिग तिग चुग चऊ छ च्चउ विगलाण छसट्ठि होइ तिण्ह पि।

अर्थात् द्वीन्द्रिय आदि में से प्रत्येक के २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक ये छह उदयस्थान हैं और उनके क्रमशः ३, ३, २, ४, ६ और ४ भंग होते हैं, जो मिलकर २२ हैं और तीनों के मिलाकर कुल २२×३=६६ भंग होते हैं।

अब तिर्यंच पंचेन्द्रियों के उदयस्थानों को बतलाते हैं। तिर्यंच पंचेन्द्रियों के २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदय स्थान होते हैं।

इन छह उदयस्थानो में से २१ प्रकृतिक उदयस्थान नामकर्म की बारह ध्रुवोदया प्रकृतियो के साथ तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त और अपर्याप्त मे से कोई एक, सुभग और दुर्भग मे से कोई एक, आदेय और अनादेय मे से कोई एक, यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से कोई एक, इन नौ प्रकृतियो को मिलाने से बनता है। यह उदयस्थान अपान्तराल मे विद्यमान तिर्यंच पचेन्द्रिय के होता है। इसके नौ भंग होते हैं। क्योकि पर्याप्त नामकर्म के उदय मे सुभग और दुर्भग मे से किसी एक का, आदेय और अनादेय मे से किसी एक का तथा यश कीर्ति और अयश.कीर्ति मे से किसी एक का उदय होने से २×२×२=८ भग हुए तथा अपर्याप्त नामकर्म के उदय मे दुर्भग, अनादेय और अयश·कीर्ति, इन तीन अशुभ प्रकृतियो का ही उदय होने से एक भग होता है।

इस प्रकार २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल नौ भंग होते है।

किन्ही आचार्यो का यह मत है कि सुभग के साथ आदेय का और दुर्भग के साथ अनादेय का ही उदय होता है। अत इस मत के अनुसार पर्याप्त नामकर्म के उदय मे इन दोनो युगलों को यश कीर्ति और अयश·कीर्ति, इन दो प्रकृतियो से गुणित कर देने पर चार भग होते है तथा अपर्याप्त का एक, इस प्रकार २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल पाच भंग होते है। इसी प्रकार मतान्तर से आगे के उदयस्थानो मे भी भगो की विषमता समझना चाहिये।[१]

---

१ अपरे पुनराह —सुभगाऽऽदेये युगपदुदयमायात दुर्भगाऽनादेये च, तत पर्याप्तकस्य सुभगाऽऽदेययुगलदुर्भगाऽनादेययुगलाभ्या यश -कीर्ति-अयश कीर्ति भ्या च चत्वारो भगा अपर्याप्तकस्य त्वेक इति, सर्वसख्यया पच। एवमुत्तरत्रापि मतान्तरेण भगवैपम्य स्वधिया परिभावनीयम्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ १८३

शरीरस्थ तिर्यच पचेंद्रिय के २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। उक्त २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, छह संस्थानो मे से कोई एक संस्थान, छह संहननो मे से कोई एक संहनन, उपघात और प्रत्येक, इन छह प्रकृतियो को मिलाने तथा तिर्यंचानुपूर्वी के निकाल देने पर यह २६ प्रकृतिक उदयस्थान बनता है।

इस २६ प्रकृतिक उदयस्थान के भंग २८९ होते है। क्योकि पर्याप्त के छह संस्थान, छह संहनन और सुभग आदि तीन युगलो की संख्या को परस्पर गुणित करने पर ६×६×२×२×२=२८८ भंग होते हैं तथा अपर्याप्त के हुंडसंस्थान, सेवार्त संहनन, दुर्भग, अनादेय और अयशःकीर्ति का ही उदय होता है अतः यह एक भंग हुआ। इस प्रकार २६ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल २८९ भङ्ग होते हैं।

शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के इस छब्बीस प्रकृतिक उदयस्थान में पराघात और प्रशस्त व अप्रशस्त विहायोगति मे से कोई एक इस प्रकार इन दो प्रकृतियो के मिलाने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके भङ्ग ५७६ होते हैं। क्योकि पूर्व में पर्याप्त के जो २८८ भङ्ग बतलाये हैं उनको प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति से गुणित करने पर २८८×२=५७६ होते हैं।

उक्त २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे उच्छ्वास को मिला देने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके भी पहले के समान ५७६ भंग होते हैं। अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास का उदय नही होता है, इसलिए उसके स्थान पर उद्योत का मिलाने पर भी २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके भी ५७६ भंग होते हैं। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल भंग ५७६+५७६=११५२ होते हैं।

उक्त २९ प्रकृतिक उदयस्थान में भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए

जीव के सुस्वर और दु:स्वर में से किसी एक को मिलाने पर ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके ११५२ भंग होते हैं। क्योकि पहले २९ प्रकृतिक स्थान के उच्छ्वास की अपेक्षा ५७६ भग वतलाये है, उन्हे स्वरद्विक से गुणित करने पर ११५२ भंग होते है अथवा प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के जो २९ प्रकृतिक उदयस्थान वतलाया है, उसमे उद्योत को मिलाने पर ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके पहले की तरह ५७६ भग होते हैं। इस प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान के कुल भङ्ग १७२८ प्राप्त होते हैं।

स्वर सहित ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत नाम को मिला देने पर ३१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके कुल भंग ११५२ होते है। क्योकि स्वर प्रकृति सहित ३० प्रकृतिक उदयस्थान के जो ११५२ भग कहे है, वे ही यहाँ प्राप्त होते है।

इस प्रकार सामान्य तिर्यंच पचेन्द्रिय के छह उदयस्थान और उनके कुल भङ्ग ९+२८९+५७६+११५२+१७२८+११५२=४९०६ होते है।

अव वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यंच पचेन्द्रिय की अपेक्षा वधस्थान और उनके भङ्गों को वतलाते है।

वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यंच पचेन्द्रियो के २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते है।

पहले जो तिर्यंच पचेन्द्रिय के २१ प्रकृतिक उदयस्थान वतलाया है, उसमे वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपाग, समचतुरस्र संस्थान, उपघात और प्रत्येक इन पाँच प्रकृतियो को मिलाने तथा तिर्यंचानुपूर्वी के निकाल देने पर पच्चीस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे सुभग और दुर्भग मे से किसी एक का, आदेय और अनादेय मे से किसी एक का तथा यश:कीर्ति और अयश:कीर्ति

मे स किसी एक का उदय होने के कारण २×२×२=८ भङ्ग होते हैं।

अनन्तर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के पराघात और प्रशस्त विहायोगति इन दो प्रकृतियो को २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे मिला देने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है यहाँ भी पूर्ववत् आठ भङ्ग होते है।

उक्त २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास प्रकृति को मिला देने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पहले के समान आठ भङ्ग होते हैं। अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के यदि उद्योत का उदय हो तो भी २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है, यहा भी आठ भङ्ग होते हैं। इस प्रकार २८ प्रकृतिक उदयस्थान के सोलह भङ्ग होते है।

अनन्तर भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास सहित २८ प्रकृतियो मे सुस्वर के मिलाने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी आठ भङ्ग होते हैं। अथवा प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास सहित २८ प्रकृतियो मे उद्योत को मिलाने पर भी २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके भी आठ भङ्ग होते हैं। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल सोलह भङ्ग होते हैं।

अनन्तर सुस्वर सहित २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत को मिलाने पर ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसके भी आठ भङ्ग होते हैं।

इस प्रकार वैक्रिय शरीर को करने वाले पंचेन्द्रिय तिर्यंचो के कुल उदयस्थान २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक और उनके कुल भङ्ग ८+८+१६+१६+८=५६ होते हैं। इन ५६ भङ्गो को पहले के सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यंच के ४९०६ भङ्गो मे मिलाने पर सब तिर्यंचो के कुल उदयस्थानो के ४९६२ भङ्ग होते हैं।

इस प्रकार से तिर्यचो के एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक के भेदो मे उदयस्थान और उनके भङ्गो को वतलाने के पश्चात् अव मनुष्य-गति की अपेक्षा उदयस्थान व भङ्गो का कथन करते है।

मनुष्यो के उदयस्थानो का कथन सामान्य, वैक्रियशरीर करने वाले, आहारक शरीर करने वाले और केवलज्ञानी की अपेक्षा अलग-अलग किया जा रहा है।

सामान्य मनुष्य—सामान्य मनुष्यो के २१, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पॉच उदयस्थान होते है। ये सब उदयस्थान तिर्यच पचेन्द्रियो के पूर्व मे जिस प्रकार कथन कर आये हैं, उसी प्रकार मनुष्यो को भी समझना चाहिये, किन्तु इतनी विशेपता है कि मनुष्यो के तिर्यंचगति, तिर्यचानुपूर्वी के स्थान पर मनुष्यगति और मनुष्यानु-पूर्वी का उदय कहना चाहिये और २९ व ३० प्रकृतिक उदयस्थान उद्योत रहित कहना चाहिये, क्योकि वैक्रिय और आहारक सयतो को छोडकर शेप मनुष्यो के उद्योत का उदय नही होता है। इसलिये तिर्यचो के जो २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे ११५२ भङ्ग कहे उनके स्थान पर मनुष्यो के कुल ५७६ भङ्ग होते है। इसी प्रकार तिर्यचो के जो ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे १७२८ भङ्ग कहे, उनके स्थान पर मनुष्यो के कुल ११५२ भङ्ग प्राप्त होगे।

इस प्रकार सामान्य मनुष्यो के पूर्वोक्त पाँच उदयस्थानो के कुल ९+२८९+५७६+५७६+११५२=२६०२ भङ्ग होते है।

वैक्रिय शरीर करने वाले मनुष्य—वैक्रिय शरीर को करने वाले मनुष्यों के २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते हैं। वारह ध्रुवोदय प्रकृतियो के साथ मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, समचतुरस्र, सस्थान, उपघात, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, सुभग और दुर्भग मे से कोई एक, आदेय और अनादेय मे से कोई एक तथा यश कीर्ति और अयश.कीर्ति मे से कोई

एक, इन तेरह प्रकृतियो को मिलाने पर २५ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा सुभग और दुर्भग का, आदेय और अनादेय का तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति का उदय विकल्प से होता है। अत २×२×२=८ आठ भङ्ग होते हैं। वैक्रिय शरीर को करने वाले देशविरत और सयतो के शुभ प्रकृतियो का उदय होता है।

उक्त २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के पराघात और प्रशस्त विहायोगति, इन दो प्रकृतियो को मिलाने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भी २५ प्रकृतिक उदयस्थान की तरह आठ भङ्ग होते हैं।

अनन्तर प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास के मिलाने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भी आठ भङ्ग होते हैं। अथवा उत्तर वैक्रिय शरीर को करने वाले सयतो के शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त होने पर पूर्वोक्त २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत को मिलाने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। सयत जीवो के दुर्भग, अनादेय और अयश कीर्ति, इन तीन अशुभ प्रकृतियो का उदय न होने से यहा एक ही भङ्ग होता है। इस प्रकार २८ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल नौ भङ्ग होते हैं।

२८ प्रकृतिक उदयस्थान मे सुस्वर के मिलाने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी आठ भङ्ग होते हैं। अथवा सयतो के स्वर के स्थान पर उद्योत को मिलाने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसका एक ही भङ्ग होता है। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल ९ भङ्ग होते हैं।

सुस्वर सहित २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे सयतो के उद्योत नाम कर्म को मिलाने पर ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसका सिर्फ एक भङ्ग होता है।

इस प्रकार वैक्रिय शरीर करने वाले मनुष्यो के २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, पाँच उदयस्थान होते है और इन उदयस्थानो के क्रमश: ८+८+९+९+१=कुल ३५ भङ्ग होते है।[1]

आहारक संयत—आहारक सयतो के २५, २७, २८, २९, और ३० प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते है।

पहले मनुष्यगति के उदययोग्य २१ प्रकृतियाँ बतलाई गई है, उनमे आहारक शरीर, आहारक अगोपाग, समचतुरस्र संस्थान, उपघात और प्रत्येक, इन पाच प्रकृतियो को मिलाने तथा मनुष्यानुपूर्वी को कम करने पर २५ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। आहारक शरीर के समय प्रशस्त प्रकृतियो का ही उदय होता है, क्योकि आहारक सयतो के अप्रशस्त प्रकृतियो—दुर्भग दुस्वर और अयश कीर्ति प्रकृति का उदय नही होता है। इसलिए यहाँ एक ही भङ्ग होता है।

अनन्तर उक्त २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त

---

१ गो० कर्मकाड मे वैक्रिय शरीर और वैक्रिय अगोपाग का उदय देव और नारको को बतलाया है, मनुष्यो और तिर्यंचो को नही। अतएव वहाँ वैक्रिय शरीर की अपेक्षा से मनुष्यो के २५ आदि प्रकृतिक उदयस्थान और उनके भगो का निर्देश नही किया है। इसी कारण से वहाँ वायुकायिक और पचेन्द्रिय तिर्यंच के भी वैक्रिय शरीर की अपेक्षा उदयस्थानो और उनके भगो को नही बताया। यद्यपि इस सप्ततिका प्रकरण मे एकेन्द्रिय आदि जीवो के उदयप्रायोग्य नामकर्म की बध प्रकृतियो का निर्देश नही किया है तथापि टीका से ऐसा प्रतीत होता है कि वहाँ देवगति और नरकगति की उदययोग्य प्रकृतियो मे ही वैक्रिय शरीर और वैक्रिय अगोपाग का ग्रहण किया गया है। जिससे ऐसा ज्ञात होता है कि तिर्यंच और मनुष्यो के वैक्रिय शरीर और वैक्रिय अगोपाग का उदय नही होना चाहिए, तथापि कर्मप्रकृति के उदीरणा प्रकरण की गाथा ८ से इस बात का समर्थन होता है कि यथासम्भव तिर्यंच और मनुष्यो के भी इन दो प्रकृतियो का उदय व उदीरणा होती है।

हुए जीव के पराघात और प्रशस्त विहायोगति, इन दो प्रकृतियो के मिला देने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भी एक ही भङ्ग होता है।

२७ प्रकतिक उदयस्थान मे शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास नाम को मिलाने पर २८ प्रकतिक उदयस्थान होता है। इसका भी एक ही भङ्ग होता है। अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के पूर्वोक्त २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत को मिलाने पर २८ प्रकतिक उदयस्थान होता है। इसका भी एक भङ्ग होता है। इस प्रकार २८ प्रकृतिक उदयस्थान के दो भङ्ग हुए।

अनन्तर भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास सहित २८ प्रकतिक उदयस्थान मे सुस्वर के मिलाने पर २९ प्रकतिक उदयस्थान होता है। इसका एक भङ्ग है। अथवा प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के सुस्वर के स्थान पर उद्योत नाम को मिलाने पर २९ प्रकतिक उदयस्थान होता है। इसका भी एक भङ्ग है। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान के दो भङ्ग होते हैं।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के स्वरसहित २९ प्रकतिक उदयस्थान म उद्योत को मिलाने पर ३० प्रकतिक उदयस्थान होता है। इसका भी एक भङ्ग होता है।

इस प्रकार आहारक सयता के २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकतिक ये पाँच उदयस्थान होते हैं और इन पाच उदयस्थानो के क्रमश १+१+२+२+१=७ भग होते है।[1]

---

१ गो० कर्मकाड की गाथा २९७ से ज्ञात होता है कि पाचवें गुणस्थान तक के जीवों के ही उद्योत प्रकृति का उदय होता है—

"देस तदियकसाया तिरियाउज्जोवणीचतिरियगदी।"

तथा गाथा २८६ से यह भी ज्ञात होता है कि उद्योत प्रकृति का उदय तिर्यचगति म ही होता है—

१२,१२ भङ्ग होते हैं। किन्तु वे सामान्य मनुष्यों के उदयस्थानो मे सम्भव होने से उनकी अलग से गिनती नही की है।

९ प्रकृतिक उदयस्थान मे मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, वादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश कीर्ति और तीर्थकर, इन नौ प्रकृतियो का उदय होता है। यह नौ प्रकृतिक उदयस्थान तीर्थकर केवली के अयोगिकेवली गुणस्थान मे प्राप्त होता है। इस उदयस्थान में से तीर्थंकर प्रकृति को घटा देने पर आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह अयोगिकेवली गुणस्थान मे अतीर्थकर केवली के होता है।

यहाँ केवली के उदयस्थानो मे २०,२१,२७,२९,३०,३१, ९ और ८ इन आठ उदयस्थानो का एक-एक विशेष भङ्ग होता है। अत आठ भङ्ग हुए। इनमे से २० प्रकृतिक और ८ प्रकृतिक, इन दो उदयस्थानो के दो भङ्ग अतीर्थकर केवली के होते है तथा शेष छह भङ्ग तीर्थंकर केवली के होते है।[1]

इस प्रकार सब मनुष्यो के उदयस्थान सम्बन्धी कुल भङ्ग २६०२+३५+७+८=२६५२ होते है।

अब देवो के उदयस्थान और उनके भङ्गों का कथन करते है।

देवों के २१, २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते है।

नामकर्म की ध्रुवोदया वारह प्रकृतियो में देवगति, देवानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, वादर, पर्याप्त, सुभग और दुर्भग मे से कोई एक, आदेय और अनादेय मे से कोई एक तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति में से कोई एक, इन नौ प्रकृतियो के मिला देने पर २१ प्रकृतिक

---

१ इह केवल्युदयस्थानमध्ये विंशति-एकविंशति-सप्तविंशति,एकोनत्रिंशत्-त्रिंशद्-एकत्रिंशद्-नवाऽष्टरूपेष्वष्टसूदयस्थानेषु प्रत्येमेककैको विशेषभग प्राप्यते इत्यष्टौ भगा.। तत्र विंशत्यष्टकयोर्भगावतीर्थकृत शेषेषु षट्सु उदयस्थानेषु तीर्थकृत षड् भगाः। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १८६

उदयस्थान होता है। देवो के जो दुभग, अनादेय और अयश कीर्ति का उदय कहा है, वह पिशाच आदि देवो की अपेक्षा समझना चाहिये। यहा सुभग और दुभग मे से किसी एक, आदेय और अनादेय मे से एक और यश कीर्ति और अयश कीर्ति मे से किसी एक का उदय होने से इनकी अपेक्षा कुल २×२×२=८ भङ्ग होते हैं।

इस २१ प्रकतिक उदयस्थान मे वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, उपघात, प्रत्येक और समचतुरस्र सस्थान, इन पाच प्रकतियो को मिलाने और देवगत्यानुपूर्वी को निकाल देने पर शरीरस्थ देव के २५ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भी पूववत आठ भङ्ग होते हैं।

अनन्तर २५ प्रकतिक उदयस्थान मे पराघात और प्रशस्त विहायो गति, इन दो प्रकृतियो को मिलाने पर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए देवो के २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूवानुसार आठ भङ्ग होते हैं। देवो के अप्रशस्त विहायोगति का उदय नही होने से तन्निमित्तक भङ्ग नही कहे है।

अनन्तर २७ प्रकृतिक उदयस्थान म प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए देवा के उच्छ्वास को मिला देने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भी पूर्वोक्त आठ भङ्ग होते हैं। अथवा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए देवो के पूर्वोक्त २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत को मिला देने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भी आठ भङ्ग होते हैं। इस प्रकार २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल १६ भङ्ग होते हैं।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास सहित २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे सुस्वर को मिला देने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भी आठ भङ्ग पूववत जानना चाहिये। देवा के दुस्वर प्रकृति का उदय नही होता है, अत तन्निमित्तक भङ्ग यहाँ नही कहे हैं। अथवा प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के उच्छ्वास

सहित २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत नाम को मिला देने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। देवो के उद्योत नाम का उदय उत्तर-विक्रिया करने के समय होता है। यहाँ भी पूर्ववत् आठ भङ्ग होते है। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल भङ्ग १६ हैं।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए देवों के सुस्वर सहित २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे उद्योत को मिला देने पर ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी आठ भङ्ग होते है।

इस प्रकार देवो के २१, २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते है तथा उनमें क्रमश ८+८+८+१६+१६+८=६४ भङ्ग होते है।

अव नारको के उदयस्थानो और उनके भङ्गो का कथन करते है।

नारको के २१, २५, २७, २८ और २९ प्रकृतिक, ये पाँच उदय-स्थान होते है। यहाँ ध्रुवोदया वारह प्रकृतियो के साथ नरकगति, नरकानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, वादर, पर्याप्त, दुर्भग, अनादेय और अयश:कीर्ति, इन नौ प्रकृतियो को मिला देने पर २१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। नारको के सव अप्रशस्त प्रकृतियो का उदय है, अतः यहाँ एक भङ्ग होता है।

अनन्तर शरीरस्थ नारक के वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, हुडसस्थान, उपघात और प्रत्येक, इन पाँच प्रकृतियो को मिलाने और नरकानुपूर्वी के निकाल देने पर २५ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी एक भग होता है।

शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए नारक के २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे पराघात और अप्रशस्त विहायोगति इन दो प्रकृतियो को मिला देने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसका भी एक भङ्ग होता है।

अनन्तर प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए नारक के २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे उच्छ्वास को मिला देने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भी एक ही भङ्ग होता है।

भाषा पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे दुस्वर को मिला देने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इसका भी एक भग है।

इस प्रकार नारको के २१, २५, २७, २८ और २९ प्रकृतिक, ये पाच उदयस्थान होते हैं और इन पाचो का एक एक भग होने से कुल पाच भग होते हैं।

अब तक नामकर्म के एकेन्द्रिय से लेकर नारको तक के जो उदयस्थान बताये गये हैं उनके कुल भग ४२+६६+४९६२+२६५२+६४+५=७७९१ होते हैं।

नामकर्म के उदयस्थानो व भगो का निर्देश करने के अनन्तर अब दो गाथाओ मे प्रत्येक उदयस्थान के भगो का विचार करते हैं।

एग बियालेक्कारस तेत्तीसा छस्सयाणि तेत्तीसा।
बारससत्तरससयाणहिगाणि बिपचसीईहिं ॥२७॥

अउणत्तीसेक्कारससयाहिगा सतरसपचसट्ठीहिं।
इक्केक्कग च वीसादट्ठुदयतेसु उदयविही ॥२८॥

शब्दार्थ—एग—एक, बियालेक्कारस—बयालीस, ग्यारह तेत्तीसा—तेतीस छस्सयाणि—छह सौ तेत्तीसा—तेतीस, बारससत्तरससयाणहिगाणि—बारह सौ और सत्रह सौ अधिक बिपचसीईहिं—दो और पचासी, अउणत्तीसेक्कारससयाहिगा—उनतीस सौ और ग्यारह सौ अधिक सतरसपचसट्ठीहिं—सत्रह और पसठ, इक्केक्कग—एक एक, वीसादट्ठुदयतेसु—बीस प्रकृति के उदयस्थान से आठ प्रकृति के उदयस्थान तक उदयविही—उदय के भग।

गाथार्थ—वीस प्रकृति के उदयस्थान से लेकर आठ प्रकृति के उदयस्थान पर्यन्त अनुक्रम से १, ४२, ११, ३३, ६००, ३३, १२०२, १७८५, २९१७, ११६५, १, और १ भग होते हैं।[1]

विशेषार्थ—पहले नामकर्म के २०, २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९ और ८ प्रकृतिक, इस प्रकार १२ उदयस्थान वतलाये गये है तथा इनमे से किस गति मे कितने उदयस्थान और उनके कितने भग होते है, यह भी वतलाया जा चुका है। अव यहाँ यह वतलाते है कि उनमे से किस उदयस्थान के कितने भग होते है।

वीस प्रकृतिक उदयस्थान का एक भंग है। वह अतीर्थंकर केवली के होता है। २१ प्रकृतिक उदयस्थान के ४२ भग हैं। वे इस प्रकार समझना चाहिये—एकेन्द्रियो की अपेक्षा ५, विकलेन्द्रियो की अपेक्षा ९, तिर्यंच पचेन्द्रियों की अपेक्षा ९, मनुष्यो की अपेक्षा ९, तीर्थंकर की अपेक्षा १, देवों की अपेक्षा ८ और नारको की अपेक्षा १। इन सव का जोड ५+९+९+९+१+८+१=४२ होता है।

२४ प्रकृतिक उदयस्थान एकेन्द्रियो को होता है, अन्य को नहीं

---

१ गो० कर्मकाड गाथा ६०३—६०५ तक मे इन २० प्रकृतिक आदि उदयस्थानो के भग क्रमश १, ६०, २७, १९, ६२०, १२, ११७५, १७६०, २९२१, ११६१, १, १ वतलाये है। जिनका कुल जोड ७७५८ होता है—

"वीसादीण भगा इगिदालपदेसु संभवा कमसो।
एक्क सट्ठी चेव य सत्तावीसं च उगुवीसं॥
वीसुत्तरछच्चसया वारस पण्णत्तरीहिं सजुत्ता।
एक्कारससयसखा सत्तरससयाहिया सट्ठी॥
ऊणत्तीससयाहियएक्कावीसा तदोवि एकट्ठी।
एक्कारससयसहिया एक्केक्क विसरिसगा भगा॥

और २४ प्रकृतिक उदयस्थान मे एकेंद्रिय की अपेक्षा ११ भग प्राप्त होते हैं। अत २४ प्रकृतिक उदयस्थान मे ११ भग होते है।

२५ प्रकृतिक उदयस्थान के एकेन्द्रियो की अपेक्षा ७, वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा ८, वैक्रिय शरीर करने वाले मनुष्यो की अपेक्षा ८, आहारक सयतो की अपेक्षा १, देवो की अपेक्षा ८ और नारको की अपेक्षा १ भग बतला आये हैं। इन सबका जोड ७+८+८+१+८+१=३३ होता है। अत २५ प्रकृतिक उदयस्थान के ३३ भग होते हैं।

२६ प्रकृतिक उदयस्थान के भग ६०० हैं। इनमे एकेन्द्रिय की अपेक्षा १३, विकलेन्द्रियो की अपेक्षा ६, प्राकृत तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा २८६ और प्राकृत मनुष्यो की अपेक्षा २८९ भङ्ग होते हैं। इन सबका जोड १३+६+२८९+२८९=६०० होता है। ये ६०० भङ्ग २६ प्रकृतिक उदयस्थान के है।

२७ प्रकृतिक उदयस्थान के एकेन्द्रियो की अपेक्षा ६, वैक्रिय तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा ८, वैक्रिय मनुष्यो की अपेक्षा ८ आहारक सयतो की अपेक्षा १, केवलियो की अपेक्षा १, देवो की अपेक्षा ८ और नारको की अपेक्षा १ भङ्ग पहले बतला आये हैं। इनका कुल जोड ३३ होता है। अत २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे ३३ भङ्ग होते हैं।

२८ प्रकृतिक उदयस्थान के विकलेन्द्रियो की अपेक्षा ६, प्राकृत तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा ५७६ वैक्रिय तिर्यच पचेन्द्रियो की अपेक्षा १६, प्राकृत मनुष्यो की अपेक्षा ५७६, वैक्रिय मनुष्यो की अपेक्षा ६, आहारको की अपेक्षा २, देवो की अपेक्षा १६ और नारको की अपेक्षा १ भङ्ग बतला आये हैं। इनका कुल जोड ६+५७६+१६+५७६+६+२+१६+१=१२०२ होता है। अत २८ प्रकृतिक उदयस्थान के १२०२ भङ्ग होते हैं।

२९ प्रकृतिक उदयस्थान के भङ्ग १७८१ हैं। इनमे विकलेन्द्रियो

की अपेक्षा १२, तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा ११५२ वैक्रिय तिर्यंच पचेन्द्रियों की अपेक्षा १६, मनुष्यो की अपेक्षा ५७६, वैक्रिय मनुष्यो की अपेक्षा ६, आहारक सयतों की अपेक्षा २, तीर्थंकर की अपेक्षा १, देवो की अपेक्षा १६ और नारको की अपेक्षा १ भङ्ग है। इनका जोड १२+११५२+१६+५७६+६+ २+१+१६+१=१७८५ होता है। अत २६ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल भङ्ग १७८५ प्राप्त होते है।

३० प्रकृतिक उदयस्थान मे विकलेन्द्रियो की अपेक्षा १८, तिर्यंच पचेन्द्रियों की अपेक्षा १७२८, वैक्रिय तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा ८, मनुष्यो की अपेक्षा ११५२, वैक्रिय मनुष्यों की अपेक्षा १, आहारक सयतों की अपेक्षा १, केवलियो की अपेक्षा १ और देवो की अपेक्षा ८ भङ्ग पूर्व मे वतला आये है। इनका जोड १८+१७२८+८+११५२+ १+१+१+८=२६१७ होता है। अतः ३० प्रकृतिक उदयस्थान के २६१७ भङ्ग होते है।

३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे विकलेन्द्रियो की अपेक्षा १२, तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा ११५२, तीर्थंकर की अपेक्षा १ भङ्ग पूर्व मे वतलाया है, और इनका कुल जोड़ ११६५ है, अतः ३१ प्रकृतिक उदयस्थान के ११६५ भङ्ग कहे है।

६ प्रकृतिक उदयस्थान का तीर्थंकर की अपेक्षा १ भग होता है और ८ प्रकृतिक उदयस्थान का अतीर्थंकर की अपेक्षा १ भंग होता है। इन दोनो को पूर्व मे वतलाया जा चुका है। अत· ६ प्रकृतिक और ८ प्रकृतिक उदयस्थान का १, १ भग होता है।

इस प्रकार २० प्रकृतिक आदि वारह उदयस्थानो के १+४२+११ +३३+६००+३३+१२०२+१७८५+२६१७+११६५+१+१= ७७६१ भग होते है।

नामकर्म के उदयस्थानो के भग व अन्य विशेषताओ सम्वन्धी विवरण इस प्रकार समझना चाहिये—

उदयस्थान	२०	२१	२४	२५	२६	२७	२८	२९	३०	३१	९	८	भंग संख्या
सामान्य	१	४२	११	३३	६००	३३	१२०२	१७८५	२९१७	११६५	१	१	७७९१
एकेन्द्रिय	०	५	११	७	१३	६	०	०	०	०	०	०	४२
विकलेन्द्रिय	०	९	०	०	९	०	६	१२	१८	१२	०	०	६६
पं० तिर्यंच	०	९	०	०	२८९	०	५७६	११५२	१७२८	११५२	०	०	४९०६
मनुष्य	०	९	०	०	२८९	०	५७६	५७६	११५२	०	०	०	२६०२
वैक्रिय तिर्यंच	०	०	०	८	०	८	१६	१६	८	०	०	०	५६
वैक्रिय मनुष्य	०	०	०	८	०	८	८	८	०	०	०	०	३२
देव	०	८	०	८	०	८	१६	१६	८	०	०	०	६४
तीर्थंकर	०	१	०	०	०	१	०	१	१	१	१	०	६
केवली	१	०	०	०	(म)६	०	(म)६	(म)६	(म)६	०	०	१	२
वैक्रिय यति	०	०	०	०		०	१	१	१	०	०	०	३
आहारक	०	०	०	१	०	१	२	२	१	०	०	०	७
नारक	०	१	०	१	०	१	१	१	०	०	०	०	५
												योग	७७९१[1]

१—इय सम्मुदयविगप्पा एगकाणउया सया उ सगसयरी।
एसो सतट्ठाणा वे वारस होंति नामस्स ॥

—सप्ततिका नामक षष्ठ कर्मग्रन्थ प्राकृत टिप्पण

नामकर्म के बंधस्थानों और उदयस्थानों का कथन करने के पश्चात् अब सत्तास्थानो का कथन करते है।

तिदुनउई उगुनउई अट्ठच्छलसी असीइ उगुसीई।
अट्ठयछप्पणत्तरि नव अट्ठ य नामसंताणि ॥ २६ ॥

शब्दार्थ—तिदुनउई—तेरानवै, बानवै, उगुनउई—नवासी अट्ठच्छलसी—अठासी, छियासी, असीइ—अस्सी, उगुसीई—उन्यासी, अट्ठयछप्पणत्तरी—अठहत्तर, छियत्तर, पचहत्तर, नव—नौ, अट्ठ—आठ, य—और, नामसंताणि—नामकर्म के सत्तास्थान।

गाथार्थ—नामकर्म के ९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५, ९ और ८ प्रकृतिक सत्तास्थान होते है।[1]

विशेषार्थ—इस गाथा मे नामकर्म के सत्तास्थानो को बतलाते हुए उनमे गर्भित प्रकृतियो की सख्या बतलाई है कि प्रत्येक सत्तास्थान कितनी-कितनी प्रकृति का है। इससे यह तो ज्ञात हो जाता है कि नामकर्म के सत्तास्थान बारह है और वे ९३, ९२ आदि प्रकृतिक है, लेकिन यह स्पष्ट नही होता है कि प्रत्येक सत्तास्थान मे ग्रहण की गई प्रकृतियो के नाम क्या है, अत यहाँ प्रत्येक सत्तास्थान मे ग्रहण की गई प्रकृतियों के नामोल्लेखपूर्वक उनकी सख्या को स्पष्ट करते हैं।

पहला सत्तास्थान ९३ प्रकृतियों का बतलाया है। क्योंकि नामकर्म की सब उत्तर प्रकृतियां ९३[2] है, अत: ९३ प्रकृतिक सत्तास्थान मे

---

१ कर्मप्रकृति और पचसग्रह सप्ततिका मे नामकर्म के १०३, १०२, ९६, ९५, ९३, ९०, ८९, ८४, ८३, ८२, ९ और ८ प्रकृतिक, ये १२ सत्तास्थान बतलाये है। यहाँ बताये गये और इन १०३ आदि संख्या के सत्तास्थानो मे इतना अंतर है कि ये स्थान बंधन के १५ भेद करके बतलाये गये है। ८२ प्रकृतिक जो सत्तास्थान बतलाया है वह दो प्रकार से बतलाया है। विशेष जानकारी वहाँ से कर लेना चाहिये।

२ नामकर्म की ९३ उत्तर प्रकृतियो के नाम प्रथम कर्मग्रन्थ मे दिये हैं। अत. पुनरावृत्ति के कारण यहाँ उनका उल्लेख नही किया है।

सब प्रकृतियो की सत्ता स्वीकार की गई है। इन ९३ प्रकृतियो मे से तीर्थंकर प्रकृति को कम कर देने पर ९२ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। ९३ प्रकृतिक सत्तास्थान मे से आहारक शरीर, आहारक अगोपाग, आहारक सघात और आहारक बधन, इन चार प्रकृतिया को कम कर देने पर ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इस ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान मे से तीर्थंकर प्रकृति को कम कर देने पर ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

उक्त ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान मे से नरकगति और नरकानुपूर्वी की अथवा देवगति और देवानुपूर्वी की उद्वलना हो जाने पर ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है अथवा नरकगति के योग्य प्रकृतिया का बध करने वाले ८० प्रकृतिक सत्तास्थान वाले जीव के नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, वैक्रिय सघात और वैक्रिय बधन इन छह प्रकृतियो का बध होने पर ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इस ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान मे से नरकगति, नरकानुपूर्वी और वक्रिय चतुष्क, इन छह प्रकृतियो की उद्वलना हो जाने पर ८० प्रकृतिक सत्तास्थान होता है अथवा देवगति, देवानुपूर्वी और वैक्रिय चतुष्क इन छह प्रकृतियो की उद्वलना हो जाने पर ८० प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इसमे से मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी की उद्वलना होने पर ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

उक्त सात सत्तास्थान अक्षपको की अपेक्षा कहे हैं। अब क्षपको की अपेक्षा सत्तास्थानो को बतलाते है।

जब क्षपक जीव ९३ प्रकृतियो मे से नरकगति, नरकानुपूर्वी, तियचगति, तियचानुपूर्वी, जातिचतुष्क (एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति), स्थावर, आतप, उद्योत, सूक्ष्म और साधारण, इन तेरह प्रकृतिया का क्षय कर देते हैं तब उनके ८० प्रकृ

तिक सत्तास्थान होता है। जब ९२ प्रकृतियों मे से इन तेरह प्रकृतियों का क्षय करते है, तब ७९ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है और जब ८९ प्रकृतियो में से इन तेरह प्रकृतियों का क्षय करते है तब ७६ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है तथा जब ८८ प्रकृतियो मे से इन तेरह प्रकृतियो का क्षय कर देते है, तब ७५ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

अब रहे ९ और ८ प्रकृतिक सत्तास्थान। सो ये दोनों अयोगिकेवली गुणस्थान के अन्तिम समय में होते है। नौ प्रकृतिक सत्तास्थान मे मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, वादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशः-कीर्ति और तीर्थंकर, ये नौ प्रकृतियां है और इनमे से तीर्थंकर प्रकृतिक को कम कर देने पर ८ प्रकृतिक, सतास्थान होता है।

गो० कर्मकांड और नामकर्म के सत्तास्थान[1]

पूर्व मे गाथा के अनुसार वारह सत्तास्थानो का कथन किया गया। लेकिन गो० कर्मकाड मे ९३, ९२, ९१, ९०, ८८, ८४, ८२, ८०, ७९, ७८, ७७, १० और ९ प्रकृतिक कुल तेरह सत्तास्थान वतलाये है—

तिदुइगिणउदी णउदी अडचउदो अहियसीदि सीदी य।
ऊणासीदट्ठत्तरि सत्तत्तरि दस य णव सत्ता ॥६०९॥

विवेचन इस प्रकार है—

यहाँ ९३ प्रकृतिक सत्तास्थान मे नामकर्म की सब प्रकृतियो की सत्ता मानी है। उनमे से तीर्थंकर प्रकृति को घटाने पर ९२ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। आहारक शरीर और आहारक अगोपाग, इन दो प्रकृतियों को कम कर देने पर ९१ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। तीर्थं-कर, आहारक शरीर और आहारक अगोपाग को कम कर देने पर ९० प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इसमे से देवद्विक की उद्वलना करने पर ८८ प्रकृतिक और इस ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान मे से नरक-

---

१ तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से गो० कर्मकाड का अभिमत यहाँ दिया है।

चतुष्क की उद्वलना करने पर ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इन ८४ प्रकृतियो मे से मनुष्यद्विक की उद्वलना होने पर ८२ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

क्षपक अनिवृत्तिकरण के ९३ प्रकृतिया मे से नरकद्विक आदि तेरह प्रकृतियो का क्षय होने पर ८० प्रकृतिक सत्तास्थान होता है तथा ९२ प्रकृतिया म से उक्त १३ प्रकृतियो का क्षय होने पर ७९ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है तथा इन्ही १३ प्रकतिया को ९१ प्रकृतियो मे से कम करने पर ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। ९० मे से इन्ही १३ प्रकतिया को घटाने पर ७७ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। तीर्थंकर अयोगिकेवली के १० प्रकृतिक तथा सामान्य केवली के ९ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

इस प्रकार से नामकर्म के सत्तास्थान को बतलाने के पश्चात अब आगे की गाथा मे नामकर्म के बधस्थान आदि के परस्पर सवेध का कथन करने का निर्देश करते है।

अट्ठ य बारस बारस बधोदयसतपयडिठाणाणि।
ओहेणादेसेण य जत्थ जहासभव विभजे ॥३०॥

शब्दार्थ—अट्ठ—आठ य—और बारस बारस—बारह, बारह, बधोदयसतपयडिठाणाणि—बध उदय और सत्ता प्रकृतियो के स्थान, ओहेण—ओघ, सामान्य से, आदेसेण—विशेष से, य—और, जत्थ—जहाँ, जहसभव—यथासभव विभजे—विकल्प करना चाहिए।

गाथार्थ—नामकर्म के बध, उदय और सत्ता प्रकृति स्थान क्रम से आठ, बारह और बारह होते हैं। उनके ओघ

सामान्य और आदेश विशेष से जहाँ जितने स्थान सम्भव है, उतने विकल्प करना चाहिये।

विशेषार्थ—ग्रन्थ मे यद्यपि नामकर्म के पहले वधस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थान वतलाये जा चुके हैं कि नामकर्म के वंधस्थान आठ हैं, उदयस्थान वारह है और सत्तास्थान भी वारह है। फिर भी यहाँ पुन· सूचना इनके संवेध भगों को वतलाने के लिये की गई है।

इन सवेध भंगो को जानने के दो उपाय हैं—१. ओघ और २. आदेश। ओघ सामान्य का पर्यायवाची है और आदेश विशेष का। यहाँ ओघ का यह अर्थ हुआ कि जिस प्ररूपणा मे केवल यह वतलाया जाए कि अमुक वधस्थान का वध करने वाले जीव के अमुक उदयस्थान और अमुक सत्तास्थान होते है, इसको ओघप्ररूपण कहते है। आदेश प्ररूपण मे मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थान और गति आदि मार्गणाओ मे वंधस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थानो का विचार किया जाता है। ग्रन्थकार ने ओघ और आदेश के सकेत द्वारा यह स्पष्ट किया है कि दोनों प्रकार से वंधस्थान आदि के सवेध भंगों को यहाँ वतलाया जायेगा।

अव सवसे पहले ओघ से सवेध भङ्गो का विचार करते हैं।

नव पचोदय संता तेवीसे पण्णवीस छव्वीसे।
अट्ठ चउरट्ठवीसे नव सत्तुगतीस तीसम्मि ॥३१॥

शब्दार्थ—नव पंच—नौ और पाँच, उदयसंता—उदय और सत्ता स्थान, तेवीसे—तेईस, पणवीस छव्वीसे—पच्चीस और छब्बीस के ववस्थान मे, अट्ठ—आठ, चउर—चार, अट्ठवीसे—अट्ठाईस के वधस्थान मे, नव—नौ, सत्त—सात, उगतीस तीसम्मि—उनतीस और तीस प्रकृतिक वधस्थान मे।

एगेगमेगतीसे एगे एगुदय अट्ठ सतम्मि।
उवरयबंधे दस दस वेयगसतम्मि ठाणाणि[1] ॥३२॥

शब्दार्थ—एगेग—एक, एक, एगतीसे—इकतीस प्रकृतिक बंधस्थान में, एगे—एक के बंधस्थान में, एगुदय—एक उदयस्थान अट्ठ सतम्मि—आठ सत्तास्थान, उवरयबंधे—बंध के अभाव में, दस दस—दस दस, वेयग—उदय में, सतम्मि—सत्ता में, ठाणाणि—स्थान।

दोनों गाथार्थ—तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थानों में नौ-नौ उदयस्थान और पांच-पांच सत्तास्थान होते हैं। अट्ठाईस के बंधस्थान में आठ उदयस्थान और चार सत्तास्थान होते हैं। उनतीस एवं तीस प्रकृतिक बंधस्थानों में नौ उदयस्थान तथा सात सत्तास्थान होते हैं।

इकतीस प्रकृतिक बंधस्थान में एक उदयस्थान व एक सत्तास्थान होता है। एक प्रकृतिक बंधस्थान में एक उदयस्थान और आठ सत्तास्थान होते हैं। बंध के अभाव में उदय और सत्ता के दस दस स्थान जानना चाहिए।

---

१ तुलना कीजिये—

नव पंचोदयसत्ता तेवीसे पण्णवीसछव्वीसे।
अट्ठ चउरट्ठवीसे नवसत्तिगतीसतीसे य॥
एक्केक्के इगतीसे एक्के एक्कुदय अट्ठ सतसा।
उवरय बंधे दस दस नामोदयसंतठाणाणि॥
—पंचसंग्रह सप्ततिका, गा० ९९ १००

णवपंचोदयसत्ता तेवीसे पण्णवीस छव्वीसे।
अट्ठ चदुरट्ठवीसे णवसत्तुगुतीसतीसम्मि॥
एगेग इगितीसे एगे एगुदयमट्ठ सत्ताणि।
उवरदबंधे दस दस उदयंसा होंति णियमेण॥
—गो० कर्मकांड, गा० ७४०,७४१

विशेषार्थ—इन दो गाथाओं मे यह बतलाया गया है कि किस बंधस्थान मे कितने उदयस्थान और कितने सत्तास्थान होते हैं। लेकिन यह ज्ञात नही होता है कि वे उदय और सत्तास्थान कितनी प्रकृति वाले है और कौन-कौनसे हैं। अतः इस बात को आचार्य मलयगिरि कृत टीका के आधार से स्पष्ट किया जा रहा है।

तेईस, पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक बंधस्थानो मे से प्रत्येक मे नौ उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान है—'नव पचोदय सत्ता......'। इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—तेईस प्रकृतिक बंधस्थान मे अपर्याप्त एकेन्द्रिय योग्य प्रकृतियो का बंध होता है और इसको एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य बांधते हैं। इन तेईस प्रकृतियो को बाँधने वाले जीवो के सामान्य से २१, २४, २५, २६, २७, २८, २६, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये नौ उदयस्थान होते है। इन उदयस्थानो को इस प्रकार घटित करना चाहिये—जो एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य तेईस प्रकृतियो का बंध कर रहा है, उसको भव के अपान्तराल मे तो २१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। क्योकि २१ प्रकृतियो के उदय मे अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य २३ प्रकृतियो का बंध सम्भव है।

२४ प्रकृतिक उदयस्थान अपर्याप्त और पर्याप्त एकेन्द्रियो के होता है। क्योकि यह उदयस्थान एकेन्द्रियो के सिवाय अन्यत्र नही पाया जाता है। २५ प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रियो और वैक्रिय शरीर को प्राप्त मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यो के होता है। २६ प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय तथा पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो के होता है। २७ प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त एकेन्द्रियो और वैक्रिय शरीर को करने वाले तथा शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यो के होता है। २८, २९, ३० प्रकृतिक, ये तीन उदयस्थान

मिथ्यादृष्टि पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो के होते हैं तथा ३१ प्रकृतिक उदयस्थान मिथ्यादृष्टि विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रिय जीवो के होता है। उक्त उदयस्थान वाले जीवो के सिवाय शेष जीव २३ प्रकतियो का बध नही करते हैं। अत २३ प्रकृतिक बधस्थान मे उक्त २१ आदि प्रकृतिक ९ उदयस्थान होते हैं।

२३ प्रकतियो को बाधने वाले जीवो के पाच सत्तास्थान हैं। उनमे ग्रहण की गई प्रकृतियो की सख्या इस प्रकार है—९२, ८८, ८६, ८० और ७८। इनका स्पष्टीकरण यह है—२१ प्रकतियो के उदय वाले उक्त जीवो के तो सब सत्तास्थान पाये जाते हैं केवल मनुष्यो के ७८ प्रकतिक सत्तास्थान नही होता है, क्योकि मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी की उद्वलना करने पर ७८ प्रकतिक सत्तास्थान होता है। किन्तु मनुष्यो के इन दो प्रकृतियो की उद्वलना सम्भव नही है।

२४ प्रकृतिक उदयस्थान के समय भी पाचो सत्तास्थान होते हैं। लेकिन वैक्रिय शरीर को करने वाले वायुकायिक जीवो के २४ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए ८० और ७८ प्रकतिक, ये दो सत्तास्थान नही होते हैं। क्योकि इनके वैक्रियषटक और मनुष्यद्विक की सत्ता नियम से है। ये जीव वैक्रिय शरीर का तो साक्षात ही अनुभव कर रहे हैं। अत इनके वक्रियद्विक की उद्वलना सम्भव नही है और इसके अभाव म देवद्विक और नरकद्विक की भी उद्वलना सम्भव नही है, क्योकि वक्रियषटक की उद्वलना एक साथ ही होती है, यह स्वाभाविक नियम है और वक्रियषटक की उदवलना हो जाने पर ही मनुष्यद्विक की उदवलना होती है, अन्यथा नही होती है। चूर्णि मे भी कहा है—

वेउव्वियछक्क उव्वलेउ पच्छा मणुयदुग उव्वलेइ।

अर्थात् वैक्रियषटक की उद्वलना करने के अनन्तर ही यह जीव मनुष्यद्विक की उद्वलना करता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि

वैक्रिय शरीर को करने वाले वायुकायिक जीवो के २४ प्रकृतिक उदयस्थान रहते ९२, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान ही होते है किन्तु ८० और ७८ प्रकृति वाले सत्तास्थान नही होते हैं।

२५ प्रकृतिक उदयस्थान के होते हुए भी उक्त पांच सत्तास्थान होते हैं। किन्तु उनमे से ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान वैक्रिय शरीर को नही करने वाले वायुकायिक जीवों के तथा अग्निकायिक जीवो के ही होते हैं, अन्य को नही, क्योकि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो को छोड़कर अन्य सब पर्याप्त जीव नियम से मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी का वध करते है—

तेऊवाऊवज्जो पज्जत्तगो मणुयगइं नियमा बंधेइ।

चूर्णिकार का मत है कि अग्निकायिक, वायुकायिक जीवों को छोड़कर अन्य पर्याप्त जीव मनुष्यगति का नियम से वध करते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान अग्निकायिक जीवों को और वैक्रिय शरीर को नही करने वाले वायुकायिक जीवो को छोड़कर अन्यत्र प्राप्त नही होता है।

२६ प्रकृतिक उदयस्थान में भी उक्त पाँच सत्तास्थान होते है। किन्तु यह विशेष है कि ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान वैक्रिय शरीर को नहीं करने वाले वायुकायिक जीवो के तथा अग्निकायिक जीवो के होता है तथा जिन पर्याप्त और अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवो मे उक्त अग्निकायिक और वायुकायिक जीव उत्पन्न हुए है, उनको भी जव तक मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी का वंध नही हुआ है, तव तक ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है।

२७ प्रकृतिक उदयस्थान मे ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान को छोड़कर शेप चार सत्तास्थान होते हैं। क्योकि २७ प्रकृतिक उदयस्थान अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों को छोडकर पर्याप्त वादर एकेन्द्रिय और वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यंच और मनुष्यो को

होता है। परन्तु इनके मनुष्यद्विक की सत्ता होने से ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं पाया जाता है।

यहाँ जिज्ञासु का प्रश्न है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों के २७ प्रकृतिक उदयस्थान न पाये जाने का कारण क्या है? तो इसका समाधान यह है कि एकेंद्रियों के २७ प्रकृतिक उदयस्थान आतप और उद्योत में से किसी एक प्रकृति के मिलाने पर होता है, किन्तु अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों के आतप और उद्योत का उदय होता नहीं है। इसीलिये २७ प्रकृतिक उदयस्थान नहीं होता है।[1]

२८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक उदयस्थानों में ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान को छोड़कर शेष चार सत्तास्थान नियम से होते हैं। क्योंकि २८, २९ और ३० प्रकृतियों का उदय पर्याप्त विकलेंद्रियों, तिर्यंच पंचेंद्रिय और मनुष्यों को होता है और ३१ प्रकृतिक उदयस्थान पर्याप्त विकलेंद्रियों और पंचेंद्रिय तिर्यंचों को होता है। परन्तु इन जीवों के मनुष्यगति मनुष्यानुपूर्वी की सत्ता नियम से पाई जाती है। अतः उन उदयस्थानों में ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं होता। इस प्रकार २३ प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के यथायोग्य नौ उदयस्थानों की अपेक्षा चालीस सत्तास्थान होते हैं।

२५ और २६ प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के भी उदयस्थान और सत्तास्थान इसी प्रकार जानने चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पर्याप्त एकेंद्रिय योग्य २५ और २६ प्रकृतियों का बंध करने वाले देवों के २१, २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक उदयस्थानों में ९२ और ८८ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान ही प्राप्त होते हैं। अपर्याप्त

१ अथ कथं तेजोवायूनां सप्तविंशत्युदयो न भवति येन तद्वर्जनं क्रियते? उच्यते—सप्तविंशत्युदय एकेन्द्रियाणामातप उद्योतान्यतरप्रक्षेपे सति प्राप्यते, न च तेजोवायुष्वातप उद्योतोदय सम्भवति, ततस्तद्वर्जनम्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १९०

विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यों के योग्य २५ प्रकृतियों का वध देव नहीं करते हैं। क्योंकि उक्त अपर्याप्त जीवों में देव उत्पन्न नहीं होते हैं। अत: सामान्य से २५ और २६ प्रकृतिक, इनमें से प्रत्येक बंधस्थान में नौ उदयस्थानों की अपेक्षा ४० सत्तास्थान होते हैं।

२३, २५ और २६ प्रकृतिक बंधस्थानों को बतलाने के बाद अब २८ प्रकृतिक बंधस्थान के उदय व सत्तास्थान बतलाते हैं कि "अट्ठ चउर-ट्ठवीसे" अर्थात् आठ उदयस्थान और चार सत्तास्थान होते हैं। आठ उदयस्थान इस प्रकार की संख्या वाले हैं—२१,२५,२६,२७,२८,२९,३० और ३१ प्रकृतिक। २८ प्रकृतिक बंधस्थान के दो भेद हैं—१. देवगति-प्रायोग्य, २ नरकगति-प्रायोग्य। इनमें से देवगति के योग्य २८ प्रकृतियों का बन्ध होते समय नाना जीवों की अपेक्षा उपर्युक्त आठों ही उदयस्थान होते हैं और नरकगति के योग्य प्रकृतियों का बंध होते समय ३० और ३१ प्रकृतिक, ये दो ही उदयस्थान होते हैं।

उनमें से देवगति के योग्य २८ प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के २१ प्रकृतिक उदयस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि पचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्यों के भव के अपान्तराल में रहते समय होता है। २५ प्रकृतिक उदयस्थान आहारक संयतों के और वैक्रिय शरीर को करने वाले सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंचों के होता है। २६ प्रकृतिक उदयस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि शरीरस्थ पचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यों के होता है। २७ प्रकृतिक उदयस्थान आहारक संयतों के, सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि वैक्रिय शरीर करने वाले तिर्यंच और मनुष्यों के होता है। २८ और २९ प्रकृतिक उदयस्थान क्रम से शरीर पर्याप्ति और प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए क्षायिक सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्यों के तथा आहारक संयत, वैक्रिय संयत और वैक्रिय शरीर को करने वाले सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और

मनुष्यो के होते हैं। ३० प्रकृतिक उदयस्थान सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यो के तथा आहारक सयत और वैक्रिय सयतो के होता है। ३१ प्रकृतिक उदयस्थान सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि पचेन्द्रिय तिर्यंचो के होता है।

नरकगति के योग्य २८ प्रकृतियो का बध होते समय ३० प्रकृतिक उदयस्थान मिथ्यादृष्टि पचेन्द्रिय तिर्यंच और मनुष्यो के होता है तथा ३१ प्रकृतिक उदयस्थान मिथ्यादृष्टि पचेन्द्रिय तिर्यंचो को होता है।

अब २८ प्रकृतिक बधस्थान मे सत्तास्थानो की अपेक्षा विचार करते हैं। २८ प्रकृतियो का बध करने वाले जीवो के सामान्य से ९२, ८९, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान हैं। उसमे भी जिसके २१ प्रकृतियो का उदय हो और देवगति के योग्य २८ प्रकृतियो का बध होता हो, उसके ९२ और ८८ ये दो ही सत्तास्थान होते हैं। क्योकि यहाँ तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नही होती है। यदि तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता मानें तो देवगति के योग्य २८ प्रकृतिक बधस्थान नही बनता है।

२५ प्रकृतियो का उदय रहते हुए २८ प्रकृतियो का बध आहारक सयत और वैक्रिय शरीर को करने वाले तिर्यच और मनुष्यो के होता है। अत यहा भी सामान्य से ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो ही सत्तास्थान होते हैं। इनमे से आहारक सयतो के आहारकचतुष्क की सत्ता नियम से होती है, जिससे इनके ९२ प्रकृतियो की ही सत्ता होगी। शेष जीवो के आहारकचतुष्क की सत्ता हो भी और न भी हो, जिससे इनके दोनो सत्तास्थान बन जाते हैं।

२६, २७, २८ और २९ प्रकृतियो के उदय मे भी ये दो ९२ और ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं।

३० प्रकृतिक उदयस्थान मे देवगति या नरकगति के योग्य २८ प्रकृतियो का बध करने वाले जीवो के सामान्य से ९२, ८९, ८८ और ८६ प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं। इनमे से ९२ और ८८ प्रकृतिक

सत्तास्थानो का विचार तो पूर्ववत् है और शेष दो सत्तास्थानो के बारे में यह विशेषता जानना चाहिए कि किसी एक मनुष्य ने नरकायु का बंध करने के बाद वेदक सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया, अनन्तर मनुष्य पर्याय के अन्त मे वह सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यादृष्टि हुआ तब उसके अन्तिम अन्तर्मुहूर्त मे तीर्थंकर प्रकृति का बंध न होकर २८ प्रकृतियो का ही बध होता है और सत्ता मे ८९ प्रकृतियाँ ही प्राप्त होती है, जिससे यहाँ ८९ प्रकृतियो की सत्ता बतलाई है। ९३ प्रकृतियो मे से तीर्थंकर, आहारकचतुष्क, देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी और वैक्रिय चतुष्क इन १३ प्रकृतियो के बिना ८० प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इस प्रकार ८० प्रकृतियों की सत्ता वाला कोई जीव पचेन्द्रिय तिर्यंच या मनुष्य होकर सब पर्याप्तियो की पूर्णता को प्राप्त हुआ और अनन्तर यदि वह विशुद्ध परिणाम वाला हुआ तो उसने देवगति के योग्य २८ प्रकृतियो का बध किया और इस प्रकार देवद्विक और वैक्रियचतुष्क की सत्ता प्राप्त की, अतः उसके २८ प्रकृतियो के बध के समय ८६ प्रकृतियो की सत्ता होती है और यदि वह जीव सक्लेश परिणाम वाला हुआ तो उसके नरकगति योग्य २८ प्रकृतियो का बध होता है और इस प्रकार नरकद्विक और वैक्रिय-चतुष्क की सत्ता प्राप्त हो जाने के कारण भी ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान होता है। इस प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे २८ प्रकृतियो का बध होते समय ९२, ८९, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते है।

३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ९२, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। यहाँ ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान नही होता है। क्योकि जिसके २८ प्रकृतियो का बंध और ३१ प्रकृतियों का उदय है, वह पचेन्द्रिय तिर्यंच ही होगा और तिर्यंचो के तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता नही है, क्योकि तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला मनुष्य तिर्यंचो मे

उत्पन्न नही होता है। इसीलिये यहाँ ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान का निषेध किया है।

२९ और ३० प्रकृतिक बंधस्थानो मे से प्रत्येक मे ९ उदयस्थान और ७ सत्तास्थान होते हैं—"नवसत्तुगतीस तीसम्मि"। इनका विवेचन नीचे किया जाता है।

२९ प्रकृतिक बंधस्थान मे २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये ९ उदयस्थान है तथा ९३, ९२ ८९, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये ७ सत्तास्थान हैं। इनमे से पहले उदयस्थानो का स्पष्टीकरण करते हैं कि २१ प्रकृतियो का उदय तिर्यंच और मनुष्यो के योग्य २९ प्रकृतियो का बंध करने वाले पर्याप्त और अपर्याप्त एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच और मनुष्यो के और देव व नारको के होता है। २४ प्रकृतियो का उदय पर्याप्त एकेन्द्रियो के, देव और नारको के तथा वैक्रिय शरीर को करने वाले मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यो के होता है। २६ प्रकृतियो का उदय पर्याप्त एकेन्द्रियो के तथा पर्याप्त और अपर्याप्त विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो के होता है। २७ प्रकृतियो का उदय पर्याप्त एकेन्द्रियो के, देव और नारको तथा वैक्रिय शरीर को करने वाले मिथ्यादृष्टि तिर्यंच और मनुष्यो को होता है। २८ और २९ प्रकृतियो का उदय विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो के तथा वैक्रिय शरीर को करने वाले तिर्यंच और मनुष्यो के तथा देव और नारको के होता है। ३० प्रकृतियो का उदय विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो के तथा उद्योत का वेदन करने वाले देवो के होता है और ३१ प्रकृतियो का उदय उद्योत का वेदन करने वाले पर्याप्त विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रियो के होता है तथा देवगति के योग्य २९ प्रकृतियो का बंध करने वाले अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्यो के २१, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते हैं। आहारक संयतो और वैक्रिय संयतो के २५, २७, २८, २९ और ३०

प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते हैं। वैक्रिय शरीर को करने वाले असयत और सयतासयत मनुष्यों के ३० के विना ४ उदयस्थान होते है। मनुष्यो मे सयतों को छोडकर यदि अन्य मनुष्य वैक्रिय शरीर को करते हैं तो उनके उद्योत का उदय नही होता। अतः यहाँ ३० प्रकृतिक उदयस्थान नही होता है। इस प्रकार २९ प्रकृतिक बंधस्थान मे उदयस्थानो का विचार किया गया कि २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये नौ उदयस्थान है।

अव सत्तास्थानो का विचार करते हैं। पूर्व मे सकेत किया गया है कि २९ प्रकृतिक वधस्थान मे ९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृति वाले सात सत्तास्थान है। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—यदि विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रिय के योग्य २९ प्रकृतियो का वध करने वाले पर्याप्त और अपर्याप्त एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय तथा तिर्यंच पचेन्द्रिय जीवो के २१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है तो वहाँ ९२, ८८, ८६, ८० और ७८, ये पाँच सत्तास्थान होते है। इसी प्रकार २४, २५ और २६ प्रकृतिक उदयस्थानो मे उक्त पाँच सत्तास्थान जानना चाहिये तथा २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, इन पाँच उदयस्थानो मे ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान को छोड़कर शेप चार सत्तास्थान होते है। इसका विचार जैसा २३ प्रकृतियो का बंध करने वाले जीवों के कर आये है वैसा ही यहाँ भी समझ लेना चाहिए। मनुष्यगति के योग्य २९ प्रकृतियो का वंध करने वाले एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रिय जीवो के तथा मनुष्य व तिर्यंचगति के योग्य २९ प्रकृतियो का वध करने वाले मनुष्यो के अपने-अपने योग्य उदयस्थानो मे रहते हुए ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान को छोड़कर शेप चार वे ही सत्तास्थान होते है। तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यगति के योग्य २९ प्रकृतियो का वंध करने वाले देव और नारकों के अपने-अपने उदयस्थानो मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान

होते हैं किन्तु मनुष्यगति के योग्य २६ प्रकृतियों का बंध करने वाले मिथ्यादृष्टि नारक के तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता रहते हुए अपने पाँच उदयस्थानों में एक ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। क्योंकि जो तीर्थंकर प्रकृति सहित हो वह यदि आहारकचतुष्क रहित होगा तो ही उसका मिथ्यात्व में जाना संभव है, क्योंकि तीर्थंकर और आहारक-चतुष्क इन दोनों की एक साथ सत्ता मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में नहीं पाये जाने का नियम है।[1] अतः ६३ में से आहारकचतुष्क को निकाल देने पर उस नारक के ८६ प्रकृतियों की ही सत्ता पाई जाती है।

तीर्थंकर प्रकृति के साथ देवगति के योग्य २६ प्रकृतियों का बंध करने वाले अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य के २१ प्रकृतियों का उदय रहते हुए ६३ और ८६ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं। इसी प्रकार २५, २६, २७, २८, २६ और ३० प्रकृतिक, इन छह उदयस्थानों में भी ये ही दो सत्तास्थान जानना चाहिये। किन्तु आहारक संयतों के अपने योग्य उदयस्थानों के रहते हुए ६३ प्रकृतिक सत्तास्थान ही समझना चाहिये।

इस प्रकार सामान्य से २६ प्रकृतिक बंधस्थान में २१ प्रकृतियों के उदय में ७, चौबीस प्रकृतियों के उदय में ५, पच्चीस प्रकृतियों के उदय में ७, छब्बीस प्रकृतियों के उदय में ७ सत्ताईस प्रकृतियों के

---

१ तित्थाहारा जुगवं सव्वं तित्थं ण मिच्छगादितिए।
तस्सत्तकम्मियाणं तग्गुणठाणं ण संभवदि ॥

—गो० कर्मकांड गा० ३३३

उक्त उद्धरण में यह बताया है कि तीर्थंकर और आहारकचतुष्क, इनका एक साथ सत्त्व मिथ्यादृष्टि जीव को नहीं पाया जाता है। लेकिन गो० कर्मकांड के सत्ता अधिकार की गाथा ३६५, ३६६ से इस बात का भी पता लगता है कि मिथ्यादृष्टि के भी तीर्थंकर और आहारकचतुष्क की सत्ता एक साथ पाई जा सकती है, ऐसा भी एक मत रहा है।

उदय मे ६, अट्ठाईस प्रकृतियो के उदय मे ६, उनतीस प्रकृतियो के उदय मे ६, तीस प्रकृतियो के उदय मे ६ और इकतीस प्रकृतियो के उदय मे ४ सत्तास्थान होते है। इन सब का कुल जोड ७+५+७+७+६+६+६+६+४=५४ होता है।

अब तीस प्रकृतिक बधस्थान का विचार करते है। जिस प्रकार तिर्यचगति के योग्य २९ प्रकृतियो का बध करने वाले एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यच पचेन्द्रिय, मनुष्य, देव और नारकों के उदयस्थानो का विचार किया उसी प्रकार उद्योत सहित तिर्यचगति के योग्य ३० प्रकृतियो का बध करने वाले एकेन्द्रियादिक के उदयस्थान और सत्तास्थानो का चिन्तन करना चाहिये। उसमे ३० प्रकृतियो को बाधने वाले देवो के २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते है तथा २१ प्रकृतियो के उदय से युक्त नारको के ८९ प्रकृतिक एक ही सत्तास्थान होता है, ९३ प्रकृतिक सत्तास्थान नही होता है। क्योकि तीर्थकर और आहारक चतुष्क की सत्ता वाला जीव नारको मे उत्पन्न नही होता है—

जस्स तित्थगराऽऽहारगाणि जुगवं सति सो नेरइएसु न उववज्जइ।

जिसके तीर्थकर और आहारकचतुष्क, इनकी एक साथ सत्ता है वह नारको मे उत्पन्न नही होता है। यह चूर्णिकार का मत भी उक्त मतव्य का समर्थन करता है।

इसी प्रकार २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक उदयस्थानो मे भी समझना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि नारको के ३० प्रकृतिक उदयस्थान नही है। क्योकि ३० प्रकृतिक उदयस्थान उद्योत प्रकृति के सद्भाव मे पाया जाता है परन्तु नारको के उद्योत का उदय नही पाया जाता है।

इस प्रकार सामान्य से ३० प्रकृतियो का बंध करने वाले जीवो

के २१ प्रकृतियो के उदय मे ७, चौबीस प्रकृतियो के उदय मे ५, पच्चीस प्रकृतियो के उदय मे ७, छब्बीस प्रकृतियो के उदय मे ५, सत्ताईस प्रकृतियो के उदय मे ६, अट्ठाईस प्रकृतियो के उदय मे ६, उनतीस प्रकृतियो के उदय मे ६, तीस प्रकृतियो के उदय मे ६ और इकत्तीस प्रकृतियो के उदय मे ४ सत्तास्थान होते हैं। जिनका कुल जोड ७+५+७+५+६+६+६+६+४=५२ होता है।

अब ३१ प्रकृतिक बंधस्थान मे उदयस्थान और सत्तास्थान का विचार करते हैं। ३१ प्रकृतिक बंधस्थान मे 'एगेगमेगतीसे'—एक उदयस्थान और एक सत्तास्थान होता है। उदयस्थान ३० प्रकृतिक और सत्तास्थान ९३ प्रकृतिक है। वह इस प्रकार समझना चाहिए कि तीर्थंकर और आहारक सहित देवगति योग्य ३१ प्रकृतियो का बंध अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण, इन दो गुणस्थानो मे होता है। परन्तु इनके न तो विक्रिया होती है और न आहारक समुद्घात ही होता है। इसलिये यहाँ २५ प्रकृतिक आदि उदयस्थान न होकर एक ३० प्रकृतिक उदयस्थान ही होता है। चूँकि इनके आहारक और तीर्थंकर प्रकृति का बंध होता है, इसलिये यहाँ एक ९३ प्रकृतिक ही सत्तास्थान होता है। इस प्रकार ३१ प्रकृतिक बंधस्थान मे ३० प्रकृतिक उदयस्थान और ९३ प्रकृतिक सत्तास्थान माना गया है।

अब एक प्रकृतिक बंधस्थान मे उदयस्थानो और सत्तास्थानो का विचार करते हैं। एक प्रकृतिक बंधस्थान मे उदयस्थान और सत्तास्थानो की संख्या बतलाने के लिए गाथा मे संकेत है कि 'एगे एगुदय अट्ठसंताणि'—अर्थात्—उदयस्थान एक है और सत्तास्थान आठ हैं। उदयस्थान ३० प्रकृतिक है और आठ सत्तास्थान ९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९, ७६ और ७५ प्रकृतिक हैं। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है— एक प्रकृतिक बंधस्थान मे एक यशःकीर्ति प्रकृति का बंध होता

है जो अपूर्वकरण गुणस्थान के सातवे भाग से लेकर दसवें गुणस्थान तक होता है। यह जीव अत्यन्त विशुद्ध होने के कारण वैक्रिय और आहारक समुद्घात को नहीं करता है, जिससे इसके २५ आदि प्रकृतिक उदयस्थान नही होते किन्तु एक ३० प्रकृतिक ही उदयस्थान होता है।

एक प्रकृतिक बंधस्थान में जो आठ सत्तास्थान बताये है, उनमे से आदि के चार ९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान उपशमश्रेणि की अपेक्षा और अंतिम चार ८०,७९,७६ और ७५ प्रकृतिक सत्तास्थान क्षपकश्रेणि की अपेक्षा कहे हैं। परन्तु जब तक अनिवृत्तिकरण के प्रथम भाग मे स्थावर, सूक्ष्म, तिर्यचद्विक, नरकद्विक, जातिचतुष्क, साधारण, आतप और उद्योत, इन तेरह प्रकृतियो का क्षय नही होता तब तक ९३ आदि प्रकृतिक, प्रारम्भ के चार सत्तास्थान भी क्षपक-श्रेणि मे पाये जाते हैं।

इस प्रकार एक प्रकृतिक बंधस्थान मे एक ३० प्रकृतिक उदयस्थान तथा ९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९, ७६ और ७५ प्रकृतिक, ये आठ सत्तास्थान समझना चाहिये।

अब उपरतबंध की स्थिति के उदयस्थानो और सत्तास्थानो का विचार करते हैं। बंध के अभाव मे भी उदय एवं सत्ता स्थानों का विचार करने का कारण यह है कि नामकर्म का बंध दसवे गुणस्थान तक होता है, आगे के चार गुणस्थानो मे नही, किन्तु उदय और सत्ता १४वे गुणस्थान तक होती है। फिर भी उसमे विविध दशाओं और जीवों की अपेक्षा अनेक उदयस्थान और सत्तास्थान पाये जाते है। इनके लिये गाथा मे कहा है—

उवरयबंधे दस दस वेयगसंतम्मि ठाणाणि।

अर्थात्—बंध के अभाव में भी दस उदयस्थान और दस सत्तास्थान

हैं। दस उदयस्थान २०,२१,२६,२७,२८,२९,३०,३१, ९ और ८ प्रकृतिक सख्या वाले है तथा सत्तास्थान ९३,९२,८९,८८,८०,७९,७६,७५, ९ और ८ प्रकृतिक सख्या वाले है। इनका स्पष्टीकरण यह है कि—

केवली को केवली समुद्घात मे ८ समय लगते हैं। इनमें से तीसरे, चौथे और पाचवें समय मे कार्मण काययोग होता है जिसमे पचेन्द्रिय जाति, त्रसत्रिक, सुभग, आदेय, यश कीर्ति, मनुष्यगति और ध्रुवोदया १२ प्रकृतिया, इस प्रकार कुल मिलाकर २० प्रकृतिक उदयस्थान होता है और तीर्थंकर के बिना ७९ तथा तीर्थंकर और आहारकचतुष्क इन पाँच के बिना ७५ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं। यदि इस अवस्था मे विद्यमान तीर्थंकर हुए तो उनके एक तीर्थंकर प्रकृति का उदय और सत्ता होने से २१ प्रकृतिक उदयस्थान तथा ८० तथा ७६ प्रकृतिक सत्तास्थान होगे।

जब केवली समुद्घात के समय औदारिकमिश्र काययोग मे रहते हैं तब उनके औदारिकद्विक, वज्रऋषभनाराच सहनन, छह सस्थानो मे से कोई एक सस्थान उपघात और प्रत्येक, इन छह प्रकृतियो को पूर्वोक्त २० प्रकृतियो मे मिलाने पर २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है तथा ७९ और ७५ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं।

यदि तीर्थंकर औदारिकमिश्र काययोग मे हुए तो उनके तीर्थंकर प्रकृति उदय व सत्ता मे मिल जाने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान तथा ८० और ७६ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं।

२६ प्रकृतियो मे पराघात, उच्छ्वास शुभ और अशुभ विहायोगति मे से कोई एक तथा सुस्वर और दुस्वर मे से कोई एक, इन चार प्रकृतियो के मिला देने पर ३० प्रकृतिक उदयस्थान होता है जो औदारिक काययोग मे विद्यमान सामान्य केवली तथा ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान मे प्राप्त होता है। अतएव ३० प्रकृतिक उदयस्थान

मे ९३,९२,८९,८८,७९ और ७५ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते है। इनमे से आदि के चार सत्तास्थान उपशान्तमोह गुणस्थान की अपेक्षा और अंत के दो सत्तास्थान क्षीणमोह और सयोगिकेवली की अपेक्षा बताये है। यदि इस ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे से स्वर प्रकृति को निकालकर तीर्थंकर प्रकृति को मिलाये तो भी उक्त उदयस्थान प्राप्त होता है जो तीर्थंकर केवली के वचनयोग के निरोध करने पर होता है। किन्तु इसमें सत्तास्थान ८० और ७६ प्रकृतिक, ये दो होते है। क्योकि सामान्य केवली के जो ७९ और ७५ प्रकृतिक सत्तास्थान कह आये है उनमे तीर्थंकर प्रकृति के मिल जाने से ८० और ७६ प्रकृतिक ही सत्तास्थान प्राप्त होते है।

सामान्य केवली के जो ३० प्रकृतिक उदयस्थान बतलाया गया है, उसमे तीर्थंकर प्रकृति के मिलाने पर तीर्थंकर केवली के ३१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है और उसी प्रकार ८० व ७६ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते है। क्योकि सामान्य केवली के ७५ और ७९ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान बतलाये है, उनमे तीर्थंकर प्रकृति के मिलाने से ७६ और ८० की संख्या होती है।

सामान्य केवली के जो ३० प्रकृतिक उदयस्थान बतला आये है, उसमे से वचनयोग के निरोध करने पर स्वर प्रकृति निकल जाती है, जिससे २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है अथवा तीर्थंकर केवली के जो ३० प्रकृतिक उदयस्थान बतलाया है उसमे से श्वासोच्छ्वास के निरोध करने पर उच्छ्वास प्रकृति के निकल जाने से २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इनमे से पहला उदयस्थान सामान्य केवली के और दूसरा उदयस्थान तीर्थंकर केवली के होता है। अत. पहले २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे ७९ और ७५ प्रकृतिक और दूसरे २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८० और ७६ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते है।

सामान्य केवली के वचनयोग के निरोध करने पर २९ प्रकृतिक उदयस्थान बताया गया है, उसमे से श्वासोच्छ्वास का निरोध करने पर उच्छ्वास प्रकृति के कम हो जाने से २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह सामान्य केवली के होता है अत यहा सत्तास्थान ७९ और ७५ प्रकृतिक, ये दो होते हैं।

तीर्थंकर केवली के अयोगिकेवली गुणस्थान मे ९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है और उपान्त्य समय तक ८० और ७६ तथा अन्तिम समय मे ९ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है। किन्तु सामान्य केवली की अपेक्षा अयोगि गुणस्थान मे ८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है तथा उपान्त्य समय तक ७९ व ७५ और अन्तिम समय मे ८ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं।

इस प्रकार से बध के अभाव मे दस उदयस्थान और दस सत्तास्थान होने का कथन समझना चाहिए।

नामकर्म के बध, उदय और सत्तास्थानो के सवेध भगो का विवरण इस प्रकार है—

गुण स्थान	बध स्थान ८	भग	उदयस्थान १२		उदय भग	सत्तास्थान १२	सवेधभग
१	२३	४	२१		३२	९२,८८,८६ ८०,७८	५
			२४		११	९२ ८८,८६,८० ७८	५
			२५		२३	,, ,, ,, ,,	५
			२६		६००	,, ,, , ,,	५
			२७	९	२२	९२,८८,८६,८०	४
			२८		११८२	,, ,,	४

गुण स्थान	वध स्थान ८	भग	उदयस्थान १२		उदयभग	सत्तास्थान १२	सवेधभग
			२९		१७६४	९२,८८,८६,८०	४
			३०		२९०६	" " " "	४
			३१		११६४	" " " "	४
							४०
१	२५	२५	२१		४०	९२,८८,८६,८०,७८	५
			२४		११	" " " " "	"
			२५		३१	" " " " "	"
			२६		६००	" " " " "	"
			२७		३०	९२,८८,८६,८०	४
			२८	९	११९८	" " " "	"
			२९		१७८०	" " " "	"
			३०		२९१४	" " " "	"
			३१		११६४	" " " "	"
							४०
१	२६	१६	२१		४०	९२,८८,८६,८०,७८	५
			२४		११	" " " " "	"
			२५		३१	" " " " "	"
			२६	९	६००	" " " " "	"
			२७		३०	९२,८८,८६,८०	४
			२८		११९८	" " " "	"
			२९		१७८०	" " " "	"

गुण स्थान	बंध स्थान ८	भंग	उदयस्थान १२		उदयभंग	सत्तास्थान १२	संवेधभंग
			३०		२९१४	९२ ८८ ८६ ८०	४
			३१		११६४	" " " "	" ४०
१सेन	२८	९	२१		१६	९२,८८	२
			२५		१७	"	"
			२६		५७६	" "	"
			२७		१७	" "	"
			२८	८	११७९	" "	"
			२९		१७५५	" "	"
			३०		२८९०	९२ ८९,८८ ८६	४
			३१		११५२	९२,८८,८६	३ १९
१सेन	२९	९२४८	२१		४१	९३,९२,८९ ८८ ८६ ८० ७८	७
			२४		११	९२,८८ ८६ ८० ७८	५
			२५	९	३३	९३ ९२,८९,८८,८६,८०,७८	७
			२६		६००	" " " "	७
			२७		३२	९३ ९२ ८९ ८८,८६,८०	६
			२८		१२०२	" " " " "	६
			२९		१७८४	" " " "	६
			३०		२९१६	" " " " "	६
			३१		११६४	९२,८८,८६,८०	४ ५४

गुण स्थान	बंध स्थान ८	भंग	उदयस्थान १२		उदय भंग	सत्तास्थान १२	संवेधभंग
१,२,४	३०	४६४१	२१		४१	९३,९२,८९,८८,८६,८०,७८	७
७,८			२४		११	९२,८८‘८६,८०,७८	५
			२५		३२	९३,९२,८९,८८,८६,८०,७८	७
			२६		६००	९२,८८,८६,८०,७८	५
			२७	९	३१	९३,९२,८९,८८,८६,८०	६
			२८		११९९	९३,९२,८९,८८,८६,८०	६
			२९		१७८१	” ” ” ” ” ”	६
			३०		२९१४	” ” ” ” ” ”	६
			३१		११६४	९२,८८,८६,८०	४
							५२
७व८	३१	१	३०	१	१४४	९३	१
							१
८,९	१	१	३०	१	७२	९३,९२,८९,८८,८०,७९,७६,	८
१०						७५	८
११	०	०	२०		१	७९,७५	२
१२			२१		१	८०,७६	२
१३			२६		६	७९,७५	२
१४			२७	७	१	८०,७६	२
			२८		१२	७९,७५	२
			२९		१३	८०,७९,७६,७५	४

गुण स्थान	बंध स्थान	भंग	उदयस्थान १२		उदयभंग	सत्तास्थान १२	संवेधभंग
			३०		७३	६३ ६२ ८६,८८,८०,७६,७६, ७५	८
			३१		१	८०,७६	२
			६		१	८०,७६,६	३
			८	७	१	७६,७५ ८	३
		१३६४५		६५	४६७२८		२८४

इस प्रकार आठो कर्मों की उत्तर प्रकृतियो के बधस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थानो और उनके परस्पर सवेध भगो का कथन समाप्त हुआ। अब इसी क्रम म उनके जीवस्थानो और गुणस्थानो की अपेक्षा भग का कथन करते हैं।

तिविगप्पपगइठाणेहिं जीवगुणसन्निएसु ठाणेसु।
भगा पउजियव्वा जत्थ जहा सभवो भवइ ॥३३॥

शब्दार्थ—तिविगप्पपगइठाणेहिं—तीन विकल्पो के प्रकृतिस्थानो के द्वारा, जीवगुणसन्निएसु—जीव और गुण संज्ञा वाले, ठाणेसु—स्थानो म, भगा—भग पउजियव्वा—घटित करना चाहिए, जत्थ—जहाँ, जहा सभवो—जितने सभव, भवइ—होते हैं।

गाथार्थ—तीन विकल्पो (बध, उदय और सत्ता) के प्रकृतिस्थानो के द्वारा जीव और गुण संज्ञा वाले स्थानो (जीवस्थान, गुणस्थान) मे जहाँ जितने भग सभव हो वहाँ उतने भग घटित कर लेना चाहिए।

विशेषार्थ—अभी तक ग्रन्थ मे मूल और उत्तर प्रकृतियो के बधस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थानो व उनके सवेध भग बतलाये हैं तथा साथ ही मूल प्रकृतियो के इन स्थानो और उनके सवेध भगो

के जीवस्थानों और गुणस्थानों की अपेक्षा स्वामी का निर्देश किया है। किन्तु उत्तर प्रकृतियों की अपेक्षा बंधस्थान, उदयस्थान और उनके संवेध भंगो के स्वामी का निर्देश नहीं किया है। इनके निर्देश करने की प्रतिज्ञा इस गाथा में की गई है कि तीनों प्रकार के प्रकृतिस्थानों के सब भंग जीवस्थानो और गुणस्थानो में घटित करके बतलाये जायेंगे।

जीवस्थानो और गुणस्थानो मे से पहले यहाँ जीवस्थानों में तीनों प्रकार के प्रकृतिस्थानों के सब भंग घटित करते है।

जीवस्थानों के संवेध भंग

पहले अब ज्ञानावरण और अंतराय कर्म के भंग बतलाते है।

तेरससु जीवसंखेवएसु नाणंतराय तिविगप्पो।
एक्कम्मि तिदुविगप्पो करणं पइ एत्थ अविगप्पो ॥३४॥

शब्दार्थ—तेरससु—तेरह, जीवसंखेवएसु—जीव के संक्षेप (स्थानो) के विषय मे, नाणंतराय—ज्ञानावरण और अंतराय कर्म के, तिविगप्पो—तीन विकल्प, एक्कम्मि—एक जीवस्थान में, तिदुविगप्पो—तीन अथवा दो विकल्प, करणंपइ—करण (द्रव्यमन के आश्रय से) की अपेक्षा, एत्थ—यहाँ, अविगप्पो—विकल्प का अभाव है।

गाथार्थ—आदि के तेरह जीवस्थानों में ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के तीन विकल्प होते हैं तथा एक जीवस्थान (पर्याप्त संज्ञी पचेन्द्रिय) मे तीन और दो विकल्प होते हैं। द्रव्य-मन की अपेक्षा इनके कोई विकल्प नहीं हैं।

विशेषार्थ—इस गाथा से जीवस्थानो मे संवेध भगों का कथन प्रारम्भ करते है। सर्वप्रथम ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के भंग बतलाते हैं।

ग्रन्थकार ने जीवस्थान पद के अर्थ का बोध कराने के लिये गाथा में 'जीवसखेवएसु' पद दिया है अर्थात् जिन अपर्याप्त एकेन्द्रियत्व आदि धर्मों के द्वारा जीव संक्षिप्त यानी संगृहीत किये जाते हैं, उनकी जीवसंक्षेप संज्ञा है—उन्हें जीवस्थान कहते है।[1] इस प्रकार जीव-संक्षेप पद को जीवस्थान पद के अर्थ मे स्वीकार किया गया है। एकेन्द्रिय सूक्ष्म अपर्याप्त आदि जीवस्थानो के चौदह भेद चतुर्थ कर्म ग्रन्थ मे बतलाये जा चुके हैं।

उक्त चौदह जीवस्थानो मे से आदि के तेरह जीवस्थानो मे ज्ञाना-वरण और अंतराय कर्म के तीन विकल्प हैं—'नाणतराय तिविगप्पो'। इसका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है—

ज्ञानावरण और अंतराय कर्म की पाच-पाच उत्तर प्रकृतिया हैं और वे सब प्रकृतिया ध्रुवबंधिनी, ध्रुवोदया और ध्रुवसत्ताक हैं। क्योंकि इन दोनों कर्मों की उत्तर प्रकृतियां का अपने-अपने विच्छेद के अंतिम समय तक बंध, उदय और सत्त्व निरन्तर बना रहता है। अतः आदि के तेरह जीवस्थानो मे ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म की उत्तर प्रकृतिया का पाच प्रकृतिक बंध, पाच प्रकृतिक उदय और पाच प्रकृतिक सत्ता, इन तीन विकल्प रूप एक भग पाया जाता है। क्योंकि इन जीवस्थानो मे से किसी भी जीवस्थान मे इनके बंध, उदय और सत्ता का विच्छेद नही पाया जाता है।

अंतिम चौदहवें पर्याप्त संज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म का बंधविच्छेद पहले होता है और उसके बाद उदय तथा सत्ता का विच्छेद होता है। अतः यहा पाच प्रकृतिक बंध,

---

1 संक्षिप्यन्ते—संगृह्यन्ते जीवा एभिरिति संक्षेपा—अपर्याप्तैकेन्द्रियत्वा-दयो धर्मा[?]ज्जातिभेदा जीवानां संक्षेपा जीवसंक्षेपा जीवस्थानानीत्यर्थ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० १६५

पाँच प्रकृतिक उदय और पाच प्रकृतिक सत्ता, इस प्रकार तीन विकल्प रूप एक भग होता है। अनन्तर बंधविच्छेद हो जाने पर पाँच प्रकृतिक उदय और पाँच प्रकृतिक सत्ता, इस प्रकार दो विकल्प रूप एक भग होता है—'एक्कम्मि तिदुविगप्पो।' पांच प्रकृतिक वध, उदय और सत्ता, यह तीन विकल्प सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक पाये जाते हैं तथा उसके बाद वध का विच्छेद हो जाने पर उपशान्तमोह और क्षीणमोह गुणस्थान मे पाँच प्रकृतिक उदय और पाँच प्रकृतिक सत्ता, यह दो विकल्प होते हैं। क्योकि उदय और सत्ता का युगपद् विच्छेद हो जाने से अन्य भंग सम्भव नही है।

पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान की एक और विशेषता वतलाते हैं कि 'करण पड़ एत्थ अविगप्पो' अर्थात् केवलज्ञान के प्राप्त हो जाने के बाद इस जीव को भावमन तो नही रहता किन्तु द्रव्यमन ही रहता है और इस अपेक्षा से उसे भी पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय कहते है। चूर्णि मे भी कहा है—

मणकरणं केवलिणो वि अत्थि तेण सन्निणो वुच्चंति। मणोविण्णाण पडुच्च ते सन्निणो न हवंति।

(अर्थात्—मन नामक करण केवली के भी है, इसलिये वे सज्ञी कहलाते है किन्तु वे मानसिक ज्ञान की अपेक्षा सज्ञी नही होते है।)

ऐसे सयोगि और अयोगि केवली जो द्रव्यमन के सयोग से पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय है, उनके तीन विकल्प रूप और दो विकल्प रूप भग नही होते है। अर्थात केवल द्रव्यमन की अपेक्षा जो जीव पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय कहलाते है, उनके ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के वध, उदय और सत्व की अपेक्षा कोई भग नही है क्योकि इन कर्मो के वंध, उदय और सत्ता का विच्छेद केवली होने से पहले ही हो जाता है।

इस प्रकार से जीवस्थानो में ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के

भगो को बतलाने के बाद अब दर्शनावरण, वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के बधादि स्थानो के भगो को बतलाते हैं।

तेरे नव चउ पणग नव सतेगम्मि भगमेक्कारा।
वेयणियाउयगोए विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥३५॥

शब्दार्थ—तेरे—तेरह जीवस्थानो म नव—नौ प्रकृतिक बध, चउ पणग—चार अथवा पाच प्रकृतिक उदय, नवसत—नौ की सत्ता, एगम्मि—एक जीवस्थान म, भगमक्कारा—ग्यारह भग होते हैं वेयणियाउयगोए—वेदनीय आयु और गोत्र कर्म म विभज्ज—विकल्प करके मोहं—मोहनीय कर्म के परं—आगे, वोच्छं—कहूँगा।

गाथार्थ—तेरह जीवस्थानो मे नौ प्रकृतिक बध, चार या पाच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता होती है। एक जीव स्थान मे ग्यारह भग होते है। वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म म बधादि स्थानो का विभाग करके मोहनीय कर्म के बारे मे आगे कहेंगे।

विशेषार्थ—गाथा मे दर्शनावरण, वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के बधादि स्थानो को बतला कर बाद मे मोहनीय कर्म के विकल्प बतलाने का सकेत किया है।

दर्शनावरण कर्म के बधादि विकल्प इस प्रकार हैं कि आदि के तेरह जीवस्थानो मे नौ प्रकृतिक बध, चार या पाँच प्रकृतिक उदय तथा नौ प्रकृतिक सत्ता, ये दो भग होते हैं। अर्थात नौ प्रकृतिक बध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता यह एक भग और नौ प्रकृतिक बध, पाच प्रकृतिक उदय तथा नौ प्रकृतिक सत्ता यह दूसरा भग, इस प्रकार आदि के तेरह जीवस्थानो मे दो भग होते हैं। इसका कारण यह है कि प्रारम्भ के तेरह जीवस्थानो मे दर्शनावरण कर्म की किसी भी उत्तर प्रकृति का न तो बधविच्छेद होता है, न उदयविच्छेद

होता है और न सत्ताविच्छेद ही होता है। निद्रा, निद्रा-निद्रा आदि पाच निद्राओं मे से एक काल में किसी एक का उदय होता भी है और नही भी होता है। इसीलिये इन पाँच निद्राओ मे से किसी एक का उदय होने या न होने की अपेक्षा से आदि के तेरह जीवस्थानो के दो भंग वतलाये हैं।

परन्तु एक जो पर्याप्त संज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान है उसमे ग्यारह भंग होते है—'एगम्मि भगमेक्कारा'। क्योकि पर्याप्त संज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान में गुणस्थानो के क्रम से दर्शनावरण कर्म की नौ प्रकृतियों का वंध, उदय और सत्ता तथा इनकी व्युच्छित्ति सव कुछ सम्भव है। इसीलिये इस जीवस्थान मे दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियो के वध, उदय और सत्ता की अपेक्षा ११ भग होने का सकेत किया गया है। इन ग्यारह भंगो का विचार पूर्व मे दर्शनावरण के सामान्य सवेध भगों के प्रसंग मे किया जा चुका है। अत. पुन. यहाँ उनका स्पष्टीकरण नही किया गया है। जिज्ञासु-जन वहा से इनकी जानकारी कर लेवे।

इस प्रकार से दर्शनावरण कर्म के सवेध भंगों का कथन करने के वाद वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भग वतलाते हैं। लेकिन ग्रन्थ-कर्त्ता ने स्वय उक्त तीन कर्मों के भंगो का निर्देश नही किया और न ही यह वताया कि किस जीवस्थान मे कितने भंग होते हैं। किन्तु इनका विवेचन आवश्यक होने से अन्य आधार से इनका स्पष्टीकरण करते हैं।

भाष्य मे एक गाथा आई है, जिसमे वेदनीय और गोत्र कर्म के भगों का विवेचन चौदह जीवस्थानो की अपेक्षा किया गया है। उक्त गाथा इस प्रकार है—

पज्जत्तगसन्नियरे अट्ठ चउक्कं च वेयणियभगा।
सत्तग तिगं च गोए पत्तेय जीवठाणेसु॥

अर्थात्—पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में वेदनीय कर्म के आठ भंग और शेष तेरह जीवस्थानों में चार भंग होते हैं तथा गोत्र कर्म के पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में सात भंग और शेष तेरह जीवस्थानों में से प्रत्येक में तीन भंग होते हैं।

उक्त कथन का विशद विवेचन निम्न प्रकार है—वेदनीय कर्म के पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में चौदह गुणस्थान सम्भव हैं अतः उसमें, १ असाता का बन्ध, असाता का उदय और साता असाता दोनों की सत्ता, २ असाता का बंध, साता का उदय और साता-असाता दोनों की सत्ता, ३ साता का बंध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता, ४ साता का बंध, साता का उदय और साता-असाता दोनों की सत्ता, ५ असाता का उदय और साता-असाता दोनों की सत्ता, ६ साता का उदय और साता असाता दोनों की सत्ता, ७ असाता का उदय और असाता की सत्ता और ८ साता का उदय तथा साता की सत्ता, ये आठ भंग होते हैं। किन्तु प्रारम्भ के तेरह जीवस्थानों में से प्रत्येक के उक्त आठ भंगों में से आदि के चार भंग ही प्राप्त होते हैं। क्योंकि इनमें साता और असाता वेदनीय इन दोनों का यथासम्भव बंध, उदय और सत्ता सर्वत्र सम्भव है। इसीलिए भाष्य गाथा में कहा गया है कि 'पज्जत्तगसन्नियरे अट्ठ चउक्कं च वेयणियभंगा।'

वेदनीय कर्म के उक्त आठ भंगों को पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवस्थान में गुणस्थानों की अपेक्षा इस प्रकार घटित करना चाहिये—

पहला भंग—असाता का बंध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता तथा दूसरा भंग—असाता का बंध, साता का उदय और साता असाता की सत्ता, यह दो भंग पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर छठे प्रमत्तसंयत गुणस्थान तक पाये जाते हैं। क्योंकि आगे के गुणस्थानों में असाता वेदनीय के बंध का अभाव है। तीसरा भंग—

साता का वध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता, चौथा भग—साता का वध, साता का उदय और साता-असाता की सत्ता, यह दो विकल्प पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर तेरहवे सयोगिकेवली गुणस्थान तक पाये जाते है। इसके वाद वध का अभाव हो जाने से पाँचवां भग—असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता तथा छठा भग—साता का उदय और साता-असाता दोनो की सत्ता, यह दो भंग अयोगिकेवली गुणस्थान मे द्विचरम समय तक प्राप्त होते है और चरम समय मे सातवा भग—असाता का उदय और असाता की सत्ता तथा आठवा भग—साता का उदय और साता की सत्ता, यह दो भग पाये जाते है।

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली द्रव्यमन के सम्वन्ध से सज्ञी कहे जाते है, अत· सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे वेदनीय कर्म के आठ भग मानने मे किसी प्रकार का विरोध नही है।

इस प्रकार से वेदनीय कर्म के भगो का कथन करके अव गोत्र कर्म के भगो को वतलाते है कि 'सत्तग तिग च गोए'—वे इस प्रकार है—

गोत्रकर्म के पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे सात भग प्राप्त होते है। वे सात भग इस प्रकार है—१ नीच का बध, नीच का उदय और नीच की सत्ता, २ नीच का बध, नीच का उदय और उच्च-नीच दोनो की सत्ता, ३ नीच का वध, उच्च का उदय और उच्च-नीच दोनो की सत्ता, ४ उच्च का वध, नीच का उदय और उच्च-नीच दोनो की सत्ता, ५ उच्च का वध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता, ६ उच्च का उदय और उच्च-नीच दोनो की सत्ता तथा ७ उच्च का उदय और उच्च की सत्ता।

उक्त सात भगो मे से पहला भग उन सज्ञियो को होता है जो

अग्निकायिक और वायुकायिक पर्याय से आकर सज्ञियो मे उत्पन्न होते हैं क्योंकि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो के उच्च गोत्र की उद्वलना देखी जाती है। फिर भी यह भग सज्ञी जीवो के कुछ समय तक ही पाया जाता है। सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे दूसरा और तीसरा भग प्रारम्भ के दो गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन की अपेक्षा बताया है। चौथा भग प्रारम्भ के पाच गुणस्थानो की अपेक्षा से कहा है। पाचवा भग प्रारम्भ के दस गुणस्थानो की अपेक्षा से कहा है। छठा भग उपशान्तमोह गुणस्थान से लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय तक होने की अपेक्षा से कहा है। और सातवा भग अयोगिकेवली गुणस्थान के अन्तिम समय की अपेक्षा से कहा है।

लेकिन शेष तेरह जीवस्थानो मे उक्त सात भगो मे से पहला, दूसरा और चौथा ये तीन भग प्राप्त होते हैं। पहला भग नीच गोत्र का बध, नीच गोत्र का उदय और नीच गोत्र की सत्ता अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो मे उच्च गोत्र की उद्वलना के अनन्तर सर्वदा होता है किन्तु शेष मे से उनके भी कुछ काल तक होता है जो अग्निकायिक और वायुकायिक पर्याय से आकर अन्य पृथ्वीकायिक, द्वीन्द्रिय आदि मे उत्पन्न हुए हैं। दूसरा भग—नीच गोत्र का बध, नीच गोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता तथा चौथा भग—उच्च गोत्र का बध, नीच गोत्र का उदय और उच्च-नीच गोत्र की सत्ता, यह दोनो भग भी तेरह जीवस्थानो मे नीच गोत्र का ही उदय होने से पाये जाते हैं। अन्य विकल्प सम्भव नही हैं, क्योकि तिर्यचो मे उच्च गोत्र का उदय नही होता है।

इस प्रकार से भाष्य की गाथा के अनुसार जीवस्थानो मे वेदनीय और गोत्र कर्मों के भगो को बतलाने के बाद अब जीवस्थानो मे आयु कर्म के भगो को बतलाने के लिये भाष्य की गाथा को उद्धृत करते हैं—

पज्जत्तापज्जत्तग समणे पज्जत्त अमण सेसेसु ।
अट्ठावीसं दसग नवगं पणगं च आउस्स ॥

अर्थात्—पर्याप्त सज्ञी पंचेन्द्रिय, अपर्याप्त संज्ञी पचेन्द्रिय, पर्याप्त असज्ञी पचेन्द्रिय और शेप ग्यारह जीवस्थानों मे आयु कर्म के क्रमशः २८, १०, ६ और ५ भग होते है।

आशय यह है कि पर्याप्त संज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे आयुकम के २८ भग होते हैं। अपर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान में १० तथा पर्याप्त असज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे ६ भग होते है। इन तीन जीव-स्थानो से शेप रहे ग्यारह जीवस्थानो में से प्रत्येक मे पाच-पाच भग होते हैं।

पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे आयुकर्म के अट्ठाईस भग इस प्रकार समझना चाहिये कि पहले नारको के ५, तिर्यचो के ६, मनुष्यो के ६ और देवो के ५ भंग बतला आये है, जो कुल मिलाकर २८ भग होते है, वे ही यहा पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय के २८ भग कहे गये है। विशेप विवेचन इस प्रकार है—

नारक जीव के १ परभव की आयु के बधकाल के पूर्व नरकायु का उदय, नरकायु की सत्ता, २ परभव की आयु बंध होने के समय तिर्यचायु का बंध, नरकायु का उदय, नरक-तिर्यचायु की सत्ता अथवा ३. मनुष्यायु का बंध, नरकायु का उदय, नरक-मनुष्यायु की सत्ता, ४ परभव की आयुबंध के उत्तरकाल मे नरकायु का उदय और नरक-तिर्यचायु की सत्ता अथवा ५ नरकायु का उदय और मनुष्य-नरकायु की सत्ता, यह पाच भग होते है। नारक जीव भवप्रत्यय से ही देव और नरकायु बध नहीं करते है अत· परभव की आयु बंधकाल में और बधोत्तर काल मे देव और नरकायु का विकल्प सम्भव नही होने से नारक जीवो मे आयुकर्म के पांच विकल्प ही होते हैं।

इसी प्रकार देवो मे आयुकर्म के पाच विकल्प समझना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि नरकायु के स्थान पर देवायु कहना चाहिये। जैसे कि देवायु का उदय और देवायु की सत्ता इत्यादि।

तिर्यंचो के नौ विकल्प इस प्रकार हैं कि १ तिर्यंचायु का उदय, तिर्यचायु की सत्ता, यह विकल्प परभव की आयु बधकाल के पूर्व होता है। २ परभव की आयु बधकाल मे नरकायु का बध, तिर्यंचायु का उदय, नरक तिर्यच आयु की सत्ता अथवा ३ तिर्यचायु का बध, तिर्यचायु का उदय और तिर्यंच तिर्यचायु की सत्ता अथवा ४ मनुष्यायु का बध, तिर्यचायु का उदय और मनुष्य तिर्यंचायु की सत्ता अथवा ५ देवायु का बध, तिर्यंचायु का उदय और देव-तिर्यंचायु की सत्ता। परभवायु के बधोत्तर काल मे ६ तिर्यचायु का उदय, नरक-तिर्यचायु की सत्ता अथवा ७ तिर्यंचायु का उदय, तिर्यंच-तिर्यंच आयु की सत्ता अथवा ८ तिर्यंचायु का उदय, मनुष्य तिर्यंचायु की सत्ता अथवा ९ तिर्यचायु का उदय, देव-तिर्यचायु की सत्ता। इस प्रकार सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यंच के आयुकर्म के ९ भग होते है।

इसी प्रकार मनुष्यो के भी नौ भग समझना चाहिये, लेकिन इतनी विशेषता है कि तिर्यंचायु के स्थान पर मनुष्यायु का विधान कर लेवे। जैसे कि मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता इत्यादि।

इस प्रकार नारक के ५, देव के ५, तिर्यंच के ९ और मनुष्य के ९ विकल्पो का कुल जोड ५+५+९+९=२८ होता है। इसीलिये पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान म आयुकर्म के २८ भग माने जाते हैं।

सज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव के दस भग हैं। सज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त जीव मनुष्य और तिर्यच ही होते है, क्योकि देव और नारको

मे अपर्याप्त नाम कर्म का उदय नही होता है तथा इनके परभव संवधी मनुष्यायु तथा तिर्यचायु का ही वन्ध होता है, अत इनके मनुष्यगति की अपेक्षा ५ और तिर्यचगति की अपेक्षा ५ भग, इस प्रकार कुल दस भंग होते हैं। जैसे कि तिर्यचगति की अपेक्षा १ आयुवध के पहले तिर्यचायु का उदय और तिर्यचायु की सत्ता २ आयुवध के समय तिर्यचायु का वध, तिर्यचायु का उदय और तिर्यच-तिर्यचायु की सत्ता अथवा ३ मनुष्यायु का वध, तिर्यचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यचायु की सत्ता, ४ वध की उपरति होने पर तिर्यचायु का उदय और तिर्यच-तिर्यचायु की सत्ता अथवा ५ तिर्यचायु का उदय और मनुष्य-तिर्यचायु की सत्ता। कुल मिलाकर ये पाँच भग हुए।

इसी प्रकार मनुष्यगति की अपेक्षा भी पाँच भग समझना चाहिये, लेकिन तिर्यचायु के स्थान पर मनुष्यायु को रखे। जैसे कि आयु बध के पहले मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता आदि।

पर्याप्त असंज्ञी पचेन्द्रिय जीव तिर्यच ही होता है और उसके चारो आयुओ का वंध सम्भव है, अतः यहाँ आयु के वे ही नौ भग होते है जो सामान्य तिर्यचो के वतलाये है।

इस प्रकार से तीन जीवस्थानो में आयुकर्म के भंगों को वतलाने के वाद शेप रहे ग्यारह जीवस्थानो के भगो के वारे मे कहते है कि उनमे से प्रत्येक मे पाँच-पाँच भंग होते है। क्योकि शेष ग्यारह जीवस्थानो के जीव तिर्यच ही होते है और उनके देवायु व नरकायु का वध नही होता है, अत संज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त तिर्यचो के जो पाँच भग वतलाये है, वे ही यहाँ जानना चाहिये कि वधकाल से पूर्व का एक भग, वधकाल के समय के दो भग और उपरत वधकाल के दो भग। इस प्रकार शेप ग्यारह जीवस्थानो मे पाँच भग होते है।

चौदह जीवस्थानों में ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयु, गोत्र और अंतराय, इन छह कर्मों के भंगों का विवरण इस प्रकार है—

क्रम	जीवस्थान	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	आयु	गोत्र	अंतराय
१	एकेन्द्रिय सूक्ष्म अपर्याप्त	१	२	४	५	३	१
२	एकेन्द्रिय सूक्ष्म पर्याप्त	१	२	४	५	३	१
३	एकेन्द्रिय बादर अपर्याप्त	१	२	४	५	३	१
४	एकेन्द्रिय बादर पर्याप्त	१	२	४	५	३	१
५	द्वीन्द्रिय अपर्याप्त	१	२	४	५	३	१
६	द्वीन्द्रिय पर्याप्त	१	२	४	५	३	१
७	त्रीन्द्रिय अपर्याप्त	१	२	४	५	३	१
८	त्रीन्द्रिय पर्याप्त	१	२	४	५	३	१
९	चतुरिन्द्रिय अपर्याप्त	१	२	४	५	३	१
१०	चतुरिन्द्रिय पर्याप्त	१	२	४	५	३	१
११	असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त	१	२	४	१०	३	१
१२	असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त	१	२	४	६	३	१
१३	संज्ञी पंचेन्द्रिय अपर्याप्त	१	२	४	१०	३	१
१४	संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त	२	११	८	२८	७	३

छह कर्मों के जीवस्थानों में भंगों को बतलाने के बाद अब 'मोह' पर बोच्छं'—मोहनीय कर्म के भंगों को बतलाते हैं।

अट्ठसु पंचसु एगे एग दुग दस य मोहबंधगए।
तिग चउ नव उदयगए तिग तिग पन्नरस संतम्मि ॥३६॥

शब्दार्थ—अट्ठसु—आठ जीवस्थानो मे, पंचसु—पाँच जीवस्थानो मे, एगे—एक जीवस्थान मे, एग—एक, दुगं—दो, दस—दस, य—और, मोहबंधगए—मोहनीय कर्म के बंधगत स्थानो मे, तिग चउ नव—तीन चार और नौ, उदयगए—उदयगत स्थान, तिग तिग पन्नरस—तीन, तीन और पन्द्रह, संतम्मि—सत्ता के स्थान।

गाथार्थ—आठ, पाँच और एक जीवस्थान मे मोहनीय कर्म के अनुक्रम से एक, दो और दस बंधस्थान, तीन, चार और नौ उदयस्थान तथा तीन, तीन और पन्द्रह सत्तास्थान होते है।

विशेषार्थ—इस गाथा मे मोहनीय कर्म के जीवस्थानो में बंध, उदय और सत्ता स्थान बतलाये है और जीवस्थानों तथा बंधस्थानो, उदयस्थानो तथा सत्तास्थानो की सख्या का सकेत किया है कि कितने जीवस्थानो मे मोहनीय कर्म के कितने बंधस्थान है, कितने उदयस्थान है और कितने सत्तास्थान है। परन्तु यह नही बताया है कि वे कौन-कौन होते है। अत· इसका स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है।

आठ, पाँच और एक जीवस्थान मे यथाक्रम से एक, दो और दस बंधस्थान है। अर्थात् आठ जीवस्थानो मे एक बंधस्थान है, पाँच जीवस्थानो मे दो बंधस्थान है और एक जीवस्थान मे दस बंधस्थान है। इनमे से पहले आठ जीवस्थानो मे एक बंधस्थान होने को स्पष्ट करते है कि पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, अपर्याप्त त्रीन्द्रिय, अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय, अपर्याप्त असज्ञी पंचेन्द्रिय और अपर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय, इन आठ जीवस्थानो मे पहला मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है अतः इनके एक २२ प्रकृतिक बंधस्थान होता है। वे २२ प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं—मिथ्यात्व, अनन्तानुबंधी कषाय चतुष्क आदि सोलह कषाय, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, हास्य-रति और शोक-अरति युगल मे से कोई

एक युगल, भय और जुगुप्सा। इस बंधस्थान में तीन वेद और दो युगलों की अपेक्षा छह भंग होते हैं।

पांच जीवस्थानों में दो बंधस्थान इस प्रकार जानना चाहिये कि पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय, पर्याप्त द्वीन्द्रिय, पर्याप्त त्रीन्द्रिय, पर्याप्त चतुरिन्द्रिय और पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय, इन पांच जीवस्थानों में २२ प्रकृतिक और २१ प्रकृतिक, यह दो बंधस्थान होते हैं। बाईस प्रकृतियों का नामोल्लेख पूर्व में किया जा चुका है और उसमें से मिथ्यात्व को कम कर देने पर २१ प्रकृतिक बंधस्थान हो जाता है। इनके मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होता है इसलिये तो इनके २२ प्रकृतिक बंधस्थान कहा गया है तथा सासादन सम्यग्दृष्टि जीव मर कर इन जीवस्थानों में भी उत्पन्न होते हैं, इसलिये इनके २१ प्रकृतिक बंधस्थान बतलाया है। इनमें से २२ प्रकृतिक बंधस्थान के ६ भंग हैं जो पहले बतलाये जा चुके हैं और २१ प्रकृतिक बंधस्थान के ४ भंग होते हैं। क्योंकि नपुंसकवेद का बंध मिथ्यात्वोदय निमित्तिक है और यहाँ मिथ्यात्व का उदय न होने से नपुंसकवेद का भी बंध न होने से शेष दो वेद—पुरुष और स्त्री तथा दो युगलों की अपेक्षा चार भंग ही संभव हैं।

अब रहा एक संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान, सो इसमें २२ प्रकृतिक आदि मोहनीय के दस बंधस्थान होते हैं। उक्त दस बंधस्थानों की प्रकृति संख्या मोहनीय कर्म के बंधस्थानों के प्रसंग में बतलाई जा चुकी है, जो वहाँ से समझ लेना चाहिये।

अब जीवस्थानों में मोहनीय कर्म के उदयस्थान बतलाते हैं कि 'तिग पण नव उदयगए'—आठ जीवस्थानों में तीन, पांच जीवस्थानों में चार और एक जीवस्थान में नौ उदयस्थान हैं। पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय आदि आठ जीवस्थानों में आठ, नौ और दस प्रकृतिक, यह

तीन उदयस्थान हैं। वे इस प्रकार जानना चाहिये कि यद्यपि मिथ्या-दृष्टि गुणस्थान मे अनन्तानुबंधी चतुष्क मे से किसी एक के उदय के बिना ७ प्रकृतिक उदयस्थान भी होता है, परन्तु वह इन आठ जीव-स्थानों मे नही पाया जाता है। क्योंकि जो जीव उपशमश्रेणि से च्युत होकर क्रमश. मिथ्यादृष्टि होता है उसी के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे एक आवली काल तक मिथ्यात्व का उदय नहीं होता, परन्तु इन जीवस्थान वाले जीव तो उपशमश्रेणि पर चढते ही नहीं है, अत. इनको सात प्रकृतिक उदयस्थान संभव नही है।

उक्त आठ जीवस्थानो मे नपुसकवेद, मिथ्यात्व, कषाय चतुष्क और दो युगलो मे से कोई एक युगल, इस तरह आठ प्रकृतिक उदय-स्थान होता है। इस उदयस्थान मे आठ भग होते हैं, क्योंकि इन जीवस्थानो मे एक नपुसकवेद का ही उदय होता है, पुरुषवेद और स्त्रीवेद का नही, अत यहाँ वेद का विकल्प तो सभव नही किन्तु यहाँ विकल्प वाली प्रकृतियाँ क्रोध आदि चार कषाय और दो युगल है, सो उनके विकल्प से आठ भग होते है।

इस आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भय और जुगुप्सा को विकल्प से मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ एक-एक विकल्प के आठ-आठ भग होते है अत· आठ को दो मे गुणित करने पर सोलह भंग होते है। अर्थात् नौ प्रकृतिक उदयस्थान के सोलह भग है। आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भय और जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह एक ही प्रकार का है, अत पूर्वोक्त आठ भंग ही होते है। इस प्रकार तीनो उदयस्थानो के कुल ३२ भग हुए, जो प्रत्येक जीवस्थान मे अलग-अलग प्राप्त होते हैं।

पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय आदि पाच जीवस्थानो मे से प्रत्येक मे चार-चार उदयस्थान है—सात, आठ, नौ और दस प्रकृतिक। सो

इनमे से सासादन भाव के काल मे २१ प्रकृतिक बधस्थान मे ८, ९ और १०, ये तीन-तीन उदयस्थान होते हैं तथा २२ प्रकृतिक बधस्थान मे ८, ९ और १० ये तीन-तीन उदयस्थान होते हैं। इन जीवस्थानो मे भी एक नपुसकवेद का ही उदय होता है अत यहाँ भी ७, ८ और ९ और १० प्रकृतिक उदयस्थान के क्रमश ८, १६ और ८ भग होते हैं तथा इसी प्रकार ८, ९ और १० प्रकृतिक उदयस्थान के क्रमश ८, १६ और ८ भग होंगे, किन्तु चूर्णिकार का मत है[1] कि असज्ञी लब्धिपर्याप्त के यथायोग्य तीन वेदों मे से किसी एक वेद का उदय होता है। अत इस मत के अनुसार असज्ञी लब्धिपर्याप्त के सात आदि उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे आठ भग न होकर २४ भग होते हैं।

पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे ९ उदयस्थान हैं, जिनका उल्लेख मोहनीय कर्म के उदयस्थानो के प्रसग मे किया जा चुका है। अत वहाँ से जान लेवें।

जीवस्थानो मे मोहनीय कर्म के सत्तास्थान इस प्रकार जानना चाहिए कि 'तिग तिग पन्नरस सतम्मि' अर्थात आठ जीवस्थानो मे तीन, पाच जीवस्थानो मे तीन और एक जीवस्थान मे १५ होते हैं। पूर्वोक्त आठ जीवस्थानो मे से प्रत्येक मे २८, २७ और २६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे इन तीन के सिवाय और सत्तास्थान नहीं पाये जाते हैं। इसी प्रकार से पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय आदि पाच जीवस्थानो मे भी २८, २७ और २६ प्रकृतिक सत्तास्थान समझना चाहिये और एक पर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय मे सभी १५ सत्तास्थान हैं। क्योंकि इस जीवस्थान मे सभी गुणस्थान होते हैं।

---

[1] [illegible]

इस प्रकार से जीवस्थानो में पृथक्-पृथक् उदय और सत्तास्थानो का कथन करने के अनन्तर अब इनके सवेध का कथन करते है—आठ जीवस्थानो मे एक २२ प्रकृतिक बंधस्थान होता है और उसमें ८, ९ और १० प्रकृतिक, यह तीन उदयस्थान होते है तथा प्रत्येक उदयस्थान मे २८, २७ और २६ प्रकृतिक सत्तास्थान हैं। इस प्रकार आठ जीवस्थानो मे से प्रत्येक के कुल नौ भग हुए। पाँच जीवस्थानो मे २२ प्रकृतिक और २१ प्रकृतिक, ये दो बंधस्थान है और इनमें से २२ प्रकृतिक बंधस्थान मे ८, ९ और १० प्रकृतिक तीन उदयस्थान होते है और प्रत्येक उदयस्थान मे २८, २७ और २६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान हैं। इस प्रकार कुल नौ भग हुए। २१ प्रकृतिक बंधस्थान मे ७, ८ और ९ प्रकृतिक, तीन उदयस्थान है और प्रत्येक उदयस्थान मे २८ प्रकृतिक एक सत्तास्थान होता है। इस प्रकार २१ प्रकृतिक बंधस्थान मे तीन उदयस्थानो की अपेक्षा तीन सत्तास्थान हैं। दोनो बधस्थानो की अपेक्षा यहाँ प्रत्येक जीवस्थान मे १२ भग है।

२१ प्रकृतिक बधस्थान मे २८ प्रकृतिक एक सत्तास्थान मानने का कारण यह है कि २१ प्रकृतिक बधस्थान सासादन गुणस्थान मे होता है और सासादन गुणस्थान २८ प्रकृतिक सत्ता वाले जीव को ही होता है, क्योकि सासादन सम्यग्दृष्टियो के दर्शनमोहत्रिक की सत्ता पाई जाती है। इसीलिये २१ प्रकृतिक बधस्थान मे २८ प्रकृतिक सत्तास्थान माना जाता है।[1]

एक सज्ञी पर्याप्त पचेन्द्रिय जीवस्थान मे मोहनीय कर्म के बध आदि स्थानो के सवेध का कथन जैसा पहले किया गया है, वैसा ही यहाँ जानना चाहिये।

---

१ एकविंशतिबन्धो हि सासादनभावमुपागतेषु प्राप्यते, सासादनाश्चावश्यमष्टाविंशतिसत्कर्माण, तेषां दर्शनत्रिकस्य नियमतो भावात्, ततस्तेषु सत्तास्थानमष्टाविंशतिरेव। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २००

जीवस्थानो मे मोहनीय कर्म के संवेध भंगों का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

क्रम सं०	जीवस्थान	बंध स्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	उदय पद	पदवृन्द	सत्तास्थान
१	सू ए अ	२२	६	८,९,१०	३२	३६	२८८	२८,२७,२६
२	सू ए प	२२	६	८,९,१०	३२	३६	२८८	२८,२७,२६
३	बा ए अ	२२	६	८,९,१०	३२	३६	२८८	२८,२७,२६
४	बा ए प	२२ २१	६ ४	८,९,१० ७,८,९	६४	६८	५४४	२८,२७,२६ २८
५	द्वी अप	२२	६	८,९,१०	३२	३६	२८८	२८,२७,२६
६	द्वी पर्या	२२ २१	६ ४	८,९,१० ७,८,९	६४	६८	५४४	२८,२७,२६ २८
७	त्री अप	२२	६	८,९,१०	३२	३६	२८८	२८,२७,२६
८	त्री पर्या	२२ २१	६ ४	८,९,१० ७,८,९	६४	६८	५४४	२८,२७,२६ २८,२७,२६
९	चतु अप	२२	६	८,९,१०	३२	३६	२८८	२८,२७,२६
१०	चतु पर्या	२२ २१	६ ४	८,९,१० ७,८,९	६४	६८	५४४	२८,२७,२६ २८
११	असं प अ	२२	६	८,९,१०	३२	३६	२८८	२८,२७,२६
१२	असं प प	२२ २१	६ ४	८,९,१० ७,८,९	६४	६८	५४४	२८,२७,२६ २८
१३	सं प अप	२२	६	८,९,१०	३२	३६	२८८	२८,२७,२६
१४	सं प पर्या	सब	२१	सब	९८३	९८८	६९४७	सब

जीवस्थानों में मोहनीय कर्म के बंधादि स्थानों व संवेध भंगों को बतलाने के बाद अब नामकर्म के भंगों को बतलाते हैं—

पण दुग पणगं पण चउ पणगं पणगा हवंति तिन्नेव ।
पण छप्पणगं छच्छप्पणग अट्ठऽट्ठ दसगं ति ॥३७॥
सत्तेव अपज्जत्ता सामी तह सुहुम बायरा चेव ।
विगलिंदिया उ तिन्नि उ तह य असन्नी य सन्नी य ॥३८॥

शब्दार्थ—पण दुग पणगं—पाँच, दो, पाँच, पण चउ पणगं—पाँच, चार, पाँच, पणगा—पाँच-पांच, हवंति—होते हैं, तिन्नेव—तीनों ही (बंध, उदय और सत्तास्थान), पण छप्पणगं—पांच, छह, पांच, छच्छप्पणगं—छह, छह, पाँच, अट्ठऽट्ठ—आठ, आठ, दसगं—दस, ति—इस प्रकार ।

सत्तेव—सातों ही, अपज्जत्ता—अपर्याप्त, सामी—स्वामी, तह—तथा, सुहुम—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, बायरा—बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, चेव—और, विगलिंदिया—विकलेन्द्रिय पर्याप्त, तिन्नि—तीन, तह—वैसे ही, य—और, असन्नी—असंज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त, सन्नी—संज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त ।

गाथार्थ—पांच, दो, पाँच, पाँच, चार, पाँच, पाँच, पाँच, पाँच, पाँच, छह, पाँच, छह, छह, पाँच और आठ, आठ, दस, ये बंध, उदय और सत्तास्थान है ।

इनके क्रम से सातों अपर्याप्त, सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त, बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त, विकलत्रिक पर्याप्त, असंज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त और संज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीव स्वामी जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—इन दो गाथाओं में जीवस्थानों में नामकर्म के भंगों का विचार किया गया है । पहली गाथा में तीन-तीन संख्याओं का एक पुंज लिया गया है, जिसमें से पहली संख्या बंधस्थान की, दूसरी

संख्या उदयस्थान की और तीसरी संख्या सत्तास्थान की द्योतक है। गाथा में संख्या के ऐसे कुल छह पुंज हैं। दूसरी गाथा में चौदह जीवस्थानों को छह भागों में विभाजित किया गया है। जिसका यह तात्पर्य हुआ कि पहले भाग के जीवस्थान पहले पुंज के स्वामी दूसरे भाग के जीवस्थान दूसरे पुंज के स्वामी हैं इत्यादि।

यद्यपि गाथागत संकेत से इतना तो जान लिया जाता है कि अमुक जीवस्थान में इतने बंधस्थान, इतने उदयस्थान और इतने सत्तास्थान हैं, किन्तु वे कौन-कौनसे हैं और उनमें कितनी कितनी प्रकृतियों का ग्रहण किया गया है यह ज्ञात नहीं होता है। अतः यहाँ उन्हीं का भंगों के साथ आचार्य मलयगिरि कृत टीका के अनुसार विस्तार से विवेचन किया जाता है।

'पण दुग पणगं सत्तेव अपज्जत्ता' दोनों गाथाओं के पदों को यथाक्रम से जोड़ने पर यह एक पद हुआ। जिसका यह अर्थ हुआ कि चौदह जीवस्थानों में से सात अपर्याप्त जीवस्थानों में से प्रत्येक में पांच बंधस्थान, दो उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान हैं। जिसका स्पष्टीकरण यह है कि सात प्रकार के अपर्याप्त जीव मनुष्यगति और तिर्यंचगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करते हैं, देवगति और नरकगति के योग्य प्रकृतियों का नहीं, अतः इन सात अपर्याप्त जीवस्थानों में २८, ३१ और १ प्रकृतिक बंधस्थान न होकर २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पाँच बंधस्थान होते हैं और इनमें भी मनुष्यगति तथा तिर्यंचगति के योग्य प्रकृतियों का ही बंध होता है। इन बंधस्थानों का विवरण विस्तार नामकर्म के बंधस्थानों के आश्रय पर किया गया है अतः वहीं से समझ लेना चाहिये। यहाँ सब बंधस्थानों के मिलाकर प्रत्येक जीवस्थान में १३९१७ भंग होते हैं।

इन सात जीवस्थानो में दो उदयस्थान है—२१ और २४ प्रकृतिक। सो इनमे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे अपर्याप्त वादर एकेन्द्रिय के तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, अगुरुलघु, वर्णचतुष्क, एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, वादर, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयश कीर्ति और निर्माण इन २१ प्रकृतियो का उदय होता है। यह उदयस्थान अपान्तराल गति मे पाया जाता है। यहाँ भग एक होता है क्योकि यहाँ परावर्तमान शुभ प्रकृतियो का उदय नही होता हे।

अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव को भी यही उदयस्थान होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि उसके वादर के स्थान मे सूक्ष्म प्रकृति का उदय कहना चाहिए। यहाँ भी एक भग होता है।

इस २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे औदारिकशरीर, हुडसस्थान, उपघात और प्रत्येक व साधारण मे से कोई एक, इन चार प्रकृतियो को मिलाने और तिर्यंचानुपूर्वी इस प्रकृति को घटा देने पर २४ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। जो दोनो सूक्ष्म व वादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवस्थानो मे समान रूप से सम्भव है। यहाँ सूक्ष्म अपर्याप्त और वादर अपर्याप्त मे से प्रत्येक के साधारण और प्रत्येक नामकर्म की अपेक्षा दो-दो भग होते हैं। इस प्रकार दो उदयस्थानो की अपेक्षा दोनो जीवस्थानो मे से प्रत्येक के तीन-तीन भग होते है।

विकलेन्द्रियत्रिक अपर्याप्त, असज्ञी अपर्याप्त और सज्ञी अपर्याप्त, इन पाँच जीवस्थानो मे २१ और २६ प्रकृतिक, यह दो उदयस्थान होते है। इनमे से अपर्याप्त द्वीन्द्रिय के तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, वर्णचतुष्क, द्वीन्द्रिय जाति, त्रस, वादर, अपर्याप्त, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, दुर्भग, अनादेय, अयश कीर्ति और निर्माण यह २१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। जो अपान्तराल गति मे

विद्यमान जीव के ही होता है, अन्य के नही। यहाँ सभी प्रकृतिया अप्रशस्त है, अत एक ही भग जानना चाहिये।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय आदि जीवस्थानो मे भी यह २१ प्रकृतिक उदयस्थान और १ भग जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रत्येक जीवस्थान मे द्वीन्द्रिय जाति न कहकर त्रीन्द्रिय जाति आदि अपनी-अपनी जाति का उदय कहना चाहिये।

अनन्तर २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे शरीरस्थ जीव के औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, हुडसस्थान, सेवार्त सहनन, उपघात और प्रत्येक इन छह प्रकृतियो के मिलाने और तिर्यचानुपूर्वी के निकाल देने पर २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी एक ही भग होता है। इस प्रकार अपर्याप्त द्वीन्द्रिय आदि प्रत्येक जीवस्थान मे दो-दो उदयस्थानो की अपेक्षा दो दो भग होते है।

लेकिन अपर्याप्त सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान इसका अपवाद है। क्योकि अपर्याप्त सज्ञी जीवस्थान तिर्यंचगति और मनुष्यगति दोनो मे होता है। अत यहाँ इस अपेक्षा से चार भग प्राप्त होते हैं।[1]

इन सात जीवस्थानो मे से प्रत्येक मे ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक पाँच-पाँच सत्तास्थान है। अपर्याप्त अवस्था मे तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता सम्भव नही है अत इन सातो जीवस्थानो मे ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान नही होते हैं किन्तु मिथ्यादृष्टि गुणस्थान सम्बन्धी शेष सत्तास्थान सम्भव होने से उक्त पाच सत्तास्थान रहे हैं।

इस प्रकार से सात अपर्याप्त जीवस्थानो म नामकर्म के बधस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थान जानना चाहिये। अब इसके अनन्तर 'पण

---

१ सज्ञिनमपर्याप्तमधिकृत्याह ... यतो द्वौ भगावपर्याप्तसज्ञितिर्यक्षु प्राप्येते, द्वौ चापर्याप्तसज्ञिनो मनुष्यस्य।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २०१

चउ पणग' और 'सुहुम' पद का सम्बन्ध करते है। जिसका अर्थ यह है कि सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे पाँच बंधस्थान है, चार उदयस्थान है और पाँच सत्तास्थान है। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव भी मरकर मनुष्य और तिर्यचगति मे ही उत्पन्न होता है, जिससे उसके उन गतियो के योग्य कर्मो का बंध होता है। इसीलिए इसके भी २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पॉच बंधस्थान माने गये है। इन पॉच बंधस्थानो के मानने के कारणो को पूर्व मे स्पष्ट किया जा चुका है। यहाँ भी इन पाँचों स्थानो के कुल भग १३९१७ होते है।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवो के २१, २४, २५ और २६ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते है। क्योकि इन सूक्ष्म जीवो के आतप और उद्योत नामकर्म का उदय नही होता है। इसीलिये २७ प्रकृतिक उदयस्थान छोड दिया गया है।

२१ प्रकृतिक उदयस्थान मे वे ही प्रकृतियाँ लेनी चाहिये, जो सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवो को बतला आये है। लेकिन इतनी विशेषता है कि यहाँ सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान विवक्षित होने से अपर्याप्त के स्थान पर पर्याप्त का उदय कहना चाहिये। यह २१ प्रकृतिक उदयस्थान, अपान्तराल गति मे होता है। प्रतिपक्षी प्रकृतियॉ न होने से इसमे एक ही भग होता है।

उक्त २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे औदारिक शरीर, हुड-सस्थान, उपघात तथा साधारण और प्रत्येक मे से कोई एक प्रकृति, इन चार प्रकृतियो को मिलाने तथा तिर्यचानुपूर्वी को कम करने पर २४ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान शरीरस्थ जीव को होता है। यहाँ प्रत्येक और साधारण के विकल्प से दो भग होते है।

अनन्तर शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा २४ प्रकृतिक

उदयस्थान मे पराघात को मिला देने पर २५ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भी २४ प्रकृतिक उदयस्थान की तरह वे ही दो भग होते है।

उक्त २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा उच्छवास प्रकृति को मिलाने से २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पूर्वोक्त दो भग होते ह। इस प्रकार सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे चार उदयस्थान और उनके सात भग होते हैं।

अब सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे सत्तास्थान बतलाते ह। इस जीवस्थान मे पाच सत्तास्थान बतलाये ह। वे पाच सत्तास्थान ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक हैं। तिर्यंचगति मे तीर्थकर प्रकृति की सत्ता नही होती है। इसलिए ९३ और ८९ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान सभव नही होने से ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक पाँच सत्तास्थान पाये जाते हैं। फिर भी जब साधारण प्रकृति के उदय के साथ २५ और २६ प्रकृतिक उदयस्थान लिये जाते ह तब इस भग मे ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान सम्भव नही हैं। क्योकि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो को छोडकर शेष सब जीव शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त होने पर मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी का नियम से बन्ध करते ह और २५ व २६ प्रकृतिक उदयस्थान शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीवो के ही होते ह। अत साधारण सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवो के २५ और २६ उदयस्थान रहते ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान नही होता है। शेष चार सत्तास्थान ९२, ८८, ८६ और ८० प्रकृतिक होते हैं।

लेकिन जब प्रत्येक प्रकृति के साथ २५ और २६ प्रकृतिक उदयस्थान लिये जाते है तब प्रत्येक मे अग्निकायिक और वायुकायिक जीव भी शामिल हो जाने से २५ और २६ प्रकृतिक उदयस्थानो मे ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान भी बन जाता है।

इस प्रकार उक्त कथन का साराश यह हुआ कि २१ और २४ प्रकृतिक में से प्रत्येक उदयस्थान मे तो पाँच-पाँच सत्तास्थान होते है और २५ व २६ प्रकृतिक उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे एक अपेक्षा से चार-चार और एक अपेक्षा से पाँच-पाँच सत्तास्थान होते है। अपेक्षा का कारण साधारण व प्रत्येक प्रकृति है। जिसका स्पष्टीकरण ऊपर किया गया है।

अव गाथा मे निर्दिष्ट क्रमानुसार वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे वधादि स्थानो को वतलाते है कि 'पणगा हवति तिन्नेव' का सम्बन्ध "वायरा" से जोडे। जिसका अर्थ यह हुआ कि वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे पाँच वधस्थान, पाँच उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान होते है। जिनका विवरण नीचे लिखे अनुसार है—

वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीव भी मनुष्यगति और तिर्यचगति के योग्य प्रकृतियो का वध करता है। इसलिए उसके भी २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पाँच वधस्थान होते है और तदनुसार इनके कुल भग १३९१७ होते है।

उदयस्थानो की अपेक्षा विचार करने पर यहाँ पर भी एकेन्द्रिय सम्वन्धी पाँच उदयस्थान २१, २४, २५, २६ और २७ प्रकृतिक होते है। क्योकि सामान्य से अपान्तराल गति की अपेक्षा २१ प्रकृतिक, शरीरस्थ होने की अपेक्षा २४ प्रकृतिक, शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त होने की अपेक्षा २५ प्रकृतिक और प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त होने की अपेक्षा २६ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान तो पर्याप्त एकेन्द्रिय को नियम से होते ही है। किन्तु यह वादर एकेन्द्रिय है अत· यहाँ आतप और उद्योत नाम मे से किसी एक का उदयस्थान और सभव है, जिससे २७ प्रकृतिक उदयस्थान भी वन जाता है। इसीलिये वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे २१, २४, २५, २६ और २७ प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान माने गये हैं।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ६१ प्रकृतियाँ इस प्रकार है—तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय जाति, स्थावर, बादर, पर्याप्त, तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्णचतुष्क, निर्माण, दुर्भग, अनादेय, यश कीर्ति और अयश-कीर्ति मे से कोई एक। इस उदयस्थान मे यश कीर्ति और अयश कीर्ति का उदय विकल्प से होता है। अत इस अपेक्षा से यहाँ २१ प्रकृतिक उदयस्थान के दो भग होते है।

उक्त २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे शरीरस्थ जीव की अपेक्षा औदारिक शरीर, हुडसस्थान, उपघात तथा प्रत्येक और साधारण मे से कोई एक, इन चार प्रकृतियो को मिलाने तथा तिर्यचानुपूर्वी को कम करने पर २४ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा प्रत्येक-साधारण और यश कीर्ति-अयश कीर्ति का विकल्प से उदय होने के कारण चार भग होते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि शरीरस्थ विक्रिया करने वाले बादर वायुकायिक जीवो के साधारण और यश कीर्ति नामकर्म का उदय नही होता है, इसलिये वहाँ एक ही भग होता है। दूसरी विशेषता यह है कि ऐसे जीवो के औदारिक शरीर का उदय न होकर वैक्रिय शरीर का उदय होता है अत इनके औदारिक शरीर के स्थान पर वैक्रिय शरीर कहना चाहिए।[1] इस प्रकार २४ प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल पाँच भग हुए।

अनन्तर २४ प्रकृतिक उदयस्थान मे पराघात प्रकृति को मिलाने से २५ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यह उदयस्थान शरीर पर्याप्ति मे

---

१ वैक्रिय कुर्वत पुनर्बादरवायुकायिकस्यैक , यतस्तस्य साधारण-यश कीर्तो उदय नागच्छत , अयच्च वैक्रियवायुकायिकचतुर्विंशतावौदारिकशरीर स्थाने वैक्रियशरीरमिति वक्तव्यम्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका पृ० २०२

पर्याप्त हुए जीव को होता है। यहाँ भी २४ प्रकृतिक उदयस्थान की तरह पाँच भङ्ग होते है।

यदि शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव के आतप और उद्योत मे से किसी एक का उदय हो जावे तो २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे आतप और उद्योत मे से किसी एक को मिलाने पर २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। किन्तु आतप का उदय साधारण को नही होता है, अत इस पक्ष मे २६ प्रकृतिक उदयस्थान के यश.कीर्ति और अयशः-कीर्ति की अपेक्षा दो भग होते है। लेकिन उद्योत का उदय साधारण और प्रत्येक, इनमे से किसी के भी होता है अत इस पक्ष मे साधारण और प्रत्येक तथा यश कीर्ति और अयश कीर्ति, इनके विकल्प से चार भग होते है। इस प्रकार २६ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल ५+२+४= ११ भग हुए।

अनन्तर प्राणापान पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा उच्छ्वास सहित २६ प्रकृतिक उदयस्थान मे आतप और उद्योत मे से किसी एक प्रकृति के मिला देने पर २७ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी पहले के समान आतप के साथ दो भङ्ग और उद्योत के साथ चार भङ्ग, इस प्रकार कुल छह भङ्ग हुए।

इन पाँचो उदयस्थानो के भङ्ग जोडने पर वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के कुल भङ्ग २९ होते है।

वादर एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवों के ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये पाँच सत्तास्थान होते है। इस जीवस्थान मे जो पाँचो उदयस्थानो के २९ भङ्ग वतलाये हैं, उनमे से इक्कीस प्रकृतिक उदयस्थान के दो भङ्ग, २४ प्रकृतिक उदयस्थान मे वैक्रिय वादर वायुकायिक के एक भङ्ग को छोडकर शेष चार भङ्ग तथा २५ और २६ प्रकृतिक उदयस्थानो में प्रत्येक नाम और अयश कीर्ति नाम के साथ प्राप्त होने

वाला एक एक भङ्ग, इस प्रकार इन आठ भङ्गो मे से प्रत्येक मे उपर्युक्त पाचो सत्तास्थान होते हैं किन्तु शेष २१ मे से प्रत्येक भङ्ग मे ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान को छोडकर शेष चार-चार सत्तास्थान होते है।

अब गाथा मे किये गये निर्देशानुसार पर्याप्त विकलेन्द्रियो मे बधादि स्थानो और उनके यथासम्भव भङ्गो को बतलाते है। गाथाओ मे निर्देश ह 'पण छप्पणग विगलिदिया उ तिन्नि उ'। अर्थात् विकल-त्रिक—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याप्तो म पाच बधस्थान, छह उदयस्थान और पाँच सत्तास्थान हैं। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि—विकलेन्द्रिय पर्याप्त जीव भी तिर्यचगति और मनुष्यगति के योग्य प्रकृतिया का ही बध करते हैं। अत इनके भी २३, २५, २६, २६ और ३० प्रकृतिक, ये पाच बधस्थान होते हैं और तदनुसार इनके कुल भङ्ग १३६१७ होते ह।

उदयस्थानो की अपेक्षा विचार करने पर यहा २१, २६, २८, २६, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते ह। इनमे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे—तैजस, कार्मण, अगुरुलघु स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्णचतुष्क, निर्माण, तिर्यंचगति, तिर्यचानुपूर्वी, द्वीन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, दुभग, अनादेय और यश कीर्ति व अयश कीर्ति म से कोई एक—इस प्रकार २१ प्रकृतिया का उदय होता ह जा अपान्तराल गति मे पाया जाता है। इनके यश कीर्ति और अयश कीर्ति के विकल्प से दो भङ्ग होत हैं।

अनन्तर शरीरस्थ जीव की अपेक्षा २१ प्रकृतिक उदयस्थान में औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, हुडसस्थान सेवार्त सहनन, उपघात और प्रत्येक, इन छह प्रकृतियो को मिलाने तथा तिर्यंचानुपूर्वी को कम करने से २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी २१ प्रकृतिक उदयस्थान की तरह दो भङ्ग जानना चाहिये।

इस २६ प्रकृतिक उदयस्थान मे शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीव की अपेक्षा पराघात और अप्रशस्त विहायोगति, इन दो प्रकृतियो को मिलाने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भी पूर्ववत् दो भङ्ग होते है।

२८ प्रकृतिक उदयस्थान के अनन्तर २९ प्रकृतिक उदयस्थान का क्रम है। यह २९ प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार से होता है—एक तो जिसने प्राणापान पर्याप्ति को प्राप्त कर लिया है, उसके उद्योत के विना केवल उच्छ्वास का उदय होने पर और दूसरा शरीर पर्याप्ति की प्राप्ति होने के पश्चात् उद्योत का उदय होने पर।[1] इन दोनो मे से प्रत्येक स्थान मे पूर्वोक्त दो-दो भङ्ग प्राप्त होते है। इस प्रकार २९ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल चार भङ्ग हुए।

इसी प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान भी दो प्रकार से प्राप्त होता है। एक तो जिसने भाषा पर्याप्ति को प्राप्त कर लिया है, उसके उद्योत का उदय न होकर सुस्वर और दु:स्वर इन दो प्रकृतियो मे से किसी एक का उदय होने पर होता है और दूसरा जिसने श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति को प्राप्त किया और अभी भाषा पर्याप्ति की प्राप्ति नही हुई किन्तु इसी वीच मे उसके उद्योत प्रकृति का उदय हो गया तो भी ३० प्रकृतिक उदयस्थान हो जाता है। इनमे से पहले प्रकार के ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे यश कीर्ति और अयश:कीर्ति तथा सुस्वर और दु:स्वर के विकल्प से चार भङ्ग प्राप्त होते है। किन्तु दूसरे प्रकार के ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे यश कीर्ति और अयश कीर्ति के विकल्प से दो ही भङ्ग होते है। इस प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे छह भङ्ग प्राप्त हुए।

---

१ तत. प्राणापानपर्याप्त्या पर्याप्तस्योच्छ्वासे क्षिप्ते एकोनत्रिंशत्, अत्रापि तावेव द्वौ भङ्गौ, अथवा तस्यामेवाप्टा विंशतौ उच्छ्वासेऽनुदिते उद्योतनाम्नि तूदिते एकोनत्रिंशत्। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २०३

ऊपर जो ३० प्रकृतिक उदयस्थान के दो प्रकार बतलाये हैं उसमें से यदि जिसने भाषा पर्याप्ति को भी प्राप्त कर लिया और उद्योत का भी उदय है, उसको ३१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा यश-कीर्ति और अयश कीर्ति तथा दोनो स्वरो के विकल्प से चार भङ्ग होते हैं। इस प्रकार पर्याप्त द्वीन्द्रिय के सब उदयस्थानो के कुल भङ्ग २० होते हैं।

द्वीन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे भी एकेन्द्रिय के समान ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये पाच सत्तास्थान होते है। पहले जो छह उदयस्थानो के २० भङ्ग बतलाये है उनमे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान के दो भङ्ग तथा २६ प्रकृतिक उदयस्थान के दो भङ्ग, इन चार भङ्गो मे से प्रत्येक भङ्ग मे पाच पाँच सत्तास्थान होते ह क्योकि ७८ प्रकृतियो की सत्ता वाले जो अग्निकायिक और वायुकायिक जीव पर्याप्त द्वीन्द्रियों मे उत्पन्न होते हैं, उनके कुछ काल तक ७८ प्रकृतियो की सत्ता सभव है तथा इस काल मे द्वीन्द्रियो के क्रमश २१ और २६ प्रकृतिक उदयस्थान ही होते हैं। इसीलिये इन दो उदयस्थानो के चार भङ्गो मे से प्रत्येक भङ्ग मे उक्त पाँच सत्तास्थान कहे हैं तथा इन चार भङ्गो के अतिरिक्त जो शेष १६ भङ्ग रह जाते है उनमे से किसी मे भी ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान न होने से प्रत्येक मे चार-चार सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो के सिवाय शेष जीव शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त होने के पश्चात् नियम से मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी का बध करते हैं जिससे उनके ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान नही पाया जाता है।

पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीवो की तरह त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याप्त जीवो को भी बधादि स्थानो और उनके भङ्गो को जानना चाहिये। इतनी विशेषता जानना चाहिये कि उदयस्थानो मे द्वीन्द्रिय के स्थान पर त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय का उल्लेख कर दिया जाये।

अव क्रमप्राप्त असज्ञी पर्याप्त जीवस्थान मे वंधादि स्थानो और उनके भङ्गो का निर्देश करते है। इसके लिये गाथाओ में निर्देश किया है—'छच्छप्पणग' 'असन्नी य' अर्थात् असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के छह वधस्थान है, छह उदयस्थान है और पाँच सत्तास्थान है। जिनका विवेचन यह है कि असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीव मनुष्यगति और तिर्यचगति के योग्य प्रकृतियो का वंध करते ही है, किन्तु नरकगति और देवगति के योग्य प्रकृतियो का भी वध कर सकते है। इसलिये इनके २३, २५, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक ये छह वधस्थान होते है और तदनुसार १३९२६ भङ्ग होते है।

उदयस्थानो की अपेक्षा विचार करने पर यहाँ २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान है। इनमे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, वर्णचतुष्क, निर्माण, तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, वादर, पर्याप्त, सुभग और दुर्भग मे से कोई एक, आदेय और अनादेय मे से कोई एक तथा यश कीर्ति और अयश.कीर्ति मे से एक, इन २१ प्रकृतियो का उदय होता है। यह २१ प्रकृतिक उदयस्थान अपान्तरालगति मे ही पाया जाता है तथा सुभग आदि तीन युगलो मे से प्रत्येक प्रकृति के विकल्प से ८ भङ्ग प्राप्त होते है।

अनन्तर जव यह जीव शरीर को ग्रहण कर लेता है तव औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग, छह संस्थानों मे से कोई एक सस्थान, छह सहननो मे से कोई एक सहनन, उपघात और प्रत्येक इन छह प्रकृतियो का उदय होने लगता है। किन्तु यहाँ आनुपूर्वी नामकर्म का उदय नही होता है। अतएव उक्त २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे छह प्रकृतियो को मिलाने और तिर्यचानुपूर्वी को कम करने पर २६ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ छह सस्थान और छह सहननो

की अपेक्षा सुभगत्रिक की अपेक्षा से पूर्वोक्त ८ भङ्गो मे दो बार छह से गुणित कर देने पर ८×६×६=२८८ भङ्ग प्राप्त होते हैं।

अनतर इसके शरीर पर्याप्ति से पर्याप्त हो जाने पर पराघात तथा प्रशस्त विहायोगति और अप्रशस्त विहायोगति मे से किसी एक का उदय और होने लगता है। अत २६ प्रकृतिक उदयस्थान मे इन दो प्रकृतियो को और मिला देने पर २८ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा दोनो विहायोगतियो के विकल्प की अपेक्षा भङ्गो के विकल्प पूर्वोक्त २८८ को दो से गुणा कर देने पर २८८×२=५७६ हो जाते हैं। २९ प्रकृतिक उदयस्थान दो प्रकार से होता है—एक तो जिसने आन प्राण पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया है उसके उद्योत के बिना केवल उच्छ्वास के उदय से प्राप्त होता है और दूसरा शरीर पर्याप्ति के पूर्ण होने पर उद्योत प्रकृति के उदय से प्राप्त होता है। इन दोनो स्थानो मे से प्रत्येक स्थान मे ५७६ भङ्ग होते हैं। अत २९ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल ५७६×२=११५२ भङ्ग हुए।

३० प्रकृतिक उदयस्थान भी दो प्रकार से प्राप्त होता है। एक तो जिसने भाषा पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया उसके उद्योत के बिना सुस्वर और दुःस्वर प्रकृतियो मे से किसी एक प्रकृति के उदय से प्राप्त होता है और दूसरा जिसने श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति को पूर्ण कर लिया, उसके उद्योत का उदय हो जाने पर होता है। इनमे से पहले प्रकार के स्थान के पूर्वोक्त ५७६ भङ्गो को स्वरद्विक मे गुणित करने पर ११५२ भङ्ग प्राप्त होते हैं तथा दूसरे प्रकार के स्थान मे ५७६ भग ही होते हैं। इस प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान के कुल भग ११५२+५७६=१७२८ होते हैं।

अनन्तर जिसने भाषा पर्याप्ति को भी पूर्ण कर लिया और उद्योत प्रकृति का भी उदय है उसके ३१ प्रकृतिक उदयस्थान होता है।

यहाँ कुल भग ११५२ होते है। इस प्रकार असंज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीव-स्थान के सव उदयस्थानो के कुल ४९०४ भङ्ग होते है।

असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक ये पाच सत्तास्थान होते है। इनमे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान के ८ भङ्ग तथा २६ प्रकृतिक उदयस्थान के २८८ भङ्ग, इनमे से प्रत्येक भङ्ग मे पूर्वोक्त पाँच-पाँच सत्तास्थान होते है। क्योकि ७८ प्रकृतियो की सत्ता वाले जो अग्निकायिक और वायुकायिक जीव है वे यदि असज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्तकों मे उत्पन्न होते है तो उनके २१ और २६ प्रकृतिक उदयस्थान रहते हुए ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान पाया जाना सभव है। किन्तु इनके अतिरिक्त शेष उदयस्थानो और उनके भङ्गो मे ७८ के विना शेप चार-चार सत्तास्थान ही होते है।

इस प्रकार से अभी तक तेरह जीवस्थानो के नामकर्म के वधादि स्थानो और उनके भङ्गो का विचार किया गया। अव शेप रहे चौदहवे सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान के बंधादि स्थानो व भङ्गो का निर्देश करते है। इस जीवस्थान के वधादि स्थानो के लिये गाथा मे सकेत किया गया है—'अट्ठऽट्ठदसग ति सन्नी य' अर्थात् सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे आठ वधस्थान, आठ उदयस्थान और दस सत्तास्थान है। जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जाता है।

नाम कर्म के २३, २५ २६, २८ २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक, ये आठ वधस्थान वतलाये है। ये आठो वंधस्थान सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवो के होते है और उनके १३९४५ भङ्ग सभव है। क्योंकि इनके चारो गति सम्वन्धी प्रकृतियो का वध सम्भव है, इसीलिये २३ प्रकृतिक आदि वधस्थान इनके कहे हैं। तीर्थंकर नाम और आहारकचतुष्क का भी इनके वध होता है इसीलिये ३१ प्रकृतिक वधस्थान कहा है। इस जीवस्थान मे उपशम और क्षपक दोनों श्रेणियाँ पाई जाती है इसी-लिये १ प्रकृतिक वधस्थान भी कहा है।

उदयस्थानो की अपेक्षा विचार करने पर और २०, ९ और ८ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान केवली सम्बन्धी हैं और २४ प्रकृतिक उदयस्थान एकेन्द्रियो को होता है अत इस जीवस्थान मे २०, २४, ९ और ८ प्रकृतिक, इन चार उदयस्थानो को छोडकर शेप यह जीवस्थान बारहवें गुणस्थान तक ही पाया जाता है। २१, २५, २६, २७, २८, २९ ३०, ३१ प्रकृतिक ये आठ उदयस्थान पाये जाते है। इन आठ उदयस्थानो के कुल भग ७६७१ होते हैं। क्योकि १२ उदयस्थानो के कुल भग ७७९१ है सो उनमे से १२० भग कम हो जाते हैं, क्योकि उन भगो का सबध सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीव से नही है।

नामकर्म के सत्तास्थान १२ हैं उनमे से ९ और ८ प्रकृतिक सत्तास्थान केवली के पाये जाते हैं, अत वे दोनो सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान मे सभव नही होने से उनके अतिरिक्त ९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९ ७८, ७६ और ७५ प्रकृतिक, ये दस सत्तास्थान पाये जाते हैं।[1] २१ और २६ प्रकृतिक उदयस्थानो के क्रमश ८ और २८८ भगो मे से तो प्रत्येक भग मे ९२, ८८, ८६, ८० और ७६ प्रकृतिक, ये पाच-पाँच सत्तास्थान ही पाये जाते हैं।

---

१ गो० कर्मकाड गाथा ६०९ म नामकम के ९३, ९२ ९१ ९० ८८ ८४ ८२ ८० ७९, ७८ ७७ १० और ९ प्रकृतिक ये १३ सत्तास्थान बतलाये हैं। इनम से सज्ञी पचेन्द्रिय जीवस्थान म १० और ९ प्रकृतिक सत्तास्थान को छोडकर शेष ११ सत्तास्थान बतलाये हैं—दसणवपरिहीणसव्वय सत्त ॥७०९॥

श्वेताम्बर और दिगम्बर कर्मग्रन्थो म नामकम के निम्नलिखित सत्तास्थान समान प्रकृतिक हैं ९३ ९२ ८८, ८० ७९, ७८ और ९ प्रकृतिक और शेष के सत्तास्थानो में प्रकृतियों की सख्या म भिन्नता है। श्वेताम्बर कर्मग्रन्थो म ८९ ८६ ७६ ७५ प्रकृतिक तथा दिगम्बर साहित्य म ९१ ९० ८४ ८२ ७७ १० प्रकृतिक सत्तास्थान बतलाये हैं।

इस प्रकार चौदह जीवस्थानो मे बंधादि स्थानों और उनके भंगो का विचार किया गया। अब उनके परस्पर सवेध का विचार करते है।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय अपर्याप्त जीवों के २३ प्रकृतिक बधस्थान मे २१ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये पांच सत्तास्थान होते है। इसी प्रकार २४ प्रकृतिक उदयस्थान मे भी पांच सत्तास्थान होते हैं। कुल मिलाकर दोनो उदयस्थानों के १० सत्तास्थान हुए। इसी प्रकार २५, २६, २९ और ३० प्रकृतियों का बंध करने वाले उक्त जीवो के दो-दो उदयस्थानो की अपेक्षा दस-दस सत्तास्थान होते हैं। जो कुल मिलाकर ५० हुए। इसी प्रकार बादर एकेन्द्रिय अपर्याप्त आदि अन्य छह अपर्याप्तो के ५०-५० सत्तास्थान जानना किन्तु सर्वत्र अपने-अपने दो-दो उदयस्थान कहना चाहिये।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त के २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पांच बंधस्थान होते हैं और एक-एक बधस्थान मे २१, २४, २५ और २६ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं। अत: पांच को चार से गुणित करने पर २० हुए तथा प्रत्येक उदयस्थान मे पांच-पांच सत्तास्थान होते है अत: २० को ५ से गुणा करने पर १०० सत्तास्थान सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे होते है।

बादर एकेन्द्रिय पर्याप्त के भी पूर्वोक्त २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक, पांच बंधस्थान होते हैं और एक-एक बधस्थान में २१, २४, २५, २६ और २७ प्रकृतिक, ये पांच-पाच उदयस्थान होते हैं, अत: ५ को ५ से गुणा करने पर २५ हुए। इनमे से अन्तिम पाच उदयस्थानो मे ७८ के बिना चार-चार सत्तास्थान होते है, जिनके कुल भग २० हुए और शेष २० उदयस्थानों में पांच-पांच सत्तास्थान होते हैं, जिनके कुल भग १०० हुए। इस प्रकार यहाँ कुल भंग १२० होते हैं।

द्वीन्द्रिय पर्याप्त के २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पांच

बंधस्थान होते हैं और प्रत्येक बंधस्थान में २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते हैं। इनमें से २१ और २६ प्रकृतिक उदयस्थानों में पांच पांच सत्तास्थान हैं तथा शेष चार उदयस्थानों में ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान के सिवाय चार चार सत्तास्थान हैं। ये कुल मिलाकर २६ सत्तास्थान हुए। इस प्रकार पांच बंधस्थानों के १३० भंग हुए।

द्वीन्द्रिय पर्याप्त की तरह त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय पर्याप्त के बंधस्थान आदि जानना चाहिये तथा उनके भी १३०, १३० भङ्ग होते हैं।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में भी २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक, इन पांच बंधस्थानों में से प्रत्येक बंधस्थान में विकलेन्द्रियों की तरह छब्बीस भङ्ग होते हैं जिनका योग १३० है। परन्तु २८ प्रकृतिक बंधस्थान में ३० और ३१ प्रकृतिक ये दो उदयस्थान ही होते हैं। अतः यहां प्रत्येक उदयस्थान में ९२, ८८ और ८६ प्रकृतिक ये तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं। इनके कुल ६ भङ्ग हुए। यहां तीन सत्तास्थान होने का कारण यह है कि २८ प्रकृतिक बंधस्थान देवगति और नरकगति के योग्य प्रकृतियों का बंध पर्याप्त के ही होता है।[1] इसी प्रकार असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान में १३०+६=१३६ भङ्ग होते हैं।

संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के २३ प्रकृतिक बंधस्थान में जैसे असंज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त के २६ सत्तास्थान बतलाये, वैसे यहां भी जानना

---

1 अष्टाविंशतिबंधकाना पुनस्तेषां द्वे एवोदयस्थाने तद्यथा—त्रिंशदेकत्रिंशच्च। तत्र प्रत्येकं त्रीणि त्रीणि सत्तास्थानानि तद्यथा—द्विनवति अष्टाशीतिः षडशीतिश्च। अष्टाविंशतिर्हि देवगतिप्रायोग्या नरकगतिप्रायोग्या वा ततस्तस्यां बध्यमानायामवश्यं वैक्रियचतुष्कादि बध्यते इत्यशीति-अष्टसप्तती न प्राप्येते। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २०५

चाहिये। २५ प्रकृतिक वधस्थान मे २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये आठ उदयस्थान वतलाये है सो इनमे से २१ और २६ प्रकृतिक उदयस्थानो मे तो पांच-पांच सत्तास्थान होते है तथा २५ और २७ प्रकृतिक उदयस्थान देवो के ही होते है, अत· इनमे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है। शेप रहे चार उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे ७८ प्रकृतिक के विना चार-चार सत्तास्थान होते है। इस प्रकार यहाँ कुल ३० सत्तास्थान होते हैं। २६ प्रकृतिक वधस्थान मे भी इसी प्रकार ३० सत्तास्थान होते है।

२८ प्रकृतिक वधस्थान मे आठ उदयस्थान होते है। इनमे से २१ २५, २६, २७, २८ और २९ प्रकृतिक इन छह उदयस्थानो मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है। ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे ९२, ८८, ८६ और ८० प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं तथा ३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ९२, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है। इस प्रकार यहा कुल १९ सत्तास्थान होते है।

२९ प्रकृतिक वधस्थान मे ३० प्रकृतिक सत्तास्थान तो २५ प्रकृतियो का वध करने वाले के समान जानना किन्तु यहाँ कुछ विशेषता है कि जव अविरत सम्यग्दृष्टि मनुष्य देवगति के योग्य २९ प्रकृतियो का वध करता है तव उसके २१, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक ये पाँच उदयस्थान तथा प्रत्येक उदयस्थान मे ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते है जिनका जोड १० हुआ।

इसी प्रकार विक्रिया करने वाले सयत और संयतासयत जीवो के भी २९ प्रकृतिक वधस्थान के समय २५ और २७ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान तथा प्रत्येक उदयस्थान मे ९३ और ८९ प्रकृतिक ये दो उदयस्थान होते है। जिनका जोड ४ होता है अथवा आहारक सयत के भी इन दो उदयस्थानो मे ९३ प्रकृतियो की सत्ता होती है और तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाले मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा ८९ की सत्ता होती है। इस

प्रकार इन १४ सत्तास्थानो को पहले के ३० सत्तास्थानो मे मिला देने पर २९ प्रकृतिक बंधस्थान मे कुल ४४ सत्तास्थान होते है।

इसी प्रकार ३० प्रकृतिक बंधस्थान मे भी २९ प्रकृतिक बंधस्थान के समान ३० सत्तास्थानो को ग्रहण करना चाहिए। किन्तु यहाँ भी कुछ विशेषता है कि तीर्थंकर प्रकृति के साथ मनुष्यगति के योग्य ३० प्रकृतियो का बंध होते समय २१, २५, २७, २८, २९ और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान तथा प्रत्येक उदयस्थान मे ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं। जिनका कुल जोड १२ होता है। इन्हे पूर्वोक्त ३० मे मिला देने पर ३० प्रकृतिक बंधस्थान मे कुल ४२ सत्तास्थान होते हैं।

३१ प्रकृतिक बंधस्थान मे तीर्थंकर और आहारकद्विक का बंध अवश्य होता है। अत यहाँ भी ९३ प्रकृतियो की सत्ता है तथा १ प्रकृतिक बंध के समय ८ सत्तास्थान होते हैं। इनमे से ९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान उपशमश्रेणि मे होते है और ८० ७९, ७६ और ७५ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान क्षपकश्रेणि म होते हैं।

बंध के अभाव म भी सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त के पूर्वोक्त आठ सत्तास्थान होते हैं। जिनमे से प्रारम्भ के ४ सत्तास्थान उपशातमोह ग्यारहवें गुणस्थान मे प्राप्त होते हैं और अन्तिम ४ सत्तास्थान बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान म प्राप्त होते हैं। इस प्रकार सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीव के सब मिलाकर २०८ सत्तास्थान होते हैं।

द्रव्यमन के सयोग से केवली को भी सज्ञी माना जाता है। अत उनके भी २६ सत्तास्थान प्राप्त होते हैं। क्योंकि केवली के २०, २१, २६, २७, २८, २९ ३०, ३१, ९ और ८ प्रकृतिक, ये दस उदयस्थान होते हैं। इनमे से २० प्रकृतिक उदयस्थान मे ७९ और ७५ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं तथा २६ और २८ प्रकृतिक उदयस्थानो मे भी यही

दो सत्तास्थान जानना चाहिए। २१ तथा २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८० और ७६ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते है। २६ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८०, ७६, ७६ और ७५ प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते है। क्योंकि २९ प्रकृतिक उदयस्थान तीर्थंकर और सामान्य केवली दोनो को प्राप्त होता है। उनमे से यदि तीर्थंकर को २९ प्रकृतिक उदयस्थान होगा तो ८० और ७६ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होगे और यदि सामान्य केवली के २९ प्रकृतिक उदयस्थान होगा तो ७९ और ७५ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होगे। इसी प्रकार ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे भी चार सत्तास्थान प्राप्त होते है। ३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८० और ७६ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते है, क्योकि यह उदयस्थान तीर्थंकर केवली के ही होता है। ९ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८०, ७६ और ९ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है। इनमे से प्रारम्भ के दो सत्तास्थान तीर्थंकर के अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय तक होता है और अन्तिम ९ प्रकृतिक सत्तास्थान अयोगिकेवली गुणस्थान के अत समय मे होता है। ८ प्रकृतिक उदयस्थान मे ७९, ७५ और ८ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है। इनमे से आदि के दो सत्तास्थान (७९, ७५) सामान्य केवली के अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय तक प्राप्त होते है और अन्तिम ८ प्रकृतिक सत्तास्थान अन्तिम समय मे प्राप्त होता है। इस प्रकार ये २६ सत्तास्थान होते है।

अव यदि इन्हे पूर्वोक्त २०८ सत्तास्थानो मे शामिल कर दिया जाये तो सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त जीवस्थान मे कुल २३४ सत्तास्थान होते है।

चौदह जीवस्थानो मे नामकर्म के बधस्थानों, उदयस्थानो और उनके भगो का विवरण नीचे लिखे अनुसार है। पहले बधस्थानों और उनके भगो को वतलाते है।

१ सूक्ष्म एके० अप०		२ सूक्ष्म एके० प०		३ बादर एके० अप०		४ बादर एके० प०	
२३	४	२३	४	२३	४	२३	४
२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
२६	१६	२६	१६	२६	१६	२६	१६
२९	९२४०	२९	९२४०	२७	९२८०	२९	९२४०
३०	४६३२	३०	४६३२	३०	४६३२	३०	४६३२
५	१३९१७	५	१३९१७	५	१३९१७	५	१३९१७

५ द्वीन्द्रिय अपर्याप्त		६ द्वीन्द्रिय पर्याप्त		७ त्रीन्द्रिय अपर्याप्त		८ त्रीन्द्रिय पर्याप्त	
२३	४	२३	४	२३	४	२३	४
२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
२६	१६	२६	१६	२६	१६	२६	१६
२९	९२४०	२९	९२४०	२९	९२४०	२९	९२४०
३०	४६३२	३०	४६३२	३०	४६३२	३०	४६३२
५	१३९१७	५	१३९१७	५	१३९१७	५	१३९१७

९ चतुरिन्द्रिय अप०		१० चतु० पर्याप्त		११ अस० पचे० अप०		१२ अस० प० पर्याप्त	
२३	४	२३	४	२३	४	२३	४
२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५	२५
२६	१६	२६	१६	२६	१६	२६	१६
२९	९२४०	२९	९२४०	२९	९२४०	२८	९
३०	४६३२	३०	४६३२	३०	४६३२	२९	९२४०
						३०	४६३२
५	१३९१७	५	१३९१७	५	१३९१७	६	१३९२६

१३ सज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त		१४ सज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त	
२३	४	२३	४
२५	२५	२५	२५
२६	१६	२६	१६
२९	९२४०	२८	९
३०	४६३२	२९	९२४८
		३०	४६४१
		३१	१
		१	१
५	१३९१७	८	१३९४५

बधस्थानो के भगो को बतलाने के बाद अब उदयस्थानो के भगो को बतलाते हैं।

१ सूक्ष्म एके० अप०		२ सूक्ष्म एके० पर्याप्त		३ बादर एके० अप०		४ बादर एके० पर्याप्त	
२१	१	२१	१	२१	१	२१	२
२४	२	२४	२	२४	२	२४	५
		२५	२			२५	५
		२६	२			२६	११
						२७	६
२	३	४	७	२	३	५	२९

५ द्वीन्द्रिय अपर्याप्त		६ द्वीन्द्रिय पर्याप्त		७ त्रीन्द्रिय अपर्याप्त		८ त्रीन्द्रिय पर्याप्त	
२१	१	२१	२	२१	१	२१	२
२६	१	२६	२	२६	१	२६	२
		२८	२			२८	२
		२९	४			२९	४
		३०	६			३०	६
		३१	४			३१	४
२	२	६	२०	२	२	६	२०

९ चतुरि० अप०		१० चतुरि० पर्याप्त		११ अस० पचे० अप०		१२ अस० पचे० पर्याप्त	
२१	१	२१	२	२१	२	२१	८
२६	१	२६	२	२६	२	२६	२८८
		२८	२		असञ्ज्ञी मनुष्य १	२८	५७६
		२९	४			२९	११५२
		३०	६			३०	१७२८
		३१	४		असञ्ज्ञी तिर्यंच १	३१	११५२
२	२	३	२०	२	६	६	४९०४

१३ सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय अपर्याप्त		१४ सञ्ज्ञी पचेन्द्रिय पर्याप्त	
२१	२	२१	२५
२६	२	२५	२६
		२६	५७६
		२७	२६
		२८	११६६
		२९	१७७२
		३०	२८६८
		३१	११५२
		२०	१
		९	१
		८	१
		०	५
२	४	११	७६७९

जीवस्थानों मे नामकर्म की प्रकृतियों के बंध, उदय, सत्तास्थानो के भंगों का विवरण

क्रम सं०	जीवस्थान		बंधस्थान ८	भंग १३९४५		उदयस्थान १२	भंग ७७९१		सत्तास्थान १२
१	सू० एके० अप०	५	२३,२५,२६,२९ ३०	१३९१७	२	२१,२४	३	५	९२ ८८ ८६ ८०,७८
२	सू० एके० पर्या०	५	२३ २५ २६ २९,३०	१३९१७	४	२१,२४ २५,२६	७	५	९२,८८,८६,८०,७८
३	बा० एके० अप०	५	२३ २५ २६,२९,३०	१३९१७	२	२१,२४	३	५	९२,८८ ८६,८०,७८
४	बा० एके० पर्या०	५	२३,२५ २६ २९ ३०	१३९१७	५	२१ २४,२५ २६,२७	२९	५	९२,८८,८६,८०,७८
५	द्वीन्द्रिय अपर्याप्त	५	२३ २५ २६,२९ ३०	१३९१७	२	२१ २६	२	५	९२,८८,८६,८०,७८
६	द्वीन्द्रिय पर्याप्त	५	२३ २५ २६ २९ ३०	१३९१७	६	२१ २६,२८,२९ ३०,३१	२०	५	९२ ८८ ८६ ८० ७८
७	त्रीन्द्रिय अपर्याप्त	५	२३ २५,२६ २९,३०	१३९१७	२	२१,२६	२	५	९२,८८,८६,८०,७८
८	त्रीन्द्रिय पर्याप्त	५	२३ २५ २६,२९ ३०	१३९१७	६	२१,२६ २८,२९,३०,३१	२०	५	९२ ८८,८६ ८०,७८
९	चतु० अपर्याप्त	५	२३,२५,२६,२९ ३०	१३९१७	२	२१,२६	२	५	९२,८८ ८६ ८०,७८
१०	चतु० पर्याप्त	५	२३,२५ २६ २९,३०	१३९१७	६	२१,२६ २८,२९,३० ३१	२०	५	९२,८८,८६,८०,७८
११	अस० पंचे० अप०	५	२३,२५ २६,२९,३०	१३९१७	२	२१ २६	४	५	९२,८८,८६ ८० ७८
१२	अस० पंचे० पर्या०	६	२३,२५,२६,२८,२९,३०	१३९२६	६	२१,२६ २८,२९,३०,३१	४९०४	५	९२ ८८,८६,८०,७८
१३	सनी पंचे० अप०	५	२३ २५ २६,२९,३०	१३९१७	२	२१ २६	४	५	९२,८८ ८६ ८० ७८
१४	सनी पंचे० पर्या०	८	२३,२५,२६,२८,२९,३० ३१,१	१३९४५	११	२१,२५,२६,२७,२८,२९ ३०,३१ के० २०,९,८	७६७१	१२	९३,९२,८९,८८,८६,८० ७९,७८,७६,७५ के० ९ ८

इस प्रकार से जीवस्थानो मे आठ कर्मो की उत्तर प्रकृतियो के वध, उदय व सत्ता स्थान तथा उनके भंगो का कथन करने के वाद अव गुणस्थानो मे भगो का कथन करते है।

गुणस्थानों में संवेध भंग

सर्वप्रथम गुणस्थानो मे ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के वधादि स्थानो का कथन करते है—

नाणंतराय तिविहमवि दससु दो होंति दोसु ठाणेसुं।

शब्दार्थ—**नाणंतराय**—ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म, **तिविहमवि**—तीन प्रकार से (वध, उदय और सत्ता की अपेक्षा), **दससु**—आदि के दस गुणस्थानो मे, **दो**—दो (उदय और सत्ता), **होंति**—होता है, **दोसु**—दो (उपशातमोह और क्षीणमोह मे), **ठाणेसुं**—गुणस्थानो मे।

गाथार्थ—प्रारम्भ के दस गुणस्थानो मे ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म वन्ध, उदय और सत्ता की अपेक्षा तीन प्रकार का है और दो गुणस्थानो (उपशांतमोह, क्षीणमोह) मे उदय और सत्ता की अपेक्षा दो प्रकार का है।

विशेषार्थ—पूर्व मे चौदह जीवस्थानो मे आठ कर्मो के वध, उदय और सत्ता स्थान तथा उनके सवेध भंगो का कथन किया गया। अव गुणस्थानो मे उनका कथन करते है।

ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के वारे मे यह नियम है कि ज्ञानावरण की पाँचो और अन्तराय की पाँचो प्रकृतियों का वन्धविच्छेद दसवे सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान के अन्त मे तथा उदय और सत्ता का विच्छेद वारहवे क्षीणमोह गुणस्थान के अन्त मे होता है। अतएव इससे यह सिद्ध हो जाता है कि पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान से लेकर दसवे गुणस्थान तक दस गुणस्थानो मे ज्ञानावरण और अन्तराय कर्म के पॉच

प्रकृतिक बंध, पांच प्रकृतिक उदय और पाँच प्रकृतिक सत्ता, ये तीनो प्राप्त होते हैं।[1] लेकिन दसवें गुणस्थान मे इन दोनो का बंधविच्छेद हो जाने से उपशान्तमोह और क्षीणमोह—ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान मे पाच प्रकृतिक उदय और पाच प्रकृतिक सत्ता ये दो ही प्राप्त होते हैं।[2] बारहवें गुणस्थान से आगे तेरहवे, चौदहवें गुणस्थान मे इन दोनो कर्मो के बंध उदय और सत्ता का अभाव हो जाने से बंध, उदय और सत्ता मे से कोई भी नही पाई जाती है।

ज्ञानावरण और अंतराय कर्म के बंधादि स्थानो को बतलाने के बाद अब दर्शनावरण कर्म के भंगो का कथन करते हैं।

मिच्छासाणे विइए नव चउ पण नव य संतंसा ॥३९॥
मिस्साइ नियट्टीओ छ च्चउ पण नव य संतकम्मंसा ।
चउबंध तिगे चउ पण नवंस दुसु जुयल छ स्संता ॥४०॥
उवसंते चउ पण नव खीणे चउरुदय छच्च चउ संत ।

शब्दार्थ—मिच्छासाणे—मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान मे, विइए—दूसरे कर्म के नव—नौ, चउ पण—चार या पांच नव—नौ य—और संतंसा—सत्ता।

मिस्साइ—मिश्र गुणस्थान से लेकर, नियट्टीओ—अपूर्वकरण गुणस्थान तक, छ च्चउ पण—छह चार या पाच नव—नौ य—और, संतकम्मंसा—सत्ता प्रकृति, चउबंध—चार का बंध तिगे—

---

१ मिथ्यादृष्ट्यादिषु दशसु गुणस्थानकेषु ज्ञानावरणान्तरायस्य च पंचविधो बंध पंचविध उदय पंचविधा सत्ता इत्यर्थ ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २०७

२ बंधाभावे उपशान्तमोहे क्षीणमोहे च ज्ञानावरणीयान्तराययो प्रत्येक पंचविध उदय पंचविधा च सत्ता भवतीति परत उदय सत्तयोरप्यभाव ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २०७

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानो मे, चउपण—चार अथवा पांच, नवस—नौ की सत्ता, दुसु—दो गुणस्थानो (अनिवृत्तिबादर और सूक्ष्मसपराय) मे, जुयल—बध और उदय, छस्संता—छह की सत्ता।

उवसंते—उपशातमोह गुणस्थान मे, चउ पण—चार अथवा पाँच, नव—नौ, खीणे—क्षीणमोह गुणस्थान मे, चउरुदय—चार का उदय, छच्च चउ—छह और चार की, संतं—सत्ता।

गाथार्थ—दूसरे दर्शनावरण कर्म का मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थान मे नौ प्रकृतियो का बध, चार या पाच प्रकृतियो का उदय तथा नौ प्रकृति की सत्ता होती है।

मिश्र गुणस्थान से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान के पहले सख्यातवे भाग तक छह का बंध, चार या पाँच का उदय और नौ की सत्ता होती है। अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानो में चार का बंध, चार या पाँच का उदय और नौ की सत्ता होती है। क्षपक के नौ और दस इन दो गुणस्थानो में चार का बंध, चार का उदय और छह की सत्ता होती है।

उपशांतमोह गुणस्थान में चार या पाँच का उदय और नौ की सत्ता होती है। क्षीणमोह गुणस्थान मे चार का उदय तथा छह और चार की सत्ता होती है।[1]

---

१ (क) मिच्छा सासयणेसु नव बधुवलक्खिया उ दो भगा।
मीसाओ य नियट्टी जा छव्वधेण दो दो उ॥
चउबंधे नवसते दोण्णि अपुव्वाउ सुहुमरागो जा।
अब्बंधे णव सते उवसते हुति दो भगा॥
चउबंधे छस्सते बायर सुहुमाणमेगुवक्खवयाणं।
छसु चउसु व सतेसु दोण्णि अबंधमि खीणस्स॥

—पंचसंग्रह सप्ततिका गा० १०२-१०४

(ख) णव सासणोत्ति बंधो छच्चेव अपुव्वपढमभागोत्ति।
चत्तारि होंति तत्तो सुहुमकसायस्स चरमोत्ति॥

विशेषार्थ—इन गाथाओ मे गुणस्थानो की अपेक्षा दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियो के बंध, उदय और सत्ता स्थानो का निर्देश किया गया है।

दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतिया ६ हैं। इनमे से स्त्यानर्द्धित्रिक का बंध सासादन गुणस्थान तक ही होता है तथा चक्षुदर्शनावरण आदि चार का उदय अपने उदयविच्छेद होने तक निरंतर बना रहता है किन्तु निद्रा आदि पाँच का उदय कदाचित होता है और कदाचित नही होता है तथा उसमे भी एक समय मे एक का ही उदय होता है, एक साथ दो का या दो से अधिक का नही होता है। इसीलिये मिथ्यात्व और सासादन इन दो गुणस्थानो मे ६ प्रकृतिक बंध, ४ प्रकृतिक उदय और ६ प्रकृतिक सत्ता तथा ६ प्रकृतिक बंध, ५ प्रकृतिक उदय और ६ प्रकृतिक सत्ता, ये दो भंग प्राप्त होते हैं—'मिच्छासाणे बिइए नव चउ पण नव य संतसा।'

इन दो—मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानो के आगे तीसरे मिश्र गुणस्थान से लेकर आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग तक—'मिस्साइ नियट्टीओ छच्चउ पण नव य संतकम्मसा'—छह का बंध, चार या पाच का उदय और नौ की सत्ता होती है। इसका कारण यह है कि स्त्यानर्द्धित्रिक का बंध सासादन गुणस्थान तक होने से छह प्रकृतिक बंध होता है। किन्तु उदय और सत्ता प्रकृतिया मे कोई अंतर नही पड़ता है। अतः इन गुणस्थानो मे छह प्रकृतिक बंध, चार प्रकृतिक

णीणो त्ति चारि उदया पंचण्हं णिद्दाणं दोसु णिद्दाणं।
खवगे उदये पत्त णात्थुरियमोत्ति पंचुदया ॥
मिच्छादुवसंतो त्ति य अणियट्टी खवग पढमभागोत्ति।
णवसत्ता खीणस्स दुचरिमोत्ति य छच्चदुवरिमे ॥

—गो० कर्मकांड ४६० ४६२

उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता तथा छह प्रकृतिक वध, पाँच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता, ये दो भग प्राप्त होते है। यद्यपि स्त्यानर्द्धित्रिक का उदय प्रमत्तसयत गुणस्थान के अतिम समय तक ही हो सकता है, फिर भी इससे पाँच प्रकृतिक उदयस्थान के कथन मे कोई अतर नही आता है, सिर्फ विकल्प रूप प्रकृतियो मे ही अंतर पडता है। छठे गुणस्थान तक निद्रा आदि पाँचो प्रकृतियाँ विकल्प से प्राप्त होती है, आगे निद्रा और प्रचला ये दो प्रकृतियाँ ही विकल्प मे प्राप्त होती है।

अपूर्वकरण गुणस्थान के प्रथम भाग में निद्रा और प्रचला की भी वधव्युच्छित्ति हो जाने से आगे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान पर्यन्त तीन गुणस्थानो मे वध मे चार प्रकृतियाँ रह जाती है, किन्तु उदय और सत्ता पूर्ववत् प्रकृतियों की रहती है। अत अपूर्वकरण के दूसरे भाग से लेकर सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक तीन गुणस्थानों मे चार प्रकृतिक वंध, चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता तथा चार प्रकृतिक वध, पाँच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता, यह दो भग प्राप्त होते है—'चउवध तिगे चउ पण नवस'।

लेकिन उक्त कथन उपशमश्रेणि की अपेक्षा समझना चाहिये, क्योकि ऐसा नियम है कि निद्रा या प्रचला का उदय उपशमश्रेणि मे ही होता है, क्षपकश्रेणि मे नही होता है। अत क्षपकश्रेणि मे अपूर्व-करण आदि तीन गुणस्थानो मे पाँच प्रकृतिक उदय रूप भङ्ग प्राप्त नही होता है तथा अनिवृत्तिकरण के कुछ भागो के व्यतीत होने पर स्त्यानर्द्धित्रिक की सत्ता का क्षय हो जाता है। जिससे छह प्रकृतियो की ही सत्ता रहती है। अत अनिवृत्तिकरण के अतिम सख्यात भाग और सूक्ष्मसपराय इन दो क्षपक गुणस्थानो मे चार प्रकृतिक वध, चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता, यह एक भङ्ग प्राप्त होता है—'दुसु जुयल छस्संता'।

उपशमश्रेणि या क्षपकश्रेणि वाले के दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान के अंत में दर्शनावरण कर्म का बंधविच्छेद हो जाता है। इसलिये आगे ग्यारहवें आदि गुणस्थानों में बंध की अपेक्षा दर्शनावरण के भंग प्राप्त नहीं होते हैं। अत उपशान्तमोह गुणस्थान में जो उपशमश्रेणि का गुणस्थान है, उदय और सत्ता तो दसवें गुणस्थान के समान बनी रहती है किन्तु बंध नहीं होने से—'उवसंते चउपण नव'—चार प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता तथा पांच प्रकृतिक उदय और नौ प्रकृतिक सत्ता, यह दो भङ्ग प्राप्त होते हैं।

क्षीणमोह गुणस्थान में—'खीणे चउरुदय छच्च चउसंत'—चार का उदय और छह या चार की सत्ता होती है। इसका कारण यह है कि बारहवां क्षीणमोह गुणस्थान क्षपकश्रेणि का है और क्षपकश्रेणि में निद्रा या प्रचला का उदय नहीं होने से चार प्रकृतिक उदयस्थान प्राप्त होता है तथा छह या चार प्रकृतिक सत्तास्थान होते हैं। क्योंकि जब क्षीणमोह गुणस्थान में निद्रा और प्रचला का उदय ही नहीं होता है तब क्षीणमोह गुणस्थान के अंतिम समय में इनकी सत्ता भी प्राप्त नहीं हो सकती है और नियमानुसार अनुदय प्रकृतियां जो होती हैं उनका प्रत्येक निषेक स्तिबुकसंक्रमण के द्वारा सजातीय उदयवती प्रकृतियों में परिणम जाता है जिससे क्षीणमोह गुणस्थान के अंतिम समय में निद्रा और प्रचला की सत्ता न रहकर केवल चक्षुदर्शनावरण आदि चार की ही सत्ता रहती। इसका सारांश यह हुआ कि क्षीणमोह गुणस्थान में जो चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता तथा चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता। इन दो भङ्गों में से पहला भङ्ग चार प्रकृतिक उदय और छह प्रकृतिक सत्ता का क्षीणमोह गुणस्थान के उपान्त्य समय तक पाया जाता है और अंतिम समय में चार प्रकृतिक उदय और चार प्रकृतिक सत्ता

का दूसरा भङ्ग प्राप्त होता है। इस प्रकार क्षीणमोह गुणस्थान मे भी दो भग प्राप्त होते है।

इस प्रकार से ज्ञानावरण, अतराय और दर्शनावरण कर्म की उत्तर प्रकृतियो के गुणस्थानो मे वध, उदय और सत्ता स्थानो को वतलाने के वाद अव वेदनीय, आयु और गोत्र कर्मों के भगो को वतलाते है।

वेयणियाउयगोए विभज्ज मोह पर वोच्छं ॥४१॥

शब्दार्थ—**वेयणियाउयगोए**—वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के, **विभज्ज**—विभाग करके, **मोहं**—मोहनीय कर्म के, **पर**—इसके वाद, **वोच्छं**—कहेगे।

गाथार्थ—वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भगो का कथन करने के वाद मोहनीय कर्म के भगो का कथन करेंगे।

विशेषार्थ—गाथा मे वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के भगो के विभाग करने की सूचना दी है किन्तु उनके कितने-कितने भग होते है यह नही वतलाया है। अत आचार्य मलयगिरि की टीका मे भाष्य की गाथाओ के आधार पर वेदनीय, आयु और गोत्र कर्म के जो भग-विकल्प वतलाये है, उनको यहाँ स्पष्ट करते है।

भाष्य की गाथा मे वेदनीय और गोत्र कर्म के भङ्गो का निर्देश इस प्रकार किया गया है—

चउ छस्सु दोण्णि सत्तसु एगे चउ गुणिसु वेयणियभगा।
गोए पण चउ दो तिसु एगऽट्ठसु दोण्णि एक्कम्मि ॥

अर्थात् वेदनीय कर्म के छह गुणस्थानो मे चार, सात मे दो और एक मे चार भङ्ग होते हैं तथा गोत्रकर्म के पहले मे पाँच, दूसरे मे चार, तीसरे आदि तीन मे दो, छठे आदि आठ मे एक और एक मे एक भङ्ग होता है जिनका स्पष्टीकरण नीचे किया जाता है।

पहले गाथा मे वेदनीय कर्म के विकल्पो का निर्देश किया है। पहले मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर छठे प्रमत्तसयत गुणस्थान तक छह गुणस्थानो मे—'चउ छस्सु'—चार भङ्ग होते हैं। क्योकि बध और उदय की अपेक्षा साता और असातावेदनीय, ये दोनो प्रकृतिया प्रतिपक्षी हैं। अर्थात् दोनो मे से एक काल मे किसी एक का बध और किसी एक का ही उदय होता है किन्तु दोनो की एक साथ सत्ता पाये जाने मे कोई विरोध नही है तथा असाता वेदनीय का बध आदि के छह गुणस्थानो मे ही होता है, आगे नहीं। इसलिये प्रारभ के छह गुणस्थानो मे वेदनीय कर्म के निम्नलिखित चार भग प्राप्त होते है—

१ असाता का बध असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता।

२ असाता का बध, साता का उदय और साता असाता की सत्ता।

३ साता का बध, असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता।

४ साता का बध, साता का उदय और साता असाता की सत्ता।

'दोण्णि सत्तसु''—सातवें गुणस्थान से लेकर तेरहवे गुणस्थान तक सात गुणस्थानो मे दो भङ्ग होते हैं। क्योकि छठे गुणस्थान मे असातावेदनीय का बधविच्छेद हो जाने से सातवे से लेकर तेरहवे गुणस्थान तक सिर्फ सातावेदनीय का बध होता है, किन्तु उदय और सत्ता दोनो की पाई जाती है, जिससे इन सात गुणस्थानो मे—१ साता का बध, साता का उदय और साता-असाता की सत्ता तथा २ साता का बध, असाता का उदय और साता असाता की सत्ता, यह दो भङ्ग प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार से तेरहवें गुणस्थान तक वेदनीय कर्म के बधादि

स्थानो के विकल्पो को वतलाने के वाद अव चौदहवे गुणस्थान के भङ्गों को वतलाने के लिये कहते है कि 'एगे चउ' अर्थात् एक गुणस्थान—चौदहवे अयोगिकेवली गुणस्थान मे चार भङ्ग होते हैं। क्योकि अयोगिकेवली गुणस्थान मे साता वेदनीय का भी वंध नही होता है, अतः वहाँ वध की अपेक्षा तो कोई भङ्ग प्राप्त नही होता है किन्तु उदय और सत्ता की अपेक्षा भङ्ग वनते है। फिर भी जिसके इस गुणस्थान मे असाता का उदय है, उसके उपान्त्य समय मे साता की सत्ता का नाश हो जाने से तथा जिसके साता का उदय है उसके उपान्त्य समय मे असाता की सत्ता का नाश हो जाने से उपान्त्य समय तक—१. साता का उदय और साता-असाता की सत्ता, २ असाता का उदय और साता-असाता की सत्ता, ये दो भङ्ग प्राप्त होते है। तथा अंतिम समय मे, ३ साता का उदय और साता की सत्ता तथा ४ असाता का उदय और असाता की सत्ता, यह दो भङ्ग प्राप्त होते है।[1] इस प्रकार अयोगिकेवली गुणस्थान में वेदनीय कर्म के चार भग वनते हैं।

अव गोत्रकर्म के भगो को गुणस्थानों मे वतलाते है।

गोत्रकर्म के वारे मे भी वेदनीय कर्म की तरह एक विशेपता तो यह है कि साता और असाता वेदनीय के समान उच्च और नीच गोत्र वंध और उदय की अपेक्षा प्रतिपक्षी प्रकृतियाँ हैं, एक काल मे इन दोनों मे से किसी एक का वंध और एक का ही उदय हो सकता है, लेकिन

---

१ 'एकस्मिन्' अयोगिकेवलिनि चत्वारो भंगा, ते चेमे—असातस्योदय. सातासाते सती, अथवा सातस्योदय सातासाते सती, एतौ, द्वौ विकल्पाव-योगिकेवलिनि द्विचरमसमय यावत्प्राप्येते, चरमसमये तु असातस्योदय असातस्य सत्ता यस्य द्विचरम-समये सात क्षीणम्, यस्य त्वसात द्विचरम समये क्षीणं तस्यायं विकल्प.—सातस्योदय. सातस्य सत्ता।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २०६

सत्ता दोनो की होती है और दूसरी विशेषता यह है कि अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो के उच्चगोत्र की उद्वलना होने पर बंध, उदय और सत्ता नीच गोत्र की ही होती है, तथा जिनमे ऐसे अग्निकायिक और वायुकायिक जीव उत्पन्न होते हैं, उनके भी कुछ काल तक बंध, उदय और सत्ता नीच गोत्र की होती है। इन दोनो विशेषताओ को ध्यान मे रखकर मिथ्यात्व गुणस्थान मे गोत्रकर्म के भगो का विचार करते हैं तो पाच भग प्राप्त होते हैं—'गोए पण'। वे पाँच भग इस प्रकार हैं—

१ नीच का बंध, नीच का उदय तथा नीच और उच्च गोत्र की सत्ता।

२ नीच का बंध, उच्च का उदय तथा नीच और उच्च की सत्ता।

३ उच्च का बंध, उच्च का उदय और उच्च व नीच की सत्ता।

४ उच्च का बंध, नीच का उदय तथा उच्च व नीच की सत्ता।

५ नीच का बंध, नीच का उदय और नीच की सत्ता।

उक्त पाँच भगो मे से पाँचवा भग—नीच गोत्र का बंध, उदय और सत्ता—अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो तथा उन जीवो मे भी कुछ काल के लिए प्राप्त होता है जो अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो मे से आकर जन्म लेते हैं।[1] शेष मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती जीवो के पहले चार विकल्प प्राप्त होते हैं।

सासादन गुणस्थान में चार भग प्राप्त होते हैं। क्योंकि नीच गोत्र का बंध सासादन गुणस्थान तक ही होता है और मिश्र आदि

---

[1] नीचर्गोत्रस्य बन्ध नीचर्गोत्रस्योदय नी[illegible]र्गोत्र सत्त्व एष विकल्पस्तेज स्कायिक-वायुकायिकेषु लभ्यते तद्भवाद्गुद्धृत्तेषु वा [illegible]जीवेषु कियत्कालम्।
—सप्ततिका प्रकरण टीका पृ० २०६

गुणस्थानो मे एक उच्चगोत्र का ही वध होता है। इसका यह अर्थ हुआ कि मिथ्यात्व गुणस्थान के समान सासादन गुणस्थान मे भी किसी एक का वध किसी एक का उदय और दोनो की सत्ता वन जाती है। इस हिसाव से यहाँ चार भग पाये जाते है और वे चार भाग वही है जिनका मिथ्यात्व गुणस्थान के भग १, २, २ और ४ मे उल्लेख किया गया है।

'दो तिसु' अर्थात् तीसरे, चौथे, पाचवे—मिश्र, अविरत सम्यग्दृष्टि और देशविरति गुणस्थानो मे दो भंग होते है। क्योकि तीसरे से लेकर पाँचवे गुणस्थान तक वध एक उच्च गोत्र का ही होता है किन्तु उदय और सत्ता दोनो की पाई जाती है। इसलिये इन तीन गुणस्थानों में—
१ उच्च का वध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता, तथा
२ उच्च का वध, नीच का उदय और नीच-उच्च की सत्ता, यह दो भग पाये जाते है। यहा कितने ही आचार्यो का यह भी अभिमत है कि पाचवे गुणस्थान मे उच्च का वध, उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता यही एक भग होता है। इस विपय मे आगम वचन है कि—

सामन्नेणं वयजाईए उच्चागोयस्स उदओ होइ।

अर्थात्—सामान्य से सयत और सयतासयत जाति वाले जीवो के उच्च गोत्र का उदय होता है।

'एगऽट्ठसु'—यानी छठे प्रमत्तसयत गुणस्थान से लेकर आठ गुणस्थानो मे से प्रत्येक गुणस्थान मे एक भंग प्राप्त होता है। क्योकि छठे से लेकर दसवे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक ही उच्च गोत्र का वध होता है। अत छठे, सातवे, आठवे, नौवे, दसवे—प्रमत्तसयत, अप्रमत्तसयत, अपूर्वकरण, अनिवृत्ति वादर और सूक्ष्मसपराय—गुणस्थानो मे से प्रत्येक मे—उच्च का वध, उच्च का उदय और उच्च-

नीच की सत्ता यह एक भंग प्राप्त होता है तथा दसवें गुणस्थान में उच्च गोत्र का बंधविच्छेद हो जाने से ग्यारहवें बारहवें, तेरहवें—उपशान्तमोह, क्षीणमोह और सयोगिकेवली गुणस्थान में उच्च-गोत्र का उदय और उच्च नीच की सत्ता, यह एक भंग प्राप्त होता है। इस प्रकार छठे से लेकर तेरहवें गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थान में एक भंग प्राप्त होता है, यह सिद्ध हुआ।

'दोण्णि एगम्मि'—शेष रहे एक चौदहवें अयोगिकेवली गुणस्थान में दो भंग होते हैं। इसका कारण यह है कि अयोगिकेवली गुणस्थान में नीच गोत्र की सत्ता उपान्त्य समय तक ही होती है क्योंकि चौदहवें गुणस्थान में यह उदयरूप प्रकृति न होने से उपान्त्य समय में ही इसका स्तिबुक संक्रमण के द्वारा उच्च गोत्र रूप से परिणमन हो जाता है, अतः इस गुणस्थान के उपान्त्य समय तक उच्च का उदय और उच्च-नीच की सत्ता यह एक भंग तथा अन्त समय में उच्च का उदय और उच्च की सत्ता, यह दूसरा भंग होता है। इस प्रकार चौदहवें गुणस्थान में दो भंगों का विधान जानना चाहिए।

गुणस्थानों में वेदनीय और गोत्र कर्मों के भंगों का विवेचन करने के बाद अब आयुकर्म के भंगों का विचार भाष्य गाथा के आधार से करते हैं। इस सम्बन्धी गाथा निम्न प्रकार है—

> अट्ठच्छाहिगवीसा सोलस वीस च बार छ दोसु।
> दो चउसु तीसु एक्कं मिच्छाइसु आउगे भंगा॥

अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थान में २८, सासादन में २६, मिश्र में १६, अविरत सम्यग्दृष्टि में २०, देशविरत में १२ प्रमत्त और अप्रमत्त में ६ अपूर्वकरण आदि चार में २ और क्षीणमोह आदि में १, इस प्रकार मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानों में आयुकर्म के भंग जानना चाहिए। जिनका विशेष स्पष्टीकरण निम्न प्रकार है—

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे आयुकर्म के २८ भग होते है। क्योकि चारो गतियो के जीव मिथ्यादृष्टि भी होते है और नारको के पाँच, तिर्यचो के नौ, मनुष्यो के नौ और देवो के पाच, इस प्रकार आयुकर्म के २८ भग पहले वतलाये गये है। अतः वे सव भग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे सभव होने से २८ भग मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे कहे है।

सासादन गुणस्थान मे २६ भग होते है। क्योकि नरकायु का वंध मिथ्यात्व गुणस्थान मे ही होने से सासादन सम्यग्दृष्टि तिर्यच और मनुष्य नरकायु का वध नही करते है। अत· उपर्युक्त २८ भंगो मे से—१ भुज्यमान तिर्यचायु, वध्यमान नरकायु और तिर्यच-नरकायु की सत्ता, तथा भुज्यमान मनुष्यायु वध्यमान नरकायु और मनुष्य-नरकायु की सत्ता, ये दो भग कम होने जाने से सासादन गुणस्थान मे २६ भग प्राप्त होते हैं।[1]

तीसरे मिश्र गुणस्थान मे परभव सवधी आयु के वध न होने का नियम होने से परभव सवधी किसी भी आयु का वन्ध नही होता है। अत· पूर्वोक्त २८ भगो मे से वधकाल मे प्राप्त होने वाले नारको के दो, तिर्यंचो के चार, मनुष्यो के चार और देवो के दो, इस प्रकार २+४+४+२=१२ भगो को कम कर देने पर १६ भंग प्राप्त होते है।

चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे २० भग होते है। क्योकि अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे तिर्यंचों और मनुष्यो मे से प्रत्येक के नरक, तिर्यंच और मनुष्य आयु का वन्ध नही होने से तीन-तीन भग

---

१ यतस्तिर्यंचो मनुष्या वा सामादनभावे वर्तमाना नरकायुर्न वघ्नन्ति, तत. प्रत्येक तिरश्चा मनुष्याणा च परभवायुर्वन्धकाले एकैको भगो न प्राप्यत इति पड्विंशति ।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २१०

तथा देव और नारकों में प्रत्येक के तिर्यंचायु का बंध नहीं होने से एक-एक भंग, इस प्रकार कुल आठ भेद हुए। जिनको पूर्वोक्त २८ भंगों में से कम करने पर २० भंग होते हैं।

देशविरत गुणस्थान में १२ भंग होते हैं। क्योंकि देशविरति तिर्यंच और मनुष्यों के होती है और यदि वे परभव सम्बन्धी आयु का बंध करते हैं तो देवायु का ही बंध करते हैं अन्य आयु का नहीं। देश-विरता आयुबध्नन्तो देवायुरेव बध्नन्ति न शेषमायु । अतः इनके आयुबंध के पहले एक एक ही भंग होता है और आयुबंध के काल में भी एक एक भंग ही होता है। इस प्रकार तिर्यंच और मनुष्यों, दोनों को मिलाकर कुल चार भंग हुए तथा उपरत बंध की अपेक्षा तिर्यंचों के भी चार भंग होते हैं और मनुष्यों के भी चार भंग। क्योंकि चारों गति सम्बन्धी आयु का बंध करने के पश्चात तिर्यंच और मनुष्यों के देशविरति गुणस्थान के प्राप्त होने में किसी प्रकार का विरोध नहीं है। इस प्रकार उपरत बंध की अपेक्षा तिर्यंचों के चार और मनुष्यों के चार, जो कुल मिलाकर आठ भङ्ग हैं। इनमें पूर्वोक्त चार भङ्गों को मिलाने पर देशविरत गुणस्थान में कुल बारह भङ्ग हो जाते हैं।

'छ दोसु'—अर्थात पांचवें गुणस्थान के बाद के प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत, इन दो गुणस्थानों में छह भङ्ग होते हैं। इसका कारण यह है कि ये दोनों गुणस्थान मनुष्यों के ही होते हैं। और ये देवायु को ही बांधते हैं। अतः इनके आयु बंध के पहले एक भङ्ग और आयुबंध काल में भी एक भङ्ग होता है। किन्तु उपरत बंध की अपेक्षा यहां चार भङ्ग होते हैं क्योंकि चारों गति सम्बन्धी आयुबंध के पश्चात प्रमत्त और अप्रमत्त संयत गुणस्थान प्राप्त होने में कोई बाधा नहीं है। इस प्रकार आयुबंध के पूर्व का एक, आयु बंध के समय का एक और उपरत बंध काल के चार भङ्गों को मिलाने से प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत इन दोनों गुणस्थानों में छह भङ्ग प्राप्त होते हैं।

आयुकर्म का वन्ध सातवे गुणस्थान तक ही होता है। आगे आठवें अपूर्वकरण आदि शेप गुणस्थानो मे नही होता है। किन्तु एक विशेषता है कि जिसने देवायु का वन्ध कर लिया, ऐसा मनुष्य उपशमश्रेणि पर आरोहण कर सकता है और जिसने देवायु को छोडकर अन्य आयु का वन्ध किया है, वह, उपशमश्रेणि पर आरोहण नही करता है—

तिसु आउगेसु बद्धेसु जेण सेढि न आरुहइ।[1]

तीन आयु का वन्ध करने वाला (देवायु को छोडकर) जीव श्रेणि पर आरोहण नही करता है। अतः उपशमश्रेणि की अपेक्षा अपूर्वकरण आदि उपशातमोह गुणस्थान पर्यन्त आठ, नौ, दस और ग्यारह, इन चार गुणस्थानो मे दो-दो भङ्ग प्राप्त होते है—'दो चउसु'। वे दो भङ्ग इस प्रकार है—१ मनुष्यायु का उदय, मनुष्यायु की सत्ता, २ मनुष्यायु का उदय मनुष्य-देवायु की सत्ता। इनमे से पहला भङ्ग परभव सवधी आयु वन्धकाल के पूर्व मे होता और दूसरा भङ्ग उपरत वन्धकाल मे होता है।

लेकिन क्षपकश्रेणि की अपेक्षा अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानो मे मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता, यही एक भङ्ग होता है।

क्षीणमोह, सयोगिकेवली, अयोगिकेवली इन तीन गुणस्थानों मे भी मनुष्यायु का उदय और मनुष्यायु की सत्ता, यही एक भङ्ग होता है—'तीसु एक्क'।

इस प्रकार प्रत्येक गुणस्थान मे आयुकर्म के सम्भव भङ्गो का विचार किया गया कि प्रत्येक गुणस्थान में कितने-कितने भङ्ग होते हैं।

१४ गुणस्थानो मे ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयु, गोत्र और अतराय, इन छह कर्मो का विवरण इस प्रकार है—

---

१ कर्म प्रकृति गाथा ३७५।

क्रम सं०	गुणस्थान	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	वेदनीय	आयु	गोत्र	अंतराय
१	मिथ्यात्व	१	२	४	२८	५	१
२	सासादन	१	२	४	२६	४	१
३	मिश्र	१	२	४	१६	२	१
४	अविरत	१	२	४	२०	२	१
५	देशविरत	१	२	४	१२	२	१
६	प्रमत्तविरत	१	२	४	६	१	१
७	अप्रमत्तविरत	१	२	२	६	१	१
८	अपूर्वकरण	१	४	२	२	१	१
९	अनिवृत्तिकरण	१	२	२	२	१	१
१०	सूक्ष्मसंपराय	१	३	२	२	१	१
११	उपशांतमोह	१	२	२	२	१	१
१२	क्षीणमोह	१	२	२	१	१	१
१३	सयोगिकेवली	०	०	२	१	१	०
१४	अयोगिकेवली	०	०	४	१	२	०

अब गाथा में निर्देशानुसार मोहनीय कर्म के भंगों का विचार करते हैं। उनमें से भी पहले गुणस्थानों में भंगों को बतलाते हैं।

गुणठाणगेसु अट्ठसु एक्केक्कं मोहबंधठाणेसु।
पंचानियट्टिठाणे बंधोवरमो परं तत्तो ॥४२॥

शब्दार्थ—गुणठाणगेसु—गुणस्थानो मे, अट्ठसु—आठ मे, एक्केक्कं—एक-एक, मोहबंधठाणेसु—मोहनीय कर्म के बधस्थानो मे से, पंच—पाँच, अनियट्टिठाणे—अनिवृत्तिबादर गुणस्थान मे, बंधोवरमो—बध का अभाव है, परं—आगे, तत्तो—उससे (अनिवृत्ति बादर गुणस्थान से)।

गाथार्थ—मिथ्यात्व आदि आठ गुणस्थानों मे मोहनीय कर्म के बधस्थानो मे से एक, एक बधस्थान होता है तथा अनिवृत्तिबादर गुणस्थान मे पाँच और अनन्तर आगे के गुणस्थानो मे बध का अभाव है।

विशेषार्थ—इस गाथा मे मोहनीय कर्म के बध, उदय और सत्ता स्थानो मे से बधस्थानो को बतलाया है। सामान्य से मोहनीय कर्म के बंधस्थान पहले बताये जा चुके है, जो २२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २, १ प्रकृतिक है। इन दस स्थानो को गुणस्थानो मे घटाते है।

'गुणठाणगेसु अट्ठसु एक्केक्क' अर्थात् पहले मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर आठवे अपूर्वकरण गुणस्थान पर्यन्त प्रत्येक गुणस्थान मे मोहनीय कर्म का एक-एक बधस्थान होता है। वह इस प्रकार जानना चाहिए कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानो मे एक २२ प्रकृतिक, सासादान गुणस्थान मे २१ प्रकृतिक, मिश्र गुणस्थान और अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे १७ प्रकृतिक, देशविरति मे १३ प्रकृतिक तथा प्रमत्त-सयत, अप्रमत्तसयत और अपूर्वकरण मे ९ प्रकृतिक बधस्थान होता है। इनके भगो का विवरण मोहनीय कर्म के बधस्थानो के प्रकरण मे कहे गये अनुसार जानना चाहिए, लेकिन यहाँ इतनी विशेषता है कि अरति और शोक का बधविच्छेद प्रमत्तसयत गुणस्थान मे हो जाता है अत अप्रमत्तसयत और अपूर्वकरण गुणस्थान मे नौ प्रकृतिक बधस्थान मे एक-एक ही भग प्राप्त होता है। पहले जो नौ प्रकृतिक

बंधस्थान में दो भंग बतलाये हैं वे प्रमत्तसंयत गुणस्थान की अपेक्षा कहे गये हैं।[1]

'पंचानियट्टिठाणे' आठवें गुणस्थान के अनन्तर नौवें अनिवृत्तिबादर नामक गुणस्थान में ५, ४, ३, २ और १ प्रकृतिक ये पांच बंधस्थान होते हैं। इसका कारण यह है कि नौवें गुणस्थान के पाँच भाग हैं और प्रत्येक भाग में क्रम से मोहनीय कर्म की एक-एक प्रकृति का बंधविच्छेद होने से पहले भाग में ५, दूसरे भाग में ४, तीसरे भाग में ३, चौथे भाग में २ और पांचवें भाग में १ प्रकृतिक बंधस्थान होने से नौवें गुणस्थान में पांच बंधस्थान माने हैं। इसके बाद सूक्ष्मसंपराय आदि आगे के गुणस्थानों में बंध का अभाव हो जाने से बंधस्थान का निषेध किया है।

उक्त कथन का सारांश यह है कि आदि के आठ गुणस्थानों में से प्रत्येक में एक एक बंधस्थान है। नौवें गुणस्थान में पाँच बंधस्थान हैं तथा उसके बाद दसवें, ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें, चौदहवें गुणस्थान में मोहनीय कर्म के बंध का अभाव होने से कोई भी बंधस्थान नहीं है।

इस प्रकार से गुणस्थानों में मोहनीय कर्म के बंधस्थानों का निर्देश करने के बाद अब आगे तीन गाथाओं में उदयस्थानों का कथन करते हैं।[2]

---

१ केवलमप्रमत्ताऽपूर्वकरणयोर्भंग एकक एव वक्तव्य अरतिशोकयोर्बंधस्य प्रमत्तगुणस्थानके एव व्यवच्छेदात्। प्राक् च प्रमत्तापेक्षया नवकबंधस्थाने द्वौ भंगौ दर्शितौ। सप्ततिका प्रकरण टीका पृ०, २११

२ तुलना कीजिए—

(क) मिच्छे सगाइचउरो सासणमीसे सगाइ तिण्णुदया।
छप्पंच चउरपुव्वा तिअ चउरो अविरयाईणं ॥
—पंचसंग्रह सप्ततिका गा० २६

सत्ताइ दसउ मिच्छे सासायणमीसए नवुक्कोसा।
छाई नव उ अविरए देसे पंचाइ अट्ठेव ॥४३॥
विरए खओवसमिए, चउराई सत्त छच्चऽपुव्वम्मि।
अनियट्टिबायरे पुण इक्को व दुवे व उदयंसा ॥४४॥
एगं सुहुमसरागो वेएइ अवेयगा भवे सेसा।
भंगाणं च पमाण पुव्वुद्दिट्ठेण नायव्वं ॥४५॥

शब्दार्थ—सत्ताइ दसउ—सात से लेकर दस प्रकृति तक, मिच्छे—मिथ्यात्व गुणस्थान मे, सासायण मीसाए—सासादन और मिश्र मे, नवुक्कोसा—सात से लेकर नौ प्रकृति तक, छाईनवउ—छह से लेकर नौ तक, अविरए—अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे, देसे—देशविरति गुणस्थान मे, पंचाइअट्ठेव—पाँच से लेकर आठ प्रकृति तक,

विरए खओवसमिए—प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थान मे, चउराईसत्त—चार से सात प्रकृति तक, छच्च—और छह तक, अपुव्वम्मि—अपूर्वकरण गुणस्थान मे, अनियट्टिबायरे—अनिवृत्ति वादर गुणस्थान मे, पुण—तथा, इक्को—एक, व—अथवा दुवे—दो, उदयसा—उदयस्थान।

एगं—एक, सुहुमसरागो—सूक्ष्मसपराय गुणस्थान वाला, वेएइ—वेदन करता है, अवेयगा—अवेदक, भवे—होते है, सेसा—वाकी के गुणस्थान वाले, भंगाणं—भगो का, च—और, पमाण—प्रमाण, पुव्वुद्दिट्ठेण—पहले कहे अनुसार, नायव्व—जानना चाहिए।

(ख) दसणवणवादि चउतियतिट्ठाण णवट्ठसगसगादि चऊ।
ठाणा छादि तिय च य चदुवीसगदा अपुव्वो त्ति॥
उदयट्ठाण दोण्ह पणबंधे होदि दोण्हमेकस्स।
चदुविहबंधट्ठाणे सेसेसेय हवे ठाण॥
—गो० कर्मकांड गा० ४८० व ४८२

गाथार्थ—मिथ्यात्व गुणस्थान मे सात से लेकर उत्कृष्ट दस प्रकृति पर्यन्त, सासादन और मिश्र मे सात से नौ पर्यन्त, अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे छह से नौ तक, देशविरत मे पाच से आठ पर्यन्त तथा—

प्रमत्त और अप्रमत्त सयत गुणस्थान मे चार से लेकर सात तक, अपूर्वकरण मे चार से छह तक और अनिवृत्तिबादर गुणस्थान मे एक अथवा दो उदयस्थान मोहनीयकर्म के होते हैं।

सूक्ष्मसपराय गुणस्थान वाला एक प्रकृति का वेदन करता है और इसके आगे के शेष गुणस्थान वाले अवेदक होते हैं, इनके भगो का प्रमाण पहले कहे अनुसार जानना चाहिए।

विशेषार्थ—इन तीन गाथाओ मे मोहनीयकर्म के गुणस्थानो मे उदयस्थान बतलाये हैं कि किस गुणस्थान मे एक साथ अधिक से अधिक कितनी प्रकृतियो का और कम से कम कितनी प्रकृतियो का उदय होता है।

मोहनीयकर्म की कुल उत्तर प्रकृतियाँ २८ हैं। उनमे से एक साथ अधिक से अधिक दस प्रकृतियो का और कम से कम एक प्रकृति का एक काल मे उदय होता है। इस प्रकार से एक से लेकर दस तक, दस उदयस्थान होना चाहिये किन्तु तीन प्रकृतियो का उदय नही प्राप्त नही होता है क्योंकि दो प्रकृतिक उदयस्थान मे हास्य रति युगल या अरति शोक युगल इन दोनो युगलो मे से किसी एक युगल के मिलाने पर चार प्रकृतिक उदयस्थान ही प्राप्त होता है। अत तीन प्रकृतिक उदयस्थान नहीं बतलाकर शेष १, २, ४, ५, ६, ७, ८, ९ और १० प्रकृतिक ये कुल नौ उदयस्थान मोहनीयकर्म के बतलाये हैं।

यद्यपि गाथा ११ में मोहनीयकर्म के उदयस्थानों की सामान्य विवेचना के प्रसग मे विशेप स्पष्टीकरण किया जा चुका है, फिर भी गुणस्थानो की अपेक्षा उनका कथन करने के लिए गाथानुसार यहाँ विवेचन करते हैं।

'सत्ताइ दसउ मिच्छे' अर्थात् पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे ७, ८, ९ और १० प्रकृतिक ये चार उदयस्थान होते हैं। मिथ्यात्व, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन, क्रोधादि में से अन्यतम तीन क्रोधादि, तीन वेदो में से कोई एक वेद, हास्य-रति युगल, शोक-अरति युगल मे से कोई एक युगल, इन सात प्रकृतियो का ध्रुव रूप से उदय होने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इन ध्रुवोदया सात प्रकृतियो मे भय अथवा जुगुप्सा अथवा अनन्तानुवंधी कपाय चतुष्क मे से किसी एक कपाय को मिलाने पर आठ प्रकृतिक तथा उन सात प्रकृतियों मे भय, जुगुप्सा अथवा भय, अनन्तानुवंधी अथवा जुगुप्सा, अनन्तानुवंधी मे से किन्ही दो को मिलाने से नौ प्रकृतिक और उक्त सात प्रकृतियों मे भय, जुगुप्सा और अनन्तानुवन्धी अन्यतम एक कपाय को एक साथ मिलाने पर दस प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इन चार उदयस्थानो मे सात की एक, आठ की तीन, नौ की तीन और दस की एक, इस प्रकार भंगों की आठ चौवीसी प्राप्त होती है।

सासादन और मिश्र गुणस्थान मे सात, आठ और नौ प्रकृतिक, ये तीन-तीन उदयस्थान होते हैं।

सासादन गुणस्थान मे अनन्तानुवन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन क्रोधादि मे से अन्यतम क्रोधादि कोई चार, तीन वेदो मे कोई एक वेद, दो युगलो में से कोई एक युगल इन सात प्रकृतियो का ध्रुवोदय होने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। इस स्थान में भय या जुगुप्सा मे से किसी एक को मिलाने पर आठ प्रकृतिक तथा भय और जुगुप्सा को एक साथ मिलाने पर नौ प्रकृतिक उदयस्थान

होता है। इसमे भगो की चौबीसी चार हैं। वे इस प्रकार हैं कि सात की एक, आठ की दो और नौ की एक।

मिश्र गुणस्थान मे अनन्तानुबधी को छोडकर शेष अप्रत्याख्यानावरण आदि तीन कषायो मे से अन्यतम तीन क्रोधादि, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, दो युगला मे से कोई एक युगल और मिश्र मोहनीय, इन सात प्रकृतियो का नियम से उदय होने के कारण सात प्रकृतिक उदयस्थान प्राप्त होता है। इसमे भगो की एक चौबीसी होती है। सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भय अथवा जुगुप्सा को मिलाने पर आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भगो की दो चौबीसी होती हैं तथा सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भय, जुगुप्सा को युगपत् मिलाने से नौ प्रकृतिक उदयस्थान बनता है और भगो की एक चौबीसी होती है। इस प्रकार मिश्र गुणस्थान मे ७, ८ और ९ प्रकृतिक उदयस्थान तथा भगो की चार चौबीसी जानना चाहिये।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे छह से लेकर नौ प्रकृतिक चार उदयस्थान हैं—'छाई नव उ अविरए'। अर्थात् ६ प्रकृतिक, ७ प्रकृतिक, ८ प्रकृतिक और ९ प्रकृतिक ये चार उदयस्थान है। छह प्रकृतिक उदयस्थान मे अप्रत्याख्यानावरण आदि तीन कषायो मे से अन्यतम तीन क्रोधादि, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, दो युगला मे से कोई एक युगल, इन छह प्रकृतियो का उदय होता है। इस स्थान मे भगो की एक चौबीसी होती है। इस छह प्रकृतिक उदयस्थान मे भय या जुगुप्सा या वेदक सम्यक्त्व को मिलाने से सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ विकल्प से तीन प्रकृतियो के मिलाने के कारण भगो की तीन चौबीसी होती हैं। उक्त छह प्रकृतियो मे भय, जुगुप्सा अथवा भय, वेदक सम्यक्त्व अथवा जुगुप्सा, वेदक सम्यक्त्व, इस प्रकार इन दो प्रकृतियो को अनुक्रम मे मिलाने पर आठ प्रकृतिक उदयस्थान हैं। यह स्थान तीन विकल्पो से बनने के कारण भगो की तीन चौबीसियाँ होती हैं।

छह प्रकृतिक उदयस्थान मे भय, जुगुप्सा और वेदक सम्यक्त्व को एक साथ मिलाने पर भी नौ प्रकृतिक उदयस्थान होता है और विकल्प नही होने से भगो की एक चौवीसी प्राप्त होती है। चौथे गुणस्थान मे कुल मिलाकर आठ चौवीसी होती है।

'देसे पंचाइ अट्ठेव'—देशविरत गुणस्थान में पाँच से लेकर आठ प्रकृति पर्यन्त चार उदयस्थान हैं—पाँच, छह, सात और आठ प्रकृतिक। पाँच प्रकृतिक उदयस्थान मे पाँच प्रकृतियाँ इस प्रकार है—प्रत्याख्यानावरण, सज्वलन क्रोधादि मे मे अन्यतम दो क्रोधादि, तीन वेदों मे से कोई एक वेद, दो युगलो मे से कोई एक युगल। यहा भङ्गो की एक चौवीसी होती है। छह प्रकृतिक उदयस्थान उक्त पॉच प्रकृतियो मे भय या जुगुप्सा या वेदक सम्यक्त्व मे से किसी एक को मिलाने से बनता है। इस स्थान मे प्रकृतियो के तीन विकल्प होने से तीन चौवीसी होती है। सात प्रकृतिक उदयस्थान के लिये पॉच प्रकृतियो के साथ भय, जुगुप्सा या भय, वेदक सम्यक्त्व या जुगुप्सा, वेदक सम्यक्त्व को एक साथ मिलाया जाता है। यहाँ भी तीन विकल्पो के कारण भङ्गो की तीन चौवीसी जानना चाहिये। पूर्वोक्त पाँच प्रकृतियो के साथ भय, जुगुप्सा और वेदक सम्यक्त्व को युगपत् मिलाने से आठ प्रकृतिक उदयस्थान होता है। प्रकृतियो का विकल्प न होने से भङ्गो की एक चौवीसी होती है।

पाँचवे देशविरत गुणस्थान के अनन्तर छठे, सातवे प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत गुणस्थानो का सकेत करने के लिये गाथा मे 'विरए खओवसमिए' पद दिया है—जिसका अर्थ क्षायोपशमिक विरत होता है। क्योकि क्षायोपशमिक विरत, यह सज्ञा इन दो गुणस्थानो की ही होती है। इसके आगे के गुणस्थानो के जीवो को या तो उपशमक सज्ञा दी जाती है या क्षपक। उपशमश्रेणि चढने वाले को उपशमक और क्षपकश्रेणि चढने वाले को क्षपक कहते हैं। अत·

प्रमत्त और अप्रमत्त विरत इन दो गुणस्थानो मे उदयस्थानो को बतलाने के लिये गाथा मे निर्देश किया है—'चउराई सत्त'। अर्थात चार से लेकर सात प्रकृति तक के चार उदयस्थान हैं—चार, पांच, छह और सात प्रकतिक। इन दोना गुणस्थानवर्ती जीवो के सज्वलन चतुष्क मे से क्रोधादि कोई एक, तीन वेदो मे से कोई एक वेद, दो युगला म से कोई एक युगल, यह चार प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहा भङ्गो की एक चौबीसी होती है। भय या जुगुप्सा या वेदक सम्यक्त्व मे से किसी एक को चार प्रकृतिक मे मिलान पर पाच प्रकृतिक उदयस्थान होता है। विकल्प प्रकतिया तीन है अत यहाँ भङ्गा की तीन चौबीसी बनती हैं। उक्त चार प्रकतियो के साथ भय, जुगुप्सा अथवा भय, वेदक सम्यक्त्व अथवा जुगुप्सा, वेदक सम्यक्त्व को एक साथ मिलाने पर छह प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ भी भङ्गा की तीन चौबीसी होती है। भय, जुगुप्सा और वेदक सम्यक्त्व, इन तीनो प्रकृतियो को चार प्रकतिक उदयस्थान मे मिलाने पर सात प्रकृतिक उदयस्थान होता है। यहाँ पर विकल्प प्रकतियाँ न होने से भगो की एक चौबीसी होती है। कुल मिलाकर छठे और सातवे गुणस्थान मे से प्रत्येक मे भङ्गो की आठ-आठ चौबीसी होती हैं।

आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान मे चार, पाँच और छह प्रकृतिक, यह तीन उदयस्थान हैं। सज्वलन कषाय चतुष्क मे से कोई एक कषाय, तीन वेदो मे से कोई एक वेद और दो युगलो मे से कोई एक युगल के मिलाने से चार प्रकतिक उदयस्थान बनता है तथा भङ्गो की एक चौबीसी होती है। भय, जुगुप्सा मे से किसी एक को उक्त चार प्रकृतियो मे मिलाने पर पाँच प्रकृतिक उदयस्थान होता है। विकल्प प्रकृतियाँ दो होने से यहाँ भङ्गा की दो चौबीसी प्राप्त होती हैं। भय जुगुप्सा को युगपत् चार प्रकृतियो मे मिलाने पर छह प्रकतिक

उदयस्थान जानना चाहिये तथा भगो की एक चौवीसी होती है। इस प्रकार आठवे गुणस्थान मे भगो की चार चौवीसी होती है।

'अनियट्टिवायरे पुण इक्को वा दुवे व'—अर्थात् नौवें अनिवृत्ति-वादर गुणस्थान मे दो उदयस्थान है—दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक। यहाँ दो प्रकृतिक उदयस्थान मे सज्वलन कपाय चतुष्क मे से किसी एक कपाय और तीन वेदो मे से किसी एक वेद का उदय होता है। यहा तीन वेदों से सज्वलन कपाय चतुष्क को गुणित करने पर १२ भग प्राप्त होते है। अनन्तर वेद का विच्छेद हो जाने पर एक प्रकृतिक उदयस्थान होता है, जो चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक वध के समय होता है। अर्थात् सवेद भाग तक दो प्रकृतिक और अवेद भाग मे एक प्रकृतिक उदयस्थान समझना चाहिये। यद्यपि एक प्रकृतिक उदय मे चार प्रकृतिक वध की अपेक्षा चार, तीन प्रकृतिक वध की अपेक्षा तीन, दो प्रकृतिक वध की अपेक्षा दो, और एक प्रकृतिक वध की अपेक्षा एक, इस प्रकार कुल दस भग वतलाये है किन्तु यहाँ वधस्थानो के भेद की अपेक्षा न करके सामान्य से कुल चार भग विवक्षित है।

दसवे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे एक सूक्ष्म लोभ का उदय होने से वहाँ एक ही भग होता है—'एग सुहुमसरागो वेएइ'। इस प्रकार एक प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल पाँच भंग जानना चाहिये।

दसवे गुणस्थान के वाद आगे के उपशान्तमोह आदि गुणस्थानो मे मोहनीयकर्म का उदय न होने से उन गुणस्थानो मे उदय की अपेक्षा एक भी भग नही होता है।

इस प्रकार यहाँ गाथाओ के निर्देशानुसार गुणस्थानो मे मोहनीय कर्म के उदयस्थानो और उनके भंगो का कथन किया गया है और गाथा के अत मे जो भगो का प्रमाण पूर्वोद्दिष्ट क्रम से जानने का

सकेत दिया है सो उसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार पहले सामान्य से मोहनीयकर्म के उदयस्थानो का कथन करते समय भग बतला आये है, उसी प्रकार यहाँ भी उनका प्रमाण समझ लेना चाहिये। स्पष्टता के लिये पुन यहाँ भी उदयस्थानो का निर्देश करते समय भगो का सकेत दिया है। लेकिन इस निर्देश मे पूर्वोल्लेख से किसी प्रकार का अतर नही समझना चाहिये।

अब मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानो की अपेक्षा दस से लेकर एक पर्यन्त उदयस्थानो के भगो की सख्या बतलाते हैं—

एक्क छडेक्कारेक्कारसेव एक्कारसेव नव तिन्नि।
एए चउवीसगया बार दुगे पच एक्कम्मि ॥४६॥

शब्दार्थ—एक्क—एक, छडेक्कार—छह ग्यारह इक्कार सेव—ग्यारह, नव—नौ, तिन्नि—तीन एए—यह चउवीसगया—चौबीसी भग, बार—बारह भग, दुगे—दो के उदय मे, पच—पाच एक्कम्मि—एक के उदय मे।

गाथार्थ—दो और एक उदयस्थानो को छोडकर दस आदि उदयस्थानो मे अनुक्रम से एक, छह, ग्यारह, ग्यारह नौ और तीन चौबीसी भग होते हैं तथा दो के उदय मे बारह और एक के उदय मे पाच भग होते हैं।

विशेषार्थ—मोहनीयकर्म के नौ उदयस्थानो को पहले बतलाया जा चुका है। इस गाथा मे प्रकृति सख्या के उदयस्थान का उल्लेख न करके उस स्थान के भगो की सख्या को बतलाया है। वह अनुक्रम से इस प्रकार समझना चाहिये कि दस प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की एक चौबीसी, नौ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की छह चौबीसी, आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे ग्यारह चौबीसी, सात प्रकृतिक उदयस्थान मे ग्यारह चौबीसी, छह प्रकृतिक उदयस्थान मे ग्यारह

चौवीसी, पाँच प्रकृतिक उदयस्थान मे नौ चौवीसी, चार प्रकृतिक उदयस्थान मे तीन चौवीसी होती है तथा दो प्रकृतिक उदयस्थान के वारह भंग एव एक प्रकृतिक उदम्थान के पांच भग है। इनका विशेप विवेचन नीचे किया जाता है।

दस प्रकृतिक उदयस्थान एक है अत: उसमे भंगों की एक चौवीसी कही है। यह उदयस्थान मिथ्यात्व गुणस्थान मे पाया जाता है। नौ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की छह चौवीसी होती है क्योकि यह उदयस्थान मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र और अविरत सम्यग्दृष्टि इन चार गुणस्थानो मे पाया जाता है और मिथ्यात्व गुणस्थान में प्रकृति-विकल्प तीन होने से तीन प्रकार से होता है, अत: वहाँ भगो की तीन चौवीसी और शेप तीन गुणस्थानो मे प्रकृतिविकल्प न होने से प्रत्येक मे भगों की एक चौवीसी होती है। आठ प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की ग्यारह चौवीसी होती है। यह आठ प्रकृतिक उदयस्थान पहले से लेकर पाँचवे गुणस्थान तक होता है और मिथ्यात्व व अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थानो में प्रकृतियो के तीन-तीन विकल्पो से तथा सासादन व मिश्र मे दो-दो विकल्पो से वनता है और देशविरत गुणस्थान मे प्रकृतियो का विकल्प नही है। अत. मिथ्यात्व और अविरत मे तीन-तीन, सासादन और मिश्र मे दो-दो और देशविरत मे एक, भगो की चौवीसी होती है। इनका कुल जोड़ ३+३+२+२+१=११ होता है। इसी प्रकार सात प्रकृतिक उदयस्थान मे भी भगो की ग्यारह चौवीसी है। यह उदयस्थान पहले से सातवे गुणस्थान तक पाया जाता है तथा चौथे और पाचवे गुणस्थान मे प्रकृतियो के तीन-तीन विकल्प होने से तीन प्रकार से वनता है। अतः इन दो गुणस्थानो मे से प्रत्येक मे तीन-तीन और शेप पहले, दूसरे, तीसरे, छठे और सातवे, इन पाच गुणस्थानो मे प्रकृतिविकल्प नही होने से भगो की एक-एक चौवीसी होती है जिनका कुल जोड़ ग्यारह है।

छह प्रकृतिक उदयस्थान मे भी भगो की ग्यारह चौबीसी इस प्रकार हैं—अविरत सम्यग्दृष्टि और अपूर्वकरण मे एक एक तथा देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत मे तीन-तीन। इनका जोड कुल ग्यारह होता है। पाच प्रकृतिक उदयस्थान मे भगो की नौ चौबीसी हैं। उनमे से देशविरत मे एक, प्रमत्त और अप्रमत्त विरत गुणस्थानो मे से प्रत्येक मे तीन-तीन और अपूर्वकरण मे दो चौबीसी होती हैं। चार प्रकृतिक उदयस्थान मे प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत और अपूर्वकरण गुणस्थान मे भगो की एक एक चौबीसी होने से कुल तीन चौबीसी होती हैं। इन सब उदयस्थानो की कुल मिलाकर ५२ चौबीसी होती हैं तथा दो प्रकृतिक उदयस्थान के बारह और एक प्रकृतिक उदयस्थान के पाच भग हैं—'बार दुगे पच एक्कम्मि' जिनका स्पष्टीकरण पूर्व गाथा के सदर्भ मे किया जा चुका है।

इस प्रकार दस से लेकर एक प्रकृतिक उदयस्थानो मे कुल मिलाकर ५२ चौबीसी और १७ भग प्राप्त होते हैं। जिनका गुणस्थानो की अपेक्षा अन्तर्भाष्य गाथा मे निम्न प्रकार से विवेचन किया गया है—

अट्ठग चउ चउ चउरट्ठगा य चउरो य होंति चउवीसा।
मिच्छाइ अपुव्वता बारस पणग च अनियट्टे॥

अर्थात् मिथ्यादृष्टि से लेकर अपूर्वकरण तक आठ गुणस्थानो मे भगो की क्रम से आठ, चार, चार, आठ आठ, आठ, आठ, और चार चौबीसी होती हैं तथा अनिवृत्तिबादर गुणस्थान म बारह और पाँच भग होते हैं।

इस प्रकार भगो के प्राप्त होने पर कुल मिलाकर १२६५ उदय विकल्प होते हैं वे इस प्रकार समझना चाहिये कि ५२ चौबीसियो की कुल सख्या १२४८ (५२×२४=१२४८) और इसमे अनिवृत्तिबादर गुणस्थान के १७ भगो को मिला देने पर १२४८+१७=१२६५ सख्या होती है तथा १० से लेकर ४ प्रकृतिक उदयस्थानों तक के सब पद ३५२ होते हैं अत इन्हें २४ से गुणित करने देने पर ८४४८ प्राप्त होते

है जो पदवृन्द कहलाते हैं। अनन्तर उनमे दो प्रकृतिक उदयस्थान के २×१२=२४ और एक प्रकृतिक उदयस्थान के ५ भंग इस प्रकार २९ भगों को और मिला देने पर पदवृन्दो की कुल संख्या ८४७७ प्राप्त होती है। जिससे सब ससारी जीव मोहित हो रहे हैं कहा भी है—

बारसपणसट्ठसया उदयविगप्पेहि मोहिया जीवा।
चुलसीईसत्तत्तरिपयविंदसएहि विन्नेया॥

अर्थात् ये ससारी जीव १२६५ उदयविकल्पो और ८४७७ पदवृन्दो से मोहित हो रहे है।

गुणस्थानो की अपेक्षा उदयविकल्पो और पदवृन्दो का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

क्रम स०	गुणस्थान	उदयस्थान	भग	गुण्य (पद)	गुणकार	गुणनफल (पदवृन्द)
१	मिथ्यात्व	७,८,९,१०	८ चौबीसी	६८[1]	२४	१६३२
२	सासादन	७,८,९,१०	४ चौबीसी	३२	२४	७६८
३	मिश्र	७,८,९	४ चौबीसी	३२	२४	७६८
४	अविरत	६,७,८,९	८ चौबीसी	६०	२४	१४४०
५	देशविरत	५,६,७,८	८ चौबीसी	५२	२४	१२४८
६	प्रमत्तविरत	४,५,६,७	८ चौबीसी	४४	२४	१०५६
७	अप्रमत्तवि०	४,५,६,७	८ चौबीसी	४४	२४	१०५६
८	अपूर्वकरण	४,५,६,७	४ चौबीसी	२०	२४	४८०
९	अनिवृत्ति०	२,१	१६ भग	२।१	१२।१	२४।४
१०	सूक्ष्म०	१	१	१	१	१

१ मिथ्यात्व आदि गुणस्थानो मे ६८ आदि पद (गुण्य) होने का स्पष्टीकरण आगे की गाथाओ मे किया जा रहा है।

इस प्रकार गुणस्थानो की अपेक्षा मोहनीयकर्म के उदयस्थानो व उनके भङ्गो का कथन करने के बाद अब आगे की गाथा मे उपयोग आदि की अपेक्षा भङ्गो का निर्देश करते हैं—

योग, उपयोग और लेश्याओ मे भग

जोगोवओगलेसाइएहिं गुणिया हवंति कायव्वा।
जे जत्थ गुणट्ठाणे हवंति ते तत्थ गुणकारा[1] ॥४७॥

शब्दार्थ—जोगोवओगलेसाइएहिं—योग, उपयोग और लेश्या दिक से गुणिया—गुणा, हवंति—होते है कायव्वा—करना चाहिये, जे—जो योगादि, जत्थ गुणट्ठाणे—जिस गुणस्थान मे, हवंति—होते हैं ते—उतने, तत्थ—उसमे गुणकारा—गुणकार संख्या।

गाथार्थ—पूर्वोक्त उदयभङ्गो को, योग, उपयोग और लेश्या आदि से गुणा करना चाहिये। इसके लिये जिस गुणस्थान मे जितने योगादि हो वहाँ उतने गुणकार संख्या होती है।

विशेषार्थ—गुणस्थान मे मोहनीयकर्म के उदयविकल्पो और पद-वृन्दो का निर्देश पूर्व मे किया जा चुका है। अब इस गाथा मे योग, उपयोग और लेश्याओ की अपेक्षा उनकी संख्या का कथन करते हैं कि वह संख्या कितनी कितनी होती है।

---

१ तुलना कीजिये—

(क) एवं जोगुवओगा लेसाई भेयओ बहूभेया।
जा जस्स जंमि उ गुणे संखा सा तंमि गुणगारो ॥

—पंचसंग्रह सप्ततिका गा० ११७

(ख) उदयट्ठाणं पयडिं सगसगउवजोगजोगआदीहिं।
गुणयित्ता मेलविदे पदसंखा पयडिसंखा य ॥

—गो० कर्मकांड गा० ४६०

गुणस्थानो मे योग आदि की अपेक्षा उदयविकल्पो और पदवृन्दो की सख्या जानने के सम्बन्ध मे सामान्य नियम यह है कि जिस गुणस्थान मे योगादिक की जितनी सख्या है उसमे उस गुणस्थान के उदयविकल्प और पदवृन्दो को गुणित कर देने पर योगादि की अपेक्षा प्रत्येक गुणस्थान मे उदयविकल्प और पदवृन्द की सख्या ज्ञात हो जाती है। अत यह जानना जरूरी है कि किस गुणस्थान मे कितने योग आदि है। परन्तु इनका एक साथ कथन करना अशक्य होने से क्रमश योग, उपयोग और लेश्या की अपेक्षा विचार करते है।

योग की अपेक्षा भगो का विचार इस प्रकार है—मिथ्यात्व गुणस्थान मे १३ योग और भगो की आठ चौवीसी होती है। इनमे से चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक और वैक्रिय काययोग इन दस योगो मे से प्रत्येक मे भगो की आठ-आठ चौवीसी होती है, जिससे १० को ८ से गुणित कर देने पर ८० चौवीसी हुई। किन्तु औदारिक मिश्र काययोग, वैक्रयमिश्र काययोग और कार्मण काययोग इन तीन योगो मे से प्रत्येक मे अनन्तानुवन्धी के उदय सहित वाली चार-चार चौवीसी होती है। इसका कारण यह है कि अनन्तानुवधी चतुष्क की विसंयोजना करने पर जीव मिथ्यात्व गुणस्थान मे जाता है, उसको जब तक अनन्तानुवधी का उदय नही होता तव तक मरण नही होता। अत इन तीन योगो मे अनन्तानुवन्धी के उदय से रहित चार चौवीसी सम्भव नही है। विशेष स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि जिसने अनन्तानुवधी की विसयोजना की है, ऐसा जीव जब मिथ्यात्व को प्राप्त होता है तव उसके अनन्तानुवधी का उदय एक आवली काल के वाद होता है, ऐसे जीव का अनन्तानुवन्धी का उदय होने पर ही मरण होता है, पहले नही। जिससे उक्त तीनों योगो मे अनन्तानुवन्धी के उदय से रहित चार चौवीसी नही पाई जाती है।

इसीलिए इन तीन योगों में भंगों की कुल बारह चौबीसी मानी हैं। इनको पूर्वोक्त ८० चौबीसी में मिला देने पर (८०+१२=९२) कुल ९२ चौबीसी होती हैं और इनके कुल भंग ९२ को २४ से गुणा करने पर २२०८ होते हैं।

दूसरे सासादन गुणस्थान में भी योग १३ होते हैं और प्रत्येक योग की चार चार चौबीसी होने से कुल भंगों की ५२ चौबीसी होनी चाहिए थी किन्तु सासादन गुणस्थान में नपुंसकवेद का उदय नहीं होता है, अतः बारह योगों की तो ४८ चौबीसी हुईं और वैक्रियमिश्र काययोग के ४ षोडशक हुए। इस प्रकार ४८ को २४ से गुणा करने पर ११५२ भंग हुए तथा इस संख्या में चार षोडशक के ६४ भंग मिला देने पर सासादन गुणस्थान में सब भंग १२१६ होते हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिक व वैक्रिय ये दो काययोग कुल दस योग हैं और प्रत्येक योग में भंगों की ४ चौबीसी। अतः १० को चार चौबीसियों से गुणा करने पर २४×४=९६×१०=९६० कुल भंग होते हैं।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में १३ योग और प्रत्येक योग में भंगों की ८ चौबीसी होनी चाहिये थीं। किन्तु ऐसा नियम है कि चौथे गुणस्थान के वैक्रियमिश्र काययोग और कार्मण काययोग में स्त्रीवेद नहीं होता है, क्योंकि अविरत सम्यग्दृष्टि जीव मरकर स्त्री वेदियों में उत्पन्न नहीं होता है। इसलिए इन दो योगों में भंगों की ८ चौबीसी प्राप्त न होकर ८ षोडशक प्राप्त होते हैं। इसके कारण को स्पष्ट करते हुए आचार्य मलयगिरि ने कहा है कि—स्त्रीवेदी सम्यग्दृष्टि जीव वैक्रियमिश्र काययोगी और कार्मण काययोगी नहीं होता है। यह कथन बहुलता की अपेक्षा से किया गया है, वैसे कदाचित इनमें भी

गुणस्थानो मे योग आदि की अपेक्षा उदयविकल्पो और पदवृन्दो की सख्या जानने के सम्बन्ध मे सामान्य नियम यह है कि जिस गुणस्थान मे योगादिक की जितनी सख्या है उसमे उस गुणस्थान के उदयविकल्प और पदवृन्दो को गुणित कर देने पर योगादि की अपेक्षा प्रत्येक गुणस्थान में उदयविकल्प और पदवृन्द की संख्या ज्ञात हो जाती है। अत यह जानना जरूरी है कि किस गुणस्थान मे कितने योग आदि है। परन्तु इनका एक साथ कथन करना अशक्य होने से क्रमश योग, उपयोग और लेश्या की अपेक्षा विचार करते है।

योग की अपेक्षा भंगो का विचार इस प्रकार है—मिथ्यात्व गुण-स्थान मे १३ योग और भगो की आठ चौवीसी होती है। इनमे से चार मनोयोग, चार वचनयोग, औदारिक और वैक्रिय काययोग इन दस योगो मे से प्रत्येक मे भगो की आठ-आठ चौवीसी होती है, जिससे १० को ८ से गुणित कर देने पर ८० चौवीसी हुई। किन्तु औदारिक मिश्र काययोग, वैक्रयमिश्र काययोग और कार्मण काय-योग इन तीन योगो मे से प्रत्येक मे अनन्तानुवन्धी के उदय सहित वाली चार-चार चौवीसी होती हैं। इसका कारण यह है कि अनन्तानु-वंधी चतुष्क की विसयोजना करने पर जीव मिथ्यात्व गुणस्थान मे जाता है, उसको जब तक अनन्तानुवधी का उदय नही होता तब तक मरण नही होता। अत इन तीन योगों मे अनन्तानुवन्धी के उदय से रहित चार चौवीसी सम्भव नही हैं। विशेप स्पष्टीकरण इस प्रकार है कि जिसने अनन्तानुवधी की विसयोजना की है, ऐसा जीव जब मिथ्यात्व को प्राप्त होता है तव उसके अनन्तानुवधी का उदय एक आवली काल के बाद होता है, ऐसे जीव का अनन्तानुवन्धी का उदय होने पर ही मरण होता है, पहले नही। जिससे उक्त तीनो योगों मे अनन्तानुवन्धी के उदय से रहित चार चौवीसी नही पाई जाती है।

इसीलिए इन तीन योगों में भंगों की कुल बारह चौबीसी मानी है। इनको पूर्वोक्त ८० चौबीसी में मिला देने पर (८०+१२=९२) कुल ९२ चौबीसी होती हैं और इनके कुल भंग ९२ को २४ में गुणा करने पर २२०८ होते हैं।

दूसरे सासादन गुणस्थान में भी योग १३ होते हैं और प्रत्येक योग की चार चार चौबीसी होने से कुल भंगों की ५२ चौबीसी होनी चाहिए थी किन्तु सासादन गुणस्थान में नपुंसकवेद का उदय नहीं होता है अतः बारह योगों की तो ४८ चौबीसी हुई और वैक्रियमिश्र काययोग के ४ षोडशक हुए। इस प्रकार ४८ को २४ से गुणा करने पर ११५२ भंग हुए तथा इस संख्या में चार षोडकश के ६४ भंग मिला देने पर सासादन गुणस्थान में सब भंग १२१६ होते हैं।

सम्यगमिथ्यादृष्टि गुणस्थान में चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिक व वैक्रिय ये दो काययोग कुल दस योग हैं और प्रत्येक योग में भंगों की ४ चौबीसी। अतः १० को चार चौबीसियों से गुणा करने पर २४×४=९६×१०=९६० कुल भंग होते हैं।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में १३ योग और प्रत्येक योग में भंगों की ८ चौबीसी होनी चाहिये थी। किन्तु ऐसा नियम है कि चौथे गुणस्थान में वैक्रियमिश्र काययोग और कार्मण काययोग में स्त्रीवेद नहीं होता है क्योंकि अविरत सम्यग्दृष्टि जीव मरकर स्त्री वेदियों में उत्पन्न नहीं होता है। इसलिए इन दो योगों में भंगों की ८ चौबीसी प्राप्त न होकर ८ षोडशक प्राप्त होते हैं। इसके कारण को स्पष्ट करते हुए आचार्य मलयगिरि ने कहा है कि—स्त्रीवेदी सम्यग्दृष्टि जीव वैक्रियमिश्र काययोगी और कार्मण काययोगी नहीं होता है। यह कथन बहुलता की अपेक्षा से किया गया है, वैसे कदाचित उनमें भी

स्त्रीवेद के साथ सम्यग्दृष्टियो का उत्पाद देखा जाता है।[1] इसी बात को चूर्णि मे भी स्पष्ट किया है—

कयाइ होज्ज इत्थिवेयगेसु वि ।

अर्थात्—कदाचित् सम्यग्दृष्टि जीव स्त्रीवेदियों में भी उत्पन्न होता है। तथा चौथे गुणस्थान के औदारिकमिश्र काययोग मे स्त्रीवेद और नपुसकवेद नही होता है। क्योकि स्त्रीवेदी और नपुंसकवेदी तिर्यच और मनुष्यो मे अविरत सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नही होते हैं, अत औदारिक मिश्र काययोग मे भगो की ८ चौवीसी प्राप्त न होकर आठ अष्टक प्राप्त होते हैं। स्त्रीवेदी और नपुसकवेदी सम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्र काययोगी नही होता है। यह वहुलता की अपेक्षा से समझना चाहिए।[2] इस प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे दस योगो की ८० चौवीसी, वैक्रियमिश्र काययोग और कार्मण काययोग, इन दोनो मे प्रत्येक के आठ-आठ षोडशक और औदारिकमिश्र काययोग के आठ अष्टक होते हैं। जिनके भग ८०×२४=१९२० तथा १६×८=१२८ पुन: १६×८=१२८ और ८×८=६४ होते हैं, इनका कुल जोड़

---

१ (क) ये चाविरतसम्यग्दृष्टेर्वैक्रियमिश्रे कार्मणकाययोगे च प्रत्येकमष्टावष्टौ उदयस्थानविकल्पा एषु स्त्रीवेदो न लभ्यते, वैक्रियकाययोगिषु स्त्रीवेदिषु मध्येऽविरतसम्यग्दृष्टेरुत्पादाभावत्। एतच्च प्रायोवृत्तिमाश्रित्योक्तम्, अन्यथा कदाचित् स्त्रीवेदिष्वपि मध्ये तदुत्पादो भवति। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २१७

(ख) दिगम्बर परम्परा मे यही एक मत मिलता है कि स्त्रीवेदियो मे सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न नही होता है।

२ अविरतसम्यग्दृष्टेरौदारिकमिश्रकाययोगे येऽष्टावुदयस्थानविकल्पास्ते पुवेदसहिता एव प्राप्यन्ते, न स्त्रीवेद-नपुंसकवेदसहिता· तिर्यग्-मनुष्येषु स्त्रीवेदनपुंसकवेदिषु मध्येऽविरतसम्यग्दृष्टेरुत्पादाभावत्, एतच्च प्राचुर्यमाश्रित्योक्तम्। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २१७

१९२०+१२८+१२८+६४=२२४० है। योग की अपेक्षा ये २२४० भग चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे प्राप्त होते हैं।

पाचवें देशविरति गुणस्थान मे औदारिकमिश्र, कामण काययोग और आहारकद्विक के विना ११ योग होते हैं। यहा प्रत्येक योग मे भगो की ८ चौबीसी सभव हैं अत यहा कुल भग (११×८=८८×२४=२११२) २११२ होते हैं।

छठे प्रमत्तसयत गुणस्थान मे औदारिकमिश्र और कामण काययोग के विना १३ योग और प्रत्येक योग मे भगो की ८ चौबीसी होनी चाहिए। किन्तु ऐसा नियम है कि स्त्रीवेद मे आहारक काययोग और आहारकमिश्र काययोग नही होता है। क्योकि आहारक समुद्घात चौदह पूर्वधारी ही करते हैं। किन्तु स्त्रियो के चौदह पूर्वों का ज्ञान नही पाया जाता है। इसके कारण को स्पष्ट करते हुए बताया भी है कि—

> तुच्छा गारवबहुला चलिंदिया दुब्बला य धीईए।
> इय अइसेसज्झयणा भूयावाओ य नो थीण ॥[1]

अर्थात स्त्रीवेदी जीव तुच्छ, गारवबहुल, चचल इन्द्रिय और बुद्धि से दुर्बल होते है। अत वे बहुत अध्ययन करने मे समर्थ नही हैं और उनमे दृष्टिवाद अग का भी ज्ञान नही पाया जाता है।

इसलिये ग्यारह योगो मे तो भगो की आठ-आठ चौबीसी प्राप्त होती हैं किन्तु आहारक और आहारकमिश्र काययोगो मे भगो के आठ-आठ षोडशक प्राप्त होते हैं। इस प्रकार यहाँ ११×८=८८×२४=२११२ तथा १६×८=१२८ और १६×८=१२८ भग है। इन सबका जोड २११२+१२८+१२८=२३६८ होता है। अत प्रमत्तसयत गुणस्थान मे कुल भग २३६८ होते है।

---

१ बृहत्कल्पभाष्य गा० १४६

जो जीव प्रमत्तसयत गुणस्थान मे वैक्रिय काययोग और आहारक काययोग को प्राप्त करके अप्रमत्तसयत हो जाता है, उसके अप्रमत्त-सयत अवस्था मे रहते हुए ये दो योग होते है। वैसे अप्रमत्तसंयत जीव वैक्रिय और आहारक समुद्घात का प्रारम्भ नही करता है, अत इस गुणस्थान मे वैक्रियमिश्र काययोग और आहारकमिश्र काययोग नही माना है। इसी कारण सातवे अप्रमत्तसयत गुणस्थान मे चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिक, वैक्रिय व आहारक काययोग, ये ग्यारह योग होते है। इन योगो मे भगो की आठ-आठ चौवीसी होनी चाहिये थी। किन्तु आहारक काययोग मे स्त्रीवेद नही होने से दस योगो मे तो भगो की आठ चौवीसी और आहारक काययोग मे आठ षोडशक प्राप्त होते है। इन सब भगों का जोड २०४८ होता है जो अप्रमत्तसयत गुणस्थान मे योगापेक्षा होते हैं।

आठवे अपूर्वकरण गुणस्थान मे नौ योग और प्रत्येक योग में भगो की चार चौवीसी होती है। अत यहाँ कुल भग ८६४ होते है। नौवें अनिवृत्तिबादर गुणस्थान मे योग ९ और भग १६ होते है अत १६ को ९ से गुणित करने पर यहा कुल भग १४४ प्राप्त होते है तथा दसवे सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे योग ९ और भग १ है। अत· यहां कुल ९ भग प्राप्त होते है।

उपर्युक्त दसो गुणस्थानो के कुल भगो को जोडने पर २२०८+१२१६+९६०+२२४०+२११२+२३६८+२०४८+८६४+१४४+९ =१४१६९ प्रमाण होता है। कहा भी है—

चउदस य सहस्साइं सय च गुणहत्तरं उदयमाणं।[1]

अर्थात् योगो की अपेक्षा मोहनीयकर्म के कुल उदयविकल्पों का प्रमाण १४१६९ होता है।

---

१ पचसग्रह सप्ततिका गा० १२०

योगों की अपेक्षा गुणस्थानों में उदयविकल्पों का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

गुणस्थान	योग		गुणकार	जोड	
मिथ्यात्व	१३	१०	८×२४=१९२	१९२×१०=१९२०	२२०८
		३	४×२४=९६	९६×३=२२८	
सासादन	१३	१२	४×२४=९६	९६×१२=११५२	१२१६
		१	४×१६=६४	६४×१=६४	
मिश्र	१०	१०	४×२४=९६	९६×१०=९६०	९६०
अविरत	१३	१०	८×२४=१९२	१९२×१०=१९२०	२२४०
		२	८×१६=१२८	१२८×२=२५६	
		१	८×८=६४	६४×१=६४	
देशविरत	११	११	८×२४=१९२	१९२×११=२११२	२११२
प्रमत्तसंयत	१३	११	८×२४=१९२	१९२×११=२११२	२३६८
		२	८×१६=१२८	१२८×२=२५६	
अप्रमत्तस०	११	१०	८×२४=१९२	१९२×१०=१९२०	२०४८
		१	८×१६=१२८	१२८×१=१२८	
अपूर्व०	९	९	४×२४=९६	९६×९=८६४	८६४
अनिवृत्ति०	९	९	१६	१६×९=१४४	१४४
सूक्ष्म०	९	९	१	९×१=९	९
				कुल जोड	१४१६९

योगो की अपेक्षा गुणस्थानों मे उदयविकल्पो का विचार करने के अनन्तर अब क्रम प्राप्त पदवृन्दो का विचार करने के लिये अन्तर्भाष्य गाथा उद्धृत करते हैं—

अट्ठट्ठी बत्तीस बत्तीसं सट्ठिमेव बावन्ना।
चोयालं चोयालं वीसा वि य मिच्छमाईसु॥

अर्थात्—मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानो मे क्रम से ६८, ३२, ३२, ६०, ५२, ४४, ४४ और २० उदयपद होते है।

यहाँ उदयपद से उदयस्थानो की प्रकृतिया ली गई है। जैसे कि मिथ्यात्व गुणस्थान मे १०, ९, ८ और ७ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान हैं और इनमे से १० प्रकृतिक उदयस्थान एक है अत: उसकी दस प्रकृतियाँ हुई। ९ प्रकृतिक उदयस्थान तीन प्रकृतियो के विकल्प से बनने के कारण तीन हैं अत: उसकी २७ प्रकृतियां हुई। आठ प्रकृतिक उदयस्थान भी तीन प्रकृतियो के विकल्प से बनता है अत. उसकी २४ प्रकृतिया हुई और सात प्रकृतिक उदयस्थान एक है अत: उसकी ७ प्रकृतियाँ हुई। इस प्रकार मिथ्यात्व मे चारो उदयस्थानो की १० + २७ + २४ + ७ = ६८ प्रकृतिया होती है। सासादन आदि गुणस्थानो में जो ३२ आदि उदयपद बतलाये है, उनको भी इसी प्रकार समझना चाहिये।

अब यदि इन आठ गुणस्थानो के सब उदयपद (६८ से लेकर २० तक) जोड दिये जाये तो इनका कुल प्रमाण ३५२ होता है। किन्तु इनमे से प्रत्येक उदयपद मे चौबीस-चौबीस भङ्ग होते हैं, अत: ३५२ को २४ से गुणित करने पर ८४४८ प्राप्त होते हैं। ये पदवृन्द अपूर्वकरण गुणस्थान तक के जानना चाहिये। इनमे अनिवृत्तिकरण के २८ और सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान का १, कुल २९ भङ्ग मिला देने पर ८४४८ + २९ = ८४७७ प्राप्त होते हैं। ये मिथ्यात्व गुणस्थान से लेकर सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक के सामान्य से पदवृन्द हुए।

अब यदि योगो की अपेक्षा दसो गुणस्थानो के पदवृन्द लाना चाहें तो दो बातो पर ध्यान देना होगा—१ किस गुणस्थान मे पदवृन्द और योगो की सख्या कितनी है और २ उन योगो मे से किस योग मे कितने पदवृन्द सम्भव है। इन्ही दो बातो को ध्यान मे रखकर अब योगापेक्षा गुणस्थानो के पदवृन्द बतलाते है।

यह पूर्व मे स्पष्ट किया जा चुका है कि मिथ्यात्व गुणस्थान मे ४ उदयस्थान और उनके कुल पद ६८ है। इनमे से एक सात प्रकृतिक उदयस्थान, दो आठ प्रकृतिक उदयस्थान और एक नौ प्रकृतिक उदयस्थान अनतानुबधी के उदय से रहित है जिनके कुल उदयपद ३२ होते हैं और एक आठ प्रकृतिक उदयस्थान दो नौ प्रकृतिक उदयस्थान और एक दस प्रकृतिक उदयस्थान, ये चार उदयस्थान अनन्तानुबधी के उदय सहित है जिनके कुल उदयपद ३६ होते हैं। इनमे से पहले के ३२ उदयपद, ४ मनोयोग, ४ वचनयोग औदारिक काययोग और वक्रिय काययोग, इन दस योगो के साथ पाये जाते हैं। क्योकि यहाँ अन्य योग सभव नही है, अत इन ३२ को १० से गुणित करने पर ३२० होते हैं और ३६ उदयपद पूर्वोक्त दस तथा औदारिक-मिश्र, वैक्रियमिश्र और कार्मणयोग इन १३ योगो के साथ पाये जाते हैं। क्योकि ये पद पर्याप्त और अपर्याप्त दोनो अवस्थाओ मे सभव हैं, अत ३६ को १३ से गुणित करने पर ४६८ प्राप्त होते हैं।

मिथ्यात्व गुणस्थान के कुल पदवृन्द प्राप्त करने की रीति यह है कि ३२० और ४६८ को जोडकर उनको २४ से गुणित करदें तो मिथ्यात्व गुणस्थान मे कुल पदवृन्द आ जाते हैं, जो ३२०+४६८= ७८८×२४=१८६१२ होते हैं।

सासादन गुणस्थान मे योग १३ और उदयपद ३२ हैं। सो १२ योगो मे तो ये सब उदयपद सभव हैं किन्तु सासादन सम्यग्दृष्टि को वैक्रियमिश्र मे नपुसकवेद का उदय नही होता है, अत यहाँ नपुसकवेद

के भङ्ग कम कर देना चाहिये। इसका तात्पर्य यह हुआ कि १२ योगो की अपेक्षा १२ से ३२ को गुणित करके २४ से गुणित करे और वैक्रियमिश्र की अपेक्षा ३२ को १६ से गुणित करे। इस प्रकार १२×३२=३८४×२४=९२१६ तथा वैक्रियमिश्र के ३२×१६=५१२ हुए और इन ९२१६ और ५१२ का कुल जोड ९७२८ होता है। यही ९७२८ पदवृन्द सासादन गुणस्थान मे होते हैं।

मिश्र गुणस्थान मे दस योग और उदयपद ३२ हैं। यहाँ सब योगो मे सब उदयपद और उनके कुल भङ्ग सभव है, अत. १० को ३२ से गुणित करके २४ से गुणित करने पर (३२×१०=३२०×२४=७६८०) ७६८० पदवृन्द प्राप्त होते है।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे योग १३ और उदयपद ६० होते हैं। सो यहाँ १० योगो मे तो सब उदयपद और उनके कुल भङ्ग सभव होने से १० से ६० को गुणित करके २४ से गुणित कर देने पर १० योगो सबधी कुल भङ्ग १४४०० प्राप्त होते है। किन्तु वैक्रियमिश्र काययोग और कार्मण काययोग मे स्त्रीवेद का उदय नही होने से स्त्रीवेद सबधी भङ्ग प्राप्त नही होते है, इसलिये यहां २ को ६० से गुणित करके १६ से गुणित करने पर उक्त दोनो योगो सम्बन्धी कुल भङ्ग १९२० प्राप्त होते है तथा औदारिकमिश्र काययोग मे स्त्रीवेद और नपुसकवेद का उदय नही होने से दो योगो सबधी भङ्ग प्राप्त नही होते है। अत यहाँ ६० को ८ से गुणित करने पर औदारिकमिश्र काययोग की अपेक्षा ४८० भङ्ग प्राप्त होते है। इस प्रकार चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे १३ योग सबधी कुल पदवृन्द १४४००+१९२०+४८०=१६८०० होते है।

देशविरत गुणस्थान मे योग ११ और पद ५२ हैं और यहाँ सब योगो मे सब उदयपद और उनके भङ्ग सम्भव है अत. यहाँ ११ से ५२ को गुणित करके २४ से गुणित करने पर कुल भङ्ग १३७२८ होते है।

प्रमत्तसंयत गुणस्थान में योग १३ और पद ४४ हैं किन्तु आहारक द्विक में स्त्रीवेद का उदय नहीं होता है, इसलिये ११ योगों की अपेक्षा तो ११ को ४४ से गुणित करके २४ से गुणित करने से ११×४४=४८४×२४=११६१६ हुए और आहारकद्विक की अपेक्षा २ से ४४ को गुणित करके १६ से गुणित करें तो २×४४=८८×१६=१४०८ हुए। तब ११६१६+१४०८ को जोड़ने पर कुल १३०२४ पदवृन्द प्रमत्तसंयत गुणस्थान में प्राप्त होते हैं।

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में भी योग ११ और पद ४४ हैं, किन्तु आहारक काययोग में स्त्रीवेद का उदय नहीं होता है। इसलिये १० योगों की अपेक्षा १० में ४४ को गुणित करके २४ से गुणित करें और आहारक काययोग की अपेक्षा ४४ से १६ को गुणित करें। इस प्रकार करने पर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान में कुल पदवृन्द ११२६४ होते हैं।

अपूर्वकरण में योग ६ और पद २० होते हैं। अतः २० को ६ से गुणित करके २४ से गुणित करने पर यहाँ कुल पदवृन्द ४३२० प्राप्त होते हैं।

अनिवृत्तिबादर गुणस्थान में योग ६ और भङ्ग २८ हैं। यहाँ योग पद नहीं है अतः पद न कहकर भङ्ग कहे हैं। सो इन ६ को २८ से गुणित कर देने पर अनिवृत्तिबादर में २५२ पदवृन्द होते हैं तथा सूक्ष्मसंपराय में योग ६ और भङ्ग १ है, अतः ६ से १ को गुणित करने पर ६ भङ्ग होते हैं।

इस प्रकार पहले से लेकर दसवें गुणस्थान तक के पदवृन्दों को जोड़ देने पर सब पदवृन्दों की कुल संख्या ६५७१७ होती है। कहा भी है—

सत्तरसा सत्त सया पणनउइसहस्स पयसला।[1]

अर्थात योगों की अपेक्षा मोहनीयकर्म के सब पदवृन्द पचानवै हजार सातसौ सत्रह ६५७१७ होते हैं।[2]

---

1 पंचसंग्रह सप्ततिका गा० १२०

2 गो० कर्मकांड गा० ४६८ और ५०० में योगों की अपेक्षा उदयस्थान १२६५३ और पदवृन्द ८८६४५ बतलाये हैं।

उक्त पदवृन्दो का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

गुणस्थान	योग	उदयपद	गुणकार	गुणनफल (पदवृन्द)	
मिथ्यात्व	१३	३६	२४	११२३२	१८६१२
	१०	३२	२४	७६८०	
सासादन	१२	३२	२४	६२१६	६७२८
	१	३२	१६	५१२	
मिश्र	१०	३२	२४	७६८०	७६८०
अविरत सम्यग्दृष्टि	१०	६०	२४	१४४००	१६८००
	२	६०	१६	१६२०	
	१	६०	८	४८०	
देशविरत	११	५२	२४	१३७२८	१३७२८
प्रमत्तसयत	११	४४	२४	११६१६	१३०२४
	२	४४	१६	१४०८	
अप्रमत्तसयत	१०	४४	२४	१०५६०	११२६४
	१	४४	१६	७०४	
अपूर्वकरण	६	२०	२४	४३२०	४३२०
अनिवृत्ति वादर	६	२	१२	२१६	२५२
	६	१	४	३६	
सूक्ष्मसपराय	६	१	१	६	६
					६५७१७ पदवृन्द

इस प्रकार से योगो की अपेक्षा गुणस्थानो म मोहनीयकम के उदयस्थानो, भगो और पदवृन्दो का विचार करने के बाद अब आगे उपयोगो की अपेक्षा उदयस्थानो आदि का विचार करते है।

मिथ्यात्व और सासादन इन दो गुणस्थानो मे मतिअज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभगज्ञान, चक्षुदशन और अचक्षुदशन, ये पाच उपयोग होते हैं। मिश्र मे तीन मिश्र ज्ञान और चक्षु व अचक्षु दशन, इस प्रकार ये पाच उपयोग हैं। अविरत सम्यग्दृष्टि और देशविरत मे आरम्भ के तीन सम्यग्ज्ञान और तीन दशन ये छह उपयोग होते हैं तथा छठे प्रमत्तसयत गुणस्थान से लेकर दसवें सूक्ष्मसपराय गुणस्थान तक पाच गुणस्थानो मे पूर्वोक्त छह तथा मनपर्यायज्ञान सहित सात उपयोग होते हैं तथा प्रत्येक गुणस्थान के उदयस्थान के भगो का कथन पूव मे अन्तर्भाष्य गाथा 'अट्ठग चउ चउ चउरट्ठगा य के सदभ मे किया जा चुका है। अत जिस गुणस्थान मे जितने उपयोग हो, उनसे उस गुणस्थान के उदयस्थानो को गुणित करके अनन्तर भगो से गुणित कर देने पर उपयोगो की अपेक्षा उस गुणस्थान के कुल भग ज्ञात हो जाते हैं। जैसे कि मिथ्यात्व और सासादन मे क्रम से ८ और ४ चौबीसी तथा ५ उपयोग है अत ८+४=१२ को ५ से गुणित कर देने पर ६० हुए। मिश्र मे ४ चौबीसी और ५ उपयोग है अत ४ को ५ से गुणित करने पर २० हुए। अविरत सम्यग्दृष्टि और देशविरत गुणस्थान मे आठ आठ चौबीसी और ६ उपयोग हैं अत ८+८=१६ को ६ से गुणित कर देने पर ९६ हुए। प्रमत्त, अप्रमत्त सयत और अपूवकरण गुणस्थान मे आठ, आठ और चार चौबीसी तथा ७ उपयोग हैं, अत ८+८+४=२० को सात से गुणा कर देने पर १४० हुए तथा इन सबका जोड ६०+२०+९६+१४०=३१६ हुआ। इनमे से प्रत्येक चौबीसी मे २४, २४ भग होते हैं अत इन ३१६ को २४ से गुणित कर देने पर कुल ३१६×२४=७५८४ होते हैं तथा दो प्रकृतिक उदयस्थान

मे ४४, अप्रमत्तसयत मे ४४ और अपूर्वकरण मे २० उदयस्थान पद हैं। इनका कुल जोड़ ४४+४४+२०=१०८ होता है। इन्हे यहाँ सभव ७ उपयोगो से गुणित करने पर ७५६ हुए। इस प्रकार पहले से लेकर आठवे गुणस्थान तक के सब उदयस्थान पदो का जोड़ ६६०+६७२+७५६=२०८८ हुआ। इन्हे भगो की अपेक्षा २४ से गुणित कर देने पर आठ गुणस्थानो के कुल पदवृन्दो का प्रमाण २०८८×२४=५०११२ होता है। अनन्तर दो प्रकृतिक उदयस्थान के पदवृन्द २४ और एक प्रकृतिक उदयस्थान के पदवृन्द ५, इनका जोड २९ हुआ। सो इन २९ को यहाँ सभव ७ उपयोगो से गुणित कर देने पर २०३ पदवृन्द और प्राप्त हुए। जिन्हे पूर्वोक्त ५०११२ पदवृन्दो मे मिला देने पर कुल पदवृन्दो का प्रमाण ५०३१५ होता है कहा भी है—

पन्नासं च सहस्सा तिन्नि सया चेव पन्नारा।[1]

अर्थात्—मोहनीय के पदवृन्दो को यहाँ सभव उपयोगो से गुणित करने पर इनका कुल प्रमाण पचास हजार तीनसौ पन्द्रह ५०३१५ होता है।

उक्त पदवृन्दो की सख्या मिश्र गुणस्थान मे पाच उपयोग मानने की अपेक्षा जानना चाहिये। लेकिन जब मतान्तर मे पाच की बजाय ६ उपयोग स्वीकार किये जाते है तब इन पदवृन्दो मे एक अधिक उपयोग के पदवृन्द १×३२×२४=७६८ भग और बढ जाते हैं और कुल पदवृन्दो की सख्या ५०३१५ की बजाय ५१०८३ हो जाती है।

उपयोगो की अपेक्षा पदवृन्दो का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

---

१ पंचसग्रह सप्ततिका गा० ११८।

गुणस्थान	उपयोग	उदयपद	गुणकार	गुणनफल (पदवृन्द)
मिथ्यात्व	५	६८	२४	८१६०
सासादन	५	३२	२४	३८४०
मिश्र	५	३२	२४	३८४०
अविरत	६	६०	२४	८६४०
देशविरत	६	५२	२४	७४८८
प्रमत्तविरत	७	४४	२४	७३९२
अप्रमत्तविरत	७	४४	२४	७३९२
अपूर्वकरण	७	२०	२४	३३६०
अनिवृत्तिबादर	७	२	१२	१६८
	७	१	४	२८
सूक्ष्मसंपराय	७	१	१	७
				४०३१५ पदवृन्द

इसमें मिश्र गुणस्थान संबंधी अवधिदर्शन के ७६८ भंगों को और मिला दिया जाये तो उस अपेक्षा से कुल पदवृन्द ४१०८३ होते हैं।

इस प्रकार से उपयोगों की अपेक्षा उदयस्थान पदवृन्दों का वर्णन करने के बाद अब लेश्याओं की अपेक्षा उदयस्थान विकल्पों और पदवृन्दों का विचार करते हैं। पहले उदयस्थान विकल्पों को बतलाते हैं।

मिथ्यात्व से लेकर अविरत सम्यग्दृष्टि, इन चार गुणस्थानों तक प्रत्येक स्थान में छहों लेश्यायें होती हैं। देशविरत, प्रमत्तसंयत और

अप्रमत्तसयत, इन तीन गुणस्थानों में तेजोलेश्या आदि तीन शुभ लेश्या है और अपूर्वकरण आदि आगे के गुणस्थानो मे एक शुक्ललेश्या होती है।

मिथ्यात्व आदि गुणस्थानो मे से प्रत्येक मे प्राप्त चौवीसी पहले बतलाई जा चुकी है। इसलिये तदनुसार मिथ्यात्व में ८, सासादन मे ४ और मिश्र में ४ तथा अविरत सम्यग्दृष्टि मे ८ चौवीसी हुई। इनका कुल जोड २४ हुआ। इन्हे ६ से गुणित कर देने पर २४×६=१४४ हुए। देशविरत मे ८, प्रमत्तविरत मे ८ और अप्रमत्तविरत मे ८ चौवीसी है। जिनका कुल जोड २४ हुआ। इन तीन गुणस्थानो मे तीन शुभ लेश्याये होने के कारण २४×३=७२ होते है। अपूर्वकरण गुणस्थान मे ४ चौवीसी है, लेकिन यहाँ सिर्फ एक शुक्ल लेश्या होने से सिर्फ ४ ही प्राप्त होते हैं। उक्त आठ गुणस्थानो की कुल सख्या का जोड १४४+७२+४=२२० हुआ। इन्हे २४ से गुणित कर देने पर आठ गुणस्थानो के कुल उदयस्थान विकल्प २२०×२४=५२८० होते है। अनन्तर इनमे दो प्रकृतिक उदयस्थान के १२ और एक प्रकृतिक उदयस्थान के ५ इस प्रकार १७ भगो को और मिला देने पर कुल उदयस्थान विकल्प ५२८०+१७=५२९७ होते हैं। ये ५२९७ लेश्याओ की अपेक्षा उदयस्थान विकल्प जानना चाहिये।

इन उदयस्थान विकल्पो का विवरण क्रमश इस प्रकार है—

गुणस्थान	लेश्या	गुणकार	गुणनफल (उदयविकल्प)
मिथ्यात्व	६	८×२४	११५२
सासादन	६	४×२४	५७६
मिश्र	६	४×२४	५७६
अविरत	६	८×२४	११५२

देशविरत	३	८×२४	५७६
प्रमत्तसंयत	३	८×२४	५७६
अप्रमत्तसंयत	३	८×२४	५७६
अपूर्वकरण	१	४×२४	९६
अनिवृत्तिकरण	१	१२	१२
	१	४	४
सूक्ष्मसंपराय	१	१	१
			५२९७

अब लेश्याओं की अपेक्षा पदवृन्द बतलाते हैं —

मिथ्यात्व के ६८, सासादन के ३२ मिश्र के ३२ और अविरत सम्यग्दृष्टि के ६० पदों का जोड़ ६८+३२+३२+६०=१९२ हुआ। इन्हें यहाँ संभव ६ लेश्याओं से गुणित कर देने पर ११५२ होते हैं। सो देशविरत के ५२ प्रमत्तविरत के ४४ और अप्रमत्तविरत के ४४ पदों का जोड़ १४० हुआ। इन्हें इन तीन गुणस्थानों में संभव ३ लेश्याओं से गुणित कर देने पर ४२० होते हैं तथा अपूर्वकरण में पद २० हैं किन्तु यहाँ एक ही लेश्या है अतः इसका प्रमाण २० हुआ। इन सबका जोड़ ११५२+४२०+२०=१५९२ हुआ। इस १५९२ को भंगों की अपेक्षा २४ से गुणित कर देने पर आठ गुणस्थानों के कुल पदवृन्द ३८२०८ होते हैं। अनन्तर इनमें दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक पदवृन्द २९ और मिला देने पर कुल पदवृन्द ३८२३७ होते हैं। कहा भी है—

तिगहीणा तेवन्ना सया य उदयाण होंति लेसाणं।
अडतीस सहस्साइं पयाण सय दो य सगतीसा ॥[1]

1 पंचसंग्रह सप्ततिका गा० ११३

अर्थात्—मोहनीयकर्म के उदयस्थान और पदवृन्दो को लेश्याओं से गुणित करने पर उनका कुल प्रमाण क्रम से ५२९७ और ३८२३७[1] होता है।

लेश्याओ की अपेक्षा पदवृन्दो का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

गुणस्थान	लेश्या	उदयपद	गुणकार	गुणनफल (पदवृन्द)
मिथ्यात्व	६	६८	२४	९७९२
सासादन	६	३२	२४	४६०८
मिश्र	६	३२	२४	४६०८
अविरत	६	६०	२४	८६४०
देशविरत	३	५२	२४	३७४४
प्रमत्तसयत	३	४४	२४	३१६८
अप्रमत्तसयत	३	४४	२४	३१६८
अपूर्वकरण	१	२०	२४	४८०
अनिवृत्तिबादर	१	२	१२	२४
	१	१	४	४
सूक्ष्मसपराय	१	१	१	१
				३८२३७ पदवृन्द

1 गो० कर्मकाड गा० ५०४ और ५०५ मे भी लेश्याओ की अपेक्षा उदय-विकल्प ५२९७ और पदवृन्द ३८२३७ बतलाये हैं।

इस प्रकार मोहनीयकर्म के प्रत्येक गुणस्थान सम्बन्धी उदयस्थान विकल्प और पदवृन्दों तथा वहाँ सम्भव योग उपयोग और लेश्याओं से गुणित करने पर उनके प्राप्त प्रमाण को बतलाने के बाद अब सवेध भङ्गों का कथन करने के लिये सत्तास्थानों का विचार करते हैं।

गुणस्थानों में मोहनीयकर्म के सवेध भङ्ग

> तिण्णेगे एगेग तिग मीसे पंच चउसु नियट्टिए[1] तिन्नि ।
> एक्कार बायरम्मी सुहुमे चउ तिन्नि उवसंते ॥४८॥

शब्दार्थ—तिण्ण—तीन सत्तास्थान, एगे—एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में एगे—एक में (सासादन में) एग—एक तिग—तीन मीसे—मिश्र में पंच—पांच चउसु—अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान आदि चार में, नियट्टिए—अपूर्वकरण में तिन्नि—तीन एक्कार—ग्यारह बायरम्मी—अनिवृत्तिबादर में सुहुमे—सूक्ष्मसंपराय में चउ—चार तिन्नि—तीन उवसंते—उपशान्तमोह में।

गाथार्थ—मोहनीयकर्म के मिथ्यात्व गुणस्थान में तीन, सासादन में एक, मिश्र में तीन, अविरत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानों में से प्रत्येक में पांच पांच, अपूर्वकरण में तीन, अनिवृत्तिबादर में ग्यारह, सूक्ष्मसंपराय में चार और उपशान्तमोह में तीन सत्तास्थान होते हैं।

विशेषार्थ—गाथा में मोहनीय कर्म के गुणस्थानों में सत्तास्थान बतलाये हैं। प्रत्येक गुणस्थान में मोहनीयकर्म के सत्तास्थानों के

1 अन्य प्रतियों में 'चउसु तिग चउक्क' का पाठ देखने में आता है। उक्त पाठ समीचीन प्रतीत होता है किन्तु टीकाकार ने 'नियट्टिए तिन्नि' इस पाठ का अनुसरण करके टीका की है अतः हमने भी मूल में 'नियट्टिए तिन्नि' पाठ रखा है।

होने के कारण का विचार पहले किया जा चुका है। अत यहाँ सकेत मात्र करते है कि—'तिण्णेगे'—अर्थात् पहले मिथ्यात्व गुणस्थान मे २८, २७ और २६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान हैं तथा 'एगेगं' दूसरे सासादन गुणस्थान मे सिर्फ एक २८ प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। मिश्र गुणस्थान मे २८, २७ और २४ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान है—'तिग मीसे'। इसके बाद चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर सातवे अप्रमत्तसयत गुणस्थान तक चार गुणस्थानो मे से प्रत्येक मे २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक, ये पाँच-पाँच सत्तास्थान है। आठवे अपूर्वकरण गुणस्थान मे २८, २४ और २१ प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान है। नौवे गुणस्थान—अनिवृत्तिबादर मे २८, २४, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ और १ प्रकृतिक, ये ग्यारह सत्तास्थान हैं—'एक्कार बायरम्मी'। सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे २८, २४, २१ और १ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान है तथा 'तिन्नि उवसते' उपशातमोह गुणस्थान मे २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है।[1]

इस प्रकार से गुणस्थानो मे मोहनीयकर्म के सत्तास्थानो को बतलाने के बाद अब प्रसगानुसार सवेध भङ्गो का विचार करते है—

---

१ तिण्णेगे एगेग दो मिस्से चदुसु पण णियट्टीए।
तिण्णि य थूलेयार सुहुमे चत्तारि तिण्णि उवसते॥
—गो० कर्मकांड गा० ५०९

मोहनीयकर्म के मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे ३, सासादन मे १, मिश्र मे २, अविरत सम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानो मे पांच-पाच, अपूर्वकरण मे ३, अनिवृत्तिबादर मे ११, सूक्ष्मसपराय मे ४ और उपशान्तमोह मे ३ सत्तास्थान है।

विशेष—कर्मग्रन्थ मे मिश्र गुणस्थान के ३ और गो० कर्मकांड मे २ सत्तास्थान बतलाये है।

मिथ्यात्व गुणस्थान मे २२ प्रकृतिक बधस्थान और ७,८,९ और और १० प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते है। इनमे से ७ प्रकृतिक उदयस्थान मे एक २८ प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है किन्तु शेष तीन ८, ९ और १० प्रकृतिक उदयस्थानो मे २८, २७ और २६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान सभव हैं। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे कुल सत्तास्थान १० हुए—१+३×३=१० ।

सासादन गुणस्थान मे २१ प्रकृतिक बधस्थान और ७, ८, ९ प्रकृतिक, ये तीन उदयस्थान रहते हुए प्रत्येक मे २८ प्रकृतिक सत्तास्थान हैं। इस प्रकार यहाँ तीन सत्तास्थान हुए।

मिश्र गुणस्थान मे १७ प्रकृतिक बधस्थान तथा ७, ८ और ९ प्रकृतिक, इन तीन उदयस्थानो के रहते हुए प्रत्येक मे २८, २७ और २४ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। अत यहा कुल ९ सत्तास्थान हुए।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे एक १७ प्रकृतिक बधस्थान तथा ६, ७ ८ और ९ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान होते हैं और इनमे से ६ प्रकृतिक उदयस्थान मे तो २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं तथा ७ और ८ मे से प्रत्येक उदयस्थान मे २८,२४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक, ये पाच-पाच सत्तास्थान हैं। ९ प्रकृतिक उदयस्थान मे २८, २४ २३ और २२ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार यहा कुल १७ सत्तास्थान हुए।

देशविरत गुणस्थान मे १३ प्रकृतिक बधस्थान तथा ५, ६, ७ और ८ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान हैं। इनमे से ५ प्रकृतिक उदयस्थान मे तो २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान तथा ६ और ७ प्रकृतिक उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक, ये पाच पाच सत्तास्थान होते हैं तथा ८ प्रकृतिक उदयस्थान

मे २८, २४ २३ और २२ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान है। इस प्रकार यहाँ कुल १७ सत्तास्थान होते है।

प्रमत्त विरत गुणस्थान मे ६ प्रकृतिक बंधस्थान तथा ४, ५, ६ और ७ प्रकृतिक, ये चार उदयस्थान है। इनमे से ४ प्रकृतिक उदयस्थान मे २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते है। ५ और ६ प्रकृतिक उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक ये पाच-पांच सत्तास्थान है तथा ७ प्रकृतिक उदयस्थान में २८, २४, २३ और २२ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान है। इस प्रकार यहाँ कुल १७ सत्तास्थान होते हैं।

अप्रमत्तसयत गुणस्थान मे पूर्वोक्त प्रमत्तसंयत गुणस्थान की तरह १७ सत्तास्थान जानना चाहिये।

अपूर्वकरण गुणस्थान मे ६ प्रकृतिक बंधस्थान और ४, ५ तथा ६ प्रकृतिक उदयस्थान तथा इन तीन उदयस्थानो मे से प्रत्येक में २८, २४ और २१ प्रकृतिक ये तीन-तीन सत्तास्थान होते है। इस प्रकार यहाँ कुल ६ सत्तास्थान होते हैं।

अनिवृत्तिबादर गुणस्थान मे ५, ४, ३, २ और १ प्रकृतिक, ये पाँच बंधस्थान तथा २ और १ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान है। इनमे से ५ प्रकृतिक बंधस्थान और २ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए २८, २४, २१, १३, १२ और ११ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते हैं। ४ प्रकृतिक बंधस्थान और १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४, २१, ११, ५ और ४ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान है। ३ प्रकृतिक बंधस्थान और १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४, २१, ४ और ३ प्रकृतिक, ये पाच सत्तास्थान है। २ प्रकृतिक बंधस्थान और १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते २८, २४, २१, ३ और २ प्रकृतिक, ये पाच सत्तास्थान होते है और १ प्रकृतिक बंधस्थान व १ प्रकृतिक उदयस्थान के रहते हुए २८, २४,

२१, २ और १ प्रकृतिक, ये पांच सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार यहां कुल २७ सत्तास्थान हुए।

सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में बंध के अभाव में एक प्रकृतिक उदयस्थान तथा २८, २४, २१ और १ प्रकृतिक ये चार सत्तास्थान होते हैं तथा उपशान्तमोह गुणस्थान में बंध और उदय के बिना २८, २४ और २१ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं।

किस बंधस्थान और उदयस्थान के रहते हुए कितने सत्तास्थान होते हैं, इसका विशेष विवेचन ओघ प्ररूपणा के प्रसंग में किया जा चुका है, अतः वहां से जानना चाहिये।

इस प्रकार से अब तक नामकर्म के सिवाय शेष सात कर्मों के बंध आदि स्थानों का गुणस्थानों में निर्देश किया जा चुका है। अब नामकर्म के संवेध भंगों का विचार करते हैं।

गुणस्थानों में नामकर्म के संवेध भंग

छण्णव छक्कं तिग सत्त दुग दुग तिग दुग तिगऽट्ठ चऊ।
दुग छ च्चउ दुग पण चउ चउ दुग चउ पणग एग चऊ ॥४९॥
एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ छउमत्थकेवलिजिणाणं।
एग चऊ एग चऊ अट्ठ चउ दु छक्कमुदयंसा ॥[1]५०॥

---

१ तुलना कीजिये —

[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥

—गो० कर्मकांड गा० ६९३, ६९४

शब्दार्थ—छण्णव छक्कं—छह, नौ और छह, तिग सत्त दुग—तीन, सात और दो, दुग तिग दुगं—दो, तीन और दो, तिगऽट्ठ चऊ—तीन, आठ और चार, दुग छ च्चउ—दो, छह और चार, दुग पण चउ—दो, पाच और चार, चउ दुग चउ—चार, दो और चार, पणग एग चऊ—पाच, एक और चार।

एगेगमट्ठ—एक, एक और आठ, एगेगमट्ठ—एक, एक और आठ, छउमत्थ—छद्मस्थ (उपशान्तमोह, क्षीणमोह) केवलिजिणाणं—केवलि जिन (सयोगि और अयोगि केवली) को अनुक्रम से, एग चऊ—एक और चार, एग चऊ—एक और चार, अट्ठ चउ—आठ और चार, दु छक्क—दो और छह, उदयंसा—उदय और सत्ता स्थान।

गाथार्थ—छह, नौ, छह, तीन, सात और दो, दो, तीन और दो, तीन, आठ और चार, दो, छह और चार, दो, पाच और चार, चार, दो और चार, पाच, एक और चार, तथा

एक, एक और आठ, एक, एक और आठ, इस प्रकार अनुक्रम से बंध, उदय और सत्तास्थान आदि के दस गुणस्थानो मे होते है तथा छद्मस्थ जिन (११ और १२ गुणस्थान) मे तथा केवली जिन (१३, १४, गुणस्थान) मे अनुक्रम से एक, चार और एक, चार तथा आठ और चार, दो और छह उदय व सत्तास्थान होते हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है—

(शेष पृ० ३०७ का)

कर्मग्रन्थ से गो० कर्मकाड मे इन गुणस्थानो के भंग भिन्न बतलाये है। सासादन मे ३-७-१, देशविरत मे २-२-४ अप्रमत्तविरत मे ४-१-४ सयोगि केवली मे २-४।

कर्मग्रन्थ मे उक्त गुणस्थानो के भग इस प्रकार है—सासादन मे ३-७-२, देशविरत मे २-६-४, अप्रमत्तविरत मे ४-२-४, सयोगिकेवली मे ८-४।

गुणस्थान		बंधस्थान	उदयस्थान	सत्तास्थान
१	मिथ्यात्व	६	६	६
२	सासादन	३	७	२
३	मिश्र	२	३	२
४	अविरत	३	८	४
५	देशविरत	२	६	४
६	प्रमत्तविरत	२	५	४
७	अप्रमत्तविरत	४	२	४
८	अपूर्वकरण	५	१	४
६	अनिवृत्तिकरण	१	१	८
१०	सूक्ष्मसंपराय	१	१	८
११	उपशान्तमोह	०	१	४
१२	क्षीणमोह	०	१	४
१३	सयोगिकेवली	०	८	४
१४	अयोगिकेवली	०	२	६

विशेषार्थ—इन दो गाथाओं में गुणस्थानों में नामकर्म के बंध, उदय और सत्ता स्थानों को बतलाया है।

(१) मिथ्यादृष्टि गुणस्थान

पहले मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में नामकर्म के बंधस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थान क्रम से छह, नौ और छह हैं— छण्णव छक्कं। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

२३, २५, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये छह बधस्थान है। इनमे से २३ प्रकृतिक बधस्थान अपर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले जीव को होता है। इसके बादर और सूक्ष्म तथा प्रत्येक और साधारण के विकल्प से चार भग होते है। २५ प्रकृतिक बधस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय तथा अपर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य गति के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले जीवो के होता है। इनमे से पर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य बध होते समय २० भग होते है तथा शेष अपर्याप्त द्वीन्द्रिय आदि की अपेक्षा एक-एक भग होता है। इस प्रकार २५ प्रकृतिक बधस्थान के कुल भग २५ हुए।

२६ प्रकृतिक बधस्थान पर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य बध करने वाले जीव के होता है। इसके १६ भग होते है तथा २८ प्रकृतिक बधस्थान देवगति या नरकगति के योग्य प्रकृतियो का बंध करने वाले जीव के होता है। इनमे से देवगति के योग्य २८ प्रकृतियो का बध होते समय तो ८ भग होते है और नरक गति के योग्य प्रकृतियो का बध होते समय १ भग होता है। इस प्रकार २८ प्रकृतिक बधस्थान के ९ भग है।

२९ प्रकृतिक बधस्थान पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्य गति के योग्य प्रकृतियो का बध करने वाले जीवो के होता है। इनमे से पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के योग्य २९ प्रकृतियो का बध होते समय प्रत्येक के आठ-आठ भग होते हैं। तिर्यंच पचेन्द्रिय के योग्य २९ प्रकृतियो का बध होते समय ४६०८ भग तथा मनुष्य गति के योग्य २९ प्रकृतियो का बध होते समय भी ४६०८ भग होते है। इस प्रकार २९ प्रकृतिक बधस्थान के कुल ९२४० भंग होते है।

तीर्थंकर प्रकृति के साथ देवगति के योग्य २९ प्रकृतिक बधस्थान मिथ्यादृष्टि के नही होता है, क्योकि तीर्थंकर प्रकृति का बध सम्यक्त्व

के निमित्त से होता है अतः यहाँ देवगति के योग्य २९ प्रकृतिक बंधस्थान नहीं कहा है।[1]

३० प्रकृतिक बंधस्थान पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले जीवों के होता है। इनमें से पर्याप्त द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के योग्य ३० प्रकृतियों का बंध होते समय प्रत्येक के आठ-आठ भंग होते हैं तथा तिर्यंच पंचेन्द्रिय के योग्य ३० प्रकृतियों का बंध होते समय ४६०८ भंग होते हैं। इस प्रकार ३० प्रकृतिक बंधस्थान के कुल भंग ४६३२ होते हैं।

यद्यपि तीर्थंकर प्रकृति के साथ मनुष्यगति के योग्य और आहारकद्विक के साथ देवगति के योग्य ३० प्रकृतियों का बंध होता है किन्तु ये दोनों ही स्थान मिथ्यादृष्टि के सम्भव नहीं होते हैं, क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति का बंध सम्यक्त्व के निमित्त से और आहारकद्विक का बंध संयम के निमित्त से होता है। कहा भी है—

सम्मत्तगुणनिमित्तं तित्थयरं संजमेण आहारं।

अर्थात्—तीर्थंकर का बंध सम्यक्त्व के निमित्त से और आहारकद्विक का बंध संयम के निमित्त से होता है। इसीलिये यहाँ मनुष्यगति और देवगति के योग्य ३० प्रकृतिक बंधस्थान नहीं कहा है।

पूर्वोक्त प्रकार से अन्तर्भाष्य गाथा में भी मिथ्यादृष्टि के २३ प्रकृतिक आदि बंधस्थानों के भंग बतलाये हैं। भाष्य की गाथा इस प्रकार है—

चउ पणवीसा सोलस नव चत्ताला सया य बाणउया।
बत्तीसुत्तरछायालसया मिच्छस्स बंधविही॥

---

[1] या तु देवगतिप्रायोग्या तीर्थंकरनामसहिता एकोनत्रिंशत् सा मिथ्यादृष्टेन बन्धमायाति तीर्थकरनाम्नः सम्यक्त्वप्रत्ययत्वात् मिथ्यादृष्टेश्च तदभावात्।
—सप्ततिका प्रकरण टीका पृ० २२३

अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव के जो २३, २५, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक बंधस्थान है, उनके क्रमश: ४, २५, १६, ९, ९२४० और ४६३२ भग होते हैं।

मिथ्यादृष्टि जीव के ३१ और १ प्रकृतिक बंधस्थान सम्भव नही होने से उनका यहाँ विचार नही किया गया है।

इस प्रकार से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान के छह बंधस्थानो का कथन किया गया। अब उदयस्थानो का निर्देश करते है कि २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये नौ उदयस्थान है। नाना जीवो की अपेक्षा इनका पहले विस्तार से वर्णन किया जा चुका है, अत उसी प्रकार यहाँ भी समझना चाहिये। इतनी विशेषता है कि यहाँ आहारकसयत, वैक्रियसयत और केवली सबधी भंग नही कहना चाहिये, क्योकि ये मिथ्यादृष्टि जीव नही होते है। मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे इन उदयस्थानो के सब भग ७७७३ है। वे इस प्रकार हैं कि २१ प्रकृतिक उदयस्थान के ४१ भंग होते हैं। एकेन्द्रियो के ५, विकलेन्द्रियो के ९, तिर्यंच पचेन्द्रियो के ९, मनुष्यो के ९, देवों के ८ और नारको का १। इनका कुल जोड ४१ होता है। २४ प्रकृतिक उदयस्थान के ११ भग है जो एकेन्द्रियो मे पाये जाते है, अन्यत्र २४ प्रकृतिक उदयस्थान सभव नही है। २५ प्रकृतिक उदयस्थान के ३२ भग होते है—एकेन्द्रिय के ७, वैक्रिय तिर्यंच पचेन्द्रियो के ८, वैक्रिय मनुष्यो के ८, देवो के ८ और नारको का १। इनका कुल जोड ७+८+८+८+१=३२ होता है। २६ प्रकृतिक उदयस्थान के ६०० भग होते हैं—एकेन्द्रियो के १३, विकलेन्द्रियो के ९, तिर्यंच पचेन्द्रियो के २८९ और मनुष्यो के भी २८९। इनका जोड १३+९+२८९+२८९=६०० है। २७ प्रकृतिक उदयस्थान के ३१ भग है—एकेन्द्रियो के ६, वैक्रिय तिर्यंच पचेन्द्रिय के ८, वैक्रिय मनुष्यो के ८, देवो के ८ और नारकों का १। २८ प्रकृतिक उदयस्थान के ११९९ भंग है—

विकलेन्द्रियों के ६, तिर्यंच पचेन्द्रियों के ५७६, वैक्रिय तिर्यंच पचेन्द्रिय के १६, मनुष्यों के ५७६, वैक्रिय मनुष्यों के ८, देवों के १६ और नारकों का १। कुल मिलाकर ये भंग ६+५७६+१६+५७६+८+१६+१= ११९९ होते हैं। २९ प्रकृतिक उदयस्थान के १७८१ भंग हैं— विकलेन्द्रियों के १२, तिर्यंच पचेन्द्रियों के ११५२, वैक्रिय तिर्यंच पचेन्द्रियों के १६ मनुष्यों के ५७६, वैक्रिय मनुष्यों के ८, देवों के १६, और नारकों का १। कुल मिलाकर ये सब भंग १७८१ होते हैं। ३० प्रकृतिक उदयस्थान के २९१४ भंग है—विकलेन्द्रियों के १८, तिर्यंच पचेन्द्रियों के १७२८, वैक्रिय तिर्यंच पचेन्द्रिय के ८, मनुष्यों के ११५२, देवों के ८। इनका जोड १८+१७२८+८+११५२+८=२९१४ होता है। ३१ प्रकृतिक उदयस्थान के भंग ११६४ होते हैं—विकलेन्द्रियों के १२, तिर्यंच पचेन्द्रियों के ११५२ जो कुल मिलाकर ११६४ होते हैं।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक यह नौ उदयस्थान हैं और उनके क्रमश ४१, ११, ३२, ६००, ३१ ११९९, १७८१, २९१४ और ११६४ भंग हैं। इन भंगों का कुल जोड ७७७३ है। वैसे तो इन उदयस्थानों के कुल भंग ७७९१ होते हैं लेकिन इनमें से केवली के ८, आहारक साधु के ७, और उद्योत सहित वैक्रिय मनुष्य के ३, इन १८ भंगों को कम कर देने पर ७७७३ भंग ही प्राप्त होते हैं।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान में छह सत्तास्थान हैं। जो ९२, ८९, ८८ ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक हैं। मिथ्यात्व गुणस्थान में आहारक-चतुष्क और तीर्थंकर नाम की सत्ता एक साथ नहीं होती है जिससे ९३ प्रकृतिक सत्तास्थान यहाँ नहीं बताया है। ९२ प्रकृतिक सत्तास्थान चारों गति के मिथ्यादृष्टि जीवों के संभव है क्योंकि आहारकचतुष्क की सत्ता वाला किसी भी गति में उत्पन्न होता है। ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान सबके नहीं होता है किन्तु जो नरकायु का बंध करने के पश्चात् वेदक

सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थंकर प्रकृति का बध करता है और अत समय मे मिथ्यात्व को प्राप्त होकर नरक मे जाता है उसी मिथ्यात्वी के अन्तर्मुहूर्त काल तक मिथ्यात्व मे ८९ प्रकृतियो की सत्ता होती है। ८८ प्रकृतियो की सत्ता चारो गतियो के मिथ्यादृष्टि जीवो के सभव है क्योकि चारो गतियो के मिथ्यादृष्टि जीवो के ८८ प्रकृतियो की सत्ता होने मे कोई वाधा नही है। ८६ और ८० प्रकृतियो की सत्ता उन एकेन्द्रिय जीवो के होती है जिन्होने यथायोग्य देवगति या नरकगति के योग्य प्रकृतियो की उद्वलना की है तथा ये जीव जव एकेन्द्रिय पर्याय से निकलकर विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो मे उत्पन्न होते है तव इनके भी सव पर्याप्तियो के पर्याप्त होने के अनन्तर अंतर्मुहूर्त काल तक ८६ और ८० प्रकृतियो की सत्ता पाई जाती है। किन्तु इसके आगे वैक्रिय शरीर आदि का वंध होने के कारण इन स्थानो की सत्ता नही रहती है। ७८ प्रकृतियो की सत्ता उन अग्नि-कायिक और वायुकायिक जीवो के होती है जिन्होने मनुष्यगति और मनुष्यानुपूर्वी की उद्वलना करदी है तथा जव ये जीव मरकर विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रिय जीवो मे उत्पन्न होते है तव इनके भी अन्तर्मुहूर्त काल तक ७८ प्रकृतियो की सत्ता पाई जाती है। इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थान मे ९२, ८९, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान जानना चाहिये।

अव सामान्य से मिथ्यादृष्टि गुणस्थान मे वध, उदय और सत्ता स्थानो का कथन करने के वाद उनके सवेध का विचार करते है।

२३ प्रकृतियो का वध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के पूर्वोक्त नौ उदयस्थान सभव हैं। किन्तु २१, २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, इन ६ उदयस्थानों मे देव और नारक संवधी जो भग हैं, वे यहाँ नही पाये जाते हैं। क्योकि २३ प्रकृतिक वधस्थान मे अपर्याप्त एकेन्द्रियों के योग्य प्रकृतियो का वध होता है परन्तु देव अपर्याप्त एकेन्द्रियो के

योग्य प्रकृतियो का बध नही करते हैं, क्योकि देव अपर्याप्त एकेन्द्रियो मे उत्पन्न नही होते हैं। इसी प्रकार नारक भी २३ प्रकृतियो का बध नही करते है क्योकि नारको के सामान्य से ही एकेन्द्रियो के योग्य प्रकृतियो का बध नही होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि २३ प्रकृतिक बधस्थान मे देव और नारको के उदयस्थान सबधी भग प्राप्त नही होते हैं तथा यहाँ ६२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक ये पाँच सत्ता-स्थान होते हैं। २१, २४, २५ और २६ प्रकृतिक इन चार उदयस्थानो मे उक्त पाँचो ही सत्तास्थान होते हैं तथा २७, २८, २६, ३० और ३१ प्रकृतिक, इन पाँच उदयस्थानो मे ७८ के बिना पूर्वोक्त चार चार सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार यहा सब उदयस्थानो की अपेक्षा कुल ४० सत्तास्थान होते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो के ही होते हैं तथा २६ प्रकृतिक उदयस्थान मे ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो के भी होता है और जो अग्निकायिक तथा वायुकायिक जीव मरकर विकलेन्द्रिय और तिर्यच पचेन्द्रियो मे उत्पन्न होते हैं इनके भी कुछ काल तक होता है।

२५ और २६ प्रकृतिक बधस्थानो म भी पूर्वोक्त प्रकार कथन करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि देव भी अपने सब उदयस्थानो मे रहते हुए पर्याप्त एकेन्द्रिय के योग्य २५ और २६ प्रकृतिक स्थानो का बध करता है। परन्तु इसके २५ प्रकृतिक बधस्थान के बादर, पर्याप्त और प्रत्येक प्रायोग्य आठ ही भग होते हैं, शेष १२ भग नही होते हैं। क्योकि देव सूक्ष्म, साधारण और अपर्याप्तको मे उत्पन्न नही होते हैं। इससे उनके इनके योग्य प्रकृतियो का बध भी नही होता है। पूर्वोक्त प्रकार से यहाँ भी चालीस चालीस सत्तास्थान होते हैं।

२८ प्रकृतिया का बध करने वाले मिथ्यादृष्टि के ३० और ३१ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान होते हैं। इनम से ३० प्रकृतिक उदयस्थान

तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्यों, दोनो के होता है और ३१ प्रकृतिक उदयस्थान तिर्यंच पचेन्द्रिय जीवो के ही होता है। इसके ६२, ८९, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते है। इनमे से ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे चारो सत्तास्थान होते है। उसमे भी ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान उसी के जानना चाहिये जिसके तीर्थकर प्रकृति की सत्ता है और जो मिथ्यात्व मे आकर नरकगति के योग्य २८ प्रकृतियो का वध करता है। शेप तीन सत्तास्थान प्राय सव तिर्यच और मनुष्यो के सभव है। ३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८९ प्रकृतिक को छोडकर शेप तीन सत्तास्थान पाये जाते है। ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान तीर्थंकर प्रकृति सहित होता है, परन्तु तिर्यचो मे तीर्थकर प्रकृति की सत्ता सभव नही, इसीलिये ३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान का निपेध किया है। इस प्रकार २८ प्रकृतिक वधस्थान मे ३० और ३१ प्रकृतिक, दो उदयस्थानो की अपेक्षा ७ सत्तास्थान होते है।

देवगतिप्रायोग्य २९ प्रकृतिक वधस्थान को छोड़कर शेप विकलेन्द्रिय, तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्य गति के योग्य २९ प्रकृतियो का वध करने वाले मिथ्यादृष्टि जीव के सामान्य से पूर्वोक्त ९ उदयस्थान और ९२, ८९, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये छह सत्तास्थान होते है। इनमे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान मे सभी सत्तास्थान प्राप्त है। उसमे भी ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान उसी जीव के होता है जिसने नरकायु का वध करने के पश्चात् वेदक सम्यक्त्व को प्राप्त करके तीर्थंकर प्रकृति का वध कर लिया है। अनन्तर जो मिथ्यात्व मे जाकर और मरकर नारको मे उत्पन्न हुआ है तथा ९२ और ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान देव, नारक, मनुष्य, विकलेन्द्रिय, तिर्यच पचेन्द्रिय और एकेन्द्रियो की अपेक्षा जानना चाहिये। ८६ और ८० प्रकृतिक सत्तास्थान विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय, मनुष्य और एकेन्द्रियो की

अपेक्षा जानना चाहिये । ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा जानना चाहिये । २४ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८९ प्रकृतिक को छोडकर शेप ५ सत्तास्थान है । जो सब एकेन्द्रियो की अपेक्षा जानना चाहिये, क्योकि एकेन्द्रियो को छोडकर शेप जीवो के २४ प्रकृतिक उदयस्थान नही होता है । २५ प्रकृतिक उदयस्थान मे पूर्वोक्त छहो सत्तास्थान होते है । इनका विशेप विचार २१ प्रकृतिक उदयस्थान के समान जानना चाहिये । २६ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८९ को छोडकर शेप पाच सत्तास्थान होते है । यहा ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान नही होने का कारण यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थान मे उस जीव के यह सत्तास्थान होता है जो नारको मे उत्पन्न होने वाला है किन्तु नारको के २६ प्रकृतिक उदयस्थान नही होता है । २७ प्रकृतिक उदयस्थान मे ७८ के बिना शेप पाच सत्तास्थान होते है । ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान होने सम्बन्धी विवेचन तो पूववत जानना चाहिये तथा ९२ और ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान देव नारक, मनुष्य, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और एकेन्द्रियो की अपेक्षा जानना चाहिये । ८६ और ८० प्रकृतिक सत्तास्थान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तियच पचेन्द्रिय और मनुष्यो की अपेक्षा जानना चाहिये । यहाँ जो ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान नही बताया है उसका कारण यह है कि २७ प्रकृतिक उदयस्थान अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो को छोडकर आतप या उद्योत के साथ अन्य एकेन्द्रियो के होता है या नारको के होता है किन्तु उनमे ७८ प्रकृतियो की सत्ता नही पाई जाती है । २८ प्रकृतिक उदयस्थान मे ये ही पाच सत्तास्थान होते है । सो इनमे ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक सत्तास्थानो का विवेचन पूववत है तथा ८६ और ८० प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान विकलेन्द्रियो, तिर्यंच पचेन्द्रियो और मनुष्यो के जानना चाहिये । २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे भी इसी प्रकार पाच सत्तास्थान जानना चाहिये । ३० प्रकृतिक

उदयस्थान मे ९२, ८८, ८६, और ८० प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान हैं। जिनको विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो की अपेक्षा जानना चाहिये। नारको के ३० प्रकृतिक उदयस्थान नही होता है अत यहाँ ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान नही कहा है तथा ३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे भी ये ही चारो सत्तास्थान होते हैं जो विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा जानना चाहिये। इस प्रकार २९ प्रकृतियो का वध करने वाले मिथ्याहृष्टि जीव के ४५ सत्तास्थान होते है।

मनुष्य और देवगति के योग्य ३० प्रकृतिक वधस्थान को छोडकर शेप विकलेन्द्रिय और तिर्यंच पचेन्द्रिय के योग्य ३० प्रकृतियो का वध करने वाले मिथ्याहृष्टि जीव के सामान्य से पूर्वोक्त ९ उदयस्थान और ८९ को छोडकर शेप पाँच-पाँच सत्तास्थान होते है। यहाँ ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान संभव नही होने का कारण यह है ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान वाले जीव के तिर्यंचगति के योग्य प्रकृतियो का वध नही होता है। यहाँ २१, २४, २५, २६ प्रकृतिक इन चार उदयस्थानो मे उन पॉच सत्तास्थानो का कथन तो पहले के समान जानना चाहिये तथा शेप रहे २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक उदयस्थान, सो इनमे से प्रत्येक मे ७८ प्रकृतिक के सिवाय शेप चार सत्तास्थान होते है। इस प्रकार ३० प्रकृतियो का वध करने वाले मिथ्याहृष्टि जीव के कुल ४० सत्तास्थान होते है।

मिथ्याहृष्टि जीव के वध, उदय और सत्ता स्थानों और उनके सवेध का कथन समाप्त हुआ। जिनका विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२३ प्रकृतिक	४	२१	३२	९२ ८८, ८६ ८०, ७८
		२४	११	९२ ८८ ८६ ८० ७८
		२५	२३	९२ ८८ ८६ ८० ७८
		२६	६००	९२ ८८ ८६ ८० ७८
		२७	२२	९२ ८८ ८६ ८०
		२८	११८२	९२, ८८ ८६, ८०
		२९	१७६४	९२ ८८ ८६ ८०
		३०	२९०६	९२ ८८ ८६ ८०
		३१	११६४	९२ ८८ ८६ ८०
२५ प्रकृतिक	२५	२१	४०	९२ ८८ ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८ ८६ ८० ७८
		२५	३१	९२ ८८ ८६, ८० ७८
		२६	६००	९२ ८८ ८६ ८०, ७८
		२७	३०	९२ ८८ ८६, ८०
		२८	११९८	९२ ८८, ८६ ८०
		२९	१७८०	९२ ८८ ८६ ८०
		३०	२९१४	९२ ८८ ८६ ८०
		३१	११६४	९२ ८८ ८६ ८०
२६ प्रकृतिक	१६	२१	४०	९२ ८८ ८६ ८० ७८
		२४	११	९२ ८८ ८६ ८० ७८
		२५	३१	९२ ८८ ८६ ८० ७८
		२६	६००	९२ ८८ ८६ ८० ७८
		२७	३०	९२ ८८ ८६, ८०
		२८	११९८	९२, ८८ ८६ ८०
		२९	१७८०	९२ ८८, ८६ ८०
		३०	२९१४	९२ ८८ ८६ ८०
		३१	११६४	९२ ८८ ८६ ८०

(२) सासादन गुणस्थान

पहले गुणस्थान के बंध आदि स्थानों को बतलाने के बाद अब दूसरे गुणस्थान के बंध आदि स्थानों का निर्देश करते हैं कि—'तिग सत्त दुग'। अर्थात् ३ बंधस्थान हैं, ७ उदयस्थान हैं और २ सत्तास्थान हैं। जिनका स्पष्टीकरण इस प्रकार है—

सासादन गुणस्थान में २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये तीन बंधस्थान हैं। इनमें से २८ प्रकृतिक बंधस्थान दो प्रकार का है—नरकगतिप्रायोग्य और देवगतिप्रायोग्य। सासादन सम्यग्दृष्टि जीवों के नरकगतिप्रायोग्य का तो बंध नहीं होता किन्तु देवगतिप्रायोग्य का होता है। उसके बंधक पर्याप्त तिर्यंच पंचेन्द्रिय और मनुष्य होते हैं। इसके आठ भंग होते हैं।

२९ प्रकृतिक बंधस्थान के अनेक भेद हैं किन्तु उनमें से सासादन के बंधने योग्य दो भेद हैं—तिर्यंचगतिप्रायोग्य और मनुष्यगतिप्रायोग्य। इन दोनों को सासादन एकेन्द्रिय विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य, देव और नारक जीव बांधते हैं। यहां उसके कुल भंग ६४०० होते हैं। क्योंकि यद्यपि सासादन तिर्यंचगतिप्रायोग्य या मनुष्यगति प्रायोग्य २९ प्रकृतियों को बांधते हैं तो भी वे हुंडसंस्थान और सेवार्त संहनन का बंध नहीं करते हैं क्योंकि इन दोनों प्रकृतियों का बंध मिथ्यात्व गुणस्थान में ही होता है। जिससे यहां पांच संहनन, पांच संस्थान, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति युगल, स्थिर-अस्थिर युगल, शुभ-अशुभ युगल, सुभग-दुर्भग युगल, सुस्वर-दुःस्वर युगल, आदेय-अनादेय युगल और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति युगल, इस प्रकार इनके परस्पर गुणित करने पर ३२०० भंग होते हैं। ये ३२०० भंग तिर्यंचगतिप्रायोग्य भी होते हैं और मनुष्यगतिप्रायोग्य भी होते हैं। इस प्रकार दोनों का जोड ६४०० होता है।

३० प्रकृतिक बंधस्थान के भी यद्यपि अनेक भेद है किन्तु सासादन मे बंधने योग्य एक उद्योत सहित तिर्यंचगतिप्रायोग्य ही है। जिसे सासादन एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय, मनुष्य, देव और नारक जीव बांधते है। इसके कुल ३२०० भग होते है। इस प्रकार सासादन गुणस्थान मे तीन वधस्थान और उनके ८+६४००+३२००= ९६०८ भग होते है। भाष्य गाथा मे भी इसी प्रकार कहा गया है।

> अट्ठ य सय चोवट्ठि वत्तीस सया य सासणे भेया।
> अट्ठावीसाईसुं सव्वाणऽट्ठहिग छण्णउई ॥

अर्थात् सासादन मे २८ आदि वधस्थानो के क्रम से ८, ६४०० और ३२०० भेद होते हैं और ये सव मिलकर ९६०८ होते है।

इस प्रकार से सासादन गुणस्थान मे तीन वधस्थान वतलाये। अव उदयस्थानो का निर्देश करते है कि २१, २४, २५, २६, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये सात उदयस्थान होते है।

इनमे से २१ प्रकृतिक उदयस्थान एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय, मनुष्य और देवो के होता है। नारको मे सासादन सम्यक्-दृष्टि जीव उत्पन्न नही होते है जिससे सासादन मे नारको के २१ प्रकृतिक उदयस्थान नही कहा है। एकेन्द्रियो के २१ प्रकृतिक उदय-स्थान के रहते हुए वादर और पर्याप्त के साथ यश कीर्ति के विकल्प से दो भग सभव है, क्योकि सूक्ष्म और अपर्याप्तो मे सासादन जीव उत्पन्न नही होता है, जिससे विकलेन्द्रिय, तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो के प्रत्येक और अपर्याप्त के साथ जो एक-एक भग होता है वह यहाँ सभव नही है। शेप भग सभव है जो विकलेन्द्रियो के दो-दो, इस प्रकार से छह हुए तथा तिर्यंच पचेन्द्रियो के ८, मनुष्यो के ८ और देवो के ८ होते है। इस प्रकार २१ प्रकृतिक उदयस्थान के कुल ३२ भग (२+६+८+८+८=३२) हुए।

२४ प्रकृतिक उदयस्थान उन्ही जीवो के होता है जो एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होते हैं। यहा इसके बादर और पर्याप्त के साथ यश कीर्ति और अयश कीर्ति के विकल्प से दो ही भग होते हैं, शेप भग नही होते हैं, क्योकि सूक्ष्म, साधारण, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो मे सासादन सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नही होता है।

सासादन गुणस्थान मे २५ प्रकृतिक उदयस्थान उसी को प्राप्त होता है जो देवो मे उत्पन्न होता है। इसके स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यश कीर्ति-अयश कीर्ति के विकल्प से ८ भग होते हैं।

२६ प्रकृतिक उदयस्थान उन्ही के होता है जो विकलेन्द्रिय तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो मे उत्पन्न होते हैं। अपर्याप्त जीवो मे सासादन सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नही होते हैं। अत इस स्थान मे अपर्याप्त के साथ जो एक भग पाया जाता है, वह यहा सभव नही किन्तु शेप भग सभव है। विकलेन्द्रियो के दो दो, इस प्रकार छह, तियच पचेन्द्रियो के २८८ और मनुष्यो के २८८ होते हैं। इस प्रकार २६ प्रकृतिक उदयस्थान मे कुल मिलाकर ५८२ भग होते हैं।

सासादन गुणस्थान मे २७ और २८ प्रकृतिक उदयस्थान न होने का कारण यह है कि वे नवीन भव ग्रहण के एक अन्तर्मुहूत के काल के जाने पर होते हैं किन्तु सासादन भाव उत्पत्ति के बाद अधिक से अधिक कुछ कम ६ आवली काल तक ही प्राप्त होता है। इसीलिये उक्त २७ और २८ प्रकृतिक उदयस्थान सासादन सम्यग्दृष्टि को नही माने जाते हैं।

२९ प्रकृतिक उदयस्थान प्रथम सम्यक्त्व से च्युत होने वाले पर्याप्त स्वस्थान गत देवो और नारको को होता है। २९ प्रकृतिक उदयस्थान मे देवो के ८ और नारको के १ इस प्रकार इसके यहाँ कुल ९ भग होते हैं।

३० प्रकृतिक उदयस्थान प्रथम सम्यक्त्व से च्युत होने वाले पर्याप्त तिर्यंच और मनुष्यो के या उत्तर विक्रिया मे विद्यमान देवो के होता है। ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे तिर्यंच और मनुष्यो मे से प्रत्येक के ११५२ और देवो के ८, इस प्रकार ११५२+११५२+८=२३१२ भग होते है।

३१ प्रकृतिक उदयस्थान प्रथम सम्यक्त्व से च्युत होने वाले पर्याप्त तिर्यंचो के होता है। यहाँ इसके कुल ११५२ भंग होते है। इस प्रकार सासादन गुणस्थान मे ७ उदयस्थान और उनके भग होते है। भाष्य गाथा मे भी इनके भग निम्न प्रकार से गिनाये है—

> वत्तीस दोन्नि अट्ठ य वासीय सया य पच नव उदया।
> वारहिगा तेवीसा वावन्नेक्कारस सया य॥

अर्थात् सासादन गुणस्थान के जो २१, २४, २५, २६, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, सात उदयस्थान है, उनके क्रमश ३२, २, ८, ५८२, ९, २३१२ और ११५२ भग होते हैं।

सासादन गुणस्थान के सात उदयस्थानो को वतलाने के वाद अव सत्तास्थानो को वतलाते है कि यहाँ ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान हैं। इनमे से जो आहारक चतुष्क का वंध करके उपशमश्रेणि से च्युत होकर सासादन भाव को प्राप्त होता है, उसके ९२ की सत्ता पाई जाती है, अन्य के नही और ८८ प्रकृतियों की सत्ता चारों गतियो के सासादन जीवो के पाई जाती है।

इस प्रकार से सासादन गुणस्थान के वध, उदय और सत्तास्थानो को जानना चाहिये। अव इनके सवेध का विचार करते हैं।

२८ प्रकृतियो का वंध करने वाले सासादन सम्यग्दृष्टि को ३० और

३१ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान होते हैं। पूर्व मे बधस्थानो का विचार करते समय यह बताया जा चुका है कि सासादन जीव देवगतिप्रायोग्य ही २८ प्रकृतियो का बध करता है, नरकगतिप्रायोग्य २८ प्रकृतियो का नही। उसमे भी करणपर्याप्त सासादन जीव ही देवगतिप्रायोग्य को बाँधता है। इसलिये यहा ३० और ३१ प्रकृतिक, इन दो उदयस्थानो के अलावा अन्य शेष उदयस्थान सभव नही हैं। अब यदि मनुष्यो की अपेक्षा ३० प्रकृतिक उदयस्थान का विचार करते हैं तो वहा ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान सभव हैं और यदि तिर्यंच पचेन्द्रियो की अपेक्षा ३० प्रकृतिक उदयस्थान का विचार करते हैं तो वहाँ ८८ प्रकृतिक, यह एक ही सत्तास्थान सभव हैं क्योकि ९२ प्रकृतियो की सत्ता उसी को प्राप्त होती है जो उपशमश्रेणि से च्युत होकर सासादन भाव को प्राप्त होता है किन्तु तिर्यंचो मे उपशमश्रेणि सभव नही है। अत यहाँ ९२ प्रकृतिक सत्तास्थान का निषेध किया है।

तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो के योग्य २९ प्रकृतियो का बध करने वाले सासादन जीवो के पूर्वोक्त सातो ही उदयस्थान सभव हैं, इनमे से और सब उदयस्थानो मे तो एक ८८ प्रकृतियो की ही सत्ता प्राप्त होती है किन्तु ३० के उदय मे मनुष्यो के ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दोनो ही सत्तास्थान सभव है। २९ के समान ३० प्रकृतिक बधस्थान का भी कथन करना चाहिये।

३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ८८ प्रकृतियो की ही सत्ता प्राप्त होती है। क्योकि ३१ प्रकृतिक उदयस्थान तिर्यचो के ही प्राप्त होता है।

इस प्रकार सासादन गुणस्थान मे कुल ८ सत्तास्थान होते हैं। सासादन गुणस्थान के बध, उदय और सत्तास्थानो और सवेध का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	८	३०	२३१२	९२, ८८
		३१	११५२	८८
२९ प्रकृतिक	६४००	२१	३२	८८
		२४	२	८८
		२५	८	८८
		२६	५८२	८८
		२९	९	८८
		३०	२३१२	९२, ८८
		३१	११५२	८८
३० प्रकृतिक	३२००	२१	३२	८८
		२४	२	८८
		२५	८	८८
		२६	५८२	८८
		२९	९	८८
		३०	२३१२	९२, ८८
		३१	११५२	८८
३	९६०८	१६	११६५८	१९

(३) मिश्र गुणस्थान

दूसरे सासादन गुणस्थान के बंध आदि स्थानों का निर्देश करने के बाद अब तीसरे मिश्र गुणस्थान के बंध आदि स्थानों का कथन करते हैं। मिश्र गुणस्थान में—'दुग तिग दुग'—दो बंधस्थान, तीन उदयस्थान और दो सत्तास्थान हैं। जिनका विवरण इस प्रकार है कि २८ और २९ प्रकृतिक, ये बंधस्थान होते हैं। इनमें से २८ प्रकृतिक बंधस्थान तिर्यच और मनुष्यों के होता है, क्योंकि ये मिश्र गुणस्थान में देवगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करते हैं। इसके यहाँ ८ भंग होते हैं।

२९ प्रकृतिक बंधस्थान देव और नारकों के होता है। क्योंकि वे मिश्र गुणस्थान में मनुष्यगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करते हैं। इसके भी ८ भंग होते हैं। दोनों स्थानों में ये भंग स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति के विकल्प से प्राप्त होते हैं। २×२×२=८ शेष भंग प्राप्त नहीं होते हैं क्योंकि शेष शुभ परावर्तमान प्रकृतियों ही सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव बांधते हैं।

यहाँ बंधस्थानों का कथन करने के बाद अब उदयस्थान बतलाते हैं कि २९, ३० और ३१ प्रकृतिक ये तीन उदयस्थान हैं। २९ प्रकृतिक उदयस्थान देव और नारकों के होता है। इस स्थान में देवों के ८ और नारकों में १ इस प्रकार ९ भंग होते हैं। ३० प्रकृतिक उदयस्थान तिर्यंच व मनुष्यों के होता है। इसमें तिर्यंचों के ११५२ और मनुष्यों के ११५२ भंग होते हैं जो कुल मिलाकर २३०४ हैं। ३१ प्रकृतिक उदयस्थान तिर्यंच पंचेन्द्रियों के ही होता है। इसके यहाँ कुल मिलाकर ११५२ भंग होते हैं। इस प्रकार मिश्र गुणस्थान में तीनों उदयस्थानों के ९+२३०४+११५२=३४६५ भंग होते हैं।

मिश्र गुणस्थान में दो सत्तास्थान हैं—९२ और ८८ प्रकृतिक। इस प्रकार मिश्र गुणस्थान में बंध उदय और सत्तास्थान क्रमशः २, ३ और २ समझना चाहिए।

अब इनके संवेध का विचार करते है कि २८ प्रकृतियो का बंध करने वाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि के ३० और ३१ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान तथा प्रत्येक उदयस्थान मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है। २९ प्रकृतियो के बंधक के एक २९ प्रकृतिक उदयस्थान तथा ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार मिश्र गुणस्थान मे तीन उदयस्थानो की अपेक्षा छह सत्तास्थान होते है।

मिश्र गुणस्थान के बंध, उदय और सत्ता स्थान के संवेध का विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	८	३०	२३०४	९२, ८८
		३१	११५२	९२, ८८
२९ प्रकृतिक	८	२९	९	९२, ८८
२	१६	३	३४६५	६

(४) अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान

मिश्र गुणस्थान मे बंध आदि स्थानो को बतलाने के बाद अब चौथे अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान के बंध आदि स्थानो को बतलाते है कि इस गुणस्थान मे तीन बंधस्थान, आठ उदयस्थान और चार सत्तास्थान है—'तिगऽट्ठचउ।' वे इस प्रकार जानना चाहिये कि २८, २९

और ३० प्रकृतिक, ये तीन बंधस्थान हैं। इनमें से देवगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले अविरत सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्यों के २८ प्रकृतिक बंधस्थान होता है। अविरत सम्यग्दृष्टि तिर्यंच और मनुष्य शेष गतियों के योग्य प्रकृतियों का बंध नहीं करते, इसलिये यहाँ नरकगति के योग्य २८ प्रकृतिक बंधस्थान नहीं होता है।

२९ प्रकृतिक बंधस्थान दो प्रकार से प्राप्त होता है। एक तो तीर्थंकर प्रकृति के साथ देवगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले मनुष्यों के होता है। इसके ८ भंग होते हैं। दूसरा मनुष्यगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले देव और नारकों के होता है। यहाँ भी आठ भंग होते हैं। तीर्थंकर प्रकृति के साथ मनुष्यगति के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले देव और नारकों के ३० प्रकृतिक बंधस्थान होता है। इसके भी आठ भंग होते हैं।[1]

अब आठ उदयस्थानों को बतलाते हैं कि अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान में २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये ८ उदयस्थान हैं।

इनमें से २१ प्रकृतिक उदयस्थान नारक, तिर्यंच पंचेन्द्रिय, मनुष्य और देवों के जानना चाहिये। क्योंकि जिसने आयुकर्म के बंध के पश्चात् क्षायिक सम्यग्दर्शन को प्राप्त किया है, उसके चारों गतियों में २१ प्रकृतिक उदयस्थान संभव है। किन्तु अविरत सम्यग्दृष्टि अपर्याप्तों में उत्पन्न नहीं होता अतः यहाँ अपर्याप्त संबंधी भंगों को छोड़कर शेष भंग

---

१ मनुष्याणां देवगतिप्रायोग्यं तीर्थकरसहितं बध्नतामेकोनत्रिंशत् अत्राप्यष्टौ भंगाः। देव-नैरयिकाणां मनुष्यगतिप्रायोग्यं बध्नतामेकोनत्रिंशत् अत्रापि त एवाष्टौ भंगाः। तेषामेव मनुष्यगतिप्रायोग्यं तीर्थकरसहितं बध्नतां त्रिंशत् अत्रापि त एवाष्टौ भंगाः।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३०

पाये जाते है जो तिर्यंच पचेन्द्रिय के ८, मनुष्यों के ८, देवो के ८ और नारको का १ है। इस प्रकार कुल मिलाकर ८+८+८+१=२५ है।

२५ और २७ प्रकृतिक उदयस्थान देव और नारको तथा विक्रिया करने वाले तिर्यच और मनुष्यो के जानना चाहिये। यहाँ जो २५ और २७ प्रकृतिक स्थानो का नारक और देवो को स्वामी बतलाया है सो यह नारक वेदक सम्यग्दृष्टि या क्षायिक सम्यग्दृष्टि ही होता है और देव तीनो मे से किसी भी सम्यग्दर्शन वाला होता है।[1] चूर्णि मे भी इसी प्रकार कहा है—

पणवीस-सत्तवीसोदया देवनेरइए विउव्वियतिरिय मणुए य पडुच्च।
नेरइगो खइग-वेयगसम्मद्दिट्ठी देवो तिविहसम्मद्दिट्ठी वि॥

अर्थात् अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे २५ और २७ प्रकृतिक उदयस्थान देव, नारक और विक्रिया करने वाले तिर्यच और मनुष्यो के होता है। सो इनमे से ऐसा नारक या तो क्षायिक सम्यग्दृष्टि होता है या वेदक सम्यग्दृष्टि, किन्तु देव के तीनो सम्यग्दर्शनो मे से कोई एक होता है।

२६ प्रकृतिक उदयस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि या वेदक सम्यग्दृष्टि तिर्यच और मनुष्यो के होता है। औपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव तिर्यच और मनुष्यो मे उत्पन्न नही होता है। अतः यहाँ तीनो प्रकार के सम्यग्दृष्टि जीवो को नही कहा है। उसमे भी तिर्यचो के मोहनीय की २२ प्रकृतियो की सत्ता की अपेक्षा ही यहाँ वेदक सम्यक्त्व जानना चाहिये।

---

१ पचविंशति-सप्तविंशत्युदयौ देव-नैरयिकान् वैक्रियतिर्यड्मनुष्याश्चाधिकृत्याव-सेयौ। तत्र नैरयिक क्षायिकसम्यग्दृष्टिर्वेदकसम्यग्दृष्टिर्वा, देवस्त्रिविध-सम्यग्दृष्टिरपि। —सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३०

२८ और २९ प्रकृतिक उदय चारो गतियो के अविरत सम्यग्दृष्टि जीवो के होता है। ३० प्रकृतिक उदयस्थान तिर्यच पचेन्द्रिय, मनुष्य और देवो के होता है तथा ३१ प्रकृतिक उदयस्थान तिर्यच पचेन्द्रियो के ही होता है। इस प्रकार से अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे ८ उदयस्थान जानना चाहिये।

अब सत्तास्थानो का निर्देश करते हैं—

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे ९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान हैं। इनमे से जिस अप्रमत्तसयत और अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती जीव ने तीर्थंकर और आहारक के साथ ३१ प्रकृतियो का बध किया और पश्चात मरकर अविरत सम्यग्दृष्टि हो गया तो उसके ९३ प्रकृतियो की सत्ता होती है। जिसने पहले आहारक चतुष्क का बध किया और उसके बाद परिणाम बदल जाने से मिथ्यात्व मे जाकर जो चारो गतियो में से किसी एक गति मे उत्पन्न हुआ उसके उस गति में पुन सम्यग्दर्शन के प्राप्त हो जाने पर ९२ प्रकृतिक सत्तास्थान चारो गतियो मे बन जाता है। किन्तु देव और मनुष्यो के मिथ्यात्व को प्राप्त किये बिना ही इस अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे ९२ प्रकृतियो की सत्ता बन जाती है। ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान अविरत सम्यग्दृष्टि देव, नारक और मनुष्यो के होता है। क्योकि इन तीनो गतियो मे तीर्थंकर प्रकृति का समाजन होना रहता है। किन्तु तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला जीव तिर्यचो मे उत्पन्न नही होता है अत यहा तिर्यंचो का ग्रहण नहीं किया है, और ८८ प्रकृतिक सत्तास्थान चारो गतियो के अविरत सम्यग्दृष्टि जीवो के होता है। इस प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे बध, उदय और सत्ता स्थानो को जानना चाहिये।

अब इनके सवेध का विचार करते हैं कि २८ प्रकृतियो का बध करने वाले अविरत सम्यग्दृष्टि जीव के तिर्यच और मनुष्यो की अपेक्षा

८ उदयस्थान होते हैं। उसमे से २५ और २७ प्रकृतिक उदयस्थान विक्रिया करने वाले तिर्यंच और मनुष्यो के ही होते है और शेप छह सामान्य के होते है। इन उदयस्थानो मे से प्रत्येक उदयस्थान मे ९२ और ८९ प्रकृतिक ये दो-दो सत्तास्थान है। २९ प्रकृतिक वधस्थान देवगतिप्रायोग्य व मनुष्यगतिप्रायोग्य होने की अपेक्षा से दो प्रकार का है। इनमे से देवगतिप्रायोग्य तीर्थंकर प्रकृति सहित है जिससे इसका वध मनुष्य ही करते है। किन्तु मनुष्यो के उदयस्थान २१, २५, २६, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये सात है, क्योकि मनुष्यो के ३१ प्रकृतिक उदयस्थान नही होता है। यहाँ भी प्रत्येक उदयस्थान मे ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है तथा मनुष्यगतिप्रायोग्य २९ प्रकृतियो को देव और नारक ही बाँधते हैं। सो इनमे से नारको के २१, २५, २७, २८ और २९ प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान होते है तथा देवो के पूर्वोक्त पाँच और ३० प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते है। इन सब उदयस्थानो मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं तथा मनुष्यगति योग्य ३० प्रकृतियो का बध देव और नारक करते है सो इनमे से देवों के पूर्वोक्त ६ उदयस्थान होते हैं और उनमे से प्रत्येक मे ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है। नारको के उदयस्थान तो पूर्वोक्त पाच ही होते है किन्तु इनमे सत्तास्थान ८९ प्रकृतिक एक-एक ही होता है क्योकि तीर्थंकर और आहारक चतुष्क की युगपत् सत्ता वाले जीव नारको मे उत्पन्न नही होते है। इस प्रकार २१ से लेकर ३० प्रकृतिक उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे सामान्य से ९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक, ये चार-चार सत्तास्थान होते है और ३१ प्रकृतिक उदयस्थान मे ९२ और ८८ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते है। इस प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे सामान्य से कुल ३० सत्तास्थान हुए। जिनका विवरण निम्न प्रकार से जानना चाहिये—

वधस्थान	मग	उदयस्थान	मग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	८	२१	१६	९२, ८८
		२५	१६	९२ ८८
		२६	५७६	९२ ८८
		२७	१६	९२ ८८
		२८	११७६	९२ ८८
		२९	१७५२	९२ ८८
		३०	२८८८	९२ ८८
		३१	११५२	९२ ८८
२९ प्रकृतिक	१६	२१	१७	९३ ९२ ८९ ८८
		२५	१७	९३, ९२ ८९, ८८
		२६	२८८	९३, ८९
		२७	१७	९३, ९२, ८९ ८८
		२८	६०१	९३, ९२, ८९ ८८
		२९	५०१	९३, ९२ ८९ ८८
		३०	११६०	९३ ९२ ८९ ८८
३० प्रकृतिक	८	२१	९	९३, ८९
		२५	९	९३ ८९
		२७	९	९३ ८९
		२८	१७	९३ ८९
		२९	१७	९३, ८९
		३०	८	९३ ८९
३	३२	२१	१०,३६२	५४

(५) देशविरत गुणस्थान

अब पाचवे देशविरत गुणस्थान के बध आदि स्थानो का विचार करते है। देशविरत गुणस्थान मे बध आदि स्थान क्रमश· 'दुग छ चउ' दो, छह और चार है। अर्थात् दो बधस्थान, छह उदयस्थान और चार सत्तास्थान है। उनमे से दो बधस्थान क्रमश २८ और २९ प्रकृतिक हैं। जिनमे से २८ प्रकृतिक बधस्थान तिर्यंच पचेन्द्रिय और मनुष्यो के होता है। इतना विशेष है कि इस गुणस्थान मे देवगतिप्रायोग्य प्रकृतियो का ही बध होता है और इस स्थान के ८ भग होते हैं। उक्त २८ प्रकृतियो मे तीर्थंकर प्रकृति को मिला देने पर २९ प्रकृतिक बध-स्थान होता है। यह स्थान मनुष्यों को होता है क्योकि तिर्यंचो के तीर्थंकर प्रकृति का बध नही होता है। इस स्थान के भी आठ भग होते है।

इस गुणस्थान मे २५, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, यह छह उदयस्थान होते है। इनमे से आदि के चार उदयस्थान विक्रिया करने वाले तिर्यंच और मनुष्यों के होते है तथा इन चारो उदयस्थानो मे मनुष्यो के एक-एक भग होता है किन्तु तिर्यंचो के प्रारम्भ के दो उदयस्थानो का एक-एक भग होता है और अन्तिम दो उदयस्थानो के दो-दो भग होते हैं।

३० प्रकृतिक उदयस्थान स्वभावस्थ तिर्यंच और मनुष्यों के तथा विक्रिया करने वाले तिर्यंचो के होता है। सो यहाँ प्रारम्भ के दो मे से प्रत्येक के १४४-१४४ भग होते है, जो छह सहनन, छह संस्थान, सुस्वर-दुस्वर और प्रशस्त-अप्रशस्त विहायोगति के विकल्प से प्राप्त होते है तथा अतिम का एक भंग होता है। इस प्रकार ३० प्रकृतिक उदय-स्थान के कुल २८९ भग होते है। दुर्भग, अनादेय और अयश·कीर्ति का

उदय गुणप्रत्यय से ही नही होता है अत तत्सबधी विकल्पो को यहा नही कहा है।

३१ प्रकृतिक उदयस्थान तिर्यचो के ही होता है। यहा भी १४४ भग होते हैं। इस प्रकार देशविरत मे सब उदयस्थानो के कुल भग १०+१४४+१४४+१४४+१=४४३ भग होते है।

यहाँ सत्तास्थान चार होते हैं जो ९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक हैं। जो तीर्थकर और आहारक चतुष्क का बध करके देशविरत हो जाता है, उनके ९३ प्रकृतियो की सत्ता होती है तथा शेष का विचार सुगम है। इस प्रकार देशविरत मे बध, उदय और सत्ता स्थानो का कथन किया। अब इनके सवेध का विचार करते हैं कि—

यदि देशविरत मनुष्य २८ प्रकृतियो का बध करता है तो उसके २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान और इनमे से प्रत्येक मे ९२ और ८८ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान होते हैं। किन्तु यदि तिर्यच २८ प्रकृतियो का बध करता है तो उसके उक्त पाच उदयस्थानो के साथ ३१ प्रकृतिक उदयस्थान भी होने से छह उदयस्थान तथा प्रत्येक मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। २९ प्रकृतिक बधस्थान देशविरत मनुष्य के होता है। अत इसके पूर्वोक्त २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये पाँच उदयस्थान और प्रत्येक उदयस्थान म ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार देशविरत गुणस्थान मे सामान्य से प्रारम्भ के पाच उदयस्थानो म चार चार और अन्तिम उदयस्थान मे दो, इस प्रकार कुल मिलाकर २२ सत्तास्थान होते हैं।

देशविरत गुणस्थान मे बध आदि स्थानो का विवरण इस प्रकार जानना चाहिए—

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	८	२५	२	६२, ८८
		२७	२	६२, ८८
		२८	३	६२, ८८
		२६	३	६२, ८८
		३०	२८६	६२, ८८
		३१	१४४	६२, ८८
२६ प्रकृतिक	८	२५	१	६३, ८६
		२७	१	६३, ८६
		२८	१	६३, ८६
		२६	१	६३, ८६
		३०	१४४	६३, ८६
२	१६	११	५६	२२

(६) प्रमत्तविरत गुणस्थान

अब छठे प्रमत्तसंयत गुणस्थान के बंध आदि स्थानों को बतलाते हैं कि—'दुग पण चउ'—दो बंधस्थान, पांच उदयस्थान और चार सत्तास्थान हैं। दो बंधस्थान २८ और २६ प्रकृतिक हैं। इनका विशेष स्पष्टीकरण देशविरत गुणस्थान के समान जानना चाहिये।

पांच उदयस्थान २५, २७, २८, २६ और ३० प्रकृतिक होते हैं। ये

सब उदयस्थान आहारकसंयत और वैक्रियसंयत जीवों के जानना चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि ३० प्रकृतिक उदयस्थान स्वभावस्थ संयता के भी होता है। इनमें से वैक्रियसंयत और आहारकसंयता के अलग-अलग २५ और २७ प्रकृतिक उदयस्थानों में से प्रत्येक के एक-एक तथा २८ और २९ प्रकृतिक उदयस्थानों के दो-दो और ३० प्रकृतिक उदयस्थान का एक एक, इस प्रकार कुल १४ भंग होते हैं तथा ३० प्रकृतिक उदयस्थान स्वभावस्थ जीवों के भी होता है सो इसके १४४ भंग और होते हैं इस प्रकार प्रमत्तसंयत गुणस्थान के सब उदयस्थानों के कुल भंग १५८ होते हैं।

यहाँ सत्तास्थान चार होते हैं—९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक।

इस प्रकार प्रमत्तसंयत गुणस्थान में बंध, उदय और सत्तास्थानों का निर्देश करने के बाद अब इनके संवेध का विचार करते हैं—

२८ प्रकृतियों का बंध करने वाले पूर्वोक्त पांचों उदयस्थानों में से प्रत्येक में ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। उनमें भी आहारकसंयत के ९२ प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है क्योंकि आहारकचतुष्क की सत्ता के बिना आहारक समुद्घात की उत्पत्ति नहीं हो सकती है किन्तु वैक्रियसंयत के ९२ और ८८ प्रकृतियों की सत्ता संभव है। जिस प्रमत्तसंयत के तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता है वह २८ प्रकृतियों का बंध नहीं करता है। अतः यहाँ ९३ और ८९ प्रकृतियों की सत्ता नहीं होती है तथा २९ प्रकृतियों का बंध करने वाले प्रमत्तसंयत के पांचों उदयस्थान संभव हैं और इनमें से प्रत्येक में ९३ और ८९ प्रकृतिक ये दोनों सत्तास्थान होते हैं। विशेष इतना है कि आहारक के ९३ की और वैक्रियसंयत के दोनों की सत्ता होती है।

इस प्रकार प्रमत्तसंयत के सब उदयस्थानों में पृथक्-पृथक् चार-चार सत्तास्थान प्राप्त होते हैं जिनका कुल प्रमाण २० होता है।

प्रमत्तसंयत के बध, उदय और सत्ता स्थानो व सवेध का विवरण निम्नानुसार जानना चाहिये—

बधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	८	२५	२	९२, ८८
		२७	२	९२, ८८
		२८	४	९२, ८८
		२९	४	९२, ८८
		३०	१४६	९२, ८८
२९ प्रकृतिक	८	२५	२	९३, ८९
		२७	२	९३, ८९
		२८	४	९३, ८९
		२९	४	९३, ८९
		३०	१४६	९३, ८९
२	१६	१०	३१६	२०

(७) अप्रमत्तसयत गुणस्थान

प्रमत्तसयत गुणस्थान के वध, उदय और सत्तास्थानो को बतलाने के वाद अव अप्रमत्तसयत गुणस्थान के बध आदि स्थानो को बतलाते हैं कि 'चउदुग चउ'—चार बधस्थान, दो उदयस्थान और चार सत्तास्थान हैं। चार वधस्थान इस प्रकार है—२८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक। इनमे से तीर्थंकर और आहारकद्विक के विना २८ प्रकृतिक बध-

स्थान होता है। इसमे तीर्थंकर प्रकृति को मिलाने पर २९ प्रकृतिक तथा तीर्थंकर प्रकृति को अलग करके आहारकद्विक को मिलाने से ३० प्रकृतिक तथा तीर्थंकर और आहारकद्विक को युगपत मिलाने पर ३१ प्रकृतिक बधस्थान होता है। इन सब बधस्थानो का एक-एक ही भग होता है। क्योकि अप्रमत्तसयत के अस्थिर, अशुभ और अयश - कीर्ति का बध नही होता है।

सातवें गुणस्थान मे दो[1] उदयस्थान होते हैं जो २९ और ३० प्रकृतिक हैं। जिसने पहले प्रमत्तसयत अवस्था मे आहारक या वैक्रिय समुद्घात को करने के बाद अप्रमत्तसयत गुणस्थान को प्राप्त किया है उसके २९ प्रकृतिक उदयस्थान होता है।[2] इसके यहा दो भग होते हैं जो एक वैक्रिय की अपेक्षा और दूसरा आहारक की अपेक्षा। ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे भी दो भग होते हैं तथा ३० प्रकृतिक उदयस्थान स्वभावस्थ अप्रमत्तसयत जीव के भी होता है अत उसकी अपेक्षा यहाँ १४४ भग और होते हैं जिनका कुल जोड १४६ है। इस प्रकार अप्रमत्तसयत गुणस्थान के दो उदयस्थानो के कुल १४८ भग होते हैं।

---

१ दिगम्बर परम्परा म अप्रमत्तसयत के ३० प्रकृतिक एक ही उदयस्थान बतलाया है। इसका कारण यह है कि दिगम्बर परम्परा मे यही एकमत पाया जाता है कि आहारक समुद्घात को करने वाले जीव को स्वयोग्य पर्याप्तियों के पूर्ण हो जाने पर भी सातवा गुणस्थान प्राप्त नही होता है तथा इसी प्रकार दिगम्बर परम्परा के अनुसार वैक्रिय समुदघात को करने वाला जीव भी अप्रमत्तसयत गुणस्थान को प्राप्त नही करता है। इसीलिये गो० कर्म काड गा ८०१ म अप्रमत्तसयत गुणस्थान म एक ३० प्रकृतिक उदयस्थान ही बताया है।

२ तत्रकोनत्रिंशद् यो नाम पूर्व प्रमत्तसयत सन् आहारक वैक्रिय वा निवर्त्य पश्चादप्रमत्तभाव गच्छति तस्य प्राप्यते।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३३

सत्तास्थान ९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक, ये चार होते है। इस प्रकार अप्रमत्तसयत गुणस्थान के चार बधस्थान, दो उदयस्थान और चार सत्तास्थान जानना चाहिये। अब इनके सवेध का विचार करते है—

२८ प्रकृतियो का बध करने वाले के उदयस्थान दोनों होते है, किन्तु सत्तास्थान एक ८८ प्रकृतिक ही होता है। २९ प्रकृतियो का बध करने वाले के उदयस्थान दोनों ही होते है किन्तु सत्तास्थान एक ८९ प्रकृतिक होता है। ३० प्रकृतियो का बध करने वाले के भी उदयस्थान दोनो ही होते है किन्तु सत्तास्थान दोनो के एक ९२ प्रकृतिक ही होता है तथा ३१ प्रकृतियो का बंध करने वाले के उदयस्थान दोनो होते है किन्तु सत्तास्थान एक ९३ प्रकृतिक ही होता है। यहाँ तीर्थंकर या आहारकद्विक इनमे से जिसके जिसकी सत्ता होती है, वह नियम से उसका बध करता है। इसीलिये एक-एक बधस्थान मे एक-एक सत्ता-स्थान कहा है। यहाँ कुल सत्तास्थान ८ होते है।

इस प्रकार अप्रमत्तसयत गुणस्थान के बध, उदय और सत्ता स्थानो के सवेध का विचार किया गया, जिसका विवरण इस प्रकार है—

बधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	१	२९	२	८८
		३०	१४६	८८
२९ प्रकृतिक	१	२९	२	८९
		३०	१४६	८९

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
३० प्रकृतिक	१	२९	२	९२
		३०	१४६	९२
३१ प्रकृतिक	१	२९	२	९३
		३०	१४४	९३
४	४	८	४९२	८

(८) अपूर्वकरण गुणस्थान

आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान में बंध आदि स्थान इस प्रकार हैं—'पणगेग चउ' अर्थात् पाँच बंधस्थान, एक उदयस्थान और चार सत्तास्थान। इनमें से पाँच बंधस्थान २८, २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक हैं। इनमें से प्रारम्भ के चार बंधस्थान तो सातवें अप्रमत्तसंयत गुणस्थान के समान जानना चाहिये किन्तु जब देवगतिप्रायोग्य प्रकृतियों का बंधविच्छेद हो जाता है तब सिर्फ एक यशःकीर्ति नाम का ही बंध होता है, जिससे यहाँ १ प्रकृतिक बंधस्थान भी होता है।

यहाँ उदयस्थान एक ३० प्रकृतिक ही होता है। जिसमें वज्रऋषभनाराच संहनन, छह संस्थान, सुस्वर-दुःस्वर और दो विहायोगति के विकल्प से २४ भंग होते हैं। किन्तु कुछ आचार्यों के मत से उपशमश्रेणि की अपेक्षा अपूर्वकरण में पहले के तीन वज्रऋषभनाराच संहनन या उनमें से प्रारम्भ के तीन संहननों में से किसी एक का उदय होता है। उनके मत से यहाँ पर ७२ भंग होते हैं। इसी प्रकार

अनिवृत्तिवादर, सूक्ष्मसपराय और उपशांतमोह गुणस्थान में भी जानना चाहिये ।[1]

यहाँ सत्तास्थान ९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक, ये चार है। इस प्रकार अपूर्वकरण मे वध, उदय और सत्तास्थानो का निर्देश किया। अव सवेध का विचार करते है—

२८, २९, ३० और ३१ प्रकृतियो का बध करने वाले जीवो के ३० प्रकृतिक उदय रहते हुए क्रम से ८८, ८९, ९२ और ९३ प्रकृतियो की सत्ता रहती है। एक प्रकृति का बध करने वाले के ३० प्रकृतियों का उदय रहते हुए चारो सत्तास्थान होते है। क्योकि जो पहले २८, २९, ३० या ३१ प्रकृतियो का बध कर रहा था, उसके देवगति के योग्य प्रकृतियो का वध-विच्छेद होने पर १ प्रकृतिक बध होता है, किन्तु सत्तास्थान उसी क्रम से रहे आते है, जिस क्रम से वह पहले बांधता था। अर्थात् जो पहले २८ प्रकृतियो का बध करता था, उसके ८८ की, जो २९ का वध करता था उसके ८९ की, जो ३० का बध करता था उसके ९२ की और जो ३१ का वध करता था उसके ९३ की सत्ता रही

---

१ अन्ये त्वाचार्या ब्रुवते—आद्यसहननत्रयान्यतमसहननयुक्ता अप्युपशमश्रेणी प्रतिपद्यन्ते तन्मतेन भगा द्विसप्तति। एवमनिवृत्तिवादर-सूक्ष्मसपराय-—उपशान्तमोहेष्वपि द्रष्टव्यम्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३३

दिगम्बर परम्परा मे यही एक मत पाया जाता है कि उपशमश्रेणि मे प्रारम्भ के तीन सहननो मे से किसी एक सहनन का उदय होता है। इसकी पुष्टि के लिये देखिये गो० कर्मकाड गाथा २६९—

वेदतिय कोहमाण मायासजलणमेव सुहुमते।
सुहुमो लोहो सते वज्जणारायणाराय ॥

आती है। इसीलिये एक प्रकृतिक बंधस्थान में चारों सत्तास्थान प्राप्त होते हैं।[1]

अपूर्वकरण गुणस्थान में बंध, उदय और सत्तास्थानों के संवेध का विवरण इस प्रकार है—

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	१	३०	२४ या ७२	८८
२९ प्रकृतिक	१	३०	२४ या ७२	८९
३० प्रकृतिक	१	३०	२४ या ७२	९२
३१ प्रकृतिक	१	३०	२४ या ७२	९३
१ प्रकृतिक	१	३०	२४ या ७२	८८, ८९, ९२, ९३
५	५	५	१२० या ३६०	८

(९-१०) अनिवृत्तिबादर, सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान

नौवें और दसवें—अनिवृत्तिबादर और सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में

१ अष्टाविंशति-एकोनत्रिंशत्-त्रिंशद्-एकत्रिंशद्बन्धका प्रायः देवगति प्रायोग्य बन्धकत्वात् [illegible] विषयभूता [illegible], अष्टाशीत्यादि [illegible] यदा [illegible] सत्तास्थानानि [illegible] प्राप्य[illegible]।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३३

क्रमश. एक बधस्थान, एक उदयस्थान और आठ सत्तास्थान हैं—'एगेग मट्ठ'। जिनका स्पष्टीकरण निम्नानुसार है—

अनिवृत्तिबादर गुणस्थान मे एक यश:कीर्ति प्रकृति का बध होने से एक प्रकृतिक बधस्थान है तथा उदयस्थान भी एक ३० प्रकृतिक है और सत्तास्थान ९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९, ७६ और ७५ प्रकृतिक, ये आठ है। इनमे से प्रारभ के चार सत्तास्थान उपशम श्रेणि में होते है और जब तक नामकर्म की तेरह प्रकृतियो का क्षय नही होता तब तक क्षपकश्रेणि मे भी होते है। उक्त चारो स्थानो की सत्ता वाले जीवों के १३ प्रकृतियों का क्षय होने पर क्रम से ८०, ७९, ७६ और ७५ प्रकृतियो की सत्ता प्राप्त होती है। अर्थात ९३ की सत्ता वाले के १३ के क्षय होने पर ८० की, ९२ की सत्ता वाले के १३ का क्षय होने पर ७९ की, ८९ की सत्ता वाले के १३ का क्षय होने पर ७६ की और ८८ की सत्ता वाले के १३ का क्षय होने पर ७५ की सत्ता शेप रहती है। इस प्रकार यहाँ आठ सत्तास्थान जानना चाहिये। यहाँ बधस्थान और उदयस्थान मे भेद न होने से अर्थात् दोनो के एक-एक होने से सवेध सम्भव नही है। यानी यहाँ यद्यपि सत्तास्थान आठ होने पर भी बधस्थान और उदयस्थान के एक-एक होने से सवेध को पृथक से कहने की आवश्यकता नही है।

अनिवृत्तिबादर गुणस्थान की तरह सूक्ष्मसपराय गुणस्थान मे भी यश.कीर्ति रूप एक प्रकृतिक एक बधस्थान है, ३० प्रकृतिक उदयस्थान है तथा पूर्वोक्त ९३ आदि प्रकृतिक, आठ सत्तास्थान है। उक्त आठ सत्तास्थानो मे से आदि के चार उपशमश्रेणि मे होते है और शेष ८० आदि प्रकृतिक, अत के चार क्षपकश्रेणि मे होते है। शेष कथन अनिवृत्तिबादर गुणस्थान की तरह जानना चाहिये।

अब उपशातमोह आदि ग्यारह से लेकर चौदह गुणस्थान तक के भगो का कथन करते है—'छउमत्थकेवलिजिणाण'।

(११-१२) उपशांतमोह क्षीणमोह गुणस्थान

उपशान्तमोह आदि गुणस्थानों में बंधस्थान नहीं है, किन्तु उदयस्थान और सत्तास्थान ही है। अतएव उपशान्तमोह गुणस्थान में—'एग चऊ'—अर्थात् एक ३० प्रकृतिक उदयस्थान है और ९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान हैं।

क्षीणमोह गुणस्थान में भी एक ३० प्रकृतिक उदयस्थान और ८०, ७९, ७६ और ७५ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते हैं—'एग चऊ'। यहाँ उदयस्थान में इतनी विशेषता है कि यदि सामान्य जीव क्षपकश्रेणि पर आरोहण करता है तो उसके मतान्तर से जो ७२ भंग बतलाये हैं वे प्राप्त न होकर २४ भंग ही प्राप्त होते हैं। क्योंकि उसके एक वज्रऋषभनाराच संहनन का ही उदय होता है।[1] यही बात क्षपकश्रेणि के पिछले अन्य गुणस्थानों में भी जानना चाहिये तथा यदि तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला होता है तो उसके प्रशस्त प्रकृतियों का ही सर्वत्र उदय रहता है, इसीलिये एक भंग बतलाया है।

इसी प्रकार सत्तास्थानों में भी कुछ विशेषता है। यदि तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला जीव होता है तो उसके ८० और ७६ की सत्ता रहती है और दूसरा (तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता रहित) होता है तो उसके ७९ और ७५ प्रकृतियों की सत्ता रहती है।[2] यही बात यथासम्भव सर्वत्र जानना चाहिये।

---

१ अत्र भङ्गाश्चतुर्विंशतिरेव वज्रऋषभनाराचसंहननयुक्तस्यैव क्षपकश्रेण्यारम्भसम्भवात्।

—सप्ततिका प्रकरण टीका पृ० २३४

२ एकोनाशीति-पञ्चसप्तती अतीर्थंकर सत्कर्मणो वेदितव्ये। अशीति-षट्सप्तती तु तीर्थंकरसत्कर्मणः।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३४

(१३) सयोगिकेवली गुणस्थान

सयोगिकेवली गुणस्थान मे आठ उदयस्थान और चार सत्तास्थान है—'अट्ठचउ'। आठ उदयस्थान २०, २१, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक है तथा चार सत्तास्थान ८०, ७९, ७६ और ७५ प्रकृतिक है। इनके सवेध का विचार पहले कर आये है अतः तदनुसार जानना चाहिये। सामान्य जानकारी के लिये उनका विवरण इस प्रकार है—

बधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
०	०	२०	१	७९, ७५
		२१	१	८०, ७६
		२६	६	७९, ७५
		२७	१	८०, ७६
		२८	१२	७९, ७५
		२९	१३	८०, ७९, ७६, ७५
		३०	२५	८०, ७९, ७६, ७५
		३१	१	८०, ७६
०	०	८	६०	२०

(१४) अयोगिकेवली गुणस्थान

अयोगिकेवली गुणस्थान मे उदयस्थान और सत्तास्थान क्रमश·—'दु छक्क' अर्थात दो उदयस्थान और छह सत्तास्थान है। इनमे से दो उदयस्थान ९ और ८ प्रकृतिक है। नौ प्रकृतियो का उदय तीर्थंकर

केवली के और आठ प्रकृतियों का उदय सामान्य केवली के होता है।[1]

छह सत्तास्थान ८०, ७९, ७६, ७५, ९ और ८ प्रकृतिक हैं। इस प्रकार अयोगि केवली गुणस्थान के दो उदयस्थान व छह सत्तास्थान जानना चाहिये। इनके संवेध इस प्रकार हैं कि ८ प्रकृतियों के उदय मे ७९, ७५ और ८ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। इनमे से ७९ और ७५ प्रकृतिक सत्तास्थान उपान्त्य समय तक होते हैं और ८ प्रकृतिक सत्तास्थान अन्तिम समय म होता है तथा ९ प्रकृतियो के उदय मे ८०, ७६ और ९ प्रकृतिक ये तीन सत्तास्थान होते हैं जिनमे से आदि के दो (८०, ७६) उपान्त्य समय तक होते हैं और ९ प्रकृतिक सत्तास्थान अन्तिम समय मे होता है।

अयोगिकेवली गुणस्थान के उदय सत्तास्थानों के संवेध का विवरण इस प्रकार है—

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
०	०	९	१	८०, ७६, ९
		८	१	७९ ७५, ८
०	०	२	२	६

इस प्रकार से गुणस्थानों मे बंध, उदय और सत्ता स्थानों का विचार करने के बाद अब गति आदि मार्गणाओं म बंध, उदय और सत्ता स्थानों का विचार करते हैं।

---

1 तत्राष्टानामुदयोऽतीर्थकरायोगिकेवलिन, नवोदयस्तीर्थकरायोगिकेवलिन।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २३४

मार्गणाओ मे वन्धादिस्थान

दो छक्कऽट्ठ चउक्कं पण नव एक्कार छक्कगं उदया ।
नेरइआइसु सता ति पंच एक्कारस चउक्कं[1] ॥५१॥

शब्दार्थ—दो छक्कऽट्ठ चउक्क—दो, छह, आठ और चार, पण नव एक्कार छक्कगं—पाच, नौ, ग्यारह और छ, उदया—उदयस्थान, नेरइआइसु—नरक आदि गतियो मे, सत्ता—सत्ता, ति पंच एक्कारस चउक्क—तीन, पाच, ग्यारह और चार।

गाथार्थ—नारकी आदि (नारक, तिर्यच, मनुष्य और देव) के क्रम से दो, छह, आठ और चार वन्धस्थान, पाँच, नौ, ग्यारह और छह उदयस्थान तथा तीन, पाच, ग्यारह और चार सत्तास्थान होते है।

विशेषार्थ—इस गाथा मे किस गति मे कितने वन्ध, उदय और सत्तास्थान होते हैं, इसका निर्देश किया गया। नरक, तिर्यच, मनुष्य और देव ये चार गतिया है और इसी क्रम का अनुसरण करके गाथा मे पहले वन्धस्थानो की सख्या वतलाई है—'दो छक्कऽट्ठ चउक्क'—अर्थात् नरकगति मे दो, तिर्यचगति मे छ, मनुष्यगति मे आठ और देवगति मे चार वन्धस्थान है। उदयस्थानो का निर्देश करते हुए कहा है—'पण नव एक्कार छक्कग उदया'। यानी पूर्वोक्त अनुक्रम से पांच, नौ, ग्यारह और छह उदयस्थान है तथा—'ति पच एक्कारस चउक्क'—

---

१ तुलना कीजिये —

दोछक्कट्ठचउक्क णिरयादिसु णामवघठाणाणि ।
पणणवएगारपणय तिपचवारसचउक्क च ॥

—गो० कर्मकांड, गा० ७१०

कर्मग्रन्थ मे मनुष्यगति मे ग्यारह सत्तास्थान है और गो० कर्मकाड मे १२ सत्तास्थान तथा देवगति मे कर्मग्रन्थ मे ६ और गो० कर्मकाड मे ५ उदयस्थान वतलाये हैं। इतना दोनो मे अतर है।

तीन, पांच ग्यारह और चार सत्तास्थान हैं। जिनका विशेष स्पष्टीकरण नीचे किया जाता है।

नरकादि गतियों में बंधस्थान

नरकगति में दो बंधस्थान हैं—२९ और ३० प्रकृतिक। उनमें से २९ प्रकृतिक बंधस्थान तिर्यंचगति और मनुष्यगति प्रायोग्य दोनों प्रकार का है तथा उद्योत सहित ३० प्रकृतिक बंधस्थान तिर्यंचगति-प्रायोग्य है और तीर्थंकर सहित ३० प्रकृतिक बंधस्थान मनुष्यगति प्रायोग्य है।

तिर्यंचगति में छह बंधस्थान हैं—२३, २५, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक। इनका स्पष्टीकरण पहले के समान यहाँ भी करना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ पर २९ प्रकृतिक बंधस्थान तीर्थंकर सहित और ३० प्रकृतिक बंधस्थान आहारकद्विक सहित नहीं कहना चाहिये। क्योंकि तिर्यंचों के तीर्थंकर और आहारकद्विक का बंध नहीं होता है।

मनुष्यगति में ८ बंधस्थान हैं—२३, २५, २६, २८, २९, ३०, ३१ और १ प्रकृतिक। इनका भी स्पष्टीकरण पूर्व के समान यहाँ भी कर लेना चाहिये।

देवगति में चार बंधस्थान हैं—२५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक। इनमें से २५ प्रकृतिक बंधस्थान पर्याप्त बादर और प्रत्येक के साथ एकेन्द्रिय के योग्य प्रकृतियों का बंध करने वाले देवों के जानना चाहिये। यहाँ स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ और यशःकीर्ति-अयशःकीर्ति के विकल्प से ८ भंग होते हैं। इस २५ प्रकृतिक बंधस्थान में आतप या उद्योत प्रकृति के मिला देने पर २६ प्रकृतिक बंधस्थान होता है। २६ प्रकृतिक बंधस्थान के १६ भंग होते हैं। २९ प्रकृतिक बंधस्थान मनुष्यगतिप्रायोग्य या तिर्यंचगतिप्रायोग्य दोनों प्रकार का होता है

तथा उद्योत सहित ३० प्रकृतिक बन्धस्थान तिर्यंचगतिप्रायोग्य है। इसके भग ४६०८ होते हैं तथा तीर्थंकर नाम सहित ३० प्रकृतिक बन्धस्थान मनुष्यगतिप्रायोग्य है। जिसके स्थिर-अस्थिर, शुभ-अशुभ, यश:कीर्ति-अयश:कीर्ति के विकल्प से ८ भग होते है।

अब नरक आदि गतियो मे अनुक्रम से उदयस्थानों का विचार करते हैं कि नरकगति मे २१, २५, २७, २८ और २९ प्रकृतिक, ये पाच उदयस्थान है। तिर्यंचगति मे नौ उदयस्थान हैं—२१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, मनुष्यगति मे ग्यारह उदयस्थान हैं—२०, २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१, ९ और ८ प्रकृतिक। देवगति में छह उदयस्थान हैं—२१, २५, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक। इस प्रकार नरक आदि चारो गतियो मे पाँच, नौ, ग्यारह और छह उदयस्थान जानना चाहिये—'पण नव एक्कार छक्कग उदया'।

सत्तास्थानो को नरक आदि गतियों मे बतलाते है कि—'संता ति पंच एक्कारस चउक्क'। अर्थात् नरकगति मे ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान हैं। तिर्यंचगति मे पाँच सत्तास्थान ९२, ८८, ८६ ८०, और ७८ प्रकृतिक हैं। मनुष्यगति में ग्यारह सत्तास्थान हैं—९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०. ७९, ७६, ७५, ९ और ८ प्रकृतिक। देवगति मे चार सत्तास्थान है—९३, ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक।

इस प्रकार नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थानो को बतलाने के बाद अब उनके संवेध का विचार नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति के अनुक्रम से करते है।

नरक गति मे सवेध—पचेन्द्रिय तिर्यंचगति के योग्य २९ प्रकृतियो का बन्ध करने वाले नारको के पूर्वोक्त २१, २५, २७, २८ और २९ प्रकृतिक, पाँच उदयस्थान होते है और इनमे से प्रत्येक उदयस्थान मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो सत्तास्थान होते है। तिर्यंचगतिप्रायोग्य प्रकृतियों का बन्ध करने वाले जीव के तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध नही

होने से यहाँ ८९ प्रकृतिक सत्तास्थान नहीं रहा है। मनुष्यगति-प्रायोग्य २९ प्रकृतियों का बंध करने वाले नारकों के पूर्वोक्त पांचों उदयस्थान और प्रत्येक उदयस्थान में ९२, ८९ और ८८ प्रकृतिक ये तीन-तीन सत्तास्थान होते हैं। तीर्थंकर प्रकृति की सत्तावाला मनुष्य नरक में उत्पन्न होकर जब तक मिथ्यादृष्टि रहता है उसकी अपेक्षा तब तक उसके तीर्थंकर के बिना २९ प्रकृतियों का बंध होने से २९ प्रकृतिक बंधस्थान में ८९ प्रकृति का सत्तास्थान बन जाता है।

नरकगति में ३० प्रकृतिक बंधस्थान दो प्रकार से प्राप्त होता है—एक उद्योत नाम सहित और दूसरा तीर्थंकर प्रकृति सहित। जिसके उद्योत सहित ३० प्रकृतिक बंधस्थान होता है उसके उदयस्थान तो पूर्वोक्त पाँचों ही होते हैं किंतु सत्तास्थान प्रत्येक उदयस्थान में दो दो होते हैं—९२ और ८८ प्रकृतिक तथा जिसके तीर्थंकर सहित ३० प्रकृतिक बंधस्थान होता है, उसके पांचों उदयस्थानों में से प्रत्येक उदयस्थान में ८९ प्रकृतिक एक एक सत्तास्थान ही होता है।

इस प्रकार नरकगति में सब बंधस्थान और उदयस्थानों की अपेक्षा ४० सत्तास्थान होते हैं, जिनका विवरण निम्न प्रकार है—

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२९ प्रकृतिक	९२१६	२१	१	९२, ८९ ८८
		२५	१	९२ ८९ ८८
		२७	१	९२, ८९, ८८
		२८	१	९२, ८९ ८८
		२९	१	९२ ८९, ८८

वधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
३० प्रकृतिक	४६१६	२१	१	९२, ८९, ८८
		२५	१	९२, ८९, ८८
		२७	१	९२, ८९, ८८
		२८	१	९२, ८९, ८८
		२९	१	९२, ८९, ८८

तिर्यंचगति मे सवेव—छह वधस्थानो में मे २३ प्रकृतिक वंधस्थान मे यद्यपि पूर्वोक्त २१, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये नौ ही उदयस्थान होते है। लेकिन इनमे से प्रारम्भ के २१, २४, २५ और २६ प्रकृतिक, इन चार उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे ९२, ८८, ८६, ८० और ७८ प्रकृतिक, ये पांच-पाच सत्तास्थान होते है और अन्त के पाच उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे ७८ प्रकृतिक के विना चार-चार सत्तास्थान होते हैं। क्योकि २७ प्रकृतिक आदि उदयस्थानो मे नियम से मनुष्यद्विक की सत्ता सम्भव है। अत. इनमे ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान नही पाया जाता है।

इसी प्रकार २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक वंधस्थान वाले जीवों के वारे मे भी जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेपता है कि मनुष्य-गतिप्रायोग्य २९ प्रकृतियों का वध करने वाले जीव के सव उदय-स्थानो मे ७८ के विना चार-चार सत्तास्थान ही सम्भव है। क्योकि मनुष्यद्विक का वध करने वाले के ७८ प्रकृतिक सत्तास्थान सम्भव नही है।

२८ प्रकृतिक बधस्थान वाले जीव के २१, २५, २६ २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये आठ उदयस्थान होते है। इसके २४ प्रकृतिक उदयस्थान न होने का कारण यह है कि यह एकेन्द्रियो के ही होता है और एकेन्द्रियो के २८ प्रकृतिक बधस्थान नही होता है। इन उदयस्थानो मे से २१, २६, २८, २९ और ३० प्रकृतिक ये पाच उदयस्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि या मोहनीय की २२ प्रकृतियो की सत्ता वाले वेदक सम्यग्दृष्टियो के होते हैं तथा इनमे से प्रत्येक उदयस्थान मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। २५ और २७ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान विक्रिया करने वाले तिर्यंचो के होते हैं। यहाँ भी प्रत्येक उदयस्थान मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो दो सत्तास्थान होते हैं तथा ३० और ३१ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान सब पर्याप्तियो से पर्याप्त हुए सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि तिर्यंचो के होते हैं। इनमे से प्रत्येक उदयस्थान मे ९२, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये तीन सत्तास्थान होते हैं। लेकिन यह विशेष जानना चाहिये कि ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान मिथ्यादृष्टियो के ही होता है सम्यग्दृष्टियो के नही, क्योकि सम्यग्दृष्टि तिर्यंचो के नियम से देवद्विक का बध सम्भव है।

इस प्रकार यहाँ सब बधस्थानो और सब उदयस्थानो की अपेक्षा २१८ सत्तास्थान होते हैं। क्योकि २३, २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक इन पाच बधस्थानो मे से प्रत्येक मे से चालीस चालीस और २८ प्रकृतिक बधस्थान मे अठारह सत्तास्थान होते हैं। अत ४०×५+१८ =२१८ इन सब का जोड होता है।

तिर्यचगति सम्बन्धी नामकर्म के बध, उदय और सत्ता स्थानो के सवेध का विवरण निम्न अनुसार जानना चाहिये—

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२३ प्रकृतिक	४	२१	२३	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	१५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	३११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	१४	९२, ८८, ८६, ८०
		२८	५९८	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	११८०	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१७५४	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	११६४	९२, ८८, ८६, ८०
२५ प्रकृतिक	२५	२१	२३	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	१५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	३११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	१४	९२, ८८, ८६, ८०
		२८	५९८	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	११८०	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१७५४	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	११६४	९२, ८८, ८६, ८०
२६ प्रकृतिक	१६	२१	२३	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	१५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	३११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	१४	९२, ८८, ८६, ८०
		२८	५९८	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	११८०	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१७५४	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	११६४	९२, ८८, ८६, ८०

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	९	२१	८	९२ ८८
		२५	८	९२, ८८
		२६	२८८	९२ ८८
		२७	८	९२ ८८
		२८	५९२	९२ ८८
		२९	११६८	९२ ८८
		३०	१७३६	९२, ८८, ८६
		३१	११५२	९२, ८८ ८६
२९ प्रकृतिक	९२४०	२१	२३	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८ ८६, ८० ७८
		२५	१५	९२ ८८ ८६ ८०, ७८
		२६	३११	९२ ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	१४	९२ ८८, ८६ ८०
		२८	५९८	९२ ८८, ८६, ८०
		२९	११८०	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१७५४	९२ ८८, ८६, ८०
		३१	११६८	९२, ८८, ८६ ८०
३० प्रकृतिक	४६३२	२१	२३	९२ ८८ ८६, ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८० ७८
		२५	१५	९२ ८८ ८६ ८०, ७८
		२६	३११	९२, ८८ ८६ ८०, ७८
		२७	१४	९२ ८८ ८६ ८०
		२८	५९८	९२ ८८ ८६ ८०
		२९	११८०	९२ ८८ ८६ ८०
		३०	१७५४	९२, ८८ ८६ ८०
		३१	११६४	९२ ८८, ८६ ८०

मनुष्यगति मे सवेध—मनुष्यगति मे २३ प्रकृतियों का वध करने वाले मनुष्य के २१, २२, २६, २७, २८, २६, ३० प्रकृतिक, ये सात उदयस्थान होते है। इनमे से २५ और २७ प्रकृतिक, ये दो उदयस्थान विक्रिया करने वाले मनुष्य के होते है किन्तु आहारक मनुप्य के २३ प्रकृतियो का वध नही होता है, अत यहाँ आहारक के नही लेना चाहिये। इन दो उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है तथा शेप पाच उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे ९२, ८८, ८६ और ८० प्रकृतिक, ये चार-चार सत्तास्थान होते है। इस प्रकार २३ प्रकृतिक वधस्थान मे २४ सत्तास्थान होते है।

इसी प्रकार २५ और २६ प्रकृतिक वधस्थानो मे भी चौवीस-चौवीस सत्तास्थान जानना चाहिये।

मनुप्यगतिप्रायोग्य और तिर्यचगतिप्रायोग्य २९ प्रकृतिक वध-स्थानो मे भी इसी प्रकार चौवीस-चौवीस सत्तास्थान होते है।

२८ प्रकृतिक वधस्थान मे २१, २५, २६, २७, २८, २९ और ३० प्रकृतिक, ये सात उदयस्थान होते है। इनमे से २१ और २६ प्रकृतिक ये दो उदयस्थान सम्यग्दृष्टि के करण-अपर्याप्त अवस्था मे होते है। २५ और २७, ये दो उदयस्थान वैक्रिय या आहारकसयत के तथा २८ और २९, ये दो उदयस्थान विक्रिया करने वाले, अविरत सम्यग्दृष्टि और आहारकसयत के होते है। ३० प्रकृतिक उदयस्थान सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टियो के होता है। इन सव उदयस्थानो मे ९२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है। इसमे भी आहारकसयत के एक ९२ प्रकृतिक सत्तास्थान ही होता है। किन्तु नरकगतिप्रायोग्य २८ प्रकृतियो का वध करने वाले के ३० प्रकृतिक उदयस्थान मे ९२, ८९, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते है। इस प्रकार २८ प्रकृतिक वधस्थान मे १६ सत्तास्थान होते है।

तीर्थंकर प्रकृति के साथ देवगतिप्रायोग्य २९ प्रकृतियो का बध करने वाले के २८ प्रकृतिक बधस्थान के समान सात उदयस्थान होते हैं, किन्तु इतनी विशेषता है कि ३० प्रकृतिक उदयस्थान सम्यग्दृष्टियो के ही कहना चाहिये, क्योकि २९ प्रकृतिक बधस्थान तीर्थकर प्रकृति सहित है और तीर्थंकर प्रकृति का बध सम्यग्दृष्टि के ही होता है। इन सब उदयस्थानो मे से प्रत्येक म ९३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते हैं। इनमे आहारकसयत के ९३ प्रकृतियो की ही सत्ता होती है। इस प्रकार तीर्थंकर प्रकृति सहित २९ प्रकृतिक बधस्थान मे चौदह सत्तास्थान होते हैं।

आहारकद्विक सहित ३० प्रकृतियो का बध होने पर २९ और ३० प्रकृतिक दो उदयस्थान होते हैं। इनमें से जो आहारकसयत स्वयोग्य सब पर्याप्ति पूर्ण करने के बाद अतिम काल मे अप्रमत्तसयत होता है, उसकी अपेक्षा २९ का उदय लेना चाहिये। क्योकि अन्यत्र २९ के उदय मे आहारकद्विक के बध का कारणभूत विशिष्ट सयम नही पाया जाता है। इसमे अन्यत्र ३० का उदय होता है। सो इनमे से प्रत्येक उदयस्थान म ९२ की सत्ता होती है।

३१ प्रकृतिक बधस्थान के समय ३० का उदय और ९३ की सत्ता होती है तथा १ प्रकृतिक बधस्थान के समय ३० का उदय और ९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९, ७६ और ७५ प्रकृतिक, ये आठ सत्तास्थान होते हैं।

इस प्रकार २३, २५ और २६ के बध के समय चौबीस चौबीस सत्तास्थान, २८ के बध के समय सोलह सत्तास्थान, मनुष्यगति और तिर्यंचगति प्रायोग्य २९ और ३० के बध में चौबीस चौबीस सत्तास्थान, देवगतिप्रायोग्य तीर्थंकर प्रकृति के साथ २९ के बध मे चौदह सत्तास्थान, ३१ के बध मे एक सत्तास्थान और १ प्रकृतिक बध म आठ सत्तास्थान होते हैं। इस तरह मनुष्य गति म कुल १४९ सत्तास्थान होते हैं।

बंधस्थान	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२३ प्रकृतिक	२१	८	९२, ८८, ८६, ८०
	२५	८	९२, ८८
	२६	२०९	९२, ८८, ८६, ८०
	२७	८	९२, ८८
	२८	५८४	९२, ८८, ८६, ८०
	२९	५८४	९२, ८८, ८६, ८०
	३०	११५२	९२, ८८, ८६, ८०
२५ प्रकृतिक	२१	८	९२, ८८, ८६, ८०
	२५	८	९२, ८८
	२६	२०९	९२, ८८, ८६, ८०
	२७	८	९२, ८८
	२८	५८४	९२, ८८, ८६, ८०
	२९	५८४	९२, ८८, ८६, ८०
	३०	११५२	९२, ८८, ८६, ८०
२६ प्रकृतिक	२१	८	९२, ८८, ८६, ८०
	२५	८	९२, ८८
	२६	२०९	९२, ८८, ८६, ८०
	२७	८	९२, ८८
	२८	५८४	९२, ८८, ८६, ८०
	२९	५८४	९२, ८८, ८६, ८०
	३०	११५२	९२, ८८, ८६, ८०

बंधस्थान	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	२१	८	९२ ८८
	२५	८	९२, ८८
	२६	२८८	९२, ८८
	२७	८	९२, ८८
	२८	५८४	९२, ८८
	२९	५८४	९२, ८८
	३०	११५२	९२, ८९, ८८, ८६
२९ प्रकृतिक	२१	९	९३ ९२, ८९ ८८ ८६, ८०
	२५	९	९३ ९२, ८९ ८८
	२६	२८९	९३, ९२, ८९ ८८, ८६, ८०
	२७	९	९३, ९२, ८९ ८८
	२८	५८७	९३, ९२ ८९ ८८, ८६ ८०
	२९	५८७	९३, ९२ ८९, ८८, ८६ ८०
	३०	११५४	९३, ९२, ८९, ८८ ८६ ८०
३० प्रकृतिक	२१	९	९२, ८८, ८६, ८०
	२५	८	९२, ८८
	२६	२८९	९२, ८८, ८६ ८०
	२७	८९	९२ ८८
	२८	५८४	९२, ८८, ८६, ८०
	२९	५८६	९२, ८८, ८६, ८०
	३०	११५४	९२ ८८, ८६ ८०
३१ प्रकृतिक	३०	१४४	९३
१ प्रकृतिक	३०	—	९३, ९२, ८९, ८८, ८०, ७९, ७६, ७५

देवगति मे संवेध—देवगति मे २५ प्रकृतियो का वध करने वाले देवों के देव सम्वन्धी छहों उदयस्थान होते है। जिनमे से प्रत्येक मे ६२ और ८८ प्रकृतिक ये दो-दो सत्तास्थान होते है। इसी प्रकार २६ और २९ प्रकृतियों का वध करने वाले देवो के भी जानना चाहिए। उद्योत सहित तिर्यचगति के योग्य ३० प्रकृतियो का वध करने वाले देवों के भी इसी प्रकार छह उदयस्थान और प्रत्येक उदयस्थान मे ६२ और ८८ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है परन्तु तीर्थकर प्रकृति सहित ३० प्रकृतियो का बध करने वाले देवो के छह उदयस्थानो मे से प्रत्येक उदयस्थान मे ६३ और ८९ प्रकृतिक, ये दो-दो सत्तास्थान होते है। इस प्रकार यहाँ कुल ६० सत्तास्थान होते हैं।

वधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
२५ प्रकृतिक	८	२१	८	९२, ८८
		२५	८	९२, ८८
		२७	८	९२, ८८
		२८	१६	९२, ८८
		२९	१६	९२, ८८
		३०	८	९२, ८८
२६ प्रकृतिक	१६	२१	८	९२, ८८
		२५	८	९२, ८८
		२७	८	९२, ८८
		२८	१६	९२, ८८
		२९	१६	९२, ८८
		३०	८	९२, ८८

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२९ प्रकृतिक	९२१६	२१	८	९२, ८८
		२५	८	९२, ८८
		२७	८	९२, ८८
		२८	१६	९२, ८८
		२९	१६	९२, ८८
		३०	८	९२, ८८
३० प्रकृतिक	४६१६	२१	८	९३, ९२, ८९, ८८
		२५	८	९३, ९२, ८९, ८८
		२७	८	९३, ९२, ८९, ८८
		२८	१६	९३, ९२, ८९, ८८
		२९	१६	९३, ९२, ८९, ८८
		३०	८	९३, ९२, ८९, ८८

इस प्रकार से गतिमार्गणा में बंध, उदय और सत्ता स्थान तथा उनके संवेध का कथन करने के बाद अब आगे की गाथा में इन्द्रिय-मार्गणा में बंध आदि स्थानों का निर्देश करते हैं—

इग विगलिंदिय सगले पण पंच य अट्ठ बंधठाणाणि ।
पण छक्केक्कारुदया पण पण बारस य संताणि[1] ॥५२॥

---

१ तुलना कीजिये—

(क) इगि विगले पण बंधो अडवीसूणा उ अट्ठ इयरंमि ।
पंच छ एक्कारुदया पण पण बारस उ संताणि ॥
—पंचसंग्रह सप्ततिका गा० १३०

(ख) एगे वियले सयले पण पण अड पंच छक्केगार पण ।
पणतेर बंधादी सेसादेसवि इदि णेयं ॥
—गो० कर्मकांड गा० ७११

कर्मग्रंथ में पंचेन्द्रियों के १२ सत्तास्थान और गो० कर्मकांड में १३ सत्ता स्थान बतलाये हैं।

शब्दार्थ—इग विगलिंदिय सगले—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और सकलेन्द्रिय (पचेन्द्रिय) मे, पण पच य अट्ठ—पाच, पाच और आठ, बधठाणाणि—बधस्थान, पण छक्केक्कार—पाच, छह और ग्यारह, उदया—उदयस्थान, पण-पण बारस—पाँच, पाँच और बारह, य—और, संताणि—सत्तास्थान ।

गाथार्थ—एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय मे अनुक्रम से पाच, पाच और आठ बधस्थान, पाच, छह और ग्यारह उदयस्थान तथा पाच, पाच और बारह सत्तास्थान होते है ।

विशेषार्थ— पूर्व गाथा मे गतिमार्गणा के चारो भेदो मे नामकर्म के बध आदि स्थानो और उनके संवेध का कथन किया गया था। इस गाथा मे इन्द्रियमार्गणा के एकेन्द्रिय आदि पाँच भेदो मे बधादि स्थानो का निर्देश करते हुए अनुक्रम से बताया है कि 'पण पंच य अट्ठ बधठाणाणि' एकेन्द्रिय के पाच, विकलेन्द्रिय (द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय) के पाच तथा पचेन्द्रिय के आठ बधस्थान हैं। इसी प्रकार अनुक्रम से उदयस्थानो का निर्देश करने के लिये कहा है कि—'पण छक्केक्कारुदया'—एकेन्द्रिय के पाँच, विकलेन्द्रियों के छह और पचेन्द्रियो के ग्यारह उदयस्थान होते है तथा 'पण पण बारस य संताणि'—एकेन्द्रिय के पाच, विकलेन्द्रियो के पाच और पचेन्द्रियो के बारह सत्तास्थान है। इन सब बध आदि स्थानो का स्पष्टीकरण नीचे किया जा रहा है ।

कुल बधस्थान आठ है, उनमे से एकेन्द्रियो के २३, २५, २६, २९ और ३१ प्रकृतिक, ये पाच बधस्थान है। विकलेन्द्रियो मे से प्रत्येक के भी एकेन्द्रिय के लिये बताये गये अनुसार ही पांच-पाच बधस्थान है तथा पचेन्द्रियो के २३ आदि प्रकृतिक आठो बधस्थान है ।

उदयस्थान बारह है। उनमे से एकेन्द्रियो के २१, २४, २५, २६ और २७ प्रकृतिक, ये पाच उदयस्थान होते है। विकलेन्द्रियो मे से प्रत्येक के २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये छह-छह उदय-

स्थान होते हैं तथा पचेन्द्रियों के २०, २१, २५, २६ २७, २८, २९, ३०, ३१, ९ और ८ प्रकृतिक, ये ग्यारह उदयस्थान होते हैं।

सत्तास्थान कुल बारह हैं जिनमें से एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियों में से प्रत्येक के ९२, ८८, ८६ ८० और ७८ प्रकृतिक ये पांच पांच सत्तास्थान हैं तथा पचेन्द्रियों के बारहों ही सत्तास्थान होते हैं।

इस प्रकार एकेन्द्रिय आदि में से प्रत्येक के बंध, उदय और सत्ता स्थानों को बतलाकर अब इनके संवेध का विचार करते हैं।

एकेन्द्रिय—२३ प्रकृतियों का बंध करने वाले एकेन्द्रियों के प्रारम्भ के चार उदयस्थानों में से प्रत्येक उदयस्थान में पांच पांच सत्तास्थान होते हैं तथा २७ प्रकृतिक उदयस्थान में ७८ को छोड़कर शेष चार सत्ता स्थान होते हैं। इसी प्रकार २५ २६, २९ और ३० प्रकृतिक बंधस्थानों के भी उदयस्थानों की अपेक्षा सत्तास्थान जानना चाहिये। इस प्रकार २३ प्रकृतिक बंधस्थान में पांच उदयस्थानों की अपेक्षा प्रत्येक में २४ सत्तास्थान होते हैं जिनका कुल जोड़ १२० है। ये सब सत्तास्थान एकेन्द्रिय के हैं।

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२३ प्रकृतिक	४	२१	५	९२, ८८ ८६ ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६ ८० ७८
		२५	७	९२ ८८, ८६, ८० ७८
		२६	१३	९२ ८८ ८६, ८०, ७८
		२७	६	९२ ८८, ८६ ८०
२५ प्रकृतिक	२५	२१	५	९२, ८८, ८६ ८०, ७८
		२४	११	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	७	९२ ८८, ८६, ८० ७८
		२६	१३	९२ ८८, ८६ ८०, ७८
		२७	६	९२ ८८, ८६, ८०

बंधस्थान	भग	उदयस्थान	भग	सत्तास्थान
२६ प्रकृतिक	१६	२१	५	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	७	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	१३	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	६	६२, ८८, ८६, ८०
२९ प्रकृतिक	९२४०	२१	५	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	७	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	१३	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	६	६२, ८८, ८६, ८०
३० प्रकृतिक	४६३२	२१	५	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२४	११	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	७	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	१३	६२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	६	६२, ८८, ८६, ८०

विकलेन्द्रिय—विकलेन्द्रियो मे २३ का बन्ध करने वाले जीवो मे २१ और २६ प्रकृतियो के उदय में पाँच-पाँच उदयस्थान होते हैं तथा शेप चार उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे ७८ के विना चार-चार सत्तास्थान होते है। इस प्रकार २३ प्रकृतिक बन्धस्थान मे २६ सत्तास्थान हुए। इसी प्रकार २५, २६, २९ और ३० प्रकृतिक वन्धस्थानो मे भी अपने-अपने उदयस्थानो की अपेक्षा २६-२६ सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार विकलेन्द्रियो मे पाँच वन्धस्थान मे छह उदयस्थानो के कुल मिलाकर १३० सत्तास्थान होते हैं।

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२३ प्रकृतिक	४	२१	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२८	६	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	१२	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१८	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	१२	९२, ८८, ८६, ८०
२५ प्रकृतिक	२५	२१	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२८	६	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	१२	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१८	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	१२	९२, ८८, ८६, ८०
२६ प्रकृतिक	१६	२१	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२८	६	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	१२	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१८	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	१२	९२, ८८, ८६, ८०
२९ प्रकृतिक	९२४०	२१	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२८	६	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	१२	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१८	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	१२	९२, ८८, ८६, ८०
३० प्रकृतिक	४६३२	२१	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२८	६	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	१२	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१८	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	१२	९२, ८८, ८६, ८०

पंचेन्द्रिय—पचेन्द्रियों मे २३ प्रकृतियो का वन्ध करने वाले के २१, २६, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये छह उदयस्थान होते है। इनमे से २१ और २६ प्रकृतिक उदयस्थानो मे पूर्वोक्त पाँच-पाँच और शेष चार उदयस्थानो मे ७८ के विना चार-चार सत्तास्थान होते है। कुल मिलाकर यहाँ २६ सत्तास्थान है।

२५ और २६ का बन्ध करने वाले के २१, २५, २६, २७, २८, २९, ३० और ३१ प्रकृतिक, ये आठ-आठ उदयस्थान होते है। इनमे से २१ और २६ प्रकृतिक, इन दो उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे पाँच-पाँच सत्तास्थान पहले बताये गये अनुसार ही होते है। २५ और २७ इन दो मे ९२ और ८८ ये दो-दो सत्तास्थान तथा शेप २८ आदि चार उदयस्थानो मे ७८ के बिना चार-चार सत्तास्थान होते है। इस प्रकार २५ और २६ प्रकृतिक बन्धस्थानो मे से प्रत्येक मे ३०-३० सत्तास्थान होते है।

२८ प्रकृतियो का बन्ध करने वाले के २१, २५, २६, २७, २८, २९ ३० और ३१ प्रकृतिक, ये आठ उदयस्थान होते है। ये सब उदयस्थान तिर्यच पचेन्द्रिय और मनुष्यो सबधी लेना चाहिये। क्योंकि २८ का बन्ध इन्ही के होता है। यहाँ २१ से लेकर २९ तक छह उदयस्थानो मे से प्रत्येक मे ९२ और ८८ प्रकृतिक ये दो-दो सत्तास्थान होते है। ३० के उदय मे ९२, ८९, ८८ और ८६ प्रकृतिक, ये चार सत्तास्थान होते है। जिनमे से ८९ की सत्ता उस मनुष्य के जानना चाहिये जो तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता के साथ मिथ्यादृष्टि होते हुए नरकगति के योग्य २८ प्रकृतियो का बन्ध करता है तथा ३१ के उदय मे ९२, ८८ और ८६, ये तीन सत्तास्थान होते है। ये तीनो सत्तास्थान तिर्यच पचेन्द्रिय की अपेक्षा समझना चाहिये, क्योकि अन्यत्र पचेन्द्रिय के ३१ का उदय नही होता है। उसमे भी ८६ प्रकृतिक सत्तास्थान मिथ्यादृष्टि तिर्यच पचेन्द्रियो के होता है, सम्यग्दृष्टि तिर्यच पचेन्द्रिय के नही, क्योकि सम्यग्दृष्टि तिर्यचों के नियम से देवद्विक का वन्ध होने लगता

है अत उनके ८६ प्रकृतियो की सत्ता सम्भव नही है। इस प्रकार २८ प्रकृतिक बन्धस्थान मे कुल १६ सत्तास्थान होते हैं।

२६ प्रकृतियो का बध करने वाले के ये पूर्वोक्त आठ उदयस्थान होते हैं। इनमे से २१ और २६ प्रकृतियो के उदय मे ६२, ८८ ८६, ८०, ७८, ६३ और ८६ प्रकृतिक ये सात सात सत्तास्थान होते हैं। यहाँ तिर्यंचगतिप्रायोग्य २६ का बध करने वालो के प्रारम्भ के पाँच, मनुष्यगतिप्रायोग्य २६ का बध करने वालो के प्रारम्भ के चार और देवगतिप्रायोग्य २६ का बध करने वालो के अतिम दो सत्तास्थान होते है। २८, २६ और ३० के उदय मे ७८ के बिना पूर्वोक्त छह छह सत्तास्थान होते हैं। ३१ के उदय मे प्रारम्भ के चार और २५ तथा २७ के उदय मे ६३, ६२, ८६ और ८८ प्रकृतिक ये चार-चार सत्तास्थान होते हैं। इस प्रकार २६ प्रकृतिक बधस्थान मे कुल ४४ सत्तास्थान होते हैं।

३० प्रकृतियो का बध करने वाले के २६ के बध के समान वे ही आठ उदयस्थान और प्रत्येक उदयस्थान मे उसी प्रकार सत्तास्थान होते हैं। किन्तु यहाँ इतनी विशेषता है कि २१ के उदय मे पहले पाँच सत्तास्थान तिर्यचगतिप्रायोग्य ३० का बध करने वाले के होते हैं और अतिम दो सत्तास्थान मनुष्यगतिप्रायोग्य ३० का बध करने वाले देवो के होते है तथा २६ के उदय मे ६३ और ८६ प्रकृतिक ये दो सत्तास्थान नही होते हैं, क्योकि २६ का उदय तिर्यच और मनुष्यो के अपर्याप्त अवस्था मे होता है परन्तु उस समय देवगतिप्रायोग्य या मनुष्यगतिप्रायोग्य ३० का बध नही होता है, जिससे यहा ६३ और ८६ की सत्ता प्राप्त नही होती है। इस प्रकार ३० प्रकृतिक बन्धस्थान मे कुल ४२ सत्तास्थान प्राप्त होते हैं।

३१ और १ प्रकृति का बध करने वाले के उदयस्थानो और सत्तास्थानो का सवेध मनुष्यगति के समान जानना चाहिये।

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२३ प्रकृतिक	४	२१	१८	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२६	५१८	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२८	११५२	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	१७२८	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	१८८०	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	११५२	९२, ८८, ८६, ८०
२५ प्रकृतिक	२५	२१	२९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	८	९२, ८८
		२६	५७८	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	८	९२, ८८
		२८	११६८	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२९	१७४४	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		३०	२८८८	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		३१	११५२	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
२६ प्रकृतिक	१६	२१	२९	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२५	८	९२, ८८
		२६	५७८	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
		२७	८	९२, ८८
		२८	११६८	९२, ८८, ८६, ८०
		२९	१७४४	९२, ८८, ८६, ८०
		३०	२८८८	९२, ८८, ८६, ८०
		३१	११५६	९२, ८८, ८६, ८०

बंधस्थान	भंग	उदयस्थान	भंग	सत्तास्थान
२८ प्रकृतिक	६	२१	१६	९२ ८८
		२५	८	९२ ८८
		२६	५७३	९२, ८८
		२७	८	९२ ८८
		२८	११५६	९२, ८८
		२९	१७२८	९२ ८८
		३०	२८८०	९२ ८९, ८८, ८६
		३१	११५६	९२ ८८, ८६
२९ प्रकृतिक	९२४८	२१	२७	९२ ८८, ८६ ८० ७८, ९३ ८९
		२५	९	९३ ९२ ८९ ८८
		२६	५७८	९२ ८८ ८६, ८० ७८, ९३ ८९
		२७	९	९३, ९२ ८९ ८८
		२८	११६९	९३ ९२ ८९ ८८ ८६ ८०
		२९	१७४५	९३ ९२, ८९ ८८ ८६, ८०
		३०	२८८८	९३ ९२ ८९ ८८, ८६, ८०
		३१	११५६	९२ ८८ ८६ ८०
३० प्रकृतिक	४६४१	२१	२७	९३, ९२ ८९, ८८, ८६, ८० ७८
		२५	९	८९, ९२ ८९, ८८
		२६	५७६	९२ ८८ ८६, ८०, ७८
		२७	९	९३ ९२, ८९ ८८
		२८	११६९	९३, ९२ ८९ ८८ ८६ ८०
		२९	१७४५	९३ ९२ ८९, ८८, ८६ ८०
		३०	२८८८	९३ ९२ ८९ ८८ ८६ ८०
		३१	११५६	९३ ९२ ८९, ८८, ८०
३१ प्रकृतिक	१	३०	१४४	९३
१ प्रकृतिक	१	३०	१४४	९३ ९२ ८९ ८८ ८० ७९ ७६, ७५

इस प्रकार इन्द्रिय मार्गणा की अपेक्षा नामकर्म के बंध, उदय और सत्ता स्थानो तथा उनके सवेधो का कथन जानना चाहिये ।

अब आगे की गाथा मे बंध आदि स्थानो के आठ अनुयोगद्वारो मे कथन करने का सकेत करते है—

इय कम्मपगइठाणाइं सुट्ठु बंधुदयसंतकम्माणं ।
गइआइएहिं अट्ठसु चउप्पगारेण नेयाणि ॥५३॥

शब्दार्थ—इय—पूर्वोक्त प्रकार से, **कम्मपगइठाणाइं**—कर्म प्रकृतियो के स्थानो को, **सुट्ठु**—अत्यन्त उपयोगपूर्वक, **बंधुदयसंतकम्माणं**—बंध, उदय और सत्ता सम्बन्धी कर्म प्रकृतियो के, **गइआइएहिं**—गति आदि मार्गणास्थानो के द्वारा, **अट्ठसु**—आठ अनुयोगद्वारो मे, **चउप्पगारेण**—चार प्रकार से, **नेयाणि**—जानना चाहिये ।

गाथार्थ—ये पूर्वोक्त बंध, उदय और सत्ता सम्बन्धी कर्म प्रकृतियो के स्थानो को अत्यन्त उपयोगपूर्वक गति आदि मार्गणास्थानो के साथ आठ अनुयोगद्वारों मे चार प्रकार से जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—इस गाथा से पूर्व तक ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की मूल और उत्तर प्रकृतियो के बंध, उदय और सत्ता स्थानो का सामान्य रूप से तथा जीवस्थान, गुणस्थान, गतिमार्गणा और इन्द्रियमार्गणा मे निर्देश किया है । लेकिन इस गाथा मे कुछ विशेष सकेत करते है कि जैसा पूर्व मे गति आदि मार्गणाओ मे कथन किया गया है, उसके साथ उनको आठ अनुयोगद्वारों मे घटित कर लेना चाहिये । इसके साथ यह भी सकेत किया है कि सिर्फ प्रकृतिबंध रूप नही किन्तु 'चउप्पगारेण नेयाणि' प्रकृतिबंध के साथ स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप से भी घटित करना चाहिये । क्योकि ये बंध, उदय और

सत्ता रूप सब कर्म प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश के भेद से चार-चार प्रकार के हैं।

इन चारो प्रकार रूप कर्मों को किन मे और किसके द्वारा घटित करने के लिए गाथा मे सकेत किया है कि— गइआइएहिं अट्ठसु— गति आदि चौदह मार्गणाओ के द्वारा आठ अनुयोगद्वारो मे इनका चिन्तन करना है।

मार्गणा शब्द का अर्थ अन्वेषण करना है। अत मार्गणा का यह अर्थ हुआ कि जिनके द्वारा या जिनमे जीवो का अन्वेषण किया जाता है, उन्हे मार्गणा कहते हैं। मार्गणा के चौदह भेद इस प्रकार हैं—

गइ इदिए य काए जोए वेए कसाय नाण य।
सजम दसण लेसा भव सम्मे सन्नि आहारे॥

१ गति, २ इन्द्रिय, ३ काय, ४ योग, ५ वेद, ६ कषाय, ७ ज्ञान, ८ सयम, ९ दर्शन, १० लेश्या, ११ भव्यत्व, १२ सम्यक्त्व, १३ सज्ञी और १४ आहार। इनके १४ भेदो के उत्तर भेद ६२ होते हैं।

वर्णन की यह परम्परा है कि जीव सम्बन्धी जिस किसी भी अवस्था का वर्णन करना है, उसका पहले सामान्य रूप से वर्णन किया जाता है और उसके बाद उसका विशेष चिन्तन चौदह मार्गणाओ द्वारा आठ अनुयोगद्वारो मे किया जाता है। अनुयोगद्वार यह अधिकार का पर्यायवाची नाम है और विषय विभाग की दृष्टि से ये अधिकार हीनाधिक भी किये जा सकते हैं। परन्तु मार्गणाओ का विस्तृत विवेचन मुख्य रूप से आठ अधिकारो मे ही पाया जाता है, अत मुख्य रूप से आठ ही लिये जाते हैं। इन आठ अधिकारो के नाम इस प्रकार हैं—

सत पयपरूवणया दव्वपमाण च खित्तफुसणा य।
कालो य अतर भाग भाव अप्पा बहु चेव[1]॥

---

१ आवश्यक निर्युक्ति गा० १३

१ सत्, २ सख्या, ३ क्षेत्र, ४ स्पर्शन, ५ काल, ६ अन्तर, ७ भाव और ८ अल्पबहुत्व। इन अधिकारो का अर्थ इनके नामो से ही स्पष्ट हो जाता है। अर्थात् सत् अनुयोगद्वार मे यह बताया जाता है कि विवक्षित धर्म किन मार्गणाओ मे है और किन मे नही है। सख्या अनुयोगद्वार मे उस विवक्षित धर्म वाले जीवों की सख्या बतलाई जाती है। क्षेत्र अनुयोगद्वार मे विवक्षित धर्म वाले जीवों का वर्तमान निवास-स्थान बतलाया जाता है। स्पर्शन अनुयोगद्वार में उन विवक्षित धर्म वाले जीवो ने जितने क्षेत्र का पहले स्पर्श किया हो, अब कर रहे है और आगे करेगे उस सबका समुच्चय रूप से निर्देश किया जाता है। काल अनुयोगद्वार मे विवक्षित धर्म वाले जीवों की जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति का विचार किया जाता है। अन्तर शब्द का अर्थ विग्रह या व्यवधान है अत· अन्तर अनुयोगद्वार मे यह बताया जाता है कि विवक्षित धर्म का सामान्य रूप से या किस मार्गणा मे कितने काल तक अन्तर रहता है या नही रहता है। भाव अनुयोगद्वार मे उस विवक्षित धर्म के भाव का तथा अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार मे उसके अल्पबहुत्व का विचार किया जाता है।

यद्यपि गाथा मे सिर्फ इतना संकेत किया गया है कि इसी प्रकार बंध, उदय और सत्ता रूप कर्मो का तथा उनके अवान्तर भेद-प्रभेदों का प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश रूप से गति आदि मार्गणाओ के द्वारा आठ अनुयोगद्वारो मे विवेचन कर लेना चाहिये जैसा कि पहले वर्णन किया गया है। लेकिन इस विषय मे टीकाकार आचार्य मलयगिरि का वक्तव्य है कि 'यद्यपि आठो कर्मो के सत् अनुयोगद्वार का वर्णन गुणस्थानो मे सामान्य रूप से पहले किया ही गया है और संख्या आदि सात अनुयोगद्वारो का व्याख्यान कर्मप्रकृति प्राभृत ग्रथो को देखकर करना चाहिये। किन्तु कर्मप्रकृति प्राभृत आदि ग्रथ वर्तमान काल मे उपलब्ध नही है, इसलिये इन सख्यादि अनुयोग-

द्वारो का व्याख्यान करना कठिन है। फिर भी जो प्रत्युत्पन्नमति विद्वान हैं वे पूर्वापर सम्बन्ध को देखकर उनका व्याख्यान करें।

टीकाकार आचार्यश्री के उक्त कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि गाथा मे जिस विषय की सूचना दी गई है उस विषय का प्रतिपादन करने वाले ग्रथ वतमान मे नही पाये जाते हैं। फिर भी विभिन्न ग्रन्थो की सहायता से मार्गणाओ मे आठ कर्मों की मूल और उत्तर प्रकृतियो के बध, उदय और सत्ता स्थानो के सवेध का विवरण नीचे लिखे अनुसार जानना चाहिये। पहले ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, आयु, गोत्र और अतराय इन छह कर्मों के बध आदि स्थानो का निर्देश करने के बाद मोहनीय व नाम कर्म के बधादि स्थानो को बतलायेंगे।

मार्गणाओ मे ज्ञानावरण आदि छह कर्मों के बध आदि स्थानो का विवरण इस प्रकार है—

क्रम सं०	मार्गणा नाम	मूल प्रकृति भग ७	ज्ञाना० भग २	दर्शना० भग ११	वेदनीय भग ८	आयु० भग २८	गोत्र भग ७	अतराय भग २
१	नरकगति	२	१	४	४	५	२	१
२	तिर्यचगति	२	१	४	४	६	३	१
३	मनुष्यगति	७	२	११	८	६	६	२
४	देवगति	२	१	४	४	५	४	१
५	एकेन्द्रिय	२	१	२	४	५	३	१
६	द्वीन्द्रिय	२	१	२	४	५	३	१
७	त्रीन्द्रिय	२	१	२	४	५	३	१
८	चतुरिन्द्रिय	२	१	२	४	५	३	१
९	पचेन्द्रिय	७	२	११	८	२८	७	२
१०	पृथ्वीकाय	२	१	२	४	५	३	१
११	अप्काय	२	१	२	४	५	२	१
१२	तेजकाय	२	१	२	४	३	२	१
१३	वायुकाय	२	१	२	४	३	२	१

क्रम सं०	मार्गणा नाम	मूल प्रकृति भंग ७	ज्ञाना० भंग २	दर्शना० भंग ११	वेदनीय भंग ८	आयु० भंग २८	गोत्र भंग ७	अंतराय भंग २
१४	वनस्पतिकाय	२	१	२	४	५	३	१
१५	त्रसकाय	७	२	११	८	२८	७	२
१६	मनोयोग	६	२	११	४	२८	५	२
१७	वचनयोग	६	२	११	४	२८	५	२
१८	काययोग	६	२	११	४	२८	६	२
१९	स्त्रीवेद	२	१	७	४	२३	५	१
२०	पुरुषवेद	२	१	७	४	२३	५	१
२१	नपुंसकवेद	२	१	७	४	२३	५	१
२२	क्रोध	२	१	७	४	२८	५	१
२३	मान	२	१	७	४	२८	५	१
२४	माया	२	१	७	४	२८	५	१
२५	लोभ	३	१	७	४	२८	५	१
२६	मतिज्ञान	५	२	९	४	२०	३	२
२७	श्रुतज्ञान	५	२	९	४	२०	३	२
२८	अवधिज्ञान	५	२	९	४	२०	३	२
२९	मनःपर्यायज्ञान	५	२	९	४	६	२	२
३०	केवलज्ञान	२	०	०	६	१	२	०
३१	मत्यज्ञान	२	१	२	४	२८	५	१
३२	श्रुतअज्ञान	२	१	२	४	२८	५	१
३३	विभंगज्ञान	२	१	२	४	२८	४	१
३४	सामायिक	२	१	५	४	६	१	१
३५	छेदोपस्थापन	२	१	५	४	६	१	१
३६	परिहारविशुद्धि	२	१	२	४	६	१	१
३७	सूक्ष्मसंपराय	१	१	३	२	२	१	१
३८	यथाख्यात	४	१	४	६	२	२	१
३९	देशविरत	२	१	२	४	१२	२	१
४०	अविरत	२	१	४	४	२८	५	१
४१	चक्षुदर्शन	५	२	११	४	२८	५	२
४२	अचक्षुदर्शन	५	१	११	४	२८	६	२
४३	अवधिदर्शन	५	२	९	४	२०	३	२
४४	केवलदर्शन	२	०	०	६	१	२	०

मार्गणाओ मे नामकर्म के बंध, उदय, सत्तास्थान और उनके भगो का

१२८५०	८	२१, २५, २६, २७ २८, २९, ३० ३१
४६३५	९	२०, २१, २५ २६, २७, २८, २९ ३० ३१
१३९४५	१२	२०, २१, २४ २५ २६ २७, २८, २९, ३० ३१, ९, ८
१३९२६	९	२१, २४ २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१
३५	८	२१ २५ २६ २७, २८ २९, ३० ३१
३५	११	२०, २१, २५, २६, २७ २८, २९, ३०, ३१, ९, ८
३४	८	२१, २५, २६, २७, २८, २९, ३० ३१
१६	३	२९ ३० ३१
९६०८	७	२१, २४ २५, २६ २९ ३० ३१
१३९२५	९	२१, २४ २५, २६ २७, २८, २९ ३० ३१
१३९४५	८	२१, २५ २६ २७, २८, २९, ३०, ३१
१३९२६	९	२१, २४, २५ २६, २७, २८ २९, ३०, ३१
१३९४५	९	२१, २४, २५ २६ २७, २८, २९, ३० ३१
१३९४१	४	२० २१ ९, ८

१०, ९, ८, ७, ६, ५ ४, २, १ ०	अष्टक ४० भग ८	२४४	२८८	१७३
१०, ९, ८ ७, ६, ५ ४, २ १ ०	अष्टक ४० भग ८	२४४	२८८	१७३
९, ८, ७ ६ ५ ४, २, १, ०	चौबीसी २४ भग २३	५९९	१५६	३७७
९, ८, ७, ६, ५, ४, २, १, ०	चौबीसी २४ भग २३	५९९	१५६	३७७
९, ८, ७, ६, ५, ४, २, १, ०	चौबीसी २४ भग २३	५९९	१५६	३७७
७, ६, ५, ४, २ १, ०	चौबीसी ८ भग २३	२१५	४८	१०९
०	०	०	०	०

		नामकर्म के सत्तास्थान १२
५	३	९२, ८९, ८८
१०	५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
१२	११	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७६, ७५, ९, ८
२४	४	९३, ९२, ८९, ८८,
४२	५	९२, ८८, ८६, ८८, ७८
२२	५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
२२	५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
२२	५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
८३	१२	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५, ९, ८
२४	५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
२०	५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
१२	५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
१५	५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
३५	५	९२, ८८, ८६, ८०, ७८
४९	१२	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५, ९, ८
७४	९	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७६, ७५
८२	९	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७६, ७५
८९	१०	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५
७०	१०	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५
९३	१०	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५
१९	१०	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५
८३	१०	९३, ९२, ८९, ८८, ८६, ८०, ७९, ७८, ७६, ७५

क्रम सं०	मार्गणा नाम	मूल प्रकृति भंग ७	ज्ञाना० भंग २	दर्शना० भंग ११	वेदनीय भंग ८	आयु० भंग २८	गोत्र भंग ७	अंतराय भंग २
४५	कृष्णलेश्या	२	१	४	४	२८	५	१
४६	नीललेश्या	२	१	४	४	२८	५	१
४७	कापोत लेश्या	२	१	४	४	२८	५	१
४८	तेजोलेश्या	२	१	४	४	२१	४	१
४९	पद्मलेश्या	२	१	४	४	२१	४	१
५०	शुक्ललेश्या	६	२	११	४	१६/२१	५	२
५१	भव्यत्व	७	२	११	८	२८	७	२
५२	अभव्यत्व	२	१	२	४	२८	५	१
५३	उपशम सम्यक्त्व	३	२	६	४	१६	३	२
५४	क्षायिक ,,	७	२	९	८	१५	४	२
५५	क्षायोपशमिक	२	१	२	४	२०	२	१
५६	मिश्र ,,	१	१	२	४	१६	२	१
५७	सासादन ,,	२	१	२	४	२६	४	१
५८	मिथ्यात्व ,,	२	१	२	४	२८	५	१
५९	संज्ञी	७/५	२	११	८	२८	७	२
६०	असंज्ञी	२	१	२	४	२४	३	१
६१	आहारी	६	२	११	४	२८	६	२
६२	अनाहारी	३	१/०	४/०	८	४	७	१

मार्गणाओं में मोहनीय और नाम कर्म के बंध, उदय, सत्ता के संवेध भंगों का विवरण संलग्न चार्टों में देखिए।

अब आगे की गाथा में उदय से उदीरणा की विशेषता बतलाते हैं—

उदयस्सुदीरणाए सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो ।[1]
मोत्तूण य इगुयालं सेसाणं सव्वपगईणं ॥५४॥

---

[1] तुलना कीजिए —

(क) उदओ उदीरणाए तुल्लो मोत्तूण एक्कचत्तालं ।
आवरणविग्घसंजलण लोभवेए यदिट्ठिदुगं ॥—कर्मप्रकृति उदया० गा०

(ख) उदयस्सुदीरणस्स य सामित्तादो ण विज्जदि विसेसो ।

—गो० कर्मकांड गा० २७८

शब्दार्थ—उदयस्स—उदय के, उदीरणाए—उदीरणा के, सामित्ताओ—स्वामित्व मे, न विज्जइ—नही है, विसेसो—विशेषता, मोत्तूण—छोडकर, य—और, इगुयालं—इकतालीस प्रकृतियो को, सेसाणं—बाकी की, सव्वपगईणं—सभी प्रकृतियो के।

गाथार्थ—इकतालीस प्रकृतियों के सिवाय शेष सब प्रकृतियो के उदय और उदीरणा के स्वामित्व मे कोई विशेपता नही है।

विशेषार्थ—ग्रंथ मे बन्धस्थान, उदयस्थान और सत्तास्थानो के साथ इन सबके सवेध का विचार किया गया। लेकिन उदय व उदीरणा में यथासम्भव समानता होने से उसका विचार नही किये जाने के कारण को स्पष्ट करने के लिये इस गाथा मे बताया गया है कि उदय और उदीरणा मे यद्यपि अन्तर नही है, लेकिन इतनी विशेपता है कि इकतालीस कर्म प्रकृतियो के उदय और उदीरणा मे भिन्नता है। इसलिये उदययोग्य १२२ प्रकृतियो में से ४१ प्रकृतियो को छोड़कर शेप ८१ प्रकृतियो के उदय और उदीरणा मे समानता जाननी चाहिये।

उदय और उदीरणा के लक्षण क्रमश. इस प्रकार है कि काल-प्राप्त कर्म परमाणुओ के अनुभव करने को उदय कहते हैं और उदयावलि के बाहर स्थित कर्म परमाणुओ को कपाय सहित या कषाय रहित योग सज्ञा वाले वीर्य विशेप के द्वारा उदयावलि मे लाकर उनका उदयप्राप्त कर्म परमाणुओं के साथ अनुभव करना उदीरणा कहलाता है।[1] इस प्रकार कर्म परमाणुओ का अनुभवन

---

१ इह कालप्राप्ताना परमाणूनामनुभवनमुदयः, अकालप्राप्तानामुदयावलिकावहि स्थितताना कपायसहितेनासहितेन वा योगसज्ञकेन वीर्यविशेषण समाकृष्योदयप्राप्तै कर्मपरमाणुभि. सहानुभवनमुदीरणा।

—सप्ततिका प्रकरण टीका पृ०, २४२

उदय और उदीरणा मे समान है। फिर भी दोनो मे कालप्राप्त और अकालप्राप्त कर्म परमाणुओ के अनुभवन का अतर है। अर्थात उदय मे कालप्राप्त कर्म परमाणु रहते हैं तथा उदीरणा मे अकालप्राप्त कर्म परमाणु रहते हैं। तो भी सामान्य नियम यह है कि जहाँ जिस कर्म का उदय रहता है वहाँ उसकी उदीरणा अवश्य होती है।[1]

लेकिन इसके सात अपवाद हैं। वे अपवाद इस प्रकार जानने चाहिये—

१ जिनका स्वोदय से सत्वनाश होता है उनका उदीरणा विच्छेद एक आवलिकाल पहले ही हो जाता है और उदय विच्छेद एक आवलिकाल बाद होता है।

२ वेदनीय और मनुष्यायु की उदीरणा छठे प्रमत्तसयत गुणस्थान तक ही होती है। जबकि इनका उदय अयोगिकेवली गुणस्थान तक होता है।

३ जिन प्रकृतियो का अयोगिकेवली गुणस्थान मे उदय है, उनकी उदीरणा सयोगिकेवली गुणस्थान तक ही होती है।

४ चारो आयुकर्मो का अपन-अपन भव की अतिम आवलि मे उदय ही होता है उदीरणा नही होती है।

५ निद्रादि पाच का शरीरपर्याप्ति के बाद इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण होने तक उदय ही होता है, उदीरणा नही होती है।

६ अतरकरण करने के बाद प्रथमस्थिति मे एक आवली काल शेष रहने पर मिथ्यात्व का क्षायिक सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाले के सम्यक्त्व का और उपशमश्रेणि मे जो जिस वेद के उदय से उपशमश्रेणि पर चढा है उसके उस वेद का उदय ही होता है उदीरणा नही होती है।

---

१ जत्थ उदओ तत्थ उदीरणा, जत्थ उदीरणा तत्थ उदओ।

७. उपशमश्रेणि के सूक्ष्मसपराय गुणस्थान में भी एक आवलि-काल शेष रहने पर सूक्ष्म लोभ का उदय ही होता है उदीरणा नही होती है।

उक्त सात अपवादो वाली ४१ प्रकृतियां है, जिससे ग्रंथकार ने ४१ प्रकृतियों को छोडकर शेष सब प्रकृतियो के उदय और उदीरणा मे स्वामित्व की अपेक्षा कोई विशेषता नही बतलाई है।

अब आगे की गाथा मे उन ४१ प्रकृतियो को बतलाते है जिनके उदय और उदीरणा मे विशेषता है।

नाणतरायदसगं दंसणनव वेयणिज्ज मिच्छत्तं ।
सम्मत्त लोभ वेयाऽऽउगाणि नवनाम उच्चं च ॥५५॥

शब्दार्थ—**नाणंतरायदसगं**—ज्ञानावरण और अतराय की दस, **दंसणनव**—दर्शनावरण की नौ, **वेयणिज्ज**—वेदनीय की दो, **मिच्छत्तं**—मिथ्यात्व, **सम्मत्त**—सम्यक्त्व मोहनीय, **लोभ**—सज्वलन लोभ, **वेयाऽऽउगाणि**—तीन वेद और चार आयु, **नवनाम**—नाम कर्म की नौ प्रकृति, **उच्च**—उच्चगोत्र, **च**—और।

गाथार्थ—ज्ञानावरण और अंतराय कर्म की कुल मिलाकर दस, दर्शनावरण की नौ, वेदनीय की दो, मिथ्यात्व मोहनीय, सम्यक्त्व मोहनीय, सज्वलन लोभ, तीन वेद, चार आयु, नामकर्म की नौ, और उच्च गोत्र, ये इकतालीस प्रकृतियाँ हैं, जिनके उदय और उदीरणा मे स्वामित्व की अपेक्षा विशेपता है।

विशेषार्थ—गाथा मे उदय और उदीरणा में स्वामित्व की अपेक्षा विशेपता वाली इकतालीस प्रकृतियो के नाम बतलाये है। वे इकतालीस प्रकृतियाँ इस प्रकार है—ज्ञानावरण की मतिज्ञानावरण आदि पाँच, अतराय की दानान्तराय आदि पाँच तथा दर्शनावरण की

चक्षुदर्शनावरण आदि चार, कुल मिलाकर इन चौदह प्रकृतियो की बारहवें क्षीणमोह गुणस्थान में एक आवलि काल शेप रहने तक उदय और उदीरणा बरावर होती रहती है। परन्तु एक आवलि काल के शेप रह जाने पर उसके बाद उक्त चौदह प्रकृतियो का उदय ही होना है किन्तु उदयावलिगत कर्मदलिक सब करणो के अयोग्य होते हैं, इस नियम के अनुसार उनकी उदीरणा नही होती है।

शरीरपर्याप्ति से पर्याप्त हुए जीवो के शरीरपर्याप्ति के समाप्त होने के अनन्तर समय से लेकर जब तक इन्द्रियपर्याप्ति पूर्ण नही होती तब तक दर्शनावरण की शेप निद्रा आदि पाच प्रकृतियो का उदय ही होता है उदीरणा नही होती है। इसके अतिरिक्त शेष काल मे उनका उदय और उदीरणा एक साथ होती है और उनका विच्छेद[1] भी एक साथ होता है।

साता और असाता वेदनीय का उदय और उदीरणा प्रमत्तसयत गुणस्थान तक एक साथ होती है, किन्तु अगले गुणस्थानो मे इनका उदय ही होता है, उदीरणा नही होती है। प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले जीव के अतरकरण करने के पश्चात प्रथमस्थिति म एक आवलि प्रमाण काल के शेप रहने पर मिथ्यात्व का उदय ही होता है, उदीरणा नही होती है तथा क्षायिक सम्यक्त्व को उत्पन्न करने वाले जिन वेदक सम्यग्दृष्टि जीव ने मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व का क्षय करके सम्यक्त्व की सर्वअपवर्तना के द्वारा अपवर्तना करके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति शेप रखी है और उसके बाद उदय तथा

---

१ दिगम्बर परपरा म निद्रा और प्रचला का उदय और सत्वविच्छेद क्षीणमोह गुणस्थान म एक साथ बतलाया है। इसलिये इस अपेक्षा से इनम से जिस उदयगत प्रकृति की उदयव्युच्छित्ति और सत्वव्युच्छित्ति एक साथ होगी, उसकी उदयव्युच्छित्ति के एक आवलिकाल पूर्व ही उदीरणा व्युच्छित्ति हो जायगी।

उदीरणा के द्वारा उसका अनुभव करते हुए जब एक आवलि स्थिति शेप रह जाती है तब सम्यक्त्व का उदय ही होता है उदीरणा नही होती है। सज्वलन लोभ का उदय और उदीरणा एक साथ होती है। जब सूक्ष्मसपराय का समय एक आवलि शेप रहता तब आवलि मात्र काल मे लोभ का उदय ही होता है, उदीरणा नही होती है।

तीन वेदो मे से जिस वेद से जीव श्रेणि पर चढता है, उसके अन्तरकरण करने के बाद उस वेद की प्रथमस्थिति मे एक आवलि प्रमाण काल के शेप रहने पर उदय ही होता है, उदीरणा नही होती है। चारो ही आयुओ का अपने-अपने भव की अन्तिम आवलि प्रमाण काल के शेप रहने पर उदय ही होता है, उदीरणा नही होती। लेकिन मनुष्यायु मे इतनी विशेपता है कि इसका प्रमत्तसयत गुणस्थान के बाद उदय ही होता है, उदीरणा नही होती है।[1]

मनुष्यगति, पचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश कीर्ति और तीर्थंकर ये नामकर्म की नौ प्रकृतियाँ हैं[2] और उच्चगोत्र, इन दस प्रकृतियो का सयोगिकेवली गुणस्थान तक उदय और उदीरणा दोनो ही सम्भव हैं किन्तु अयोगिकेवली गुणस्थान मे इनका उदय ही होता है, उदीरणा नहीं होती है।[3]

---

१ अन्यच्च मनुष्यायुप. प्रमत्तगुणस्थानकादूर्ध्वमुदीरणा न भवति किन्तूदय- एव केवल.।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २४२-२४३

२ मणुयगइजाइतसबादर च पज्जत्तसुभगमाइज्ज।
जसकित्ती तित्थयर नामस्स हवति नव एया॥

३ ······सयोगिकेवलिगुणस्थानक यावद् युगपद् उदय-उदीरणे-अयोग्यव- स्थायां तूदय एव नोदीरणा।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २४३

इस प्रकार पिछली गाथा मे उदय और उदीरणा मे स्वामित्व की अपेक्षा जिन इकतालीस प्रकृतियो की विशेषता का निर्देश किया था। उन इकतालीस प्रकृतियो के नाम कारण सहित इस गाथा मे बतलाये हैं कि उनकी उदीरणा क्यो नही होती है। अब आगे की गाथाओ मे गुणस्थानो मे प्रकृतियो के बध को बतलाते हैं।

गुणस्थानों मे प्रकृतियों का बध

तित्थगराहारगविरहियाओ अज्जेइ सव्वपगईओ।
मिच्छत्तवेयगो सासणो वि इगुवीससेसाओ ॥५६॥

शब्दार्थ—तित्थगराहारग—तीर्थंकर नाम और आहारकद्विक, विरहियाओ—बिना अज्जेइ—उपार्जित, बध करता है सव्वपगईओ—सभी प्रकृतियो का मिच्छत्तवेयगो—मिथ्यादृष्टि, सासणो—सासादन गुणस्थान वाला वि—भी, इगुवीस—उन्नीस, सेसाओ—शेष, बाकी की।

गाथार्थ—मिथ्यादृष्टि जीव तीर्थंकर नाम और आहारकद्विक के बिना शेष सब प्रकृतियो का बध करता है तथा सासादन गुणस्थान वाला उन्नीस प्रकृतियो के बिना शेष प्रकृतियो को बाधता है।

विशेषार्थ—गुणस्थान मिथ्यात्व, सासादन आदि चौदह हैं और ज्ञानावरण आदि आठ मूल कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ १४८ हैं। उनमे से बधयोग्य प्रकृतियों की सख्या १२० मानी गई है। बध की अपेक्षा १२० प्रकृतियों के मानने का मतलब यह नही है कि शेष २८ प्रकृतियाँ छोड़ दी जाती हैं। लेकिन इसका कारण यह है कि पाँच बधन और पाँच सघातन ये दस प्रकृतियाँ शरीर की अविनाभावी हैं, अत जहाँ जिस शरीर का बध होता है वहाँ उस बधन और सघातन का बध अवश्य होता है। जिससे इन दस प्रकृतियो को अलग से नही गिनाया

प्रमत्तविरत मे सत्तावन के विना शेष प्रकृतियो का वध
होता है।

विशेषार्थ—पहले और दूसरे गुणस्थान मे वंधयोग्य प्रकृतियों को पूर्व गाथा में वतलाया है। इस गाथा मे मिश्र आदि चार गुणस्थानो की वध प्रकृतियो का निर्देश करते है। जिनका विवरण नीचे लिखे अनुसार है :—

तीसरे मिश्र गुणस्थान मे 'छायालसेम मीसो' वंधयोग्य १२० प्रकृतियो मे से छियालीस प्रकृतियो को घटाने पर शेष रही १२०—४६ =७४ प्रकृतियो का वध होता है। इसका कारण यह है कि दूसरे सासादन गुणस्थान तक अनन्तानुवधी का उदय होता है, लेकिन तीसरे मिश्र गुणस्थान मे अनन्तानुवधी का उदय नही होता है। अत· अनन्तानुवन्धी के उदय से जिन २५ प्रकृतियो का वध होता है, उनका यहाँ बंध नही है। अर्थात् तीसरे मिश्र गुणस्थान मे सासादन गुणस्थान की वधयोग्य १०१ प्रकृतियो से २५ प्रकृतियाँ और घट जाती है। वे २५ प्रकृतियाँ ये हैं—स्त्यानर्द्धित्रिक, अनन्तानुवंधीचतुष्क, स्त्रीवेद, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु, प्रथम और अन्तिम को छोडकर मध्य के चार सस्थान, प्रथम और अन्तिम को छोडकर मध्य के चार सहनन, उद्योत, अप्रशस्त विहायोगति, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और नीच गोत्र। इसके अतिरिक्त यह नियम है कि मिश्र गुणस्थान मे किसी भी आयु का बंध नही होता है अतः यहाँ मनुष्यायु और देवायु, ये दो आयु और कम हो जाती है। मनुष्यायु और देवायु, इन दो आयुयो को घटाने का कारण यह है कि नरकायु का बधविच्छेद पहले और तिर्यंचायु का बधविच्छेद दूसरे गुणस्थान मे हो जाता है। अत· आयु कर्म के चारो भेदो मे से शेष रही मनुष्यायु और देवायु, इन दो प्रकृतियो को ही यहाँ कम किया जाता है। इस प्रकार सासा-

दन गुणस्थान मे नही बँधने वाली १९ प्रकृतियो मे इन २५+२=२७ प्रकृतियो को मिला देने पर ४६ प्रकृतिया होती हैं जिनका मिश्र गुण स्थान मे बध नही होता है। किन्तु १२० प्रकृतियो मे से ४६ प्रकृतियो के सिवाय शेष रही ७४ प्रकृतियो का बध होता है।

चौथे अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे ४३ प्रकृतियो के बिना शेष ७७ प्रकृतियो का बध होता है—'अविरयसम्मो तियालपरिसेसा।' इसका कारण यह है कि अविरतसम्यग्दृष्टि जीव के मनुष्यायु, देवायु और तीर्थकर नाम, इन तीन प्रकृतियो का बध सम्भव है। अत यहा बधयोग्य १२० प्रकृतियो मे से ४६ न घटाकर ४३ प्रकृतियाँ ही घटाई हैं। इस प्रकार अविरतिसम्यग्दृष्टि गुणस्थान मे ७७ प्रकृतियो का बध बतलाया है।

देशविरत नामक पाँचवें गुणस्थान मे ५३ के बिना ६७ प्रकृतिया का बध बतलाया है—'तेवण्ण देसविरओ। इसका अर्थ यह है कि अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से जिन दस प्रकृतियो का बध अविरतसम्यग्दृष्टि जीव के होता है, अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय न होने से उनका यहाँ बध नही होता है। अत चौथे गुणस्थान मे कम की गई ४३ प्रकृतियो मे १० प्रकृतियो को और जोड देने पर देशविरत गुणस्थान मे बध के अयोग्य ५३ प्रकृतिया हो जाती हैं और इनके अतिरिक्त शेष रही ६७ प्रकृतियो का बध होता है।

अप्रत्याख्यानावरण कषाय के उदय से बधने वाली १० प्रकृतियो के नाम इस प्रकार हैं— अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान माया, लोभ, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, मनुष्यायु, औदारिक शरीर औदारिक अगोपाग और वज्रऋषभनाराच सहनन।

छठे प्रमत्तविरत गुणस्थान मे ५७ के बिना ६३ प्रकृतियो का बध होता है। इसका आशय यह है कि प्रत्याख्यानावरण के उदय से जिन

प्रत्याख्यानावरणचतुष्क (क्रोध, मान, माया, लोभ) का बंध देशविरत गुणस्थान तक होता था, उनका प्रमत्तविरत गुणस्थान में बंध नहीं होता है। अतः जिन ५३ प्रकृतियों को देशविरत गुणस्थान में बंधने के अयोग्य बतलाया है, उनमें इन चार प्रकृतियों के और मिला देने पर प्रमत्तविरत गुणस्थान में ५७ प्रकृतियाँ बंध के अयोग्य होती हैं—'विरओ सगवण्णसेसाओ।' इसलिये प्रमत्तविरत गुणस्थान में ६३ प्रकृतियों का बंध होता है।

अब आगे की गाथा में सातवें और आठवें गुणस्थान में बंध प्रकृतियों की संख्या का निर्देश करते हैं।

इगुसट्ठिमप्पमत्तो बंधइ देवाउयस्स इयरो वि।
अट्ठावण्णमपुव्वा छप्पण्णं वा वि छव्वीसं ॥५८॥

शब्दार्थ—इगुसट्ठि—उनसठ प्रकृतियों के, अप्पमत्तो—अप्रमत्तसंयत, बंधइ—बंध करता है, देवाउयस्स—देवायु का बंधक, इयरो वि—अप्रमत्त भी, अट्ठावण्ण—अट्ठावन, अपुव्वो—अपूर्वकरण गुणस्थान वाला, छप्पण्ण—छप्पन, वा वि—अथवा भी, छव्वीसं—छब्बीस।

गाथार्थ—अप्रमत्तसंयत गुणस्थानवर्ती जीव उनसठ प्रकृतियों का बंध करता है। यह देवायु का भी बंध करता है। अपूर्वकरण गुणस्थान वाला अट्ठावन, छप्पन अथवा छब्बीस प्रकृतियों का बंध करता है।

विशेषार्थ—इस गाथा में सातवें अप्रमत्तसंयत और आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान में बंधयोग्य प्रकृतियों की संख्या का निर्देश किया है। लेकिन यहाँ कथन शैली की यह विशेषता है कि पिछली गाथाओं में तो किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों का बंध नहीं होता है—इसको मुख्य मानकर बंध प्रकृतियाँ बतलाई थीं किन्तु इस गाथा से उस क्रम को बदल कर यह बतलाया है कि किस गुणस्थान में कितनी प्रकृतियों

का बंध होता है। अतः अब गाथा के संकेतानुसार गुणस्थानों में बंध प्रकृतियों की संख्या का निर्देश करते हैं।

सातवें अप्रमत्तविरत गुणस्थान में उनसठ प्रकृतियों का बंध होता है—'इगुसट्ठिमप्पमत्तो'। यह तो पहले बतलाया जा चुका है कि छठे प्रमत्तविरत गुणस्थान में ६३ प्रकृतियों का बंध होता है, उनमें से असातावेदनीय, अरति, शोक, अस्थिर, अशुभ और अयश कीर्ति, इन छह प्रकृतियों का सातवें गुणस्थान में बंध नहीं होता है, छठे गुणस्थान तक बंध होता है। अतः पूर्वोक्त ६३ प्रकृतियों में से इन ६ प्रकृतियों को कम कर देने पर ५७ प्रकृतियाँ शेष रहती हैं, लेकिन इस गुणस्थान में आहारकद्विक का बंध होता है जिससे ५७ में २ प्रकृतियों को और मिला देने पर अप्रमत्तसंयत के ५६ प्रकृतियों का बंध कहा गया है।

उक्त ५६ प्रकृतियों में देवायु भी सम्मिलित हैं लेकिन ग्रन्थकार ने अप्रमत्तसंयत देवायु का भी बंध करता है—'बंधइ देवाउयस्स इयरो वि'—इस प्रकार पृथक से निर्देश किया है। उसका अभिप्राय यह है कि देवायु के बंध का प्रारम्भ प्रमत्तसंयत ही करता है फिर भी वह जीव देवायु का बंध करते हुए अप्रमत्तसंयत भी हो जाता है और इस प्रकार अप्रमत्तसंयत भी देवायु का बंधक होता है। परन्तु इससे कोई यह न समझे कि अप्रमत्तसंयत भी देवायु के बंध का प्रारम्भ करता है। 'अप्रमत्तसंयत देवायु के बंध का प्रारम्भ करता है।' यदि यह अभिप्राय लिया जाता है तो ऐसा सोचना उचित नहीं है। इसी बात को स्पष्ट करने के लिये ग्रन्थकार ने 'अप्रमत्तसंयत भी देवायु का बंध करता है' यह निर्देश किया है।[1]

---

१ एतेनतत् सूच्यते—प्रमत्तसंयत एवायुर्बन्धं प्रथमत आरभते, आरभ्य च कश्चिदप्रमत्तभावमपि गच्छति, तत एवमप्रमत्तसंयतोऽपि देवायुषो बन्धको भवति न पुनरप्रमत्तसंयत एव सन् प्रथमत आयुर्बन्धमारभत इति।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २४४

अपूर्वकरण नामक आठवे गुणस्थान मे अट्ठावन, छप्पन और छव्वीस प्रकृतियो का वध होता है। प्रकृतियो की सख्या मे भिन्नता का कारण यह है कि पूर्वोक्त ५९ प्रकृतियो मे से देवायु के वंध का विच्छेद हो जाने पर अपूर्वकरण गुणस्थान वाला जीव पहले संख्यातवे भाग मे ५८ प्रकृतियो का वध करता है। अनन्तर निद्रा और प्रचला का वंधविच्छेद हो जाने पर सख्यातवें भाग के शेप रहने तक ५६ प्रकृतियो का वध करता है और उसके वाद देवगति, देवानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, आहारक शरीर, आहारक अगोपांग, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, समचतुरस्र सस्थान, वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, प्रशस्त विहायोगति, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थकर, इन तीस प्रकृतियो का वधविच्छेद हो जाने पर अतिम भाग मे २६ प्रकृतियो का वध करता है। इसी का संकेत करने के लिये गाथा मे निर्देश है कि—अट्ठावण्णमपुव्वो छप्पण्ण वा वि छव्वीसं।

इस प्रकार से आठवे गुणस्थान तक की वंध प्रकृतियों का कथन किया जा चुका है। अव आगे की गाथा मे शेष रहे छह गुणस्थानो की वध प्रकृतियों की संख्या को वतलाते हैं।

वावीसा एगूणं वंधइ अट्ठारसंतमनियट्टी।
सत्तर सुहुमसरागो सायममोहो सजोगि त्ति ॥५९॥

शब्दार्थ—वावीस—वाईस, एगूणं—एक एक कम, वंधइ—वध करता है, अट्ठारसंतं—अठारह पर्यन्त, अनियट्टी—अनिवृत्तिवादर गुणस्थान वाला, सत्तर—सत्रह, सुहुमसरागो—सूक्ष्मसपराय गुणस्थान वाला, सायं—साता वेदनीय को, अमोहो—अमोही (उपशातमोह, क्षीणमोह) सजोगि त्ति—सयोगिकेवली गुणस्थान तक।

गाथार्थ—अनिवृत्तिबादर गुणस्थान वाला बाईस का और उसके बाद एक-एक प्रकृति कम करते हुए अठारह प्रकृतियों का बंध करता है। सूक्ष्मसंपराय वाला सत्रह प्रकृतियों को बांधता है तथा उपशांतमोह, क्षीणमोह और सयोगिकेवली गुणस्थान वाले सिर्फ एक सातावेदनीय प्रकृति का बंध करते हैं।

विशेषार्थ—नौवें अनिवृत्तिबादर गुणस्थान के पहले भाग में बाईस प्रकृतियों का बंध होता है। इसका कारण यह है कि यद्यपि आठवें अपूर्वकरण गुणस्थान में २६ प्रकृतियों का बंध होता है, फिर भी उसके अंतिम समय में हास्य, रति, अरति और जुगुप्सा, इन चार प्रकृतियों का बंधविच्छेद हो जाने से नौवें गुणस्थान के पहले समय में २२ प्रकृतियों का बंध बतलाया है। इसके बाद पहले भाग के अंत में पुरुषवेद का, दूसरे भाग के अंत में संज्वलन क्रोध का, तीसरे भाग के अंत में संज्वलन मान का, चौथे भाग के अंत में संज्वलन माया का विच्छेद हो जाने से पांचवें भाग में १८ प्रकृतियों का बंध होता है, अर्थात् नौवें अनिवृत्तिबादर गुणस्थान के बंध की अपेक्षा पांच भाग हैं अतः प्रारंभ में तो २२ प्रकृतियों का बंध होता है और उसके बाद पहले, दूसरे, तीसरे, चौथे, भाग के अंत में क्रमशः एक-एक प्रकृति का बंधविच्छेद होते जाने से २१, २०, १६ और १८ प्रकृतियों का बंध होता है। इसी आशय को स्पष्ट करने के लिये गाथा में संकेत किया है—'बावीसा एगूणं बंधइ अट्ठारसंतमनियट्टी।'

लेकिन जब अनिवृत्तिबादर गुणस्थान में पांचवें भाग के अंत में संज्वलन लोभ का बंधविच्छेद होता है तब दसवें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान में १७ प्रकृतियों का बंध बतलाया है—'सतर सुहुमसरागो'।

दसवे गुणस्थान के अंत में ज्ञानावरण की पांच, दर्शनावरण की चार, अंतराय की पांच, यश.कीर्ति और उच्च गोत्र, इन सोलह प्रकृतियो का वधविच्छेद होता है। अर्थात् दसवें गुणस्थान तक मोहनीय-कर्म का उपशम या क्षय हो जाने से अमोह दशा प्राप्त हो जाती है जिससे मोहनीयकर्म से विहीन जो उपशातमोह, क्षीणमोह और सयोगि-केवली—ग्यारहवे, वारहवे और तेरहवे गुणस्थान मे सिर्फ एक साता-वेदनीयकर्म का वंध होता है—'सायममोहो सजोगि त्ति।'

तेरहवे सयोगिकेवलि गुणस्थान के अत मे सातावेदनीय का भी वधविच्छेद हो जाने से चौदहवे अयोगिकेवली गुणस्थान में बंध के कारणो का अभाव हो जाने से किसी भी कर्म का वध नही होता है। अर्थात् चौदहवाँ गुणस्थान कर्मबंध से रहित है।

यद्यपि गाथा मे अयोगिकेवली गुणस्थान का निर्देश नही किया है तथापि गाथा मे जो यह निर्देश किया है कि एक सातावेदनीय का वध मोहरहित और सयोगिकेवली जीव करते हैं, उससे यह फलितार्थ निकलता है कि अयोगिकेवली गुणस्थान मे वध के मुख्य कारण कपाय और योग का अभाव हो जाता है और कारण के अभाव मे कार्य नही होता है। अतः अयोगिकेवली गुणस्थान मे कर्म का लेश-मात्र भी वंध नही होता है।

इस प्रकार चार गाथाओ मे किस गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का वध होता है और कितनी प्रकृतियो का वध नही होता है इसका विचार किया गया। जिनका संक्षेप मे विवरण इस प्रकार जानना चाहिये—

क्रम संख्या	गुणस्थान	बंध	अबंध	बंधविच्छेद
१	मिथ्यात्व	११७	३	१६
२	सासादन	१०१	१९	२५
३	मिश्र	७४	४६	०
४	अविरतसम्यग्दृष्टि	७७	४३	१०
५	देशविरत	६७	५३	४
६	प्रमत्तविरत	६३	५७	६
७	अप्रमत्तविरत	५९	६१	१
८	अपूर्वकरण प्रथम भाग	५८	६२	२
	अपूर्वकरण द्वितीय भाग	५६	६४	३०
	अपूर्वकरण तृतीय भाग	२६	९४	४
९	अनिवृत्तिकरण प्रथम भाग	२२	९८	१
	अनिवृत्तिकरण द्वितीय भाग	२१	९९	१
	अनिवृत्तिकरण तृतीय भाग	२०	१००	१
	अनिवृत्तिकरण चतुर्थ भाग	१९	१०१	१
	अनिवृत्तिकरण पंचम भाग	१८	१०२	१
१०	सूक्ष्मसंपराय	१७	१०३	१६
११	उपशांतमोह	१	११९	०
१२	क्षीणमोह	१	११९	०
१३	सयोगिकेवली	१	११९	०
१४	अयोगिकेवली	०	१२०	१

प्रत्येक गुणस्थान मे कितनी प्रकृतियो का वध और विच्छेद होता है और उनके नाम आदि का उल्लेख द्वितीय कर्मग्रथ मे विशेष रूप से किया गया है। अत. जिज्ञासु जन उसको देख लेवे।

गुणस्थानो मे वधस्वामित्व का उपसहार करते हुए मार्गणाओ मे भी सामान्य से वधस्वामित्व को वतलाने के लिये कहते है कि—

एसो उ बंधसामित्तओघो गइयाइएसु वि तहेव।
ओहाओ साहिज्जा जत्थ जहा पगडिसब्भावो ॥६०॥

शब्दार्थ—**एसो**—यह पूर्वोक्त गुणस्थान का वधभेद, **उ**—और, **वधसामित्त**—वध स्वामित्व का, **ओघो**—ओघ (सामान्य) से, **गइयाइएसु**—गति आदि मार्गणाओ मे, **वि**—भी, **तहेव**—वैसे ही, इसी प्रकार, **ओहाओ**—ओघ से कहे अनुसार, **साहिज्जा**—कहना चाहिये, **जत्थ**—जिस मार्गणास्थान मे, **जहा**—जिस प्रकार से, **पगडिसब्भावो**—प्रकृति का सद्भाव।

गाथार्थ—यह पूर्वोक्त गुणस्थानो का बंधभेद, स्वामित्व का ओघ कथन जानना चाहिये। गति आदि मार्गणाओ मे भी इसी प्रकार (सामान्य से) जहाँ जितनी प्रकृतियों का वध होता है, तदनुसार वहाँ भी ओघ के समान बंधस्वामित्व का कथन करना चाहिये।

विशेषार्थ—पिछली चार गाथाओ मे प्रत्येक गुणस्थान में प्रकृतियो के वध करने और वध नही करने का कथन किया गया है। जिससे सामान्यतया वधस्वामित्व का ज्ञान हो जाता है, तथापि गति आदि मार्गणाओ मे कितनी-कितनी प्रकृतियो का वध होता है और कितनी-कितनी प्रकृतियो का वध नही होता है, इसको जानना शेष रह जाता है। इसके लिये गाथा मे इतनी सूचना दी गई है कि जहाँ जितनी प्रकृतियो का वध होता हो इसका विचार करके ओघ के समान मार्गणास्थानो मे भी वधस्वामित्व का कथन कर लेना चाहिये।

यद्यपि उक्त सकेत के अनुसार यह आवश्यक हो जाता है कि यहा मार्गणाओ मे बधस्वामित्व का विचार किया जाये लेकिन तीसरे कमग्रथ मे इसका विस्तार से विचार किया जा चुका है अत जिज्ञासु जन वहा से जान लेवें।

अब किस गति मे कितनी प्रकृतिया की सत्ता होती है, इसका कथन आगे की गाथा मे करते हैं।

तित्थगरदेवनिरयाउग च तिसु तिसु गईसु बोद्धव्व।
अवसेसा पयडीओ हवति सव्वासु वि गईसु ॥६१॥

शब्दार्थ—तित्थगरदेवनिरयाउग—तीर्थकर, देवायु और नरकायु च—और तिसु तिसु—तीन-तीन, गईसु—गतियो म, बोद्धव्व—जानना चाहिये, अवसेसा—शेष बाकी की, पयडीओ—प्रकृतियाँ हवति—होती हैं सव्वासु—सभी, वि—भी, गईसु—गतियो मे।

गाथार्थ—तीर्थकर नाम, देवायु और नरकायु इनकी सत्ता तीन-तीन गतियो मे होती है और इनके सिवाय शेष प्रकृतियो की सत्ता सभी गतियो मे होती है।

विशेषार्थ—अब जिस गति मे जितनी प्रकृतियो की सत्ता होती है, उसका निर्देश करते है कि तीर्थकर नाम, देवायु और नरकायु, इन तीन प्रकृतियो की सत्ता तीन तीन गतियो मे पाई जाती है। अर्थात तीर्थकर नामकर्म की नरक, देव और मनुष्य इन तीन गतियों मे सत्ता पाई जाती है, किन्तु तिर्यंचगति मे नही। क्योकि तीर्थकर नामकर्म की सत्ता वाला तिर्यचगति मे उत्पन्न नही होता है तथा तिर्यंचगति मे तीर्थकर नामकर्म का बध नही होता है। अत नरक, देव और मनुष्य, इन तीन गतियो मे ही तीर्थकर प्रकृति की सत्ता बतलाई है।

तिर्यंच मनुष्य और देव गति मे ही देवायु की सत्ता पाई जाती है, क्योकि नरकगति मे नारको के देवायु के बध न होने का नियम है।

इसी प्रकार तिर्यंच, मनुष्य और नरक गति मे ही नरकायु की सत्ता होती है, देवगति मे नही क्योकि देवो के नरकायु का वध सम्भव नही है।

उक्त प्रकृतियो के सिवाय शेष सभी प्रकृतियो की सत्ता चारो गतियो मे पाई जाती है। आशय यह है कि देवायु का वंध तो तीर्थंकर प्रकृति के वध के पहले भी होता है और पीछे भी होता है, किन्तु नरकायु के सवध मे यह नियम है कि जिस मनुष्य ने नरकायु का वध कर लिया है, वह सम्यग्दृष्टि होकर तीर्थंकर प्रकृति का भी वध कर सकता है। इसी प्रकार तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता वाला जीव—देव और नारक—मनुष्यायु का ही वध करते है तिर्यंचायु का नही, यह नियम है। अत: तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता तिर्यंचगति को छोड़कर शेष तीन गतियो मे पाई जाती है।

इसी प्रकार नारक के देवायु का, देव के नरकायु का वध नही करने का नियम है, अत. देवायु की सत्ता नरकगति को छोडकर शेष तीन गतियो मे और नरकायु की सत्ता देवगति को छोड़कर शेष तीन गतियो मे पाई जाती है।

उक्त आशय का यह निष्कर्ष हुआ कि तीर्थंकर, देवायु और नरकायु इन तीन प्रकृतियो के सिवाय शेष सव प्रकृतियो की सत्ता सव गतियों मे होती है। यानी नाना जीवो की अपेक्षा नरकगति मे देवायु के विना १४७ प्रकृतियो की सत्ता होती है, तिर्यंचगति मे तीर्थंकर प्रकृति के विना १४७ प्रकृतियो की और देवगति मे नरकायु के विना १४७ प्रकृतियो की सत्ता होती है। लेकिन मनुष्यगति मे १४८ प्रकृतियो की ही सत्ता होती है।

पूर्व मे गुणस्थानो मे कर्म प्रकृतियो के वंध, उदय, सत्ता स्थानो का कथन किया गया है तथा गुणस्थान प्राय: उपशमश्रेणि, क्षपकश्रेणि

वाले हैं। अत उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि का स्वरूप बतलाना जरूरी है। यहाँ पहले उपशमश्रेणि का स्वरूप कथन करते हैं।

पढमकसायचउक्क दसणतिग सत्तगा वि उवसता ।
अविरतसम्मत्ताओ जाव नियट्टि त्ति नायव्वा ॥६२॥

शब्दार्थ—पढमकसायचउक्क—प्रथम कषाय चतुष्क (अनतानुबधीकषायचतुष्क) दसणतिग—दर्शनमोहनीयत्रिक सत्तगा वि—सातो प्रकृतियाँ, उवसता—उपशान्त हुई अविरतसम्मत्ताओ—अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर, जाव नियट्टि त्ति—अपूर्वकरण गुणस्थान तक, नायव्वा—जानना चाहिए।

गाथार्थ—प्रथम कषाय चतुष्क (अनतानुबधी कषाय चतुष्क) दर्शनमोहत्रिक, ये सात प्रकृतिया अविरत सम्यग्दृष्टि से लेकर अपूर्वकरण गुणस्थान तक नियम से उपशात हो जाती हैं ऐसा जानना चाहिये।

विशेषार्थ—उपशमश्रेणि का स्वरूप बतलाने के लिये गाथा मे यह बतलाया है कि उपशमश्रेणि का प्रारम्भ किस प्रकार होता है।

कर्म शक्ति को निष्क्रिय बनाने के लिये दो श्रेणि हैं—उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणि। इन दोनो श्रेणियो का मुख्य लक्ष्य मोहनीयकर्म को निष्क्रिय बनाने का है। उनमे से उपशमश्रेणि मे जीव चारित्र मोहनीयकर्म का उपशम करता है और क्षपकश्रेणि मे जीव चारित्र-मोहनीय और यथासभव अन्य कर्मों का क्षय करता है। इनमे से जब जीव उपशमश्रेणि को प्राप्त करता है तब पहले अनतानुबधी कषाय चतुष्क का उपशम करता है तदनन्तर दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियो का उपशम करके उपशमश्रेणि के योग्य होता है। इन सात प्रकृतियो के उपशम का प्रारम्भ तो अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तसयत, अप्रमत्तसयत और अपूर्वकरण गुणस्थानो म से किसी

भी गुणस्थान मे किया जा सकता है किन्तु अपूर्वकरण गुणस्थान मे तो नियम से इनका उपशमन हो ही जाता है।

गाथा में अनंतानुवधी चतुष्क आदि सात प्रकृतियों के उपशम करने का निर्देश करते हुए पहले अनंतानुवधी चतुष्क को उपशम करने की सूचना दी है अतः पहले इसी का विवेचन किया जाता है।

अनंतानुवधी की उपशमना

अनंतानुवंधी चतुष्क की उपशमना करने वाले स्वामी के प्रसग मे वतलाते है कि अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, विरत (प्रमत्त और अप्रमत्त) गुणस्थानवर्ती जीवों मे से कोई भी जीव किसी भी योग में वर्तमान हो अर्थात् जिसके चार मनोयोग, चार वचनयोग और औदारिक काययोग, इनमे से कोई एक योग हो, जो पीत, पद्म और शुक्ल, इन तीन शुभ लेश्याओ मे से किसी एक लेश्या वाला हो, जो साकार उपयोग वाला (ज्ञानोपयोग वाला) हो, जिसके आयुकर्म के बिना सत्ता मे स्थित शेप सात कर्मों की स्थिति अन्त.कोड़ा-कोड़ी सागर के भीतर हो, जिसकी चित्तवृत्ति अन्तर्मुहूर्त पहले से उत्तरोत्तर निर्मल हो, जो परावर्तमान अशुभ प्रकृतियो को छोडकर शुभ प्रकृतियो का ही वंध करने लगा हो, जिसने अशुभ प्रकृतियो के सत्ता मे स्थित चतु स्थानी अनुभाग को द्विस्थानी कर लिया हो और शुभ प्रकृतियों के सत्ता मे स्थित द्विस्थानी अनुभाग को चतुःस्थानी कर लिया हो और जो एक स्थितिवध के पूर्ण होने पर अन्य स्थितिवध को पूर्व-पूर्व स्थितिवध की अपेक्षा उत्तरोत्तर पल्य के संख्यातवे भाग कम बाँधने लगा हो—ऐसा जीव ही अनतानुवधीचतुष्क को उपशमाता है।[1]

---

१ अविरतसम्यग्दृष्टि-देशविरत-विरतानामन्यतमोऽन्यतमस्मिन् योगे वर्तमानस्तेज -पद्म-शुक्ललेश्याऽन्यतमलेश्यायुक्तः साकारोपयोगोपयुक्तोऽन्त.सागरोपमकोटा-कोटीस्थितिसत्कर्मा करणकालात् पूर्वमपि अन्तर्मुहूर्तं काल यावदवदायमानचित्तसन्ततिरवतिष्ठते। तथाऽवतिष्ठमानश्च परावर्तमाना प्रकृती.

स्थितिघात के आशय को स्पष्ट करने के बाद अब रसघात का विवेचन करते है।

रसघात मे अशुभ प्रकृतियो का सत्ता मे स्थित जो अनुभाग है, उसके अनतवे भाग प्रमाण अनुभाग को छोडकर शेप का अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा घात किया जाता है। अनन्तर जो अनतवाँ भाग अनुभाग शेप रहा था उसके अनतवे भाग को छोड़कर शेप का अन्तर्मुहूर्त काल के द्वारा घात किया जाता है। इस प्रकार एक-एक स्थितिखण्ड के उत्कीरण काल के भीतर हजारो अनुभाग खण्ड खपा दिये जाते है।

गुणश्रेणि का रूप यह होता है कि गुणश्रेणि मे अनतानुवधी चतुष्क की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति को छोडकर ऊपर की स्थिति वाले दलिको मे से प्रति समय कुछ दलिक लेकर उदयावलि के ऊपर की अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति मे उनका निक्षेप किया जाता है। जिसका क्रम इस प्रकार है कि पहले समय मे जो दलिक ग्रहण किये जाते हैं उनमे से सबसे कम दलिक उदयावलि के ऊपर पहले समय मे स्थापित किये जाते है। इनसे असख्यातगुणे दलिक दूसरे समय मे स्थापित किये जाते है। इनसे असख्यातगुणे दलिक तीसरे समय मे स्थापित किये जाते है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल के अन्तिम समय तक उत्तरोत्तर असख्यातगुणे-असख्यातगुणे दलिको का निक्षेप किया जाता है। यह प्रथम समय मे ग्रहण किये गये दलिको की निक्षेप विधि है। दूसरे आदि समयों मे जो दलिक ग्रहण किये जाते है, उनका निक्षेप भी इसी प्रकार होता है, किन्तु इतनी विशेषता है कि गुणश्रेणि की रचना के पहले समय मे जो दलिक ग्रहण किये जाते है वे सबसे थोड़े होते है। दूसरे समय मे जो दलिक ग्रहण किये जाते है वे इनसे असंख्यातगुणे होते है। इसी प्रकार गुणश्रेणिकरण के अन्तिम समय के प्राप्त होने तक तृतीयादि समयो में जो दलिक ग्रहण किये जाते है वे उत्तरोत्तर असंख्यात गुणे होते है। यहाँ इतनी विशेषता और है कि अपूर्वकरण

और अनिवृत्तिकरण का काल जिस प्रकार उत्तरोत्तर व्यतीत होता जाता है, तदनुसार गुणश्रेणि के दलिकों का निक्षेप अन्तर्मुहूर्त के उत्तरोत्तर शेष बचे हुए समयों मे होता है, अन्तमुहूर्त से ऊपर के समयो मे नही होता है। जसे कि मान लो गुणश्रेणि के अन्तर्मुहूत का प्रमाण पचास समय है और अपूवकरण तथा अनिवृत्तिकरण इन दोनो के काल का प्रमाण चालीस समय है। अव जो जीव अपूवकरण के पहले समय मे गुणश्रेणि की रचना करता है वह गुणश्रेणि के सव समयो मे दलिका का निक्षेप करता है तथा दूसरे समय मे शेप उनचास समया मे दलिको का निक्षेप करता है। इस प्रकार जैसे-जैसे अपूवकरण का काल व्यतीत होता जाता है वैसे-वैसे दलिको का निक्षेप कम-कम समयो मे होता जाता है।

गुणसक्रम मे कम प्रकृतियो के दलिको का सक्रम होता है। अत गुणसक्रम प्रदेशसक्रम का एक भेद है। इसमे प्रतिसमय उत्तरोत्तर असख्यात गुणित क्रम से अवध्यमान अनतानुवधी आदि अशुभ कम प्रकृतियो के कम दलिका का उस समय वँधने वाली सजातीय प्रकृतियो म सक्रमण होता है। यह क्रिया अपूवकरण के पहले समय से ही प्रारम्भ हो जाती है।

स्थितिवध का रूप इस प्रकार होता है कि अपूवकरण के पहले समय से ही जो स्थितिवध होता है, वह अपूव अर्थात इसके पहले होने वाले स्थितिवध से वहुत थोडा होता है। इसके सम्वन्ध मे यह नियम है कि स्थितिवध और स्थितिघात इन दोनो का प्रारम्भ एक साथ होता है और इनकी समाप्ति भी एक साथ होती है। इस प्रकार इन पाँचो कार्यों का प्रारम्भ अपूवकरण मे एक साथ होता है।

अपूवकरण समाप्त होने पर अनिवत्तिकरण होता है। इसमे प्रविष्ट हुए जीवा के परिणामो मे एकरूपता होती है अर्थात् इस

करण मे प्रविष्ट हुए जीवो के जिस प्रकार शरीर के आकार आदि मे फरक दिखाई देता है, उस प्रकार उनके परिणामों मे फरक नही होता है, यानी समानसमय वाले एक काल मे वर्तमान सब जीवो के परिणाम समान ही होते है और भिन्न समय वाले जीवो के परिणाम सर्वथा भिन्न ही होते है। मतलब यह है कि अनिवृत्तिकरण के पहले समय मे जो जीव है, वे और होंगे उन सबके परिणाम एक से ही होते है। दूसरे समय मे जो जीव है, वे और होंगे, उनके भी परिणाम एक से ही होते है। इसी प्रकार तृतीय आदि समयो मे भी समझना चाहिये। इसलिये अनिवृत्तिकरण के जितने समय है, उतने ही उसके परिणाम होते है, न्यूनाधिक नही। किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके प्रथम आदि समयो मे जो विशुद्धि होती है, द्वितीय आदि समयो मे वह उत्तरोत्तर अनन्तगुणी होती है।

अपूर्वकरण के स्थितिघात आदि पांचो कार्य अनिवृत्तिकरण मे भी चालू रहते है।[1] इसके अन्तर्मुहूर्त काल मे से संख्यात भागो के बीत जाने पर जब एक भाग शेष रहता है तब अनन्तानुबन्धी चतुष्क के एक आवलि प्रमाण नीचे के निषेको को छोड़कर अन्तर्मुहूर्त प्रमाण निषेको का अन्तरकरण[2] किया जाता है। इस क्रिया को करने मे न्यूनतम स्थितिबंध के काल के बराबर समय लगता है। यदि उदयवाली प्रकृतियो का अन्तरकरण किया जाता है तो उनकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण और यदि अनुदयवाली प्रकृतियो का अन्तरकरण किया जाता है तो उनकी नीचे की स्थिति आवलि प्रमाण छोड दी जाती है।

---

१ स्थितिघात आदि पांचो कार्यों का विवरण अपूर्वकरण के प्रसग मे बताया जा चुका है, तदनुरूप यहां भी समझना चाहिये।

२ एक आवलि या अन्तर्मुहूर्त प्रमाण नीचे की और ऊपर की स्थिति को छोड़-कर मध्य मे से अन्तर्मुहूर्त प्रमाण दलिको को उठाकर उनका बँधने वाली अन्य सजातीय प्रकृतियो मे प्रक्षेप करने का नाम अन्तरकरण है।

चूँकि यहाँ अनन्तानुबंधी चतुष्क का अन्तरकरण करना है किन्तु उसका चौथे आदि गुणस्थानों में उदय नहीं होता है इसलिये इसके नीचे के आवलि प्रमाण दलिकों को छोड़कर ऊपर के अन्तर्मुहूर्त प्रमाण दलिकों का अन्तरकरण किया जाता है।

अतरकरण म अन्तर का अथ व्यवधान और करण का अर्थ क्रिया है। तदनुसार जिन प्रकृतियो का अन्तरकरण किया जाता है उनके दलिका की पक्ति को मध्य मे भग कर दिया जाता है। इससे दलिको की तीन अवस्थाये हो जाती हैं—प्रथमस्थिति सान्तरस्थिति और उपरितम या द्वितीयस्थिति। प्रथमस्थिति का प्रमाण एक आवलि या एक अन्तमुहूर्त होता है। इसके बाद सान्तरस्थिति प्राप्त होती है। यह दलिको स शून्य अवस्था है। इसका भी समय प्रमाण अतर्मुहूत है। इसके बाद द्वितीयस्थिति प्राप्त होती है। इसका प्रमाण दलिको की शेषस्थिति है।

अतरकरण करन स पहले दलिको की पक्ति• •• • •• • इस प्रकार अविच्छिन्न रहती है किन्तु अतरकरण कर लेन पर उसकी अवस्था •• •• • इस प्रकार हो जाती है। यहाँ मध्य मे जो रिक्तस्थान दिखता है वहाँ के कुछ दलिको को यथासभव बधन वाली अन्य सजातीय प्रकृतिया म मिला दिया जाता है। इस अतर स्थान से नीचे (पहले) की स्थिति को प्रथमस्थिति और ऊपर (बाद) की स्थिति को द्वितीयस्थिति कहत हैं। उदयवाली प्रकृतिया के अन्तरकरण करने का काल और प्रथमस्थिति का प्रमाण समान होता है किन्तु अनुदयवाली प्रकृतियो की प्रथमस्थिति क प्रमाण स अन्तरकरण करन का काल बहुत बडा होता है। अतरकरण क्रिया के चालू रहते हुए उदयवाली प्रकृतियो की प्रथमस्थिति का एक एक दलिक उदय म आकर निर्जीर्ण होता जाता है और अनुदयवाली प्रकृतियो की प्रथम

स्थिति के एक-एक दलिक का उदय मे आने वाली सजातीय प्रकृतियो मे स्तिवुकसक्रमण के द्वारा सक्रम होना रहता है।

यहाँ अनंतानुवधी के उपशम का कथन कर रहे हैं किन्तु उसका उदय यहाँ नहीं है, अत. इसके प्रथमस्थितिगत प्रत्येक दलिक का भी स्तिवुकसक्रमण द्वारा पर-प्रकृतियो मे संक्रमण होता रहता है। इस प्रकार अन्तरकरण के हो जाने पर दूसरे समय मे अनतानुवधी चतुष्क की द्वितीयस्थिति वाले दलिकों का उपशम किया जाता है। पहले समय मे थोड़े दलिको का उपशम किया जाता है। दूसरे समय मे उससे असख्यातगुणे दलिकों का, तीसरे समय मे उससे भी असख्यातगुणे दलिको का उपशम किया जाता है। इसी प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल तक असख्यातगुणे-असख्यातगुणे दलिको का प्रतिसमय उपशम किया जाता है। इतने समय मे समस्त अनतानुवधी चतुष्क का उपशम हो जाता है। जिस प्रकार धूलि को पानी से सीच-सीच कर दुरमुट से कूट देने पर वह जम जाती है, उसी प्रकार कर्म रज भी विशुद्धि रूपी जल से सीच-सीच कर अनिवृत्तिकरण रूपी दुरमुट के द्वारा कूट दिये जाने पर सक्रमण, उदय, उदीरणा, निधत्ति और निकाचना के अयोग्य हो जाती है। इसी को अनतानुवंधी का उपशम कहते है।

लेकिन अन्य आचार्यो का मत है कि अनन्तानुबंधी चतुष्क का उपशम[1] न होकर विसयोजना ही होती है। विसयोजना क्षपणा का

---

१ कर्मप्रकृति ग्रन्थ मे अनतानुवंधी की उपशमना का स्पष्ट निषेध किया है वहाँ वताया है कि चौथे, पाँचवें और छठे गुणस्थानवर्ती यथायोग्य चारो गति के पर्याप्त जीव तीन करणो के द्वारा अनतानुवधी चतुष्क का विसयोजन करते है। किन्तु विसयोजन करते समय न तो अन्तरकरण होता है और न अनतानुवधी चतुष्क का उपशम ही होता है—

चउगइया पज्जत्ता तिन्नि वि सयोजणे वियोजंति।
करणेहिं तीहिं सहिया नतरकरण उवसमो वा॥

ही दूसरा नाम है, किन्तु विसयोजना और क्षपणा मे सिर्फ इतना अतर है कि जिन प्रकृतियो की विसयोजना होती है, उनकी पुन सत्ता प्राप्त हो जाती है, किन्तु जिन प्रकृतियो की क्षपणा होती है, उनकी पुन सत्ता प्राप्त नही होती है।

अनन्तानुवधी की विसयोजना अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान से लेकर अप्रमत्तसयत गुणस्थान तक किसी एक गुणस्थान मे होती है। चौथे गुणस्थान मे चारो गति के जीव अनन्तानुवधी की विसयोजना करते हैं। पाचवें गुणस्थान मे तिर्यच और मनुष्य अनन्तानुवन्धी की विसयोजना करते हैं और छठे व सातवें गुणस्थान मे मनुष्य ही अनन्तानुवधी की विसयोजना करते हैं। इसके लिये भी पहले के समान यथाप्रवृत्तकरण आदि तीन करण किये जाते हैं। लेकिन इतनी विशेषता है कि विसयोजना के लिये अतरकरण की आवश्यकता नही होती है किन्तु आवलि प्रमाण दलिको को छोडकर ऊपर के सब दलिको का अन्य सजातीय प्रकृति रूप से सक्रमण करके और आवलि प्रमाण दलिको का वेद्यमान प्रकृतियो मे सक्रमण करके उनका विनाश कर दिया जाता है।

इस प्रकार अनन्तानुवधी की उपशमना और विसयोजना का विचार किया गया अव दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियो की उपशमना का विचार करते हैं।

दिगम्बर परम्परा मे कषायपाहुड, उसकी चूर्णि, षट्खडागम और लब्धिसार मे भी अनन्तानुवधी के विसयोजन वाले मत का ही उल्लेख मिलता है। कर्मप्रकृति के समान कषायपाहुड की चूर्णि मे भी अनन्तानुवधी के उपशम का स्पष्ट निषेध किया है, लेकिन दिगम्बर परम्परा मे प्रचलित सप्ततिका मे उपशम वाला मत भी पाया जाता है और गो० कर्मकाड से इस बात का अवश्य पता लगता है कि वे अनन्तानुवधी के उपशम वाले मत से परिचित थे।

दर्शनमोहनीय की उपशमना

दर्शनमोहनीय की तीन प्रकृतियो की उपशमना के विषय मे यह नियम[1] है कि मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व यह दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियाँ है। उनमे से मिथ्यात्व का उपशम तो मिथ्यादृष्टि और वेदक सम्यग्दृष्टि जीव करते हैं, किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियो का उपशम वेदक सम्यग्दृष्टि जीव ही करते है।[2] इसमे भी चारो गति का मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथम सम्यक्त्व को उत्पन्न करता है तब मिथ्यात्व का उपशम करता है। मिथ्यात्व के उपशम करने की विधि पूर्व मे बताई गई अनन्तानुबधी चतुष्क के उपशम के समान जानना चाहिये किन्तु इतनी विशेषता है कि इसके अपूर्वकरण मे गुणसक्रम नही होता किन्तु स्थितिघात, रसघात, स्थितिबध और गुणश्रेणि, ये चार कार्य होते हैं।

---

१ दिगम्बर कर्मग्रन्थो मे इस विषय के निर्देश भाव यह है कि मिथ्यादृष्टि एक मिथ्यात्व का, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनो का या मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व, इन तीनो का तथा सम्यग्दृष्टि द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति के समय तीनो का उपशम करता है। जो जीव सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व मे जाकर वेदककाल का उल्लघन कर जाता है, वह यदि सम्यक्त्व की उद्वलना होने के काल मे ही उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है तो उसके तीनो का उपशम होता है। जो जीव सम्यक्त्व की उद्वलना के बाद सम्यग्मिथ्यात्व की उद्वलना होते समय यदि उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त करता है तो उसके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो का उपशम होता है और जो मोहनीय की छब्बीस प्रकृतियो की सत्ता वाला मिथ्यादृष्टि होता है, उसके एक मिथ्यात्व का ही उपशम होता है।

२ तत्र मिथ्यात्वस्योपशमना मिथ्यादृष्टेर्वेदकसम्यग्दृष्टेश्च। सम्यक्त्व-सम्यग्मिथ्यात्वयोस्तु वेदकसम्यग्दृष्टेरेव।

—सप्ततिका प्रकरण टीका, पृ० २४६

मिथ्यादृष्टि के नियम से मिथ्यात्व का उदय होता है। इसलिये इसके गुणश्रेणि की रचना उदय समय से लेकर होती है। अपूर्वकरण के बाद अनिवृत्तिकरण मे भी इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इसके सख्यात भागो के बीत जाने पर जब एक भाग शेष रह जाता है तब मिथ्यात्व के अन्तर्मुहूत प्रमाण नीचे के निषेको को छोडकर, इससे कुछ अधिक अन्तर्मुहूत प्रमाण ऊपर के निषेको का अन्तरकरण किया जाता है। इस क्रिया म नूतन स्थितिबध के समान अन्तर्मुहूत काल लगता है। यहा जिन दलिको का अन्तरकरण किया जाता है, उनमे से कुछ को प्रथमस्थिति म और कुछ को द्वितीयस्थिति मे डाल दिया जाता है, क्योकि मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व का पर-प्रकृति रूप सक्रमण नही होता है। इसके प्रथमस्थिति म आवलि प्रमाण काल शेष रहने तक प्रथमस्थिति के दलिको की उदीरणा होती है किन्तु द्वितीयस्थिति के दलिको की उदीरणा प्रथमस्थिति मे दो आवलि प्रमाणकाल शेष रहने तक ही होती है। यहाँ द्वितीय स्थिति के दलिको की उदीरणा को आगाल कहते हैं।

इस प्रकार यह जीव प्रथमस्थिति का वेदन करता हुआ जब प्रथमस्थिति के अन्तिम स्थान स्थित दलिक का वेदन करता है, तब वह अन्तरकरण के ऊपर द्वितीयस्थिति म स्थित मिथ्यात्व के दलिको को अनुभाग के अनुसार तीन भागो मे विभक्त कर देता है। इनम से विशुद्ध भाग को सम्यक्त्व, अर्धविशुद्ध भाग को सम्यगमिथ्यात्व और सबसे अविशुद्ध भाग को मिथ्यात्व कहते हैं। कमप्रकृति चूर्णि मे कहा भी है—

> **चरमसमयमिच्छादिट्ठी सकाले उवसमसम्मदिट्ठी होहिइ ताहे बिईयठिइ तिहाणुभाग करेइ, तजहा—सम्मत्त सम्मामिच्छत्त मिच्छत्त च।**

इस तरह प्रथमस्थिति के समाप्त होने पर मिथ्यात्व के दलिक का उदय नही होने से औपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त होता है। इस

सम्यक्त्व के प्राप्त होने पर अलब्ध पूर्व आत्महित की उपलब्धि होती है—

> मिच्छत्तुदए झीणे लहए सम्मत्तमोवसमिय सो।
> लंभेण जस्स लब्भइ आयहियमलद्धपुव्वं ज[1] ॥

यह प्रथम सम्यक्त्व का लाभ मिथ्यात्व के पूर्णरूपेण उपशम से प्राप्त होता है और इसके प्राप्त करने वालों मे से कोई देशविरत और कोई सर्वविरत होता है। अर्थात् सम्यक्त्व प्राप्ति के पश्चात् संयम लाभ के लिए प्रयास किया जाता है।

किन्तु इस प्रथमोपशम सम्यक्त्व से जीव उपशमश्रेणि पर न चढकर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व से चढता है। अत उसके वारे मे वताते हैं कि जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुवन्धी कषाय चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक का उपशम करके उपशमसम्यक्त्व को प्राप्त होता है, उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते है। इनमे से अनन्तानुवन्धी के उपशम होने का कथन तो पहले कर आये है। अव यहाँ दर्शन-मोहनीय के उपशम होने की विधि को सक्षेप मे वतलाते है।

जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव सयम मे विद्यमान है, वह दर्शनमोह-नीय की तीन प्रकृतियो का उपशम करता है। इसके यथाप्रवृत्तकरण आदि तीन करण पहले के समान जानना चाहिये किन्तु इतनी विशे-पता है कि अनिवृत्तिकरण के सख्यात भागो के वीत जाने पर अन्तर-करण करते समय सम्यक्त्व की प्रथमस्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थापित की जाती है, क्योकि यह वेद्यमान प्रकृति है तथा सम्यग्-मिथ्यात्व और मिथ्यात्व की प्रथमस्थिति आवलि प्रमाण स्थापित की जाती है क्योकि वेदक सम्यग्दृष्टि के इन दोनो का उदय नही होता है। यहाँ इन तीनो प्रकृतियो के जिन दलिकों का अतरकरण किया जाता है, उनका निक्षेप सम्यक्त्व की प्रथमस्थिति मे होता है।

---

१ कर्मप्रकृति, गा० ३३०

इसी प्रकार इस जीव के मिथ्यात्व और सम्यगमिथ्यात्व की प्रथम स्थिति के दलिको का सम्यक्त्व की प्रथमस्थिति के दलिक मे स्तिवुकसक्रम के द्वारा सक्रमण होता रहता है और सम्यक्त्व की प्रथमस्थिति का प्रत्येक दलिक उदय मे आ-आकर निर्जीण होता रहता है। इस प्रकार इसके सम्यक्त्व की प्रथमस्थिति के क्षीण हो जान पर द्वितीयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है।

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व के प्राप्त होन के बाद चारित्र मोहनीय की उपशमना का क्रम प्रारम्भ होता है। अत अब चारित्र मोहनीय के उपशम के क्रम को बतलाते है।

चारित्र मोहनीय की उपशमना

चारित्र मोहनीय का उपशम करन के लिये पुन यथाप्रवृत्तकरण आदि तीन करण किये जाते ह। करणा का स्वरूप तो पूववत है लेकिन इतनी विशेपता है कि यथाप्रवत्तकरण सातवें अप्रमत्तसयत गुणस्थान म होता है, अपूवकरण आठवें अपूवकरण गुणस्थान मे और अनिवृत्तिकरण नौवें अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे होता है। यहाँ भी अपूवकरण और अनिवृत्तिकरण मे स्थितिघात आदि पहले के समान होते है। किन्तु इतनी विशेपता है कि चौथे से लेकर सातवें गुणस्थान तक जो अपूवकरण और अनिवृत्तिकरण होते है, उनमे उसी प्रकृति का गुणसक्रम होता है, जिसके सम्ब ध म वे परिणाम होते हैं। किन्तु अपूवकरण म नही बधने वाली सम्पूण अशुभ प्रकृतियो का गुणसक्रम होता है। अपूवकरण के काल म से सख्यातवाँ भाग वीत जाने पर निद्रा और प्रचला, इन दो प्रकृतिया का बधविच्छेद होता है। इसके बाद जब हजारा स्थितिखण्डा का घात हो लेता है, तब अपूवकरण का सख्यात बहुभाग काल व्यतीत होता है और एक भाग शेप रहता है। इसी बीच नामकम की निम्नलिखित ३० प्रकृतिया का बध विच्छेद होता है—

देवगति, देवानुपूर्वी, पचेन्द्रिय जाति, वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, समचतुरस्र सस्थान, वैक्रिय अगोपाग, आहारक अंगोपाग, वर्ण चतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, त्रस, वादर, पर्याप्त, प्रत्येक, प्रशस्त विहायोगति, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, निर्माण और तीर्थंकर।

तदनन्तर स्थितिखड-पृथक्त्व हो जाने पर अपूर्वकरण का अतिम समय प्राप्त होता है। इसमे हास्य, रति, भय और जुगुप्सा का वधविच्छेद, छह नोकपायो का उदयविच्छेद तथा सव कर्मों की देशोपशमना, निधत्ति और निकाचना करणों की व्युच्छित्ति होती हे। इसके वाद अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे प्रवेश होता है।

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान मे भी स्थितिघात आदि कार्य पहले के समान होते है। अनिवृत्तिकरण के सख्यात वहुभाग काल के वीत जाने पर चारित्रमोहनीय की २१ प्रकृतियो का अतरकरण किया जाता है। अन्तरकरण करते समय चार सज्वलन कपायो मे से जिस संज्वलन कपाय का और तीन वेदो मे से जिस वेद का उदय होता है, उनकी प्रथमस्थिति को अपने-अपने उदयकाल प्रमाण स्थापित किया जाता है अन्य उन्नीस प्रकृतियो की प्रथमस्थिति को एक आवलि प्रमाण स्थापित किया जाता है। स्त्रीवेद और नपुसकवेद का उदयकाल सबसे थोडा है। पुरुपवेद का उदयकाल इससे सख्यातगुणा है। सज्वलन क्रोध का उदयकाल इससे विशेप अधिक है। सज्वलन मान का उदयकाल इससे विशेप अधिक है। सज्वलन माया का उदयकाल इससे विशेप अधिक है और सज्वलन लोभ का उदयकाल इससे विशेष अधिक है। पचसग्रह मे भी इसी प्रकार कहा है—

थीअपुमोदयकाला संखेज्जगुणो उ पुरिसवेयस्स।
तत्तो वि विसेसअहिओ कोहे तत्तो वि जहकमसो।[1]

---

१ पचसग्रह, ७९३

अर्थात्—स्त्रीवेद और नपुसक वेद के काल से पुरुषवेद का काल सख्यातगुणा है। इससे क्रोध का काल विशेष अधिक है। आगे भी इसी प्रकार यथाक्रम से विशेष अधिक काल जानना चाहिये।

जो सज्वलन क्रोध के उदय से उपशमश्रेणि का आरोहण करता है, उसके जब तक अप्रत्याख्यानावरण क्रोध और प्रत्याख्यानावरण क्रोध का उपशम नही होता तब तक सज्वलन क्रोध का उदय रहता है। जो सज्वलन मान के उदय से उपशमश्रेणि पर चढता है उसके जब तक अप्रत्याख्यानावरण मान और प्रत्याख्यानावरण मान का उपशम नही होता, तब तक सज्वलन मान का उदय रहता है। जो सज्वलन माया के उदय से उपशमश्रेणि पर चढता है, उसके जब तक अप्रत्याख्यानावरण माया का और प्रत्याख्यानावरण माया का उपशम नही होता तब तक सज्वलन माया का उदय रहता है तथा जो सज्वलन लोभ के उदय से उपशमश्रेणि पर चढता है, उसके जब तक अप्रत्याख्यानावरण लोभ और प्रत्याख्यानावरण लोभ का उपशम नही होता तब तक सज्वलन लोभ का उदय रहता है।

जितने काल के द्वारा स्थितिखड का घात करता है या अन्य स्थिति का बध करता है, उतने ही काल के द्वारा अन्तरकरण करता है, क्योकि इन तीनो का प्रारभ और समाप्ति एक साथ होती है। तात्पर्य यह है कि जिस समय अतरकरण क्रिया का आरभ होता है, उसी समय अन्य स्थितिखड के घात का और अन्य स्थितिबध का भी प्रारभ होता है और अन्तरकरण क्रिया के समाप्त होने के समय ही इनकी समाप्ति भी होती है। इस प्रकार अन्तरकरण के द्वारा जो अन्तर स्थापित किया जाता है, उसका प्रमाण प्रथमस्थिति से सख्यात गुणा है। अन्तरकरण करते समय जिन कर्मों का बध और उदय होता है उनके अन्तरकरण सबधी दलिकों को प्रथमस्थिति और द्वितीयस्थिति मे क्षेपण करता है जैसे कि पुरुषवेद के उदय से

श्रेणि पर चढने वाला पुरुपवेद का। जिन कर्मों का अन्तरकरण करते समय उदय ही होता है, वध नही होता उनके अन्तरकरण सवंधी दलिको को प्रथमस्थिति मे ही क्षेपण करता है, द्वितीयस्थिति मे नही, जैसे स्त्रीवेद के उदय से श्रेणि पर चढने वाला स्त्रीवेद का। अन्तर करने के समय जिन कर्मों का उदय न होकर केवल वध ही होता है, उसके अतरकरण संवंधी दलिक को द्वितीय स्थिति मे ही क्षेपण करता है, प्रथम स्थिति मे नही , जैसे सज्वलन क्रोध के उदय से श्रेणि पर चढ़ने वाला शेप संज्वलनो का। किन्तु अन्तरकरण करने के समय जिन कर्मों का न तो वंध ही होता है और न उदय ही, उनके अन्तरकरण सम्वन्धी दलिकों का अन्य सजातीय वधने वाली प्रकृतियो मे क्षेपण करता है , जैसे दूसरी और तीसरी कपायो का।[१]

अव अतरकरण द्वारा किये जाने वाले कार्य का सकेत करते है।

अतरकरण करके नपुसकवेद का उपशम करता है। पहले समय मे सवसे थोड़े दलिकों का उपशम करता है, दूसरे समय मे असंख्यात-गुणे दलिको का उपशम करता है। इस प्रकार अतिम समय प्राप्त होने तक प्रति समय असख्यातगुणे, असख्यातगुणे दलिको का उपशम करता है तथा जिस समय जितने दलिकों का उपशम करता है, उस समय दूसरे असख्यातगुणे दलिको का पर-प्रकृतियो मे क्षेपण करता है, किन्तु यह क्रम उपान्त्य समय तक ही चालू रहता है। अतिम समय मे तो जितने दलिकों का पर-प्रकृतियो में सक्रमण होता है, उससे असख्यातगुणे दलिको का उपशम करता है। इसके वाद एक अन्तर्मुहूर्त मे स्त्रीवेद का उपशम करता है। इसके वाद एक अन्त-र्मुहूर्त मे हास्यादि छह का उपशम करता है। हास्यादिपट्क का

---

१ इस सवधी विशेप ज्ञान के लिए कर्मप्रकृति टीका देखना चाहिये। यहाँ तो सक्षेप मे प्रकाश डाला है।

उपशम होते ही पुरुषवेद के बंध, उदय और उदीरणा का तथा प्रथमस्थिति का विच्छेद हो जाता है। किन्तु आगाल प्रथम स्थिति में दो आवलिका शेष रहने तक ही होता है तथा इसी समय में छह नोकषायों के दलिकों का पुरुषवेद में क्षेपण न करके संज्वलन क्रोध आदि में क्षेपण करता है।[1]

हास्यादि छह का उपशम हो जाने के बाद एक समय कम दो आवलिका काल में सकल पुरुषवेद का उपशम करता है। पहले समय में सबसे थोड़े दलिकों का उपशम करता है। दूसरे समय में असंख्यातगुणे दलिकों का, तीसरे समय में इससे असंख्यातगुणे दलिकों का उपशम करता है। दो समय कम दो आवलिका के अंतिम समय तक इसी प्रकार उपशम करता है तथा दो समय कम दो आवलि काल तक प्रति समय यथाप्रवृत्त संक्रम के द्वारा पर-प्रकृतियों में दलिकों का निक्षेप करता है। पहले समय में बहुत दलिकों का निक्षेप करता है, दूसरे समय में विशेष हीन दलिकों का निक्षेप करता है, तीसरे समय में इससे विशेष हीन दलिकों का निक्षेप करता है। अंतिम समय तक इसी प्रकार जानना चाहिये।

जिस समय हास्यादिषट्क का उपशम हो जाता है और पुरुषवेद की प्रथमस्थिति क्षीण हो जाती है, उसके अनन्तर समय से अप्रत्याख्याना-नावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध और संज्वलन क्रोध के उपशम करने का एक साथ प्रारंभ करता है तथा संज्वलन क्रोध की प्रथम स्थिति में एक समय कम तीन आवलिका शेष रह जाने पर अप्रत्याख्यानावरण क्रोध और प्रत्याख्यानावरण क्रोध के दलिकों का संज्वलन क्रोध में निक्षेप न करके संज्वलन मानादिक में निक्षेप करता

---

१ दुसु आवलियासु पढमठिईए सेसासु वि य वेओ।

—कर्मप्रकृति गा० १०७

है[1] तथा दो आवलिकाल शेप रहने पर आगाल नही होता है किन्तु केवल उदीरणा ही होती है और एक आवलिका काल के शेप रह जाने पर सज्वलन क्रोध के बध, उदय और उदीरणा का विच्छेद हो जाता है और अप्रत्याख्यानावरण क्रोध तथा प्रत्याख्यानावरण क्रोध का उपशम हो जाता है उस समय सज्वलन क्रोध की प्रथम स्थितिगत एक आवलिका प्रमाण दलिको को और उपरितन स्थिति-गत एक समय कम दो आवलिका काल के द्वारा बद्ध दलिको को छोडकर शेष दलिक उपशात हो जाते है ।

तदनन्तर प्रथम स्थितिगत एक आवलिका प्रमाण दलिको का स्तिबुकसक्रम के द्वारा क्रम से सज्वलन मान में निक्षेप करता है और एक समय कम दो आवलिका काल मे बद्ध दलिको का पुरुषवेद के समान उपशम करता है और पर-प्रकृति रूप से सक्रमण करता है। इस प्रकार अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण क्रोध के उपशम होने के बाद एक समय कम दो आवलिका काल मे सज्वलन क्रोध का उपशम हो जाता है। जिस समय सज्वलन क्रोध के बध, उदय और उदीरणा का विच्छेद होता है, उसके अनन्तर समय से लेकर सज्वलन मान की द्वितीयस्थिति से दलिको को लेकर उनकी प्रथम स्थिति करके वेदन करता है। प्रथमस्थिति करते समय प्रथम समय मे सबसे थोड़े दलिको का निक्षेप करता है। दूसरे समय असख्यात-गुणे दलिको का, तीसरे समय मे इससे असख्यातगुणे दलिको का निक्षेप करता है। इस प्रकार प्रथमस्थिति के अतिम समय तक उत्तरोत्तर असख्यातगुणे दलिको का निक्षेप करता है। प्रथमस्थिति

---

१ तिसु आवलियासु समऊणियासु अपडिग्गहा उ सजलणा ।

—कर्मप्रकृति गा० १०७

करने के प्रथम समय से लेकर अप्रत्याख्यानावरण मान, प्रत्याख्याना-वरण मान और सज्वलन मान के उपशम करने का एक साथ प्रारभ करता है। सज्वलन मान की प्रथमस्थिति मे एक समय कम तीन आवलिका काल के शेष रहने पर अप्रत्याख्यानावरण मान और प्रत्याख्यानावरण मान के दलिको का सज्वलन मान मे प्रक्षेप न करके सज्वलन माया आदि म प्रक्षेप करता है। दो आवलिका के शेष रहने पर आगाल नही होता किन्तु केवल उदीरणा ही होती है। एक आवलिका काल के शेष रहने पर सज्वलन मान के बध, उदय और उदीरणा का विच्छेद हो जाता है तथा अप्रत्याख्यानावरण मान और प्रत्याख्यानावरण मान का उपशम हो जाता है। उस समय सज्वलन मान की प्रथमस्थितिगत एक आवलिका प्रमाण दलिको को और उपरितन स्थितिगत एक समय कम दो आवलिका काल मे बद्ध दलिको को छोडकर शेष दलिक उपशात हो जाते हैं।

तदनतर प्रथमस्थितिगत एक आवलिका प्रमाण सज्वलन मान क दलिको का स्तिबुकसक्रम क द्वारा क्रम से सज्वलन माया म निक्षेप करता है और एक समय कम दो आवलिका काल म बद्ध दलिका का पुरुषवेद के समान उपशम करता है और पर प्रकृति रूप स सक्रमण करता है। इस प्रकार अप्रत्याख्यानावरण मान और प्रत्याख्यानावरण मान के उपशम होन के बाद एक समय कम दो आवलिका काल मे सज्वलन मान का उपशम हो जाता है। जिस समय सज्वलन मान क बध, उदय और उदीरणा का विच्छेद हो जाता है, उसके अनन्तर समय से लेकर सज्वलन माया की द्वितीय स्थिति से दलिको को लेकर उनकी प्रथमस्थिति करके वेदन करता है तथा उसी समय स लेकर अप्रत्याख्यानावरण माया, प्रत्याख्यानावरण माया और सज्वलन माया के उपशम करने का एक साथ प्रारभ करता है। सज्वलन माया की प्रथमस्थिति म एक समय कम तीन

आवलिका काल के शेप रहने पर अप्रत्याख्यानावरण माया और प्रत्याख्यानावरण माया के दलिको का सज्वलन माया मे प्रक्षेप न करके संज्वलन लोभ मे प्रक्षेप करता है। दो आवलि काल के शेप रहने पर आगाल नही होता किन्तु केवल उदीरणा ही होती है। एक आवलिका काल शेष रहने पर सज्वलन माया के बध, उदय और उदीरणा का विच्छेद हो जाता है तथा अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण माया का उपशम हो जाता है। उस समय सज्वलन माया की प्रथमस्थितिगत एक आवलिका प्रमाण दलिको को और उपरितन स्थितिगत एक समय कम दो आवलिका काल में बद्ध दलिको को छोडकर शेष दलिक उपशान्त हो जाते है।

अनन्तर प्रथमस्थितिगत एक आवलिका प्रमाण दलिको का स्तिवुकसंक्रम के द्वारा क्रम से सज्वलन माया मे निक्षेप करता है और एक समय कम दो आवलिका काल मे बद्ध दलिकों का पुरुषवेद के समान उपशम करता है और पर-प्रकृति रूप से सक्रमण करता है। इस प्रकार अप्रत्याख्यानावरण माया और प्रत्याख्यानावरण माया के उपशम होने के बाद एक समय कम दो आवलिका काल मे सज्वलन माया का उपशम हो जाता है। जिस समय सज्वलन माया के बध, उदय और उदीरणा का विच्छेद होता है, उसके अनन्तर समय से लेकर संज्वलन लोभ की द्वितीयस्थिति से दलिको को लेकर उनकी लोभ वेदक काल के तीन भागो मे से दो भाग प्रमाण प्रथम स्थिति करके वेदन करता है। इनमे से पहले त्रिभाग का नाम अश्वकर्णकरण काल है और दूसरे त्रिभाग का नाम किट्टीकरणकाल है। प्रथम अश्वकर्णकरण काल मे पूर्व स्पर्धको से दलिको को लेकर अपूर्व स्पर्धक करता है।

स्पर्धक की व्याख्या

जीव प्रति समय अनन्तानन्त परमाणुओं से बने हुए स्कधो को

कम रूप से ग्रहण करता है। इनमे से प्रत्येक स्कध मे जो सबसे जघन्य रस वाला परमाणु है, उसके बुद्धि से छेद करने पर सब जीवो मे अनतगुणे अविभाग प्रतिच्छेद प्राप्त होते हैं। अन्य परमाणुओ मे एक अधिक अविभाग प्रतिच्छेद प्राप्त होते हैं। इस प्रकार सिद्धो के अनतवे भाग अधिक इसके अविभाग प्रतिच्छेद प्राप्त होने तक प्रत्येक परमाणु मे रस का एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बढाते जाना चाहिये। यहा जघन्य रस वाले जितने परमाणु होते हैं, उनके समुदाय को एक वर्गणा कहते हैं। एक अधिक रसवाले परमाणुओ के समुदाय को दूसरी वर्गणा कहते हैं। दो अधिक रस वाले परमाणुओ के समुदाय को तीसरी वर्गणा कहते हैं। इस प्रकार कुल वर्गणायें सिद्धो के अनतवे भाग प्रमाण या अभव्यो से अनतगुणी प्राप्त होती है। इन सब वर्गणाओ के समुदाय को एक स्पर्धक कहते हैं।

दूसरे आदि स्पर्धक भी इसी प्रकार प्राप्त होते हैं किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रथम आदि स्पर्धको की अतिम वर्गणा के प्रत्येक वर्ग मे जितने अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं दूसरे आदि स्पर्धक की प्रथम वर्गणा के प्रत्येक वर्ग मे सब जीवो से अनतगुणे रस के अविभाग प्रतिच्छेद होते हैं और फिर अपने-अपने स्पर्धक की अतिम वर्गणा तक रस का एक-एक अविभाग प्रतिच्छेद बढता जाता है। ये सब स्पर्धक ससारी जीवो के प्रारभ से ही यथायोग्य होते हैं। इसलिये इन्हें पूर्व स्पर्धक कहते हैं। किन्तु यहा पर उनमे से दलिका को ले-लेकर उनके रस को अत्यत हीन कर दिया जाता है, इसलिये उनको अपूर्व स्पर्धक कहते हैं।

इसका तात्पर्य यह है कि ससार अवस्था मे इस जीव ने बध की अपेक्षा कभी भी ऐसे स्पर्धक नही किये थे किन्तु विशुद्धि के प्रकर्ष से इस समय करता है इसलिये इनको अपूर्व स्पर्धक कहा जाता है।

यह क्रिया पहले त्रिभाग मे की जाती है। दूसरे त्रिभाग मे पूर्व

स्पर्धको और अपूर्व स्पर्धको मे से दलिको को ले-लेकर प्रति समय अनन्त किट्टिया करता अर्थात् पूर्व स्पर्धकों और अपूर्व स्पर्धकों से वर्गणाओ को ग्रहण करके और उनके रस को अनन्तगुणा हीन करके रस के अविभाग प्रतिच्छेदो मे अतराल कर देता है। जैसे, मानलो रस के अविभाग प्रतिच्छेद, सौ, एक सौ एक और एक सौ दो थे, उन्हे घटा कर क्रम से पाच, पंद्रह और पच्चीस कर दिया, इसी का नाम किट्टीकरण है।

किट्टीकरण काल के अन्तिम समय मे अप्रत्याख्यानावरण लोभ, प्रत्याख्यानावरण लोभ का उपशम करता है तथा उसी समय संज्वलन लोभ का वधविच्छेद होता है और वादर संज्वलन के उदय तथा उदीरणा के विच्छेद के साथ नौवे गुणस्थान का अंत हो जाता है। यहा तक मोहनीय की पच्चीस प्रकृतियाँ उपशांत हो जाती है।[1] अप्रत्याख्यानावरण-प्रत्याख्यानावरण लोभ के उपशान्त हो जाने पर सत्ताईस प्रकृतियाँ उपशान्त हो जाती हैं। इसके वाद सूक्ष्मसपराय गुणस्थान होता है। इसका काल अन्तर्मुहूर्त है। इसके पहले समय में उपरितन स्थिति मे से कुछ किट्टियो को लेकर सूक्ष्मसंपराय काल के वरावर उनकी प्रथमस्थिति करके वेदन करता है और एक समय कम दो आवलिका मे वँधे हुए सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त शेष दलिकों का उपशम करता है।

तदनन्तर सूक्ष्मसपराय गुणस्थान के अन्तिम समय मे सज्वलन लोभ का उपशम हो जाता है। इस प्रकार मोहनीय की अट्ठाईस प्रकृतिया उपशान्त हो जाती है और उसी समय ज्ञानावरण की पांच,

---

१ अनिवृत्तिवादर गुणस्थान तक उपशात प्रकृतियो की संख्या इस प्रकार है—

सत्तड्ड नव य पनरस सोलस अट्ठारसेव इगुवीसा।
एगाहि दु चउवीसा पणवीसा वायरे जाण॥

दर्शनावरण की चार, अंतराय की पांच, यशःकीर्ति और उच्च गोत्र, इन सोलह प्रकृतियों का बंधविच्छेद होता है। इसके बाद दूसरे समय में ग्यारहवाँ गुणस्थान उपशान्तकषाय होता है। इसमें मोहनीय की सब प्रकृतियाँ उपशांत रहती हैं।[1] उपशांतकषाय गुणस्थान का जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

उपशमश्रेणि के आरोहक के ग्यारहवें उपशांतमोह गुणस्थान में पहुँचने पर, इसके बाद नियम से उसका पतन होता है। पतन दो प्रकार से होता है—भवक्षय से और अद्धाक्षय से। आयु के समाप्त हो जाने पर जो पतन होता है वह भवक्षय से होने वाला पतन है। भव अर्थात् पर्याय और क्षय अर्थात् विनाश तथा उपशांतकषाय गुणस्थान के काल के समाप्त हो जाने पर जो पतन होता है वह अद्धाक्षय से होने वाला पतन है। जिसका भवक्षय से पतन होता है, उसके अनन्तर समय में अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान होता है और उसके पहले समय में ही बंध आदि सब करणों का प्रारम्भ हो जाता है। किन्तु जिसका अद्धाक्षय से पतन होता है अर्थात् उपशांतमोह गुणस्थान का काल समाप्त होने के अनन्तर जो पतन होता है, वह जिस क्रम से चढ़ता है, उसी क्रम से गिरता है। इसमें जहाँ जिस करण की व्युच्छित्ति हुई, वहाँ पहुँचने पर उस करण का प्रारम्भ होता है और यह जीव प्रमत्तसंयत गुणस्थान में जाकर रुक जाता है। कोई-कोई देशविरत और अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान को भी प्राप्त होता है तथा कोई सासादन भाव को भी प्राप्त होता है।

साधारणतः एक भव में एक बार उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है। कदाचित् कोई जीव दो बार भी उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है,

---

[1] सत्तावीस सुहुमे अट्ठावीसं पि मोहपयडीओ।
उवसंतवीयराए उवसंता होंति नायव्वा॥

इससे अधिक बार नही। जो दो बार उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है, उसके उस भव मे क्षपकश्रेणि नही होती है लेकिन जो एक बार उपशमश्रेणि को प्राप्त होता है, उसके क्षपकश्रेणि होती भी है[1]।

गाथा मे यद्यपि अनन्तानुबन्धी चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक इन सात प्रकृतियो का उपशम कहा है और उसका क्रम निर्देश किया है, परन्तु प्रसग से यहा टीकाकार आचार्य मलयगिरि ने अनन्तानुबन्धी की विसंयोजना और चारित्र मोहनीय की उपशमना का भी विवेचन किया है।

इस प्रकार उपशमश्रेणि का कथन करने के बाद अब क्षपकश्रेणि के कथन करने की इच्छा से पहले क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति कहां और किस क्रम से होती है, उसका निर्देश करते हैं।

पढमकसायचउक्कं एत्तो मिच्छत्तमीससम्मत्तं।
अविरय देसे विरए पमत्ति अपमत्ति खीयंति ॥६३॥

शब्दार्थ—पढमकसायचउक्कं—प्रथम कषाय चतुष्क (अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्क) एत्तो—तदनन्तर, इसके बाद, मिच्छत्तमीससम्मत्तं—मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय का, अविरय—अविरत सम्यग्दृष्टि, देसे—देशविरत, विरए—विरत, पमत्ति अपमत्ति—प्रमत्त और अप्रमत्त, खीयंति—क्षय होता है।

गाथार्थ—अविरत सम्यग्दृष्टि, देशविरत, प्रमत्तविरत और अप्रमत्तविरत, इन चार गुणस्थानो मे से किसी एक

---

१ जो दुवे वारे उवसमसेढि पडिवज्जइ तस्स नियमा तम्मि भवे खवगसेढी नत्थि, जो एक्कसि उवसमसेढि पडिवज्जइ तस्स खवगसेढी होज्ज वा।
—चूर्णि

लेकिन आगम के अभिप्रायानुसार एक भव मे एक बार होती है—

मोहोपशम एकस्मिन् भवे द्वि. स्यादसन्तत.।
यस्मिन् भवे तूपशम क्षयो मोहस्य तत्र न ॥

गुणस्थान मे अनन्तानुबधी कषाय चतुष्क का और तदनन्तर मिथ्यात्व, मिश्र और सम्यक्त्व मोहनीय का क्रम स क्षय होता है।

विशेषार्थ—पूवगाथा मे उपशमश्रेणि का कथन करने के बाद इस गाथा म क्षपकश्रेणि की प्रारम्भिक तैयारी के रूप मे क्षपकश्रेणि की भूमिका का निर्देश किया गया है।

उपशमश्रेणि म माहनीय कम की प्रकृतियो का उपशम किया जाता है और क्षपकश्रेणि मे उनका क्षय अर्थात् उपशमश्रेणि मे प्रकृतियो की सत्ता तो बनी रहती है किन्तु अन्तमुहूत प्रमाण दलिको का अन्तरकरण हो जाता है और द्वितीयस्थिति मे स्थित दलिक सक्रमण आदि के अयोग्य हो जाते हैं, जिसस अन्तमुहूत काल तक उनका फल प्राप्त नही होता है। किन्तु क्षपकश्रेणि म उनका समूल नाश हो जाता है। कदाचित यह माना जाये कि बधादि के द्वारा उनकी पुन सत्ता प्राप्त हो जायेगी सो भी बात नही क्योकि ऐसा नियम है कि सम्यग्दृष्टि के जिन प्रकृतिया का समूल क्षय हो जाता है, उनका न तो बध ही होता है और न तद्रूप अन्य प्रकृतियो का सक्रम ही। इसलिए ऐसी स्थिति मे पुन ऐसी प्रकृतिया की सत्ता सम्भव नही है। हा, अनन्तानुबन्धी चतुष्क इस नियम का अपवाद है, इसलिये उसका क्षय विसयोजना शब्द के द्वारा कहा जाता है। इस प्रासगिक चर्चा के पश्चात अब क्षपकश्रेणि का विवेचन करते हैं। सवप्रथम उसके कर्ता की योग्यता आदि को बतलाते हैं।

क्षपकश्रेणि का आरभक

क्षपकश्रेणि का आरम्भ आठ वष से अधिक आयु वाले उत्तम सहनन के धारक चौथे, पाचवें, छठे या सातवें गुणस्थानवर्ती जिनकालिक मनुष्य के ही होता है, अन्य के नही। सबसे पहले वह अनता-

नुबंधी चतुष्क का विसंयोजन करता है। तदनन्तर मिथ्यात्व, सम्यग्-मिथ्यात्व और सम्यक्त्व की एक साथ क्षपणा का प्रारम्भ करता है। इसके लिये यथाप्रवृत्त आदि तीन करण होते है। इन करणो का कथन पहले किया जा चुका है, उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेपता है कि अपूर्वकरण के पहले समय मे अनुदयरूप मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व के दलिको का गुणसक्रम के द्वारा सम्यक्त्व में निक्षेप किया जाता है तथा अपूर्वकरण मे इन दोनो का उद्वलना सक्रम भी होता है। इसमे सर्वप्रथम सवसे वड़े स्थितिखण्ड की उद्वलना की जाती है। तदनन्तर एक-एक विशेप कम स्थिति-खण्डो की उद्वलना की जाती है। यह क्रम अपूर्वकरण के अन्तिम समय तक चालू रहता है। इससे अपूर्वकरण के पहले समय मे जितनी स्थिति होती है, उससे अन्तिम समय मे सख्यातगुणहीन यानि संख्या-तवा भाग स्थिति रह जाती है।

इसके वाद अनिवृत्तिकरण मे प्रवेश कर जाता है। यहाँ भी स्थिति-घात आदि कार्य पहले के समान चालू रहते है। अनिवृत्तिकरण के पहले समय मे दर्शनत्रिक की देशोपशमना, निधत्ति और निकाचना का विच्छेद हो जाता है। अनिवृत्तिकरण के पहले समय से लेकर हजारो स्थितिखण्डो का घात हो जाने पर दर्शनत्रिक की स्थितिसत्ता असज्ञी के योग्य शेप रह जाती है। इसके वाद हजार पृथक्त्व प्रमाण स्थिति-खण्डो का घात हो जाने पर चतुरिन्द्रिय जीव के योग्य स्थितिसत्ता शेप रहती है। इसके वाद उक्त प्रमाण स्थितिखण्डो का घात हो जाने पर त्रीन्द्रिय जीव के योग्य स्थितिसत्ता शेप रहती है। इसके वाद पुनः उक्त प्रमाण स्थितिखण्डो का घात हो जाने पर द्वीन्द्रिय जीव के योग्य स्थितिसत्ता शेप रहती है। इसके वाद पुन· उक्त प्रमाण स्थितिखण्डो का घात हो जाने पर एकेन्द्रिय जीव के योग्य स्थितिसत्ता शेष रहती है।

तदनन्तर तीनो प्रकृतियो की स्थिति के एक भाग को छोडकर शेष वहुभाग का घात करता है तथा उसके बाद पुन एक भाग को छोडकर शेष वहुभाग का घात करता है। इस प्रकार इस क्रम से भी हजारो स्थितिखडो का घात करता है। तदनन्तर मिथ्यात्व की स्थिति के असख्यात भागो का तथा सम्यगमिथ्यात्व और सम्यक्त्व के सख्यात भागो का घात करता है। इस प्रकार प्रभूत स्थितिखडो के व्यतीत हो जाने पर मिथ्यात्व के दलिक आवलिप्रमाण शेष रहते हैं तथा सम्यगमिथ्यात्व और सम्यक्त्व के दलिक पल्य के असख्यातवें भाग प्रमाण शेष रहते हैं। उपर्युक्त इन स्थितिखडो का घात करते समय मिथ्यात्व सम्बन्धी दलिकों का सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व मे, सम्यग्मिथ्यात्व सम्बन्धी दलिको का सम्यक्त्व मे और सम्यक्त्व सम्बन्धी दलिको का अपने से कम स्थिति वाले दलिका में निक्षेप किया जाता है। इस प्रकार जब मिथ्यात्व के एक आवलि प्रमाण दलिक शेष रहते हैं तब उनका भी स्तिवुकसक्रम के द्वारा सम्यक्त्व मे निक्षेप किया जाता है। तदनन्तर सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व के असख्यात भागो का घात करता है और एक भाग शेष रहता है। तदनन्तर जो एक भाग बचता है, उसके असख्यात भागो का घात करता है और एक भाग शेष रहता है। इस प्रकार इस क्रम से कितने ही स्थिति खडो के व्यतीत हो जाने पर सम्यग्मिथ्यात्व की भी एक आवलि प्रमाण और सम्यक्त्व की आठ वर्ष प्रमाण स्थिति शेष रहती है।

इसी समय यह जीव निश्चयनय की दृष्टि से दर्शन-मोहनीय का क्षपक माना जाता है। इसके बाद सम्यक्त्व के अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थिति खड की उत्कीरणा करता है। उत्कीरणा करते समय दलिक का उदय समय से लेकर निक्षेप करता है। उदय समय मे सबसे थोडे दलिको का निक्षेप करता है। दूसरे समय मे असख्यात गुणे दलिको का, तीसरे समय मे असख्यातगुणे दलिको का निक्षेप करता है। इस प्रकार यह

क्रम गुणश्रेणि के अन्त तक चालू रहता है। इसके आगे अन्तिम स्थिति प्राप्त होने तक उत्तरोत्तर कम-कम दलिकों का निक्षेप करता है।

यह क्रम द्विचरम स्थितिखंड के प्राप्त होने तक चालू रहता है। किन्तु द्विचरम स्थितिखड से अन्तिम स्थितिखड सख्यातगुणा बडा होता है। जब यह जीव सम्यक्त्व के अन्तिम स्थितिखड की उत्कीरणा कर चुकता है तब उसे कृतकरण कहते हैं। इस कृतकरण के काल मे यदि कोई जीव मरता है तो वह चारो गतियो मे से परभव सम्बन्धी आयु के अनुसार किसी भी गति मे उत्पन्न होता है। इस समय यह शुक्ल लेश्या को छोडकर अन्य लेश्याओ को भी प्राप्त होता है। इस प्रकार दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ मनुष्य ही करता है। किन्तु उसकी समाप्ति चारों गतियो मे होती है। कहा भी है—

पट्ठवगो उ मणूसो, निट्ठवगो चउसु वि गईसु।

दर्शनमोहनीय की क्षपणा का प्रारम्भ मनुष्य ही करता है किन्तु उसकी समाप्ति चारो गतियो में होती है।

यदि बद्धायुष्क जीव क्षपकश्रेणि का प्रारम्भ करता है तो अनन्तानुबंधी चतुष्क का क्षय हो जाने के पश्चात् उसका मरण होना भी सम्भव है। उस स्थिति मे मिथ्यात्व का उदय हो जाने से यह जीव पुनः अनन्तानुबधी का बध और सक्रम द्वारा सचय करता है, क्योंकि मिथ्यात्व के उदय मे अनन्तानुबधी की नियम से सत्ता पाई जाती है। किन्तु जिसने मिथ्यात्व का क्षय कर दिया है, वह पुन अनन्तानुबंधी चतुष्क का सचय नही करता है। सात प्रकृतियों का क्षय हो जाने पर जिसके परिणाम नही बदले वह मरकर नियम से देवो मे उत्पन्न होता

है, किन्तु जिसके परिणाम बदल जाते हैं वह परिणामानुसार अन्य गतियों में भी उत्पन्न होता है।[1]

बद्धायु होने पर भी यदि कोई जीव उस समय मरण नहीं करता तो सात प्रकृतियों का क्षय होने पर वह वहीं ठहर जाता है, चारित्र मोहनीय के क्षय का यत्न नहीं करता है—

बद्धाऊ पडिवन्नो, नियमा खीणम्मि सत्तए ठाइ[2]।

किन्तु जो बद्धायु जीव सात प्रकृतियों का क्षय करके देव या नारक होता है, वह नियम से तीसरी पर्याय में मोक्ष को प्राप्त करता है और जो मनुष्य या तिर्यंच होता है वह असंख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्यों और तिर्यंचों में ही उत्पन्न होता है। इसीलिये वह नियम से चौथे भव में मोक्ष को प्राप्त होता है।[3]

यदि अबद्धायुष्क जीव क्षपकश्रेणि प्रारम्भ करता है तो वह सात प्रकृतियों का क्षय हो जाने पर चारित्रमोहनीयकर्म के क्षय करने का यत्न करता है।[4] क्योंकि चारित्रमोहनीय की क्षपणा करने वाला मनुष्य अबद्धायु ही होता है इसलिये उसके नरकायु, देवायु और तिर्यंचायु की सत्ता तो स्वभावतः ही नहीं पाई जाती है तथा अनन्तानुबंधी चतुष्क और दर्शनमोहनीय का क्षय पूर्वोक्त क्रम से हो जाता

---

1 बद्धाऊ पडिवन्नो पढमकसायक्खए जइ मरिज्जा।
तो मिच्छत्तोदयओ विणिज्ज भुज्जो न सो जम्हा॥
तम्मि मओ जाइ दिवं तप्परिणामो य सत्तए खीणे।
उवरयपरिणामो पुण पच्छा नाणामइगईओ॥
—वि० भा० गा० १३१६-१७

2 विशेषा० गा० १३२५

3 तइयचउत्थे तम्मि व भवम्मि सिज्झंति दंसणे खीणे।
जं देवनिरयऽसंखाउचरिमदेहेसु ते हुंति॥
—पञ्चसंग्रह गा० ७७८

4 इयरो अणुवरओ चिय, सयलं सेढिं समाणेइ। —विशेषा० गा० १३२५

है, अतः चारित्रमोहनीय की क्षपणा करने वाले जीव के उक्त दस प्रकृतियों की सत्ता नियम से नहीं होती है ।

जो जीव चारित्रमोहनीय की क्षपणा करता है, उसके भी यथा-प्रवृत्त आदि तीन करण होते हैं। यहाँ यथाप्रवृत्तकरण सातवें गुण-स्थान मे होता है और आठवें गुणस्थान की अपूर्वकरण और नौवे गुणस्थान की अनिवृत्तिकरण संज्ञा है ही। इन तीन करणों का स्वरूप पहले वतलाया जा चुका है, तदनुसार यहाँ भी समझ लेना चाहिये। यहाँ अपूर्वकरण में यह जीव स्थितिघात आदि के द्वारा अप्रत्याख्याना-वरण और प्रत्याख्यानावरण कपाय की आठ प्रकृतियो का इस प्रकार क्षय करता है, जिससे नौवे गुणस्थान के पहले समय मे इनकी स्थिति पल्य के असख्यातवे भाग शेष रहती है तथा अनिवृत्तिकरण के सख्यात वहुभागो के वीत जाने पर—स्त्यानर्द्धित्रिक, नरकगति, नरकानुपूर्वी, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, एकेन्द्रिय आदि जातिचतुष्क, स्थावर, आतप, उद्योत, सूक्ष्म और साधारण, इन सोलह प्रकृतियो की स्थिति की सक्रम के द्वारा उद्वलना होने पर वह पल्य के असख्यातवे भाग मात्र शेप रह जाती है। तदनन्तर गुणसक्रम के द्वारा उनका प्रतिसमय वध्यमान प्रकृतियों मे प्रक्षेप करके उन्हे पूरी तरह से क्षीण कर दिया जाता है। यद्यपि अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कपाय की आठ प्रकृतियो के क्षय का प्रारम्भ पहले ही कर दिया जाता है तो भी इनका क्षय होने के पहले मध्य मे ही उक्त स्त्यानर्द्धित्रिक आदि सोलह प्रकृतियो का क्षय हो जाता है और इनके क्षय हो जाने के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त मे उक्त आठ प्रकृतियो का क्षय होता है।[1]

---

१ अनियट्टिवायरे थीणगिद्धितिगनिरयतिरियनामाओ ।
सखेज्ज इमे सेसे तप्पाओगाओ खीयति ॥
एत्तो हणइ कसायट्ठग पि · ····· ·· · ··

मतान्तर का उल्लेख

किन्तु इस विषय में किन्हीं आचार्यों का ऐसा भी मत है कि यद्यपि सोलह कषायों के क्षय का प्रारम्भ पहले कर दिया जाता है, तो भी आठ कषायों के क्षय हो जाने पर ही उक्त स्त्यानर्द्धित्रिक आदि सोलह प्रकृतियों का क्षय होता है। इसके पश्चात् नौ नोकषायों और चार संज्वलन, इन तेरह प्रकृतियों का अन्तरकरण करता है। अन्तरकरण करने के बाद नपुंसकवेद के उपरितन स्थितिगत दलिकों का उद्वलना विधि से क्षय करता है और इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त में उसकी पल्य के असंख्यातवें भाग प्रमाण स्थिति शेष रह जाती है। तत्पश्चात् इसके (नपुंसकवेद के) दलिकों का गुणसंक्रम के द्वारा बधने वाली अन्य प्रकृतियों में निक्षेप करता है। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त में इसका समूल नाश हो जाता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि जो जीव नपुंसकवेद के उदय के साथ क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है वह उसके अधस्तन दलिकों का वेदन करते हुए क्षय करता है। इस प्रकार नपुंसकवेद का क्षय हो जाने पर अन्तर्मुहूर्त में इसी क्रम से स्त्रीवेद का क्षय किया जाता है। तदनन्तर छह नोकषायों के क्षय का एक साथ प्रारम्भ किया जाता है। छह नोकषायों के क्षय का आरम्भ कर लेने के पश्चात् इनका संक्रमण पुरुषवेद में न होकर संज्वलन क्रोध में होता है और इस प्रकार इनका क्षय कर दिया जाता है। सूत्र में भी कहा है—

पच्छा नपुंसग इत्थी।
सो नोकसायछक्कं छुभइ संजलणकोहम्मि॥

जिस समय छह नोकषायों का क्षय होता है उसी समय पुरुषवेद के बंध, उदय और उदीरणा की व्युच्छित्ति होती है तथा एक समय कम दो आवलि प्रमाण समय प्रबद्ध को छोड़कर पुरुषवेद के शेष दलिका

का क्षय हो जाता है। यहाँ पुरुषवेद के उदय और उदीरणा का विच्छेद हो चुका है, इसलिये यह अपगतवेदी हो जाता है।

उक्त कथन पुरुषवेद के उदय से क्षपकश्रेणि का आरोहण करने वाले जीव की अपेक्षा जानना चाहिये। किन्तु जो जीव नपुसकवेद के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है, वह स्त्रीवेद और नपुसकवेद का एक साथ क्षय करता है तथा इसके जिस समय स्त्रीवेद और नपुसकवेद का क्षय होता है, उसी समय पुरुषवेद का बधविच्छेद होता है और इसके बाद वह अपगतवेदी होकर पुरुषवेद और छह नोकषायो का एक साथ क्षय करता है। यदि कोई जीव स्त्रीवेद के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढता है तो वह नपुसकवेद का क्षय हो जाने के पश्चात् स्त्रीवेद का क्षय करता है, किन्तु इसके भी स्त्रीवेद के क्षय होने के समय ही पुरुषवेद का बधविच्छेद होता है और इसके बाद अपगतवेदी होकर पुरुषवेद और छह नोकषायो का एक साथ क्षय करता है।

पुरुषवेद के आधार से क्षपकश्रेणि का वर्णन

जो जीव पुरुषवेद के उदय से क्षपकश्रेणि पर आरोहण कर क्रोध कषाय का वेदन कर रहा है तो उसके पुरुषवेद का उदयविच्छेद होने के बाद क्रोध कषाय का काल तीन भागो मे बँट जाता है— अश्वकर्णकरणकाल[1], किट्टीकरणकाल[2] और किट्टीवेदन

---

१ **अश्वकर्णकरण काल**—घोड़े के कान को अश्वकर्ण कहते है। यह मूल मे बडा और ऊपर की ओर क्रम से घटता हुआ होता है। इसी प्रकार जिस करण मे क्रोध से लेकर लोभ तक चारो सज्वलनो का अनुभाग उत्तरोत्तर अनत-गुणहीन हो जाता है, उस करण को अश्वकर्णकरण कहते है। इसके आदोलकरण और उद्वर्तनापवर्तनकरण, ये दो नाम और देखने को मिलते है।

२ **किट्टीकरण**—किट्टी का अर्थ कृश करना है। अत जिस करण मे पूर्व

काल[1]। इनमें से जब यह जीव अश्वकर्णकरण के काल में विद्यमान रहता है तब चारों संज्वलनों की अन्तरकरण से ऊपर की स्थिति में प्रतिसमय अनन्त अपूर्व स्पर्धक करता है तथा एक समय कम दो आवलिका प्रमाणकाल में बद्ध पुरुषवेद के दलिकों को इतने ही काल में संज्वलन क्रोध में संक्रमण कर नष्ट करता है। यहाँ पहले गुणसंक्रम होता है और अंतिम समय में सर्वसंक्रम होता है। अश्वकर्णकरण काल के समाप्त हो जाने पर किट्टीकरणकाल में प्रवेश करता है। यद्यपि किट्टियाँ अनन्त हैं पर स्थूल रूप से वे बारह हैं जो प्रत्येक कषाय में तीन-तीन प्राप्त होती हैं। किन्तु जो जीव मान के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है वह उद्वलना विधि से क्रोध का क्षय करके शेष तीन कषायों की नौ किट्टी करता है। यदि माया के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है तो क्रोध और मान का उद्वलना विधि से क्षय करके शेष दो कषायों की छह किट्टियाँ करता है और यदि लोभ के उदय से क्षपकश्रेणि चढ़ता है तो उद्वलना विधि से क्रोध, मान और माया इन तीन का क्षय करके लोभ की तीन किट्टियाँ करता है।

इस प्रकार किट्टीकरण के काल के समाप्त हो जाने पर क्रोध के उदय से क्षपकश्रेणि पर चढ़ा हुआ जीव क्रोध की प्रथम किट्टी की द्वितीयस्थिति में स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक एक आवलिका प्रमाणकाल के शेष रहने तक उसका वेदन करता है। अनन्तर दूसरी किट्टी की दूसरी स्थिति में स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है

स्पर्धकों और अपूर्व स्पर्धकों में से दलिकों को ले-लेकर उनके अनुभाग को अनन्त गुणहीन करके अंतराल से स्थापित किया जाता है उसको किट्टीकरण कहते हैं।

1 किट्टी वेदनकाल—किट्टियों के वेदन करने, अनुभव करने के काल को किट्टीवेदनकाल कहते हैं।

ओर एक समय अधिक एक आवलिका प्रमाणकाल के शेष रहने तक उसका वेदन करता है। उसके बाद तीसरी किट्टी की दूसरीस्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्पण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक एक आवलिका प्रमाणकाल के शेप रहने तक उसका वेदन करता है तथा इन तीनो किट्टियों के वेदन काल के समय उपरितन स्थितिगत दलिक का गुणसक्रम के द्वारा प्रति समय सज्वलन मान मे निक्षेप करता है और जब तीसरी किट्टी के वेदन का अंतिम समय प्राप्त होता है तब सज्वलन क्रोध के बध, उदय और उदीरणा का एक साथ विच्छेद हो जाता है।

इस समय इसके एक समय कम दो आवलिका प्रमाणकाल के द्वारा बंधे हुए दलिको को छोड़कर शेप का अभाव हो जाता है। तत्पश्चात् मान की प्रथम किट्टी की दूसरीस्थिति में स्थित दलिक का अपकर्पण करके प्रथमस्थिति करता है और एक अन्तर्मुहूर्त काल तक उसका वेदन करता है तथा मान की प्रथम किट्टी के वेदनकाल के भीतर ही एक समय कम दो आवलिका प्रमाणकाल के द्वारा सज्वलन क्रोध के बधकाल प्रमाण क्रमण भी करता है। यहाँ दो समय कम दो आवलिका काल तक गुणसक्रम होता है और अंतिम समय मे सर्व सक्रम होता है।

इस प्रकार मान की प्रथम किट्टी का एक समय अधिक एक आवलिका शेप रहने तक वेदन करता है और तत्पश्चात् मान की दूसरी किट्टी की दूसरीस्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक तक आवलिका काल के शेष रहने तक उसका वेदन करता है। तत्पश्चात् तीसरी किट्टी की दूसरीस्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक एक आवलिका काल के शेष रहने तक उसका वेदन करता है। इसी समय मान के वंध, उदय और

उदीरणा का विच्छेद हो जाता है तथा सत्ता मे केवल एक समय कम दो आवलिका के द्वारा बधे हुए दलिक शेष रहते हैं और बाकी सबका अभाव हो जाता है।

तत्पश्चात माया की प्रथम किट्टी की दूसरीस्थिति म स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक अन्तर्मुहूर्त काल तक उसका वेदन करता है तथा मान के बध आदिक के विच्छिन्न हो जाने पर उसके दलिक का एक समय कम दो आवलिका काल मे गुणसक्रम के द्वारा माया मे करता है। माया की प्रथम किट्टी का एक समय अधिक एक आवलिका काल शेष रहने तक वेदन करता है। तत्पश्चात् माया की दूसरी किट्टी की दूसरी स्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक एक आवलिका प्रमाण काल के शेष रहने तक उसका वेदन करता है। उसके बाद माया की तीसरी किट्टी की दूसरी स्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और उसका एक समय अधिक एक आवलिका काल के शेष रहन तक वेदन करता है। इसी समय माया के बध, उदय और उदीरणा का एक साथ विच्छेद हो जाता है तथा सत्ता मे केवल एक समय कम दो आवलिका के द्वारा बधे हुए दलिक शेष रहते है, शेष का अभाव हो जाता है।

तत्पश्चात् लोभ की प्रथम किट्टी की दूसरीस्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक अन्तर्मुहूर्त काल तक उसका वेदन करता है तथा माया के बध आदिक के विच्छिन्न हो जाने पर उसके नवीन बधे हुए दलिक का एक समय कम दो आवलिका काल मे गुणसक्रम के द्वारा लोभ मे निक्षेप करता है तथा माया की प्रथम किटटी का एक समय अधिक आवलिका काल के शेष रहने तक ही वेदन करता है।

अनन्तर लोभ की दूसरी किट्टी की दूसरी स्थिति में दलिक का अपकर्षण करके प्रथमस्थिति करता है और एक समय अधिक एक आवलिका काल के शेप रहने तक उसका वेदन करता है। जव यह जीव दूसरी किट्टी का वेदन करता है तब तीसरी किट्टी के दलिक की सूक्ष्म किट्टी करता है। यह क्रिया भी दूसरी किट्टी के वेदन-काल के समान एक समय अधिक एक आवलिका काल के शेप रहने तक चालू रहती है। जिस समय सूक्ष्म किट्टी करने का कार्य समाप्त होता है, उसी समय सज्वलन लोभ का वधविच्छेद, वादरकपाय के उदय और उदीरणा का विच्छेद तथा अनिवृत्तिबादर संपराय गुणस्थान के काल का विच्छेद होता है।

तदनन्तर सूक्ष्म किट्टी की दूसरी स्थिति मे स्थित दलिक का अपकर्पण करके प्रथम स्थिति करता है और उसका वेदन करता है। इसी समय से यह जीव सूक्ष्मसपराय कहलाता है।

सूक्ष्मसंपराय गुणस्थान के काल में एक भाग के शेप रहने तक यह जीव एक समय कम दो आवलिका के द्वारा बधे हुए सूक्ष्म किट्टी-गत दलिक का स्थितिघात आदि के द्वारा प्रत्येक समय में क्षय भी करता है। तदनन्तर जो एक भाग शेष रहता है, उसमे सर्वापवर्तना के द्वारा सज्वलन लोभ का अपवर्तन करके उसे सूक्ष्मसंपराय गुण-स्थान काल के बरावर करता है। सूक्ष्मसपराय गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त ही है। यहाँ से आगे संज्वलन लोभ के स्थितिघात आदि कार्य होना वन्द हो जाते है किन्तु शेप कर्मो के स्थितिघात आदि कार्य वरावर होते रहते है। सर्वापवर्तना के द्वारा अपवर्तित की गई इस स्थिति का उदय और उदीरणा के द्वारा एक समय अधिक एक आवलिका काल के शेप रहने तक वेदन करता है। तत्पश्चात् उदी-रणा का विच्छेद हो जाता है और सूक्ष्मसपराय गुणस्थान के अन्तिम समय तक सूक्ष्मलोभ का केवल उदय ही रहता है।

सूक्ष्मसपराय गुणस्थान के अन्तिम समय मे ज्ञानावरण की पाच, दशनावरण की चार, अन्तराय की पांच, यश कीर्ति और उच्चगोत्र, इन सोलह प्रकृतियो का बधविच्छेद तथा मोहनीय का उदय और सत्ता विच्छेद हो जाता है।

इस प्रकार से मोहनीय की क्षपणा का क्रम बतलाने के बाद अब पूर्वोक्त अर्थ का सकलन करने के लिये आगे की गाथा कहते हैं—

पुरिस कोहे कोह माणे माण च छुहइ मायाए।
माय च छुहइ लोहे लोह सुहुम पि तो हणइ[1] ॥६४॥

शब्दार्थ—पुरिस—पुरुषवेद को, कोहे—सज्वलन क्रोध मे कोह—क्रोध को माणे—सज्वलन मान मे माण—मान को च—और छुहइ—सक्रमित करता है मायाए—सज्वलन माया मे माय—माया को च—और, छुहइ—सक्रमित करता है लोहे—सज्वलन लोभ मे लोह—लोभ को सुहुम—सूक्ष्म पि—भी तो—उसके बाद, हणइ—क्षय करता है।

गाथार्थ—पुरुषवेद को सज्वलन क्रोध मे, क्रोध को सज्वलन मान मे, मान को सज्वलन माया मे, माया को सज्वलन लोभ मे सक्रमित करता है, उसके बाद सूक्ष्म लोभ का भी स्वोदय से क्षय करता है।

विशेषार्थ—गाथा मे सज्वलन क्रोध आदि चतुष्क के क्षय का क्रम बतलाया है।

इसके लिए सर्वप्रथम बतलाते हैं कि पुरुषवेद के बध आदि का

---

१ तुलना कीजिये—
कोह च छुहइ माण माण मायाए णियमसा छुहइ।
माय च छुहइ लोह पडिलोमो सकिमो णत्थि ॥
—कषाय पाहुड, क्षपणाधिकार

विच्छेद हो जाने पर उसका गुणसक्रमण क द्वारा संज्वलन क्रोध मे संक्रमण करता है । सज्वलन क्रोध के वध आदि का विच्छेद हो जाने पर उसका सज्वलन मान मे सक्रमण करता है । संज्वलन मान के वध आदि का विच्छेद हो जाने पर उसका सज्वलन माया मे संक्रमण करता है । सज्वलन माया के भी वध आदि का विच्छेद हो जाने पर उसका सज्वलन लोभ मे सक्रमण करता है तथा सज्वलन लोभ के वंध आदि का विच्छेद हो जाने पर सूक्ष्म किट्टीगत लोभ का विनाश करता है ।

इस प्रकार से सज्वलन क्रोध आदि कपायों की स्थिति हो जाने के वाद आगे की स्थिति वतलाते है कि लोभ का पूरी तरह से क्षय हो जाने पर उसके वाद के समय मे क्षीणकपाय होता है क्षीणकपाय के काल के बहुभाग के व्यतीत होने तक शेप कर्मो के स्थितिघात आदि कार्य पहले के समान चालू रहते है किन्तु जव एक भाग शेष रह जाता है तव ज्ञानावरण की पाँच, दर्शनावरण की चार, अन्तराय की पॉच और निद्राद्विक, इन सोलह प्रकृतियो की स्थिति का घात सर्वापवर्तना के द्वारा अपवर्तन करके उसे क्षीणकषाय के शेप रहे हुए काल के वराबर करता है । केवल निद्राद्विक की स्थिति स्वरूप की अपेक्षा एक समय कम रहती है । सामान्य कर्म की अपेक्षा तो इनकी स्थिति शेप कर्मो के समान ही रहती है । क्षीणकषाय के सम्पूर्ण काल की अपेक्षा यह काल यद्यपि उसका एक भाग है तो भी उसका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त होता है । इनकी स्थिति क्षीणकपाय के काल के बराबर होते ही इनमे स्थितिघात आदि कार्य नही होते किन्तु शेष कर्मो के होते है । निद्राद्विक के विना शेष चौदह प्रकृतियो का एक समय अधिक एक आवलि काल के शेप रहने तक उदय और उदीरणा दोनो होते है । अनन्तर एक आवलि काल तक केवल उदय ही होता है । क्षीणकपाय के

उपान्त्य समय म निद्राद्विक का स्वरूपसत्ता की अपेक्षा क्षय करता है और अन्तिम समय मे शेप चौदह प्रकृतिया का क्षय करता है—

खीणकसायदुचरिमे निद्दा पयला य हणइ छउमत्थो ।
आवरणमतराए छउमत्थो चरिमसमयम्मि ॥

इसके अनन्तर समय मे यह जीव सयोगिकेवली होता है। जिसे जिन, केवलज्ञानी भी कहते हैं। सयोगिकेवली हो जाने पर वह लोकालोक का पूरी तरह ज्ञाता द्रष्टा होता है। ससार मे ऐसा कोई पदार्थ न है, न हुआ और न होगा जिसे जिनदेव नही जानते हैं। अर्थात् वे सबको जानते और देखते हैं—

सभिन्न पासतो लोगमलोग च सव्वओ सव्व ।
त नत्थि ज न पासइ भूय भव्व भविस्स च ॥

इस प्रकार सयोगिकेवली जघन्य से अन्तर्मुहूर्त तक और उत्कृष्ट से कुछ कम पूर्वकोटि काल तक विहार करते हैं। सयोगिकेवली अवस्था प्राप्त होने तक चार घातीकर्म—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय—निःशेप रूप से क्षय हो जाते हैं, किन्तु शेप वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र ये चार अघातिकर्म शेप रह जाते हैं। अत यदि आयुकर्म को छोडकर शेप वेदनीय, नाम, गोत्र, इन तीन कर्मों की स्थिति आयुकर्म की स्थिति से अधिक होती है तो उनकी स्थिति को आयुकर्म की स्थिति के बराबर करने के लिये अन्त मे समुद्घात करते हैं और यदि उक्त शेप तीन कर्मों की स्थिति आयुकर्म के बराबर होती है तो समुद्घात नही करते हैं। प्रज्ञापना सूत्र म कहा भी है—

सव्वे वि ण भते ! केवली समुग्घायं गच्छति ? गोयमा ! नो इणट्ठे समट्ठे ।
जस्साउएण तुल्लाइ बधणेहि ठिईहि य ।
भवोवग्गहकम्माइ न समुग्घाय स गच्छइ ॥

अगतूणं समुग्घायमणता केवली जिणा।
जरमरणविप्पमुक्का सिद्धिं वरगइं गया॥

समुद्‌घात की व्याख्या

मूल शरीर को न छोड़कर आत्म-प्रदेशो का शरीर से बाहर निकलना समुद्‌घात कहलाता है। इसके सात भेद हैं—वेदनासमुद्‌घात, कपायसमुद्‌घात, मारणान्तिकसमुद्‌घात, तैजससमुद्‌घात, वैक्रियसमुद्‌घात, आहारकसमुद्‌घात और केवलिसमुद्‌घात। इन सात भेदो के संक्षेप मे लक्षण इस प्रकार है—

तीव्र वेदना के कारण जो समुद्‌घात होता है, उसको वेदना समुद्‌घात कहते है। क्रोध आदि के निमित्त से जो समुद्‌घात होता है उसे कपायसमुद्‌घात कहते है। मरण के पहले उस निमित्त से जो समुद्‌घात होता है उसे मारणान्तिक समुद्‌घात कहते है। जीवो के अनुग्रह या विनाश करने मे समर्थ तैजस शरीर की रचना के लिये जो समुद्‌घात होता है उसे तैजससमुद्‌घात कहते हैं। वैक्रियशरीर के निमित्त से जो समुद्‌घात होता है उसे वैक्रियसमुद्‌घात कहते है, आहारकशरीर के निमित्त से जो समुद्‌घात होता है उसे आहारक समुद्‌घात कहते हैं तथा वेदनीय आदि तीन अघाति कर्मो की स्थिति आयुकर्म की स्थिति के बरावर करने के लिये जिन (केवलज्ञानी) जो समुद्‌घात करते है, उसे केवलिसमुद्‌घात कहते हैं।

केवलिसमुद्‌घात का काल आठ समय है। पहले समय मे स्व-शरीर का जितना आकार है तत्प्रमाण आत्म-प्रदेशो को ऊपर और नीचे लोक के अन्तपर्यन्त रचते है, उसे दण्डसमुद्‌घात कहते है। दूसरे समय मे पूर्व और पश्चिम या दक्षिण और उत्तर दिशा मे कपाटरूप से आत्म-प्रदेशो को फैलाते है। तीसरे समय मे मथानसमुद्‌घात करते है अर्थात् मथानी के आकार मे आठो दिशाओ मे आत्म-प्रदेशो का फैलाव

होता है। चौथे समय मे लोक मे जो अवकाश शेष रहता है उसे भर देते है। इसे लोकपूरण अवस्था कहते है। इस प्रकार से लोक पूरित स्थिति बन जाने के पश्चात पाँचवें समय मे सकोच करते है और आत्म-प्रदेशो को मथान के रूप मे परिणत कर लेते है। छठे समय मे मथान रूप अवस्था का सकोच करते हैं। सातवें समय मे पुन कपाट अवस्था को सकोचते हैं और आठवें समय मे स्वशरीरस्थ हो जाते हैं।

इस प्रकार यह केवलिसमुद्घात की प्रक्रिया है।

योग-निरोध की प्रक्रिया

जो केवली समुद्घात को प्राप्त होते हैं वे समुद्घात के पश्चात् और जो समुदघात को प्राप्त नही होते हैं वे योग निरोध के योग्य काल के शेप रहने पर योग-निरोध का प्रारम्भ करते है।

इसमे सबसे पहले वादर काययोग के द्वारा वादर मनोयोग को रोकते है। तत्पश्चात वादर वचनयोग को रोकते हैं। इसके वाद सूक्ष्म काययोग के द्वारा वादर काययोग को रोकते हैं। तत्पश्चात् सूक्ष्म मनोयोग को रोकते हैं। तत्पश्चात सूक्ष्म वचनयोग को रोकते हैं। तत्पश्चात सूक्ष्म काययोग को रोकते हुए सूक्ष्मक्रियाप्रतिपात ध्यान को प्राप्त होते हैं। इस ध्यान की सामर्थ्य से आत्मप्रदेश सकुचित होकर निश्छिद्र हो जाते हैं। इस ध्यान मे स्थितिघात आदि के द्वारा सयोगि अवस्था के अन्तिम समय तक आयुकम के सिवाय भव का उपकार करने वाले शेप सव कर्मों का अपवतन करते हैं, जिससे सयोगि-केवली के अतिम समय मे सव कर्मो की स्थिति अयोगिकेवली गुणस्थान के काल के वरावर हो जाती है। यहाँ इतनी विशेषता है कि जिन कर्मों का अयोगिकेवली के उदय नही होता उनकी स्थिति स्वरूप की अपेक्षा एक समय कम हो जाती है किन्तु कम सामाय की

अपेक्षा उनकी भी स्थिति अयोगिकेवली गुणस्थान के काल के बराबर रहती है।

सयोगिकेवली गुणस्थान के अन्तिम समय मे निम्नलिखित तीस प्रकृतियों का विच्छेद होता है—

साता या असाता में से कोई एक वेदनीय, औदारिकशरीर, तैजसशरीर, कार्मणशरीर, छह संस्थान, पहला सहनन, औदारिक-अंगोपाग, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उच्छ्वास, शुभ-अशुभ विहायोगति, प्रत्येक, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दुस्वर और निर्माण।

सयोगिकेवली गुणस्थान के अन्तिम समय मे उक्त तीस प्रकृतियो के उदय और उदीरणा का विच्छेद करके उसके अनन्तर समय मे वे अयोगिकेवली हो जाते है। अयोगिकेवली गुणस्थान का काल अन्त-र्मुहूर्त है। इस अवस्था मे भव का उपकार करने वाले कर्मो का क्षय करने के लिये व्युपरतक्रियाप्रतिपाति ध्यान करते हैं। वहाँ स्थिति-घात आदि कार्य नही होते है। किन्तु जिन कर्मो का उदय होता है, उनको तो अपनी स्थिति पूरी होने से अनुभव करके नष्ट कर देते है तथा जिन प्रकृतियो का उदय नही होता उनका स्तिबुकसक्रम के द्वारा प्रति समय वेद्यमान प्रकृतियों मे संक्रम करते हुए अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय तक वेद्यमान प्रकृति रूप से वेदन करते है।

अब आगे की गाथा मे अयोगिकेवली के उपान्त्य समय मे क्षय होने वाली प्रकृतियो को बतलाते है।

देवगइसहगयाओ दुचरम समयभवियम्मि खीयंति।
सविवागेयरनामा नीयागोयं पि तत्थेव ॥६५॥

शब्दार्थ—**देवगइसहगयाओ**—देवगति के साथ जिनका बंध होता है ऐसी, **दुचरमसमयभवियम्मि**—दो अन्तिम समय जिसके

बाकी हैं, ऐसे जीव के, खीयति—क्षय होती है, सविवागेयरनामा—विपाकरहित नामकर्म की प्रकृतियां, नीयागोय—नीच गोत्र और एक वेदनीय, पि—भी, तत्थेव—वही पर।

गाथार्थ—अयोगिकेवली अवस्था मे दो अतिम समय जिसके बाकी हैं ऐसे जीव के देवगति के साथ बघने वाली प्रकृतियो का क्षय होता है तथा विपाकरहित जो नामकर्म की प्रकृतियाँ हैं तथा नीच गोत्र और किसी एक वेदनीय का भी वही क्षय होता है।

विशेषार्थ—गाथा मे अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय मे क्षय होने वाली प्रकृतियो का निर्देश किया है।

जैसा कि पहले बता आये हैं कि अयोगिकेवली अवस्था मे जिन प्रकृतिया का उदय नही होता है उनकी स्थिति अयोगिकेवली गुणस्थान के काल से एक समय कम होती है। इसीलिये उनका उपान्त्य समय मे क्षय हो जाता है। उपान्त्य समय मे क्षय होने वाली प्रकृतिया का कथन पहले नही किया गया है, अत इस गाथा मे निर्देश किया है कि जिन प्रकृतियो का देवगति के साथ बघ होता है उनकी तथा नामकर्म की जिन प्रकृतियो का अयोगिअवस्था मे उदय नही होता उनकी और नीच गोत्र व किसी एक वेदनीय की उपान्त्य समय मे सत्ता का विच्छेद हो जाता है।

देवगति के साथ बघने वाली प्रकृतियो के नाम इस प्रकार हैं—देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय बघन, वैक्रिय सघात, वैक्रिय अगोपाग, आहारक शरीर, आहारक बघन, आहारक सघात, आहारक अगोपाग, यह दस प्रकृतिया हैं।

गाथा मे अनुदय रूप से सकेत की गई नामकर्म की पैतालीस प्रकृतिया यह हैं—औदारिक शरीर, औदारिक बघन, औदारिक सघात, तैजस शरीर, तैजस बघन, तैजस सघात, कार्मण शरीर, कार्मण-

बंधन, कार्मण सघात, छह सस्थान, छह संहनन, औदारिक अगोपाग, वर्णचतुष्क, मनुष्यानुपूर्वी, पराघात, उपघात, अगुरुलघु, प्रशस्त और अप्रशस्त विहायोगति, प्रत्येक, अपर्याप्त, उच्छ्वास, स्थिर, अस्थिर, शुभ, अशुभ, सुस्वर, दु:स्वर, दुर्भग, अनादेय, अयश.कीर्ति और निर्माण।

इनके अतिरिक्त नीच गोत्र और साता व असाता वेदनीय मे से कोई एक वेदनीय कर्म। कुल मिलाकर ये सब १०+४५+२=५७ होती है। जिनका अयोगिकेवली अवस्था के उपान्त्य समय में क्षय हो जाता है—दुचरमसमयभवियम्मि खीयति।

उक्त सत्तावन प्रकृतियो मे वर्णचतुष्क मे वर्ण, गध, रस और स्पर्श, यह चार मूल भेद ग्रहण किये हैं, इनके अवान्तर भेद नही। यदि इन मूल वर्णादि चार के स्थान पर उनके अवान्तर भेद ग्रहण किये जाये तो उपान्त्य समय मे क्षय होने वाली प्रकृतियो की सख्या तिहत्तर हो जाती है। यद्यपि गाथा मे किसी भी वेदनीय का नामोल्लेख नही किया किन्तु गाथा मे जो 'पि'—शब्द आया है उसके द्वारा वेदनीय कर्म के दोनो भेदो मे से किसी एक वेदनीय कर्म का ग्रहण हो जाता है।

इस प्रकार से अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय मे क्षय होने वाली प्रकृतियो का उल्लेख करने के वाद अब आगे की गाथा मे अन्त समय तक उदय रहने वाली प्रकृतियों को बतलाते है।

अन्नयरवेयणीयं मणुयाउय उच्चगोय नव नामे।
वेएइ अजोगिजिणो उक्कोस जहन्न एक्कारं ॥६६॥

शब्दार्थ—अन्नयरवेयणीयं—दो मे से कोई एक वेदनीय कर्म, मणुयाउय—मनुष्यायु, उच्चगोय—उच्चगोत्र, नव नामे—नामकर्म की नौ प्रकृतियाँ, वेएइ—वेदन करते हैं, अजोगिजिणो—अयोगि-

केवली जिन, उक्कोस—उत्कृष्ट से, जहन्न—जघन्य से, एक्कार—ग्यारह।

गाथार्थ—अयोगिजिन उत्कृष्ट रूप से दोनो वेदनीय मे से किसी एक वेदनीय, मनुष्यायु, उच्चगोत्र और नामकर्म की नौ प्रकृतियाँ, इस प्रकार बारह प्रकृतियो का वेदन करते हैं तथा जघन्य रूप से ग्यारह प्रकृतियो का वेदन करते हैं।

विशेषार्थ—अयोगिकेवली गुणस्थान मे उपान्त्य समय तक कर्मो की कुछ एक प्रकृतियो को छोडकर शेष प्रकृतियो का क्षय हो जाता है। लेकिन जो प्रकृतिया अन्तिम समय मे क्षय होती हैं उनके नाम इस गाथा मे बतलाते हैं कि किसी एक वेदनीय कर्म, मनुष्यायु, उच्च गोत्र और नामकर्म की नौ प्रकृतियो का क्षय होता है।

यहाँ (अयोगिकेवली अवस्था मे) किसी एक वेदनीय के क्षय होने का कारण यह है कि तेरहवे सयोगिकेवली गुणस्थान के अन्तिम समय मे साता और असाता वेदनीय मे से किसी एक वेदनीय का उदयविच्छेद हो जाता है। यदि साता का विच्छेद होता है तो असाता वेदनीय का और असाता का विच्छेद होता है तो साता वेदनीय का उदय शेष रहता है। इसी बात को बतलाने के लिये गाथा मे 'अन्नयरवेयणीय'—अन्यतर वेदनीय पद दिया है।

इसके अलावा गाथा मे उत्कृष्ट रूप से बारह और जघन्य रूप से ग्यारह प्रकृतियो के उदय को बतलाने का कारण यह है कि सभी जीवो के तीर्थंकर प्रकृति का उदय नही होता है। तीर्थंकर प्रकृति का उदय उन्हीं को होता है जिन्होंने उसका बंध किया हो। इसलिये अयोगिकेवली अवस्था मे अधिक से अधिक बारह प्रकृतियो का और कम से कम ग्यारह प्रकृतियो का उदय माना गया है।

बारह प्रकृतियो के नामोल्लेख मे नामकर्म की नौ प्रकृतिया हैं

अतएव अब अगली गाथा में अयोगि अवस्था मे उदययोग्य नामकर्म की नौ प्रकृतियों के नाम बतलाते हैं।

मणुयगइ जाइ तस बायरं च पज्जत्तसुभगमाइज्जं।
जसकित्ती तित्थयर नामस्स हवंति नव एया ॥६७॥

शब्दार्थ—मणुयगइ—मनुष्यगति, जाइ—पचेन्द्रिय जाति, तसबायरं—त्रस बादर, च—और, पज्जत्त—पर्याप्त, सुभग—सुभग, आइज्जं—आदेय, जसकित्ती—यश.कीर्ति, तित्थयरं—तीर्थंकर, नामस्स—नामकर्म की, हवति—हैं, नव—नौ, एया—ये।

गाथार्थ—मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति और तीर्थंकर ये नामकर्म नौ प्रकृतिया है।

विशेषार्थ—पूर्व गाथा मे सकेत किया गया था कि नामकर्म की नौ प्रकृतियों का उदय अयोगिकेवली गुणस्थान के अतिम समय तक रहता है किन्तु उनके नाम का निर्देश नही किया था। अत इस गाथा मे नामकर्म की उक्त नौ प्रकृतियो के नाम इस प्रकार बतलाये है—१ मनुष्यगति, २ पचेन्द्रिय जाति, ३ त्रस, ४ बादर, ५. पर्याप्त, ६ सुभग, ७ आदेय, ८ यशःकीर्ति, ९ तीर्थंकर।

नामकर्म की नौ प्रकृतियो को बतलाने के बाद अब आगे की गाथा मे मनुष्यानुपूर्वी के उदय को लेकर पाये जाने वाले मतान्तर का कथन करते हैं।

तच्चाणुपुव्विसहिया तेरस भवसिद्धियस्स चरिमम्मि।
संतंसगमुक्कोसं जहन्नयं बारस हवंति ॥६८॥

शब्दार्थ—तच्चाणुपुव्विसहिया—उस (मनुष्य की) आनुपूर्वी सहित, तेरस—तेरह, भवसिद्धियस्स—तद्भव मोक्षगामी जीव के, चरिमम्मि—चरम समय मे, संतसगं—कर्म प्रकृतियो की सत्ता,

उक्कोस—उत्कृष्ट रूप से जहन्नय—जघन्य रूप स, बारस—बारह, हवति—होती ह ।

गाथाथ—तद्भव मोक्षगामी जीव के चरम समय मे उत्कृष्ट रूप से मनुष्यानुपूर्वी सहित तेरह प्रकृतियो की और जघन्य रूप से बारह प्रकृतियो की सत्ता होती है।

विशेषाथ—इस गाथा मे मतान्तर का उल्लेख किया गया है कि कुछ आचाय अयोगिकेवली गुणस्थान के चरम समय म मनुष्यानुपूर्वी का भी उदय मानते हैं, इसलिये उनके मत से चरम समय म तेरह प्रकृतियो की और जघन्य रूप से बारह प्रकृतियो की सत्ता हाती है।

पहले यह सकेत किया जा चुका है कि जिन प्रकृतियो का उदय अयोगि अवस्था म नही होता है, उनकी सत्ता का विच्छेद उपान्त्य समय मे हो जाता है। मनुष्यानुपूर्वी का उदय पहले, दूसरे और चौथे गुणस्थान मे ही होता है, इसलिये इसका उदय अयोगि अवस्था मे नही हो सकता है। इसी कारण इसकी सत्ता का विच्छेद अयोगि-केवली अवस्था क उपान्त्य समय मे बतलाया है। लेकिन अन्य कुछ आचार्यो का मत है कि मनुष्यानुपूर्वी की सत्त्व-व्युच्छित्ति अयोगि अवस्था के अतिम समय मे होती है। इस मतान्तर के कारण अयोगि अवस्था के चरम समय मे उत्कृष्ट रूप से तेरह प्रकृतिया की और जघन्य रूप स बारह प्रकृतिया की सत्ता मानी जाती है। इस मतान्तर का स्पष्टीकरण आगे की गाथा मे किया जा रहा है।

पूर्वोक्त कथन का साराश यह है कि सप्ततिका के कर्ता के मतानुसार मनुष्यानुपूर्वी का उपान्त्य समय में क्षय हो जाता है, जिससे अतिम समय मे उदयगत बारह प्रकृतिया या ग्यारह प्रकृतियो की सत्ता पाई जाती है। लेकिन कुछ आचार्यो के मतानुसार अतिम समय मे मनुष्यानुपूर्वी की सत्ता और रहती है अत अतिम समय म तेरह या बारह प्रकृतिया की सत्ता पाई जाती है।

अब अन्य आचार्यों द्वारा मनुष्यानुपूर्वी की सत्ता अंतिम समय तक माने जाने के कारण को अगली गाथा मे स्पष्ट करते है।

मणुयगइसहगयाओ भवखित्तविवागजीववाग त्ति।
वेयणियन्नयरुच्चं च चरिम भविस्यस खीयंति ॥६९॥

शब्दार्थ—मणुयगइसहगयाओ—मनुष्यगति के साथ उदय को प्राप्त होने वाली, भवखित्तविवाग—भव और क्षेत्र विपाकी, जीववाग त्ति—जीवविपाकी, वेयणियन्नयर—अन्यतर वेदनीय (कोई एक वेदनीय कर्म), उच्चं—उच्च गोत्र, च—और, चरिम भवियस्स—चरम समय मे भव्य जीव के, खीयति—क्षय होती है।

गाथार्थ—मनुष्यगति के साथ उदय को प्राप्त होने वाली भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी प्रकृतियो का तथा किसी एक वेदनीय और उच्च गोत्र का तद्भव मोक्षगामी भव्य जीव के चरम समय मे क्षय होता है।

विशेषार्थ—इस गाथा मे बतलाया गया है कि—'मणुयगइसहगयाओ' मनुष्यगति के साथ उदय को प्राप्त होने वाली जितनी भी भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी प्रकृतियाँ है तथा कोई एक वेदनीय और उच्च गोत्र, इनका अयोगिकेवली गुणस्थान के अतिम समय मे क्षय होता है।

भवविपाकी, क्षेत्रविपाकी और जीवविपाकी का अर्थ यह है कि जो प्रकृतिया नरक आदि भव की प्रधानता से अपना फल देती है, वे भवविपाकी कही जाती है, जैसे चारो आयु। जो प्रकृतिया क्षेत्र की प्रधानता से अपना फल देती है वे क्षेत्रविपाकी कहलाती है, जैसे चारो आनुपूर्वी। जो प्रकृतियां अपना फल जीव मे देती है उन्हे जीवविपाकी कहते है, जैसे पाँच ज्ञानावरण आदि।

यहाँ मनुष्यायु भवविपाकी है, मनुष्यानुपूर्वी क्षेत्रविपाकी और

पूर्वोक्त नामकर्म की नौ प्रकृतियाँ जीवविपाकी हैं तथा इनके अतिरिक्त कोई एक वेदनीय तथा उच्चगोत्र इन दो प्रकृतियों को और मिलाने से कुल तेरह प्रकृतियां हो जाती हैं जिनका क्षय भवसिद्धिक जीव के अयोगिकेवली गुणस्थान के अंतिम समय में होता है।

मतान्तर सहित पूर्वोक्त कथन का सारांश यह है कि मनुष्यानुपूर्वी का जब भी उदय होता है तब उसका उदय मनुष्यगति के साथ ही होता है। इस नियम के अनुसार भवसिद्धिक जीव के अंतिम समय में तेरह या तीर्थंकर प्रकृति के बिना बारह प्रकृतियों का क्षय होता है। किन्तु मनुष्यानुपूर्वी प्रकृति अयोगिकेवली गुणस्थान के उपान्त्य समय में क्षय हो जाती है इस मतानुसार मनुष्यानुपूर्वी का अयोगिकेवली अवस्था में उदय नहीं होता है अतः उसका अयोगि अवस्था के उपान्त्य समय में क्षय हो जाता है। जो प्रकृतियां उदय वाली होती हैं उनका स्तिबुकसंक्रम नहीं होता है जिससे उनके दलिक स्व-स्वरूप से अपने-अपने उदय के अंतिम समय में दिखाई देते हैं और इसलिये उनका अंतिम समय में सत्ताविच्छेद होता है। चारों आनुपूर्वी क्षेत्रविपाकी प्रकृतियां हैं उनका उदय केवल अपान्तराल गति में ही होता है। इसलिये भवस्थ जीव के उनका उदय संभव नहीं है और इसीलिये मनुष्यानुपूर्वी का अयोगि अवस्था के अंतिम समय में सत्ताविच्छेद न होकर द्विचरम समय में ही उसका सत्ता विच्छेद हो जाता है। पहले जो द्विचरम समय में सत्तावन प्रकृतियों का सत्ताविच्छेद और अंतिम समय में बारह या तीर्थंकर प्रकृति के बिना ग्यारह प्रकृतियों का सत्ताविच्छेद बतलाया है वह इसी मत के अनुसार बतलाया है।[1]

---

1 दिगम्बर साहित्य गो० कर्मकांड में एक इसी मत का उल्लेख है कि— मनुष्यानुपूर्वी की चौदहवें गुणस्थान के अंतिम समय में सत्वव्युच्छित्ति होती है—

निःशेष रूप से कर्मों का क्षय हो जाने के बाद जीव एक समय में ही ऋजुगति से ऊर्ध्वगमन करके सिद्धि स्थान को प्राप्त कर लेता है। आवश्यक चूर्णि में कहा है—

जत्तिए जीवोऽवगाढो तावइयाए ओगाहणाए उड्ढं
उज्जुगं गच्छइ, न वंकं, बीय च समयं न फुसइ ॥

अयोगि अवस्था मे प्रकृतियो के विच्छेद के मतान्तर का उल्लेख करने के बाद अब आगे की गाथा मे यह बतलाते है कि अयोगि अवस्था के अतिम समय मे कर्मो का समूल नाश हो जाने के बाद निष्कर्मा शुद्ध आत्मा की अवस्था कैसी होती है।

अह सुइयसयलजगसिहरमरुयनिरुवमसहावसिद्धिसुहं ।
अनिहणमव्वाबाहं तिरयणसारं अणुहवंति ॥७०॥

शब्दार्थ—**अह**—इसके बाद (कर्म क्षय होने के बाद), **सुइय**—एकात शुद्ध, **सयल**—समस्त, **जगसिहरं**—जगत के सुख के शिखर तुल्य, **अरुय**—रोग रहित, **निरुवम**—निरुपम, उपमारहित, **सहाव**—स्वाभाविक, **सिद्धिसुहं**—मोक्ष सुख को, **अनिहणं**—नाश रहित, अनन्त, **अव्वाबाहं**—अव्याबाध, **तिरयणसारं**—रत्न त्रय के सार रूप, **अणुहवंति**—अनुभव करते हैं।

गाथार्थ—कर्म क्षय होने के बाद जीव एकांत शुद्ध, समस्त जगत के सब सुखो से भी बढकर, रोगरहित, उपमा रहित, स्वाभाविक, नाशरहित, बाधारहित, रत्नत्रय के सार रूप मोक्ष सुख का अनुभव करते है।

विशेषार्थ—गाथा मे कर्मक्षय हो जाने के बाद जीव की स्थिति का वर्णन किया है कि वह सुख का अनुभव करता है।

उदयगवार णराणू तेरस चरिमम्हि वोच्छिण्णा ॥३४१॥ किंतु धवला प्रथम पुस्तक मे सप्ततिका के समान दोनो ही मतो का उल्लेख किया है। देखो धवला, प्रथम पुस्तक, पृ० २२४।

कर्मातीत अवस्था प्राप्ति के वाद प्राप्त होने वाले सुख के क्रमश नौ विशेपण दिये हैं। उनमे पहला विशेषण है—'सुइय' जिसका अथ होता है शुचिक। टीकाकार आचाय मलयगिरि ने शुचिक का अथ एकान्त शुद्ध किया है। इसका यह भाव है कि ससारी जीवो को प्राप्त होने वाला सुख रागद्वेप से मिला हुआ होता है, किन्तु सिद्ध जीवो को प्राप्त होने वाले सुख मे रागद्वेप का सवथा अभाव होता है इस-लिये उनको जो सुख होता है वह शुद्ध आत्मा से उत्पन्न होता है, उसमे वाहरी वस्तु का सयोग और वियोग तथा इष्टानिष्ट कल्पना कारण नही है।

दूसरा विशेपण है—'सयल'—सकल। जिसका अथ सम्पूण होता है। मोक्ष सुख को सम्पूण कहने का कारण यह है कि ससार अवस्था मे जीवा व कर्मों का सवध वना रहता है जिससे एक तो आत्मिक सुख की प्राप्ति होती ही नही और कदाचित् सम्यग्दशन आदि के निमित्त से आत्मिक सुख की प्राप्ति होती भी है तो उसमे व्याकुलता का अभाव न होने मे वह किंचिन्मात्रा मे सीमित मात्रा म प्राप्त होता है। किन्तु सिद्धा के सव वाधक कारणो का अभाव हो जाने से पूण सिद्धि जन्य सुख प्राप्त होता है। इसी भाव को वतलाने के लिये 'सयल' विशेपण दिया गया है।

तीसरा विशेपण 'जग सिहर'—जग शिखर है जिसका अथ है कि जगत म जितने भी सुख हैं, सिद्ध जीवा का सुख उन सब म प्रधान है। क्योकि आत्मा के अनन्त अनुजीवी गुणो मे सुख भी एक गुण है। अत जब तक यह जीव ससार म बना रहता है, वास करता है तब तक उसका यह गुण घातित रहता है। कदाचित् प्रगट भी होता है, तो स्वल्प मात्रा म प्रगट होता है। किन्तु सिद्ध जीवो के प्रतिवन्धक कारणा के दूर हो जान से सुख गुण अपन पूण रूप मे प्रगट हो जाता है, इसलिये जगत म जितन भी प्रकार के सुख हैं, उनमे सिद्ध जीवा

का सुख प्रधानभूत है और इसी बात को जगशिखर विशेपण द्वारा स्पष्ट किया गया है।

चौथा विशेपण 'अरुय'—रोग रहित है। अर्थात् उस सुख मे लेश मात्र भी व्याधि-रोग नही है। क्योकि रोगादि दोपो की उत्पत्ति शरीर के निमित्त से होती है और जहाँ शरीर है वहाँ रोग की उत्पत्ति अवश्य होती है—'शरीर व्याधिमदिरम्'। लेकिन सिद्ध जीव शरीर रहित है, उनके शरीर प्राप्ति का निमित्तकरण कर्म भी दूर हो गया है, इसीलिये सिद्ध जीवो का सुख रोगादि दोपो से रहित है।

सिद्ध जीवो के सुख के लिये पाँचवा विशेपण 'निरुवम' दिया है यानी उपमा रहित है। इसका कारण यह है कि उप अर्थात् उपचार से या निकटता से जो माप करने की प्रक्रिया है, उसे उपमा कहते है। इसका भाव यह है प्रत्येक वस्तु के गुण, धर्म और उसकी पर्याय दूसरी वस्तु के गुण, धर्म और पर्याय से भिन्न हैं, अत. थोडी-बहुत समानता को देखकर दृष्टात द्वारा उसका परिज्ञान कराने की प्रक्रिया को उपमा कहते है। परन्तु यह प्रक्रिया इन्द्रियगोचर पदार्थों मे ही घटित हो सकती है और सिद्ध परमेष्ठी का सुख तो अतीन्द्रिय है, इसलिये उपमा द्वारा उसका परिज्ञान नही कराया जा सकता है। ससार में तत्सदृश ऐसा कोई पदार्थ नही जिसकी उसे उपमा दी जा सके, इसलिये सिद्ध परमेष्ठि के सुख को अनुपम कहा है।

छठा विशेषण स्वभावभूत 'सहाव' है। इसका आशय यह है कि ससारी सुख तो कोमल स्पर्श, सुस्वादु भोजन, वायुमण्डल को सुरभित करने वाले अनेक प्रकार के पुष्प, इत्र, तेल आदि के गध, रमणीय रूप के अवलोकन, मधुर सगीत आदि के निमित्त से उत्पन्न होता है, लेकिन सिद्ध सुख की यह बात नही है, वह तो आत्मा का स्वभाव है, वह बाह्य इष्ट मनोज्ञ पदार्थो के संयोग से उत्पन्न नही होता है।

सातवाँ विशेषण 'अनिहण'—अनिधन है। इसका भाव यह है कि सिद्ध अवस्था प्राप्त हो जाने के बाद उसका कभी नाश नहीं होता है। उसके स्वाभाविक अनतगुण सदा स्वभाव रूप से स्थिर रहते हैं, उनमें सुख भी एक गुण है, अत उसका भी कभी नाश नहीं होता है।

आठवा विशेषण है—'अव्वाबाह'—अव्याबाध। अर्थात् बाधारहित है उसमें किसी प्रकार का अन्तराल नहीं और न किसी के द्वारा उसमें रुकावट आती है। जो अन्य के निमित्त से होता है या अस्थायी होता है, उसी मे बाधा उत्पन्न होती है। परन्तु सिद्ध जीवों का सुख न तो अन्य के निमित्त से ही उत्पन्न होता है और न थोड़े काल तक ही टिकने वाला है। यह तो आत्मा का अपना ही है और सदा-सर्वदा व्यक्त रहने वाला धर्म है। इसीलिये उसे अव्याबाध कहा है।

अन्तिम—नौवा विशेषण त्रिरत्नसार 'तिरयणसार' है। यानी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र यह तीन रत्न हैं, जिन्हे रत्नत्रय कहते हैं। सिद्धों को प्राप्त होने वाला सुख उनका सारफल है। क्योंकि सम्यग्दर्शन आदि रत्नत्रय कर्मक्षय का कारण है और कर्मक्षय के बाद सिद्ध सुख की प्राप्ति होती है। इसीलिये सिद्धि सुख को रत्नत्रय का सार कहा गया है। ससारी जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रय की आराधना इसीलिये करता है कि उसे निराकुल अवस्था की प्राप्ति हो। सुख की अभिव्यक्ति निराकुलता में ही है। इसी कारण से सिद्धों को प्राप्त होने वाले सुख को रत्नत्रय का सार बताया है।

आत्मस्वरूप की प्राप्ति करना जीवमात्र का लक्ष्य है और उस स्वरूप प्राप्ति में बाधक कारण कर्म है। कर्मों का क्षय हो जाने के अनन्तर अन्य कुछ प्राप्त करना शेष नहीं रहता है। ग्रन्थ में कर्म की विविध स्थितियों, उनके क्षय के उपाय और कर्म क्षय के पश्चात्

प्राप्त होने वाली आत्मस्थिति का पूर्णरूपेण विवेचन किया जा चुका है। अत· अव ग्रथकार ग्रंथ का उपसहार करने के लिए गाथा कहते है कि—

दुरहिगम-निउण-परमत्थ-रुइर-वहुभगदिट्ठिवायाओ ।
अत्था अणुसरियव्वा वंधोदयसंतकम्माणं ॥७१॥

शब्दार्थ—**दुरहिगम**—अतिश्रम से जानने योग्य, **निउण**—सूक्ष्म वुद्धिगम्य, **परमत्थ**—यथावस्थित अर्थवाला, **रुइर**—रुचिकर, आह्लादकारी, **वहुभग**—वहुत भगवाला, **दिट्ठिवायाओ**—दृष्टिवाद अग, **अत्था**—विशेष अर्थ वाला, **अणुसरियव्वा**—जानने के लिये, **वंधोदयसंतकम्माण**—वध, उदय और सत्ता कर्म की ।

गाथार्थ—दृष्टिवाद अंग अतिश्रम से जानने योग्य, सूक्ष्म-वुद्धिगम्य, यथावस्थित अर्थ का प्रतिपादक, आह्लादकारी, वहुत भग वाला है। जो वध, उदय और सत्ता रूप कर्मों को विशेप रूप से जानना चाहते है, उन्हे यह सव इससे जानना चाहिये ।

विशेपार्थ—गाथा में ग्रथ का उपसंहार करते हुए वतलाया है कि यह सप्ततिका ग्रथ दृष्टिवाद अग के आधार पर लिखा गया है। इस प्रकार से ग्रथ की प्रामाणिकता का सकेत करने के वाद वतलाया है कि दृष्टिवाद अग दुरभिगम्य है, सव इसको सरलता से नही समझ सकते है। लेकिन जिनकी वुद्धि सूक्ष्म है, सूक्ष्म पदार्थ को जानने के लिये जिज्ञासु हैं, वे ही इसमे प्रवेश कर पाते हैं। दृष्टिवाद अग को दुरभिगम्य वताने का कारण यह है कि यद्यपि इसमे यथावस्थित अर्थ का सुन्दरता से युक्तिपूर्वक प्रतिपादन किया गया है लेकिन अनेक भेद-प्रभेद हैं, इसीलिये इसको कठिनता से जाना जाता है। इसका अपनी वुद्धि से मंथन करके जो कुछ भी ज्ञात किया जा सका उसके आधार

ने इस ग्रन्थ की रचना की है लेकिन विशेष जिज्ञासुजन दृष्टिवाद अंग का अध्ययन करें, और उससे बंध, उदय और सत्ता रूप कर्मों के भेद-प्रभेदों को समझें। यह सप्ततिका नामक ग्रन्थ तो उनके लिये मार्ग-दर्शक के समान हैं।

अब ग्रन्थ की प्रामाणिकता, आधार आदि का निर्देश करने के बाद ग्रन्थकार अपनी लघुता प्रदर्शित करते हुए ग्रन्थ की समाप्ति के लिए गाथा कहते हैं—

जो जत्थ अपडिपुन्नो अत्थो अप्पागमेण बद्धो त्ति ।
तं खमिऊण बहुसुया पूरेऊण परिकहंतु ॥७२॥

शब्दार्थ—जो—जिस, जत्थ—जहां, अपडिपुन्नो—अपूर्ण अत्थो—अर्थ अप्पागमेण—अल्पश्रुत, आगम के अल्प ज्ञाता—मैंने, बद्धोत्ति—निबद्ध किया है तं—उसके लिए खमिऊण—क्षमा करके बहुसुया—बहुश्रुत, पूरेऊण—परिपूर्ण करके परिकहंतु—सभी प्रकार से प्रतिपादन करें।

गाथार्थ—मैं तो आगम का अल्प ज्ञाता हूँ, इसलिये मैंने जिस प्रकरण में जितना अपरिपूर्ण अर्थ निबद्ध किया है वह मेरा दोष—प्रमाद है। अतः बहुश्रुत जन मेरे उस दोष—प्रमाद को क्षमा करके उस अर्थ की पूर्ति करके कथन करें।

विशेषार्थ—गाथा में अपनी लघुता प्रगट करते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं कि मैं न तो विद्वान हूँ और न बहुश्रुत किन्तु अल्पज्ञ हूँ। इसलिये यह दावा नहीं करता हूँ कि ग्रन्थ सर्वांगीण रूप से विषय का प्रगट करता जाता या सका है। इस ग्रन्थ में जिस विषय को प्रतिपादन करने की भावना थी हुई थी सम्भव है अपनी अल्पज्ञता के कारण उसका पूरी तरह से न किया जाना शक्य हो इसके लिए मेरा प्रमाद

ही कारण है और यत्र-तत्र स्खलित भी हो गया होऊ किन्तु जो वहुश्रुत जन है, वे मेरे इस दोष को भूल जाये और जिस प्रकरण मे जो कमी रह गई हो, उसकी पूर्ति करते हुए कथन करने का ध्यान रखे, यही विनम्र निवेदन है।

इस प्रकार हिन्दी व्याख्या सहित सप्ततिका प्रकरण समाप्त हुआ।

परिशिष्ट

- ☐ षष्ठ कर्मग्रन्थ की मूल गाथाएं
- ☐ छह कर्मग्रन्थों में आगत पारिभाषिक शब्दों का कोष
- ☐ कर्मग्रन्थों की गाथाओं एवं व्याख्या में आगत पिण्ड प्रकृति सूचक शब्दों का कोष
- ☐ गाथाओं का अकारादि अनुक्रम
- ☐ कर्मग्रन्थों की व्याख्या में सहायक ग्रन्थ सूची

षष्ठ कर्मग्रन्थ की मूल गाथाएँ

सिद्धपएहिं महत्थं बंधोदयसन्तपयडिठाणाणं ।
वोच्छं सुण संखेव नीसंदं दिट्ठिवायस्स ॥१॥
कइ बंधंतो वेयइ कइ कइ वा पयडिसंतठाणाणि ।
मूलुत्तरपगईसुं भंगविगप्पा उ बोधव्वा ॥२॥
अट्ठविहसत्तछब्बंधगेसु अट्ठेव उदयसंताइं ।
एगविहे तिविगप्पो एगविगप्पो अबंधम्मि ॥३॥
सत्तट्ठबंधअट्ठुदयसंत तेरससु जीवठाणेसु ।
एगम्मि पंच भंगा दो भंगा हुंति केवलिणो ॥४॥
अट्ठसु एगविगप्पो छस्सु वि गुणसंनिएसु दुविगप्पो ।
पत्तेयं पत्तेयं बंधोदयसंतकम्माणं ॥५॥
बंधोदयसंतंसा नाणावरणंतराइए पंच ।
बंधोवरमे वि तहा उदसंता हुंति पंचेव ॥६॥
बंधस्स य संतस्स य पगइट्ठाणाइं तिन्नि तुल्लाइं ।
उदयट्ठाणाइं दुवे चउ पणगं दंसणावरणे ॥७॥
बीयावरणे नवबंधगेसु चउ पंच उदय नव संता ।
छच्चउबंधे चेवं चउ बंधुदए छलंसा य ॥८॥
उवरयबंधे चउ पण नवंस चउरुदय छच्च चउसंता ।
वेयणियाउयगोए विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥९॥
बावीस एक्कवीसा, सत्तरसा तेरसेव नव पंच ।
चउ तिग दुगं च एक्कं बंधट्ठाणाणि मोहस्स ॥१०॥
एगं व दो व चउरो एत्तो एक्काहिया दसुक्कोसा ।
ओहेण मोहणिज्जे उदयट्ठाणा नव हवंति ॥११॥

अट्ठगसत्तगछच्चउतिगदुगएगाहिया भवे वीसा ।
तेरस बारिक्कारस इत्तो पचाइ एक्कूणा ॥१२॥
सतस्स पगइठाणाइं ताणि मोहस्स हुंति पन्नरस ।
बन्धोदयसते पुण भगविगप्पा बहू जाण ॥१३॥
छव्वावीसे चउ इगवीसे सत्तरस तेरसे दो दो ।
नववधगे वि दोन्नि उ एक्केक्कमओ पर भगा ॥१४॥
दस बावीसे नव इक्कवीस सत्ताइ उदयठाणाइ ।
छाई नव सत्तरसे तेरे पचाइ अट्ठेव ॥१५॥
चत्तारिमाइ नववधगेसु उक्कोस सत्त उदयसा ।
पंचविहवधगे पुण उदओ दोण्ह मुणेयव्वो ॥१६॥
इत्तो चउबधाई इक्केक्कुदया हवति सव्वे वि ।
बधोवरमे वि तहा उदयाभावे वि वा होज्जा ॥१७॥
एक्कग छक्केक्कारस दस सत्त चउक्क एक्कगा चेव ।
एए चउवीसगया चउवीस दुगेक्कमिक्कारा ॥१८॥
नवपचाणउइसएहुदयविगप्पेहि मोहिया जीवा ।
अउणत्तरिएगुत्तरिपयविदसएहि विन्नेया ॥१९॥
नवतेसीयसएहि उदयविगप्पेहि मोहिया जीवा ।
अउणत्तरिसीयाला पयविदसएहि विन्नेया ॥२०॥
तिन्नेव य बावीसे इगवीसे अट्ठवीस सत्तरसे ।
छ च्चेव तेरनवबधगेसु पचेव ठाणाइ ॥२१॥
पचविहचउविहेसु छ छक्क सेसेसु जाण पचेव ।
पत्तेय पत्तेय चत्तारि य बधवोच्छेए ॥२२॥
दसनवपन्नरसाइ बधोदयसन्तपयडिठाणाइ ।
भणियाइ मोहणिज्जे इत्तो नाम पर वोच्छ ॥२३॥
तेवीस पण्णवीसा छव्वीसा अट्ठवीस गुणतीसा ।
तीसेगतीसमेक्क बधट्ठाणाणि नामस्स ॥२४॥

चउ पणवीसा सोलस नव नाणउईसया य अडयाला।
एयालुत्तर छायालसया एक्केक्क वधविही ॥२५॥
वीसिगवीसा चउवीसगाइ एगाहिया उ इगतीसा।
उदयट्ठाणाणि भवे नव अट्ठ य हुंति नामस्स ॥२६॥
एग वियालेक्कारस तेत्तीसा छस्सयाणि तेत्तीसा।
वारससत्तरससयाणहिगाणि विपचसीईहिं ॥२७॥
अउणत्तीसेक्कारससयाहिगा सतरसपचसट्ठीहिं।
इक्केक्कग च वीसादट्ठुदयतेसु उदयविही ॥२८॥
तिदुनउई उगुनउई अट्ठच्छलसी असीइ उगुसीई।
अटठयछप्पणत्तरि नव अट्ठ य नामसताणि ॥२९॥
अट्ठ य वारस वारस बधोदयसतपयडिठाणाणि।
ओहेणादेसेण य जत्थ जहासभव विभजे ॥३०॥
नव पचोदय सत्ता तेवीसे पण्णवीस छव्वीसे।
अट्ठ चउरटठवीसे नव सत्तुगतीस तीसम्मि ॥३१॥
एगेगमेगतीसे एगे एगुदय अटठ सतम्मि।
उवरयवधे दस दस वेयगसतम्मि ठाणाणि ॥३२॥
तिविगप्पपगइठाणेहि जीवगुणसन्निएसु ठाणेसु।
भगा पउजियव्वा जत्थ जहा सभवो भवइ ॥३३॥
तेरससु जीवसखेवएसु नाणतराय तिविगप्पो।
एक्कम्मि तिदुविगप्पा करण पइ एत्थ अविगप्पो ॥३४॥
तेरे नव चउ पणग नव सतेगम्मि भगमेक्कारा।
वयणियाउयगोए विभज्ज मोह पर वोच्छ ॥३५॥
अटठसु पचसु एगे एग दुग दस य मोहवधगए।
तिग चउ नव उदयगए तिग तिग पन्नरस सतम्मि ॥३६॥
पण दुग पणग पण चउ पणग पणगा हवति तिन्नेव।
पण छप्पणा छ च्छप्पणग अटठऽटठ दसग ति ॥३७॥

सत्तेव अपज्जत्ता सामी तह सुहुम बायरा चेव ।
विगलिंदिया उ तिन्नि उ तह य असन्नी य सन्नी य ॥३८॥
नाणंतराय तिविहमवि दससु दो होंति दोसु ठाणेसु ।
मिच्छासाणे विइए नव चउ पण नव य संतंसा ॥३९॥
मिस्साइ नियट्टीओ छ च्चउ पण नव य संतकम्मंसा ।
चउबंध तिगे चउ पण नवंस दुसु जुयल छ स्संता ॥४०॥
उवसंते चउ पण नव खीणे चउरुदय छच्च चउ संत ।
वेयणियाउयगोए विभज्ज मोहं परं वोच्छं ॥४१॥
गुणठाणगेसु अट्ठसु एक्केक्कं मोहबंधठाणेसु ।
पंचानियट्टिठाणे बंधोवरमो परं तत्तो ॥४२॥
सत्ताइ दस उ मिच्छे सासायणमीसए नवुक्कोसा ।
छाई नव उ अविरए देसे पंचाइ अट्ठेव ॥४३॥
विरए खओवसमिए, चउराई सत्त छच्चऽपुव्वम्मि ।
अनियट्टिबायरे पुण इक्को व दुवे व उदयंसा ॥४४॥
एगं सुहुमसरागो वेएइ अवेयगा भवे सेसा ।
भंगाणं च पमाणं पुव्वुद्दिट्ठेण नायव्वं ॥४५॥
एक्क छडेक्कारेक्कारसेव एक्कारसेव नव तिन्नि ।
एए चउवीसगया बार दुगे पंच एक्कम्मि ॥४६॥
जोगोवओगलेसाइएहिं गुणिया हवंति कायव्वा ।
जे जत्थ गुणट्ठाणे हवंति ते तत्थ गुणकारा ॥४७॥
तिण्णेगे एगेगं तिग मीसे पंच चउसु नियट्टिए तिन्नि ।
एक्कार बायरम्मी सुहुमे चउ तिन्नि उवसंते ॥४८॥
छण्णव छक्कं तिग सत्त दुगं दुग तिग दुगं तिगऽट्ठ चऊ ।
दुग छ च्चउ दुग पण चउ चउ दुग चउ पणग एग चऊ ॥४९॥
एगेगमट्ठ एगेगमट्ठ छउमत्थकेवलिजिणाणं ।
एग चऊ एग चऊ अट्ठ चउ दु छक्कमुदयंसा ॥५०॥

दो छक्कऽट्ठ चउक्क पण नव एक्कार छक्कग उदया ।
नेरइआइसु सता ति पच एक्कारस चउक्क ॥५१॥
इग विगलिंदिय सगले पण पच य अट्ठ बधठाणाणि ।
पण छक्केक्कारुदया पण पण बारस य सताणि ॥५२॥
इय कम्म पगइ ठाणाइ सुट्ठु बधुदयसतकम्माण ।
गइआइएहिं अट्ठसु चउप्पगारेण नेयाणि ॥५३॥
उदयस्सुदीरणाए सामित्ताओ न विज्जइ विसेसो ।
मोत्तूण य इगुयाल सेसाण सव्वपगईण ॥५४॥
नाणतरायदसग दसणनव वेयणिज्ज मिच्छत्त ।
सम्मत्त लोभ वेयाऽऽउगाणि नव नाम उच्च च ॥५५॥
तित्थगराहारगविरहियाओ अज्जेइ सव्वपगईओ ।
मिच्छत्तवेयगो सासणो वि इगुवीससेसाओ ॥५६॥
छायालसेस मीसो अविरयसम्मो तियालपरिसेसा ।
तेवण्ण देसविरओ विरओ सगवण्णसेसाओ ॥५७॥
इगुसट्ठिमप्पमत्तो बधइ देवाउयस्स इयरो वि ।
अट्ठावण्णमपुव्वो छप्पण्ण वा वि छव्वीस ॥५८॥
बावीसा एगूण बधइ अट्ठारसतमनियट्टी ।
सत्तर सुहुमसरागो सायममोहो सजोगि त्ति ॥५९॥
एसा उ बधसामित्तओघा गइयाइएसु वि तहेव ।
ओहाओ साहिज्जा जत्थ जहा पगडिसब्भावो ॥६०॥
तित्थगरदेवनिरयाउग च तिसु तिसु गईसु बोद्धव्व ।
अवसेसा पयडीओ हवति सव्वासु वि गईसु ॥६१॥
पढमकसायचउक्क दसणतिग सत्तगा वि उवसता ।
अविरतसम्मत्ताओ जाव नियट्टि त्ति नायव्वा ॥६२॥
पढमकसायचउक्क एत्तो मिच्छत्तमीससम्मत्त ।
अविरय दसे विरए पमत्ति अपमत्ति खीयति ॥६३॥

पुरिस कोहे कोहं माणे माण च छुहइ मायाए।
माय च छुहइ लोहे लोह सुहुम पि तो हणइ ॥६४॥
देवगइसहगयाओ दुचरमसमयभवियम्मि खीयति।
सविवागेयरनामा नीयागोय पि तत्थेव ॥६५॥
अन्नयरवेयणीय मणुयाउय उच्चगोय नव नामे।
वेएइ अजोगिजिणो उक्कोस जहन्न एक्कारं ॥६६॥
मणुयगइ जाइ तस बायर च पज्जत्तसुभगमाइज्ज।
जसकित्ती तित्थयर नामस्स हवति नव एया ॥६७॥
तच्चाणुपुव्विसहिया तेरस भवसिद्धियस्स चरिमम्मि।
सतसगमुक्कोस जहन्नय बारस हवति ॥६८॥
मणुयगइसहगयाओ भवखित्तविवागजीववाग त्ति।
वेयणियन्नयरुच्च च चरिम भवियस्स खीयति ॥६९॥
अह सुइयसयलजगसिहरमरुयनिरुवमसहावसिद्धिसुह।
अनिहणमव्वाबाहं तिरयणसार अणुहवति ॥७०॥
दुरहिगम-निउण - परमत्थ-रुइर-बहुभगदिट्ठिवायाओ।
अत्था अणुसरियव्वा बंधोदयसतकम्माण ॥७१॥
जो अत्थ अपडिपुन्नो अत्थो अप्पागमेण बद्धो त्ति।
त खमिऊण बहुसुया पूरेऊण परिकहतु ॥७२॥

☆

परिशिष्ट २

छह कर्मग्रन्थो मे आगत पारिभाषिक शब्दो का कोष

(अ)

अगप्रविष्ट श्रुत—जिन शास्त्रो की रचना तीर्थकरो के उपदेशानुसार गणधर स्वय करते हैं ।

अगोपाग नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव के अग और उपाग आदि रूप मे गृहीत पुद्गलों का परिणमन होता है ।

अगबाह्यश्रुत—गणधरो के अतिरिक्त अगो का आधार लेकर स्थविरो द्वारा प्रणीत शास्त्र ।

अक्षर—ज्ञान का नाम अक्षर है और ज्ञान जीव का स्वभाव होने के कारण श्रुत-ज्ञान स्वय अक्षर कहलाता है ।

अक्षर श्रुत—अकारादि लब्ध्यक्षरो मे से किसी एक अक्षर का ज्ञान ।

अक्षरसमास श्रुत—लब्ध्यक्षरो के समुदाय का ज्ञान ।

अकाम निर्जरा—इच्छा के न होते हुए भी अनायास ही होने वाली कर्म निर्जरा ।

अकुशल कर्म—जिसका विपाक अनिष्ट होता है ।

अगमिक श्रुत—जिसमे एक सरीखे पाठ न आते हो ।

अगुरुलघु द्रव्य—चार स्पर्श वाले सूक्ष्म रूपी द्रव्य तथा अमूर्त आकाश आदि ।

अगुरुलघु नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का स्वय का शरीर वजन मे हल्का और भारी प्रतीत न होकर अगुरुलघु परिणाम वाला प्रतीत होता है ।

अग्निकाय—तेज परमाणुओ से निर्मित शरीर ।

अग्रहणवर्गणा—जो अल्प परमाणु वाली होने के कारण जीव द्वारा ग्रहण नही की जाती है ।

अघाती कर्म—जीव के प्रतिजीवी गुणो के घात करने वाले कर्म । उनके कारण आत्मा को शरीर की कैद मे रहना पड़ता है ।

अघातिनी प्रकृति—जो प्रकृति आत्मिक गुणो का घात नही करती है।

अचक्षु दर्शन—चक्षुरिन्द्रिय को छोडकर शेष स्पर्शन आदि इन्द्रियो और मन के द्वारा होने वाले अपने-अपने विषयभूत सामान्य धर्मों का प्रतिभास।

अचक्षुदर्शनावरण कर्म—अचक्षुदर्शन को आवरण करने वाला कर्म।

अछाद्मस्थिक—जिनके छद्मो (चार घाति कर्मों) का सर्वथा क्षय हो गया हो।

अछाद्मस्थिक यथाख्यात संयम—केवलज्ञानियो का सयम।

अजघन्य बंध—एक समय अधिक जघन्य बंध से लेकर उत्कृष्ट बंध से पूर्व तक के सभी बंध।

अजीव—जिसमे चेतना न हो अर्थात् जड हो।

अज्ञान मिथ्यात्व—जीवादि पदार्थों को 'यही है' 'इसी प्रकार है' इस तरह विशेष रूप से न समझना।

अडड—चौरासी लाख अडडाग का एक अडड कहलाता है।

अडडाग—चौरासी लाख त्रुटित के समय को एक अडडांग कहते हैं।

अद्धापल्योपम—उद्धारपल्य के रोमखडो मे से प्रत्येक रोमखड के कल्पना के द्वारा उतने खड करे जितने सौ वर्ष के समय होते है और उनको पल्य मे भरने को अद्धापल्य कहते है। अद्धापल्य मे से प्रति समय रोमखडो को निकालते-निकालते जितने काल मे वह पल्य खाली हो, उसे अद्धा-पल्योपम काल कहते है।

अद्धासागर—दस कोटाकोटी अद्धापल्योपमो का एक अद्धासागर होता है।

अध्रुवबंध—आगे जाकर विच्छिन्न हो जाने वाला बंध।

अध्रुवबंधिनी प्रकृति—बंध के कारणो के होने पर भी जो प्रकृति बँधती भी है और नही भी बँधती है।

अध्रुवसत्ता प्रकृति—मिथ्यात्व आदि दशा मे जिस प्रकृति की सत्ता का नियम न हो यानी किसी समय सत्ता मे हो और किसी समय सत्ता मे न हो।

अध्रुवोदया प्रकृति—उसे कहते है, जिसका अपने उदयकाल के अन्त तक उदय लगातार नही रहता है। कभी उदय होता है और कभी नही होता है यानी उदय-विच्छेद काल तक भी जिसके उदय का नियम न हो।

अनक्षर श्रुत—जो शब्द अभिप्रायपूर्वक वर्णनात्मक नही बल्कि ध्वन्यात्मक किया जाता है अथवा छीकना, चुटकी बजाना आदि सकेतो के द्वारा दूसरो के अभिप्राय को जानना अनक्षर श्रुत है।

अननुगामी अवधिज्ञान—अपने उत्पत्ति स्थान म स्थित होकर पदार्थ को जानने वाला किन्तु उत्पत्ति स्थान को छोड देने पर न जानने वाला अवधिज्ञान।

अनन्तानन्ताणु वर्गणा—अनन्तानन्त प्रदेशी स्कन्धो की वर्गणा।

अनन्ताणु वर्गणा—अनन्त प्रदेशी स्कन्धो की वर्गणा।

अनन्तानुबधी कषाय—सम्यक्त्व गुण का घात करके जीव को अनन्त काल तक ससार म परिभ्रमण कराने वाली उत्कट कषाय।

अनपवर्तनीय आयु—जो आयु किसी भी कारण स कम न हो। जितने काल तक के लिए बाँधी गई हो, उतने काल तक भोगी जाय।

अनभिगृहीत मिथ्यात्व—परोपदेश निरपेक्ष—स्वभाव से होने वाला पदार्थों का अयथार्थ श्रद्धान।

अनवस्थित अवधिज्ञान—जो जल की तरग के समान कभी घटता है, कभी बढता है कभी आविर्भूत हो जाता है और कभी तिरोहित हो जाता है।

अनवस्थित पल्य—आगे आगे बढते जाने वाला होने स नियत स्वरूप के अभाव वाला पल्य।

अनाकारोपयोग—सामान्य विशेषात्मक वस्तु के सामान्य धर्म का अवबोध करने वाले जीव का चैतन्यानुविधायी परिणाम।

अनादि अनन्त—जिस बध या उदय की परम्परा का प्रवाह अनादि काल से निराबाध गति स चला आ रहा है मध्य म न कभी विच्छिन्न हुआ है और न आगे कभी होगा, एस बध या उदय को अनादि-अनन्त कहते हैं।

अनादि बध—जो बध अनादि काल से सतत हो रहा है।

अनादि श्रुत—जिस श्रुत की आदि न हो, उसे अनादि श्रुत कहते हैं।

अनादि-सान्त—जिस बध या उदय की परम्परा का प्रवाह अनादिकाल से बिना व्यवधान के चला आ रहा है लेकिन आगे व्युच्छिन्न हो जायगा, वह अनादि—सान्त है।

अनादेय नामकर्म—जिस कर्म के उदय स जीव का युक्तियुक्त अच्छा वचन भी अनादरणीय अग्राह्य माना और समझा जाता है।

अनभिग्रहिक मिथ्यात्व—सत्यासत्य की परीक्षा किये बिना ही सब पक्षो को बराबर समझना।

अनाभोग मिथ्यात्व—अज्ञानजन्य अतत्त्व रुचि।

अनाहारक—ओज, लोम और कवल इनमे से किसी भी प्रकार के आहार को न करने वाले जीव अनाहारक होते है ।

अनिवृत्तिकरण—वह परिणाम जिसके प्राप्त होने पर जीव अवश्यमेव सम्यक्त्व प्राप्त करता है ।

अनिवृत्तिवादरसपराय गुणस्थान—वह है जिसमे वादर (स्थूल) सपराय (कपाय) उदय मे हो तथा समसमयवर्ती जीवो के परिणामो मे समानता हो ।

अनुत्कृष्ट वंध—एक समय कम उत्कृष्ट स्थिति वध से लेकर जघन्य स्थिति वध तक के सभी वध ।

अनुगामी अवधिज्ञान—जो अवधिज्ञान अपने उत्पत्ति क्षेत्र को छोडकर दूसरे स्थान पर चले जाने पर भी विद्यमान रहता है ।

अनुभवयोग्या स्थिति—अवाधा काल रहित स्थिति ।

अनुभाग वंध—कर्मरूप गृहीत पुद्गल परमाणुओ की फल देने की शक्ति व उसकी तीव्रता, मदता का निश्चय करना अनुभाग वध कहलाता है ।

अनुयोग श्रुत—सत् आदि अनुयोगद्वारो मे से किसी एक के द्वारा जीवादि पदार्थो को जानना ।

अनुयोगसमास श्रुत—एक से अधिक दो, तीन आदि अनुयोगद्वारो का ज्ञान ।

अन्तरकरण—एक आवली या अन्तर्मुहूर्त प्रमाण नीचे और ऊपर की स्थिति को छोडकर मध्य मे से अन्तर्मुहूर्त प्रमाण दलिको को उठाकर उनका वधने वाली अन्य सजातीय प्रकृतियो मे प्रक्षेप करने का नाम अन्तरकरण है । इस अन्तरकरण के लिये जो क्रिया की जाती है और उसमे जो काल लगता है उसे भी उपचार से अन्तरकरण कहते है ।

अन्तराय—ज्ञानाभ्यास के साधनो मे विघ्न डालना, विद्यार्थियो के लिये प्राप्त होने वाले अभ्यास के साधनो की प्राप्ति न होने देना आदि अन्तराय कहलाता है ।

अन्तराय कर्म—जो कर्म आत्मा की दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य रूप शक्तियो का घात करता है । अथवा दानादि मे अन्तराय रूप हो उसे अन्तराय कर्म कहते है ।

अन्त कोडाकोडी—कुछ कम एक कोडाकोडी ।

अपर्यवसित श्रुत—वह श्रुत जिसका अन्त न हो ।

अपर्याप्त—अपर्याप्त नामकर्म के उदय वाले जीव ।

अपर्याप्ति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्ति पूर्ण न करे।

अपरावर्तमाना प्रकृति—किसी दूसरी प्रकृति के बंध, उदय अथवा दोनो के बिना जिस प्रकृति के बंध, उदय अथवा दोनो होते है।

अपवर्तना—बद्ध कर्मों की स्थिति तथा अनुभाग मे अध्यवसाय विशेष से कमी कर देना।

अपवर्तनाकरण—जिस वीर्य विशेष से पहले बंधे हुए कर्म की स्थिति तथा रस घट जाते हैं, उसे अपवर्तनाकरण कहते हैं।

अपवर्तनीय आयु—बाह्य निमित्त से जो आयु कम हो जाती है उसे अपवर्तनीय (अपवर्त्य) कहते हैं। इस आयुच्छेद को अकालमरण भी कहा जाता है।

अपुण्यकर्म—जो दु ख का वेदन कराता है उसे अपुण्यकर्म कहते है।

अपूर्वकरण—वह परिणाम जिसके द्वारा जीव राग द्वेष की दुर्भेद्यग्रंथि को तोड कर लाघ जाता है।

अपूर्वस्थिति बंध—पहले की अपेक्षा अत्यन्त अल्प स्थिति के कर्मों को बाधना।

अप्रतिपाती अवधिज्ञान—जिसका स्वभाव पतनशील नही है।

अप्रत्याख्यानावरण कषाय—जिस कषाय के उदय से देशविरति—आंशिक त्याग रूप अल्प प्रत्याख्यान न हो सके। जो कषाय आत्मा के देशविरत गुण (श्रावकाचार) का घात करे।

अप्रमत्तसयत गुणस्थान—जो सयत (मुनि) विकथा कषाय आदि प्रमादो का सेवन नही करते हैं वे अप्रमत्तसयत हैं और उनके स्वरूप विशेष को अप्रमत्त सयत गुणस्थान कहते हैं।

अप्राप्यकारी—पदार्थों के साथ बिना सयोग किये ही पदार्थ का ज्ञान करना।

अबंध प्रकृति—विवक्षित गुणस्थान मे वह कर्म प्रकृति न बंधे किन्तु आगे के स्थान मे उस कर्म का बंध हो उसे अबंध प्रकृति कहते हैं।

अबंधकाल—पर भव सम्बन्धी आयुकर्म के बंधकाल से पहले की अवस्था।

अबाधाकाल—बंधे हुए कर्म का जितने समय तक आत्मा को शुभाशुभ फल का वेदन नहीं होता।

अभिगृहीत मिथ्यात्व—कारणवश, एकान्तिक कदाग्रह से होने वाले पदार्थ के अयथार्थ श्रद्धान को कहते हैं।

अभिनव कर्मग्रहण—जिस आकाश क्षेत्र मे आत्मा के प्रदेश हैं उसी क्षेत्र मे अव

स्थित कर्म रूप से परिणत होने की योग्यता रखने वाले पुद्गल स्कन्धों की वर्गणाओं को कर्म रूप में परिणत कर जीव द्वारा उनका ग्रहण होना अभिनव कर्म ग्रहण है।

अभव्य—वे जीव जो अनादि तथाविध पारिणामिक भाव के कारण किसी भी समय मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता ही नहीं रखते।

अम्लरस नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर-रस नीबू, इमली आदि खट्टे पदार्थों जैसा हो।

अयुत—चौरासी लाख अयुतांग का एक अयुत होता है।

अयुतांग—चौरासी लाख अर्थनिपूर के समय को एक अयुतांग कहते हैं।

अयोगिकेवली—जो केवली भगवान योगों से रहित हैं, अर्थात् जब सयोगि-केवली मन, वचन और काया के योगों का निरोध कर, कर्म-रहित होकर शुद्ध आत्मस्वरूप को प्राप्त कर लेते हैं, तब वे अयोगिकेवली कहलाते हैं।

अयोगिकेवली यथाख्यात संयम—अयोगिकेवली का संयम।

अयश कीर्ति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का लोक में अपयश और अपकीर्ति फैले।

अध्यवसाय—स्थितिबंध के कारणभूत कषायजन्य आत्म-परिणाम।

अध्यवसाय स्थान—कषाय के तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम तथा मन्द, मन्दतर और मन्दतम उदय-विशेष।

अरति मोहनीय—जिस कर्म के उदय से कारणवश या बिना कारण के पदार्थों से अप्रीति-द्वेष हो।

अर्थनिपूर—चौरासी लाख अर्थनिपूरांग का एक अर्थनिपूर होता है।

अर्थनिपूरांग—चौरासी लाख नलिन के समय को अर्थनिपूरांग कहा जाता है।

अर्थावग्रह—विषय और इन्द्रियों का संयोग पुष्ट हो जाने पर 'यह कुछ है' ऐसा जो विषय का सामान्य बोध होता है उसे अर्थावग्रह कहते हैं। अथवा पदार्थ के अव्यक्त ज्ञान को अर्थावग्रह कहते हैं।

अर्धनाराचसंहनन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से हड्डियों की रचना में एक ओर मर्कट बंध और दूसरी ओर कीली हो।

अल्पतर बंध—अधिक कर्म प्रकृतियों का बंध करके कम प्रकृतियों के बंध करने को अल्पतर बंध कहते हैं।

अल्पबहुत्व—पदार्थों का परस्पर न्यूनाधिक-अल्पाधिक भाव।

अवक्तव्य बंध—बंध के अभाव के बाद पुनः कर्म बंध अथवा सामान्यपने से भंग विवक्षा को किये बिना अवक्तव्य बंध है।

अवग्रह—नाम, जाति आदि की विशेष कल्पना से रहित सामान्य सत्ता मात्र का ज्ञान।

अवधिअज्ञान—मिथ्यात्व के उदय से रूपी पदार्थों का विपरीत अवधिज्ञान। इसका दूसरा नाम विभंगज्ञान भी है।

अवधिज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता की अपेक्षा न कर साक्षात् आत्मा के द्वारा द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव की मर्यादापूर्वक रूपी अर्थात् मूर्त द्रव्य का ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है। अथवा जो ज्ञान अधोऽधोविस्तृत वस्तु के स्वरूप को जानने की शक्ति रखता है अथवा जिस ज्ञान में सिर्फ रूपी पदार्थों को प्रत्यक्ष करने की शक्ति हो अथवा बाह्य अर्थ को साक्षात् करने के लिए जो आत्मा का व्यापार होता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं।

अवधिज्ञानावरण कर्म—अवधिज्ञान का आवरण करने वाला कर्म।

अवधिदर्शन—इन्द्रियों और मन की सहायता के बिना ही आत्मा को रूपी द्रव्यों के सामान्य धर्म का प्रतिभास।

अवधिदर्शनावरण कर्म—अवधिदर्शन को आवृत्त करने वाला कर्म।

अवव—चौरासी लाख अववांग के काल को एक अवव कहते हैं।

अववांग—चौरासी लाख अडड का एक अववांग होता है।

अवस्थित अवधिज्ञान—जो अवधिज्ञान जन्मान्तर होने पर भी आत्मा में अवस्थित रहता है अथवा केवलज्ञान की उत्पत्ति पर्यन्त या आजन्म ठहरता है।

अवस्थित बंध—पहले समय में जितने कर्मों का बंध किया दूसरे समय में भी उतने ही कर्मों का बंध करना।

अवसर्पिणी काल—दस कोटाकोटी सूक्ष्म अद्धासागरोपम के समय को एक अवसर्पिणी काल कहते हैं। इस समय में जीवों की शक्ति सुख, अवगाहना आदि का उत्तरोत्तर ह्रास होता जाता है।

अवाय—ईहा के द्वारा ग्रहण किये गये पदार्थ के विषय में कुछ अधिक निश्चयात्मक ज्ञान होना।

अविपाक निर्जरा—उदयावली के बाहर स्थित कर्म को तप आदि क्रियाविशेष की सामर्थ्य से उदयावली में प्रविष्ट कराके अनुभव किया जाना।

अविभाग प्रतिच्छेद—वीर्य-शक्ति के अविभागी अंश या भाग। वीर्य परमाणु, भाव परमाणु इसके दूसरे नाम है।

अविरत—दोषो से विरत न होना। यह आत्मा का वह परिणाम है जो चारित्र ग्रहण करने मे विघ्न डालता है।

अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान—सम्यग्दृष्टि होकर भी जो जीव किसी प्रकार के व्रत को धारण नही कर सकता वह अविरत सम्यग्दृष्टि है और उसके स्वरूप विशेष को अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहते है।

अशुभ नामकर्म—जिस कर्म के उदय से नाभि के नीचे के अवयव अशुभ हो।

अशुभ विहायोगति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव की चाल ऊँट आदि की चाल की भाँति अशुभ हो।

अश्रेणिगत सासादन सम्यग्दृष्टि—जो उपशम सम्यग्दृष्टि जीव उपशम श्रेणि पर तो चढा नही किंतु अनतानुबधी के उदय से सासादन भाव को प्राप्त हो गया उसे अश्रेणिगत सासादन सम्यग्दृष्टि कहते हैं।

असंज्ञी—जिन्हे मनोलब्धि प्राप्त नही है अथवा जिन जीवो के बुद्धिपूर्वक इष्ट-अनिष्ट मे प्रवृत्ति-निवृत्ति नही होती है, वे असज्ञी है।

असज्ञी श्रुत—असज्ञी जीवो का श्रुत ज्ञान।

असंख्याताणु वर्गणा—असख्यात प्रदेशी स्कन्धो की वर्गणा।

असत्य मनोयोग—जिस मनोयोग के द्वारा वस्तु स्वरूप का विपरीत चिन्तन हो अथवा सत्य मनोयोग से विपरीत मनोयोग।

असत्य वचनयोग—असत्य वचन वर्गणा के निमित्त से होने वाले योग अथवा किसी वस्तु को अयथार्थ सिद्ध करने वाले वचनयोग को कहते हैं।

असत्यामृषा मनोयोग—जो मन न तो सत्य हो और न मृषा हो उसे असत्यामृषा मन कहते है और उसके द्वारा होने वाला योग असत्यामृषा मनोयोग कहलाता है। अथवा जिस मनोयोग का चिंतन विधि-निषेध शून्य हो, जो चिंतन न तो किसी वस्तु की स्थापना करता हो ओर न निषेध, उसे असत्यामृषा मनोयोग कहते है।

असत्यामृषा वचनयोग—जो वचनयोग न तो सत्य रूप हो और न मृषा रूप ही हो। अथवा जो वचनयोग किसी वस्तु के स्थापन-उत्थापन के लिए प्रवृत्त नही होता उसे असत्यामृषा वचनयोग कहते हैं।

असाता वेदनीय कर्म—जिस कर्म के उदय से आत्मा को अनुकूल इन्द्रिय विषयो

की अप्राप्ति हो और प्रतिकूल इन्द्रिय विषयों की प्राप्ति के कारण दुख का अनुभव हो।

अस्थिर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से नाक भौं जिह्वा आदि अवयव अस्थिर अर्थात चपल होते हैं।

(आ)

आगाल—द्वितीय स्थिति के दलिकों को अपकर्षण द्वारा प्रथम स्थिति के दलिकों म पहुचाना।

आतप नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर स्वय उष्ण न होकर भी उष्ण प्रकाश करता है।

आदेय नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का वचन सर्वमान्य हो।

आनुपूर्वी नामकर्म—इसके उदय स विग्रहगति म रहा हुआ जीव आकाश प्रदेशो की श्रेणी के अनुसार गमन कर उत्पत्ति स्थान पर पहुचता है।

आभिग्रहिक मिथ्यात्व—तत्त्व की परीक्षा किये बिना ही किसी एक सिद्धात का पक्षपात करके अन्य पक्ष का खण्डन करना।

आभिनिवेशिक मिथ्यात्व—अपने पक्ष को असत्य जानकर भी उसकी स्थापना करने के लिये दुरभिनिवेश (दुराग्रह) करना।

आभ्यन्तर निर्वृत्ति—इन्द्रियों का आतरिक— भीतरी आकार।

आत्मागुल—प्रत्येक व्यक्ति का अपना अपना अगुल। इसके द्वारा अपने शरीर की ऊँचाई नापी जाती है।

आयु कर्म—जिस कर्म के उदय से जीव देव, मनुष्य, तिर्यच और नारक के रूप म जीता है और उसके क्षय होने पर उन उन रूपो का त्याग करता है, यानी मर जाता है।

आयबिल—जिसमे विगय—दूध घी आदि रस छोडकर केवल दिन म एक बार अन्न खाया जाता है तथा गरम (प्रासुक) जल पिया जाता है।

आवली—असख्यात समय की एक आवली होती है।

आवश्यक श्रुत—गुणो के द्वारा आत्मा को वश म करना आवश्यकीय है ऐसा वर्णन जिसमे हो उसे आवश्यक श्रुत कहते हैं।

आशातना—ज्ञानियो की निंदा करना, उनके बारे म झूठी बातें कहना, मर्मच्छेदी

बातें लोक में फैलाना, उन्हें मार्मिक पीड़ा हो ऐसा कपट-जाल फैलाना आशातना है।

आसन्न भव्य—निकट काल में ही मोक्ष को प्राप्त करने वाला जीव।

आस्रव—शुभाशुभ कर्मों के आगमन का द्वार।

आहार—शरीर नामकर्म के उदय से देह, वचन और द्रव्य मन रूप बनने योग्य नोकर्म वर्गणा का जो ग्रहण होता है, उसको आहार कहते हैं। अथवा तीन शरीर और छह पर्याप्तियों के योग्य पुद्गलों के ग्रहण को आहार कहते हैं।

आहार पर्याप्ति—बाह्य आहार पुद्गलों को ग्रहण करके खलभाग रसभाग में परिणमाने की जीव की शक्ति विशेष की पूर्णता।

आहार संज्ञा—आहार की अभिलाषा, क्षुधा, वेदनीय कर्म के उदय से होने वाले आत्मा का परिणाम विशेष।

आहारक—ओज, लोम और कवल इनमें से किसी भी प्रकार के आहार को ग्रहण करने वाले जीव को आहारक कहते हैं। अथवा समय-समय जो आहार करे उसे आहारक कहते हैं।

आहारक अंगोपांग नामकर्म—जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर रूप परिणत पुद्गलों से अंगोपांग रूप अवयवों का निर्माण हो।

आहारक काययोग—आहारक शरीर और आहारक शरीर की सहायता से होने वाला वीर्य-शक्ति का व्यापार।

आहारककार्मणबंधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर पुद्गलों का कार्मण पुद्गलों के साथ सम्बन्ध हो।

आहारकतैजसकार्मणबंधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से आहारक शरीर पुद्गलों का तैजस-कार्मण पुद्गलों के साथ सम्बन्ध होता है।

आहारकतैजसबंधन नामकर्म—जिसके उदय से आहारक शरीर पुद्गलों का तैजस पुद्गलों के साथ सम्बन्ध हो।

आहारकमिश्र काययोग—आहारक शरीर की उत्पत्ति प्रारम्भ होने के प्रथम समय से लगाकर शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने तक अन्तर्मुहूर्त के मध्यवर्ती अपरिपूर्ण शरीर को आहारक मिश्रकाय कहते हैं और उसके द्वारा उत्पन्न योग को आहारकमिश्र काययोग कहते हैं। अथवा आहारक और औदा-

रिक इन दो शरीरो क मिश्रत्व द्वारा होने वाले वीय शक्ति के व्यापार को आहारकमिश्र काययोग कहते हैं।

आहारकयोग्य उत्कृष्ट वगणा—आहारकयोग्य जघन्य वगणा से अनन्तवें भाग अधिक प्रदेश वाले स्कन्धो की आहारक शरीर क ग्रहणयोग्य उत्कृष्ट वगणा होती है।

आहारकयोग्य जघन्य वगणा—वक्रिय शरीरयोग्य उत्कृष्ट वगणा के अनन्तर की अग्रहणयोग्य उत्कृष्ट वगणा से एक प्रदेश अधिक स्कन्धो की जो वगणा होती है वह आहारकयोग्य जघन्य वगणा कहलाती है।

आहारक वगणा—जिन वगणाओ से आहारक शरीर बनता है।

आहारकशरीर नामकम—चतुदश पूवधर मुनि विशिष्ट काय हेतु, जसे—किसी विषय म सन्देह उत्पन्न हो जाय अथवा तीथकर की ऋद्धि दशन की इच्छा हो जाय आहारक वगणा द्वारा जो एक हस्त प्रमाण पुतला-शरीर बनाते हैं उसे आहारकशरीर कहते हैं और जिस कम के उदय से जीव को आहारकशरीर की प्राप्ति होती है वह आहारक शरीर नामकम है।

आहारकशरीरबधन नामकम—जिस कम के उदय से पूवग्रहीत आहारक शरीर पुद्गलो क साथ गृह्यमाण आहारकशरीर पुद्गलो का आपस म मेल हो।

आहारकसघातन नामकम—जिस कर्म के उदय से आहारकशरीर रूप परिणत पुद्गलो का परस्पर सान्निध्य हो।

आहारक समुद्घात—आहारकशरीर के निमित्त से होने वाला समुद्घात।

(इ)

इत्वरसामायिक—जो अभ्यासार्थी शिष्यो को स्थिरता प्राप्त करने क लिए पहले पहल दिया जाता है। इसकी कालमर्यादा उपस्थान पयन्त (बड़ी दीक्षा लेने तक) छह मास तक मानी जाती है।

इन्द्रिय—आवरण कम का क्षयोपशम होने पर स्वय पदाथ का ज्ञान करने म असमथ— स्वभाव रूप आत्मा को पदाथ का ज्ञान कराने म निमित्तभूत कारण अथवा जिसके द्वारा आत्मा जाना जाय अथवा अपने अपने स्पर्शादि के विषयो म दूसरे की (रसना आदि की) अपेक्षा न रखकर इन्द्र के समान जो समथ एव स्वतन्त्र हो उन्हे इन्द्रिय कहते हैं।

इन्द्रिय पर्याप्ति—जीव की वह शक्ति जिसके द्वारा धातु रूप म परिणत आहार

पुद्गलों में से योग्य पुद्गल इन्द्रिय रूप में परिणत किये जाते हैं। अथवा जीव की वह शक्ति है जिसके द्वारा योग्य आहार पुद्गलों को इन्द्रिय रूप परिणत करके इन्द्रियजन्य बोध का सामर्थ्य प्राप्त किया जाता है।

(ई)

ईहा—अवग्रह के द्वारा जाने हुए पदार्थ के विषय में धर्म विषयक विचारणा।

(उ)

उच्चकुल—धर्म और नीति की रक्षा के संबंध में जिस कुल ने चिरकाल से प्रसिद्धि प्राप्त की है।

उच्च गोत्रकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव उच्च कुल में जन्म लेता है।

उच्छ्‌वास काल—निरोग, स्वस्थ, निश्चिन्त, तरुण पुरुष के एक बार श्वास लेने और त्यागने का काल।

उच्छ्‌वास-निश्वास—संख्यात आवली का एक उच्छ्‌वास-निश्वास होता है।

उच्छ्‌वास नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव श्वासोच्छ्‌वासलब्धि युक्त होता है।

उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात—जघन्य असख्यातासख्यात की राशि का अन्योन्याभ्यास करने से प्राप्त होने वाली राशि में से एक को कम करने पर प्राप्त राशि।

उत्कृष्ट परीतानन्त—जघन्य परीतानन्त की सख्या का अन्योन्याभ्यास करने पर प्राप्त सख्या में से एक को कम कर देने पर प्राप्त सख्या।

उत्कृष्ट युक्तानन्त—जघन्य युक्तानन्त की सख्या का परस्पर गुणा करने पर प्राप्त सख्या में से एक कम कर देने पर उत्कृष्ट युक्तानन्त होता है।

उत्कृष्ट परीतासंख्यात—जघन्य परीतासख्यात की राशि का अन्योन्याभ्यास करके उसमें से एक को कम करने पर प्राप्त सख्या।

उत्कृष्ट युक्तासंख्यात—जघन्य युक्तासख्यात की राशि का परस्पर गुणा करने पर प्राप्त राशि में से एक को कम कर देने पर प्राप्त राशि।

उत्कृष्ट संख्यात—अनवस्थित, शलाका, प्रतिशलाका और महाशलाका पल्यों को विधिपूर्वक सरसों के दानों से परिपूर्ण भरकर उनके दानों के जोड में से एक दाना कम कर लिए जाने पर प्राप्त सख्या।

उत्कृष्ट बन्ध—अधिकतम स्थिति बन्ध।

उत्तर प्रकृति—कर्मों के मुख्य भेदो के अवान्तर भेद ।
उत्पल—चौरासी लाख उत्पलाग का एक उत्पल होता है ।
उत्पलाग—चौरासी लाख हु हु' के समय को एक उत्पलाग कहते है ।
उत्श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका—यह अनन्त व्यवहार परमाणु की होती है ।
उत्सर्पिणी काल—दस कोटा कोटी सूक्ष्म अद्धा सागरोपम का काल । इसमे जीवो की शक्ति, बुद्धि अवगाहना आदि की उत्तरोत्तर वृद्धि होती जाती है ।
उत्सेधागुल—आठ यव मध्य का एक उत्सधागुल होता है ।
उदय—बधे हुए कर्म दलिको की स्वफल प्रदान करने की अवस्था अथवा काल प्राप्त कर्म परमाणुओ के अनुभव करने को उदय कहते है ।
उदयकाल—अबाधा काल व्यतीत हो चुकने पर जिस समय कर्म के फल का अनुभव होता है उस समय को उदयकाल कहते हैं । अथवा कर्म के फल भोग के नियत काल को उदयकाल कहा जाता है ।
उदयविकल्प—उदयस्थानो के भगो को उदयविकल्प कहते है ।
उदयस्थान—जिन प्रकृतियो का उदय एक साथ पाया जाय उनके समुदाय को उदयस्थान कहते है ।
उदीरणा—उदयकाल को प्राप्त नही हुए कर्मों का आत्मा के अध्यवसाय विशेष —प्रयत्न विशेष से नियत समय से पूर्व उदयहेतु उदयावलि मे प्रविष्ट करना अवस्थित करना या नियत समय से पूर्व कर्म का उदय मे आना अथवा अनुदयकाल को प्राप्त कर्मों को फलोदय की स्थिति मे ला देना ।
उदीरणा स्थान—जिन प्रकृतियो की उदीरणा एक साथ पाई जाय उनके समुदाय को उदीरणास्थान कहते हैं ।
उद्धार पल्य—व्यवहार पल्य के एक एक रोमखड के कल्पना के द्वारा असख्यात कोटि वर्ष के समय जितने खड करके उन सब खडो को पल्य मे भरना उद्धार पल्य कहलाता है ।
उद्योत नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर शीत प्रकाश फैलाता है ।
उद्वर्तना—बद्ध कर्मों की स्थिति और अनुभाग मे स्थितिविशेष, भावविशेष और अध्यवसायविशेष के कारण वृद्धि हो जाना ।
उद्वलन—यथाप्रवृत्त आदि तीन करणो के बिना ही किसी प्रकृति को अन्य प्रकृति रूप परिणमाना ।

उन्मार्ग देशना—ससार के कारणो और कार्यों का मोक्ष के कारणो के रूप मे उपदेश देना, धर्म-विपरीत शिक्षा ।

उपकरण द्रव्येन्द्रिय—आभ्यन्तर निर्वृत्ति की विषय-ग्रहण की शक्ति को अथवा जो निर्वृत्ति का उपकार करती है, उसे उपकरण द्रव्येन्द्रिय कहते है ।

उपघात—ज्ञानियो और ज्ञान के साधनो का नाश कर देना ।

उपघात नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव अपने शरीर के अवयवो जैसे प्रतिजिह्वा, चोर दन्त आदि से क्लेश पाता है, वह उपघात नामकर्म कहलाता है ।

उपपात जन्म—उत्पत्तिस्थान मे स्थित वैक्रिय पुद्गलो को पहले-पहल शरीर रूप मे परिणत करना उपपात जन्म कहा जाता है ।

उपभोगान्तराय कर्म—उपभोग की सामग्री होते हुए भी जीव जिस कर्म के उदय से उस सामग्री का उपभोग न कर सके ।

उपयोग—जीव का बोध रूप व्यापार अथवा जीव का जो भाव वस्तु के ग्रहण करने के लिए प्रवृत्त होता है, जिसके द्वारा वस्तु का सामान्य व विशेष स्वरूप जाना जाता है, अथवा आत्मा के चैतन्यानुविधायी परिणाम को उपयोग कहते है ।

उपयोग भावेन्द्रिय—लब्धि रूप भावेन्द्रिय के अनुसार आत्मा की विषय-ग्रहण मे होने वाली प्रवृत्ति ।

उपरतबधकाल—पर-भव सम्बन्धी आयुबन्ध से उत्तरकाल की अवस्था ।

उर्ध्वरेणु—आठ श्लक्ष्ण-श्लक्ष्णिका का एक उर्ध्वरेणु होता है ।

उष्णस्पर्श नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर आग जैसा उष्ण हो ।

उपशम—आत्मा मे कर्म की निज शक्ति का कारणवश प्रगट न होना अथवा प्रदेश और विपाक दोनो प्रकार के कर्मोदय का रुक जाना उपशम है ।

उपशमन—कर्म की जिस अवस्था मे उदय अथवा उदीरणा सभव नही होती है ।

उपशमश्रेणि—जिस श्रेणी मे मोहनीय कर्म की उत्तर प्रकृतियो का उपशम किया जाता है ।

उपशान्तकषाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान—उन जीवो के स्वरूप विशेष को कहते है जिनके कषाय उपशान्त हुए है, राग का भी सर्वथा उदय नही है और छद्म (आवरणभूत घातिकर्म) लगे हुए है ।

उपशान्ताद्धा—औपशमिक सम्यक्त्व के काल को उपशान्ताद्धा कहा जाता है ।

(ऊ)

ऊह्—चोरासी लाख ऊहाग का एक ऊह होता है।

ऊहाग–चोरासी लाख महा अडड का समय।

(ए)

एकस्थानिक—कम प्रकृति का स्वाभाविक अनुभाग—फलजनक शक्ति।

एकात मिथ्यात्व—अनेक धर्मात्मक पदार्थों का किसी एक धर्मात्मक ही मानना एकात मिथ्यात्व है।

एकेन्द्रिय जीव—जिनक एकन्द्रिय जाति नामकम का उदय होता है और सिफ एक स्पशन इन्द्रिय ही जिनम पाई जाती है।

एकेन्द्रिय जाति नामकम—जिस कम क उदय स जीव को सिफ एक इन्द्रिय—स्पशन इन्द्रिय प्राप्त हो।

(ओ)

ओघबध—किसी खास गुणस्थान या खास गति आदि की विवक्षा किय बिना ही सब जीवो का जो बध कहा जाता है, उस ओघबध या सामान्य बध कहते हैं।

ओघसज्ञा—अव्यक्त चेतना को ओघसज्ञा कहा जाता है।

ओजाहार—गभ म उत्पन्न होन क समय जो शुक्र-शोणित रूप आहार कामण शरीर के द्वारा लिया जाता है।

(औ)

औत्पातिकी बुद्धि—जिस बुद्धि क द्वारा पहल बिना सुन बिना जान हुए पदार्थों क विशुद्ध अथ अभिप्राय को तत्काल ग्रहण कर लिया जाता है।

औदयिक भाव—कर्मों के उदय से होन वाला भाव।

औदारिक अगोपाग नामकम—जिस कम क उदय स औदारिक शरीर रूप म परिणत पुद्गलो स अगोपाग रूप अवयव बनत है।

औदारिकऔदारिकबधन नामकम—जिस कम क उदय स औदारिक शरीर पुद्गलो का औदारिक पुद्गलो क साथ सम्बन्ध हो।

औदारिक काययोग—औदारिक शरीर द्वारा उत्पन्न हुई शक्ति स जीव क प्रदेशो म परिस्पन्द क कारणभूत प्रयत्न का होना, अथवा औदारिक शरीर क वीय शक्ति क व्यापार को औदारिक काययोग कहत है।

औदारिककार्मणवन्धन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर पुद्गलो का कार्मण पुद्गलो के साथ सम्बन्ध हो।

औदारिकतैजसकार्मणबंधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से औदारिकशरीर पुद्गलो का तैजस-कार्मण पुद्गलो के साथ सम्बन्ध हो।

औदारिकतैजसबंधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से औदारिकशरीर पुद्गलो का तैजस पुद्गलो के साथ सम्बन्ध हो।

औदारिकमिश्र काय—औदारिकशरीर की उत्पत्ति प्रारम्भ होने के प्रथम समय से लगाकर अन्तर्मुहूर्त तक मध्यवर्ती काल मे वर्तमान अपरिपूर्ण शरीर को कहते हैं।

औदारिकमिश्र काययोग—औदारिक और कार्मण इन दोनो शरीरो की सहायता से होने वाले वीर्य-शक्ति के व्यापार को अथवा औदारिकमिश्र काय द्वारा होने वाले प्रयत्नो को औदारिकमिश्र काययोग कहा जाता है।

औदारिक शरीर—जिस शरीर को तीर्थंकर आदि महापुरुष धारण करते है, जिससे मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है, जो औदारिक वर्गणाओ से निष्पन्न मास, हड्डी आदि अवयवो से वना होता है, स्थूल है आदि, वह औदारिक-शरीर कहलाता है।

औदारिकशरीर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से औदारिकशरीर प्राप्त हो।

औदारिकशरीरबंधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से पूर्वग्रहीत औदारिक पुद्गलो के साथ वर्तमान मे ग्रहण किये जाने वाले औदारिक पुद्गलो का आपस मे मेल होता है।

औदारिक वर्गणा—जिन पुद्गल वर्गणाओ से औदारिक शरीर बनता है।

औदारिकसंघातन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से औदारिक शरीर रूप परिणत पुद्गलो का परस्पर सान्निध्य हो।

औपपातिक वैक्रिय शरीर—उपपात जन्म लेने वाले देव और नारको को जो शरीर जन्म समय से ही प्राप्त होता है।

औपशमिक भाव—मोहनीयकर्म के उपशम से होने वाला भाव।

औपशमिक चारित्र—चारित्र मोहनीय की पच्चीस प्रकृतियो के उपशम से व्यक्त होने वाला स्थिरात्मक आत्म-परिणाम।

औपशमिक सम्यक्त्व—अनन्तानुवधी कपाय चतुष्क और दर्शनमोहत्रिक—कुल

सात प्रकृतियों के उपशम से जो तत्त्व रुचि व्यंजक आत्म-परिणाम प्रगट होता है, वह औपशमिक सम्यक्त्व है।

(क)

कटुरस नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर रस चिरायत, नीम आदि जैसा कटु हो।

कमल—चौरासी लाख कमलांग के काल को कहते हैं।

कमलांग—चौरासी लाख महापद्म का एक कमलांग होता है।

करण-पर्याप्त—वे जीव जिन्होंने इन्द्रिय पर्याप्ति पूर्ण कर ली है अथवा अपनी योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण कर ली हैं।

करण अपर्याप्त—पर्याप्त या अपर्याप्त नामकर्म का उदय होने पर भी जब तक करणों—शरीर, इन्द्रिय आदि पर्याप्तियों की पूर्णता न हो तब तक वे जीव करण अपर्याप्त कहलाते हैं।

करणलब्धि—अनादिकालीन मिथ्यात्व ग्रंथि को भेदने में समर्थ परिणामों या शक्ति का प्राप्त होना।

कवलाहार—अन्न आदि खाद्य पदार्थ जो मुख द्वारा ग्रहण किये जाते हैं।

कर्म—मिथ्यात्व अविरत प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से हुई जीव की प्रवृत्ति द्वारा आकृष्ट एवं सम्बद्ध तद्योग्य पुद्गल परमाणु।

कर्मजा बुद्धि—उपयोगपूर्वक चिन्तन मनन और अभ्यास करते-करते प्राप्त होने वाली बुद्धि।

कर्मयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा—कर्मयोग्य जघन्य वर्गणाओं के अनन्तवें भाग अधिक प्रदेश वाले स्कन्धों की कर्मग्रहण के योग्य उत्कृष्ट वर्गणा होती है।

कर्मयोग्य जघन्य वर्गणा—उत्कृष्ट मनोयोग्य वर्गणा के अनन्तर की अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा के स्कन्ध के प्रदेशों से एक प्रदेश अधिक स्कन्धों की वर्गणा कर्मग्रहण के योग्य जघन्य वर्गणा होती है।

कर्मरूप परिणमन—कर्म पुद्गलों में जीव के ज्ञान, दर्शन आदि स्वाभाविक गुणों को आवरण करने की शक्ति का हो जाना।

कर्मरूपतावस्थानलक्षणा स्थिति—बंधने के बाद जब तक कर्म आत्मा के साथ ठहरता है, उतना काल।

कर्मवर्गणा—कर्म स्कन्धों का समूह।

कर्मवर्गणा स्कन्ध—जो पुद्गल स्कन्ध कर्मरूप परिणत होते है।

कर्मविधान—मिथ्यात्व आदि कारणो के द्वारा आत्मा के साथ होने वाले कर्मबंध के सम्बन्ध को कर्मविधान कहते है।

कर्मशरीर—कर्मों का पिण्ड।

कषाय—आत्मगुणो को कषे, नष्ट करे, अथवा जिसके द्वारा जन्म-मरण रूप ससार की प्राप्ति हो अथवा जो सम्यक्त्व, देशचारित्र, सकलचारित्र और यथाख्यातचारित्र को न होने दे, वह कषाय कहलाती है।

कषाय मोहनीयकर्म के उदयजन्य, ससार-वृद्धि के कारणरूप मानसिक विकारो को कषाय कहते है।

समभाव की मर्यादा को तोड़ना, चारित्र मोहनीय के उदय से क्षमा, विनय, सतोष आदि आत्मिक गुणो का प्रगट न होना या अल्पमात्रा मे प्रगट होना कषाय है।

कषायरस नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर-रस आवला, बहेडा आदि जैसा कसैला हो।

कषाय विजय—क्रोधादि कषायो के कारण उपस्थित होने पर भी उन्हे नही होने देना।

कषाय समुद्घात—क्रोधादि के निमित्त से होने वाला समुद्घात।

कापोतलेश्या—कबूतर के गले के समान रक्त तथा कृष्ण वर्ण के लेश्याजातीय पुद्गलो के सम्बन्ध से आत्मा के ऐसे परिणामो का होना कि जिससे मन, वचन, काया की प्रवृत्ति मे वक्रता ही वक्रता रहे, सरलता न रहे। दूसरो को कष्ट पहुँचे ऐसे भाषण करने की प्रवृत्ति, नास्तिकता रहे। इन परिणामो को कापोतलेश्या कहा जाता है।

काय—जिसकी रचना और वृद्धि औदारिक, वैक्रिय आदि पुद्गल स्कन्धो से होती है तथा जो शरीर नामकर्म के उदय से निष्पन्न होता है, अथवा जाति नामकर्म के अविनाभावी त्रस और स्थावर नामकर्म के उदय से होने वाली आत्मा की पर्याय को काय कहते हैं।

काययोग—शरीरधारी आत्मा की शक्ति के व्यापार-विशेष को काययोग कहते है, अथवा जिसमे आत्म-प्रदेशो का सकोच-विकोच हो उसे काय कहते है और उसके द्वारा होने वाला योग काययोग कहलाता है। अथवा औदा-

रिक आदि सात प्रकार के काया म जो अन्वय रूप से रहता है, उसे सामान्यत काय कहते है और उस काय स उत्पन्न हुए आत्म प्रदेश परिस्पन्द लक्षण वीय (शक्ति) के द्वारा जो योग होता है वह काययाग है।

कारक सम्यक्त्व—जिनोक्त क्रियाओ—सामायिक श्रुति-श्रवण, गुरुवदन आदि को करना।

कामणकाय—कर्मों क समूह अथवा कामणशरीर नामकम के उदय से उत्पन्न हान वाले काय का कामणकाय कहत हैं।

कामणकाययोग—कामणकाय क द्वारा होने वाला योग अर्थात अन्य औदारिक आदि शरीर वगणाओ क विना सिफ कम स उत्पन्न हुए वीय (शक्ति) क निमित्त से आत्म प्रदेश-परिस्पन्दन रूप प्रयत्न होना कामण काययोग कहलाता है। कामणशरीर की सहायता स होन वाली आत्म शक्ति की प्रवृत्ति को कामणकाययोग कहते हैं।

कामणशरीर—ज्ञानावरण आदि कर्मों से बना हुआ शरीर।

कामणशरीर नामकम—जिस कम क उदय से जीव को कामण शरीर की प्राप्ति हो।

कामणकामणबधन नामकम—जिस कम के उदय स कामणशरीर पुद्गलो का कामणशरीर पुद्गला के साथ सम्बन्ध हा।

कामणशरीरबधन नामकम—जिस कम के उदय स पूवगृहीत कामणशरीर पुद्गलो के साथ गृह्यमाण कामणशरीर पुद्गला का आपस म मेल हो।

कामणसघातन नामकम—जिस कर्म के उदय स कामणशरीर रूप म परिणत पुद्गलो का परस्पर सान्निध्य हो।

काल-अनुयोग द्वार—जिसम विवक्षित धम वाल जीवो की जघन्य व उत्कृष्ट स्थिति का विचार किया जाता है।

कीलिकासहनन नामकम—जिस कम के उदय स हड्डियो की रचना म मकट बध और वेठन न हो किन्तु कीली स हड्डियाँ जुडी हुइ हा।

कुब्जसस्थान नामकम—जिस कम के उदय स शरीर कुबडा हो।

कुमुद—चोरासी लाख कुमुदाग न काल को कुमुद कहते हैं।

कुमुदाग—चोरासी लाख महाकमल का एक कुमुदाग होता है।

कुशल कम—जिसका विपाक इष्ट हाता है।

कृतकरण—सम्यक्त्व मोहनीय के अन्तिम स्थिति खण्ड को खपाने वाले क्षपक को कहते है।

कृष्णलेश्या—काजल के समान कृष्ण वर्ण के लेश्या जातीय पुद्गलो के सम्बन्ध से आत्मा मे ऐसे परिणामो का होना, जिससे हिंसा आदि पाँचो आस्रवो मे प्रवृत्ति हो—मन, वचन, काय का सयम न रहना, गुण-दोष की परीक्षा किये विना ही कार्य करने की आदत वन जाना, क्रूरता आ जाना आदि।

कृष्णवर्ण नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर कोयले जैसा काला हो।

केवलज्ञान—ज्ञानावरण कर्म का नि शेष रूप से क्षय हो जाने पर जिसके द्वारा भूत, वर्तमान और भावी त्रैकालिक सब द्रव्य और पर्याये जानी जाती है, उसे केवलज्ञान कहते है। किसी की सहायता के विना सम्पूर्ण ज्ञेय पदार्थो का विषय करने वाला ज्ञान केवलज्ञान है।

केवलज्ञानावरण कर्म—केवलज्ञान का आवरण करने वाला कर्म।

केवलदर्शन—सम्पूर्ण द्रव्यो मे विद्यमान सामान्य धर्म का प्रतिभास।

केवलदर्शनावरण कर्म—केवलदर्शन का आवरण करने वाला कर्म।

केवली समुद्घात—वेदनीय आदि तीन अघाती कर्मों की स्थिति आयुकर्म के वरावर करने के लिए केवली-जिन द्वारा किया जाने वाला समुद्घात।

केशाग्र—आठ रथरेणु का देवकुरु और उत्तरकुरु क्षेत्र के मनुष्य का एक केशाग्र होता है। उनके आठ केशाग्रो का हरिवर्ष और रम्यकवर्ष के मनुष्य का एक केशाग्र होता है तथा उनके आठ केशाग्रो का हेमवत और हैरण्यवत क्षेत्र के मनुष्य का एक केशाग्र होता है, उनके आठ केशाग्रो का पूर्वापर विदेह के मनुष्य का एक केशाग्र होता है और उनके आठ केशाग्रो का भरत, ऐरावत क्षेत्र के मनुष्य का एक केशाग्र होता है।

कोडाकोड़ी—एक करोड को एक करोड से गुणा करने पर प्राप्त राशि।

क्रोध—समभाव को भूलकर आक्रोश मे भर जाना, दूसरो पर रोष करना क्रोध है। अतरग मे परम उपशम रूप अनन्त गुण वाली आत्मा मे क्षोभ तथा वाह्य विषयो मे अन्य पदार्थों के सम्वन्ध से क्रूरता, आवेश रूप विचार उत्पन्न होने को क्रोध कहते हैं। अथवा अपना और पर का उपघात या अनुपकार आदि करने वाला क्रूर परिणाम क्रोध कहलाता है।

क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि–मोहनीयकर्म की प्रकृतियो मे से क्षय योग्य प्रकृतियो के क्षय और शेप रही हुई प्रकृतियो के उपशम करने से सम्यक्त्व प्राप्त करने वाले जीव को कहते हैं ।

क्षीणकपाय वीतराग छद्मस्थ गुणस्थान–उन जीवो के स्वरूप विशेप को कहते है जो मोहनीयकर्म का सर्वथा क्षय कर चुके है किन्तु शेप छद्म (घातिकर्मो का आवरण) अभी विद्यमान है ।

क्षुद्र भव–सम्पूर्ण भवो मे सबसे छोटे भव ।

क्षेत्र अनुयोगद्वार–जिसमे विवक्षित धर्म वाले जीवो का वर्तमान निवास-स्थान वतलाया जाता है, उसे क्षेत्र अनुयोगद्वार कहते है ।

क्षेत्रविपाकी प्रकृति–जो प्रकृतियाँ क्षेत्र की प्रधानता से अपना फल देती हे, उन्हे क्षेत्रविपाकी प्रकृति कहते हैं । अथवा विग्रह-गति मे जो कर्म प्रकृति उदय मे आती है, अपने फल का अनुभव कराती है, वह क्षेत्रविपाकी प्रकृति है ।

(ख)

खरस्पर्श नामकर्म–जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर गाय की जीभ जैसा खुरदरा, कर्कश हो । इसे कर्कशस्पर्श नामकर्म भी कहा जाता है ।

(ग)

गंध नामकर्म–जिस कर्म के उदय से शरीर मे शुभ अच्छी या अशुभ बुरी गध हो ।

गति–गति नामकर्म के उदय से होने वाली जीव की पर्याय और जिससे जीव मनुष्य, तिर्यंच देव या नारक व्यवहार का अधिकारी कहलाता है, उसे गति कहते हैं, अथवा चारो गतियो—नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देव मे गमन करने के कारण को गति कहते है ।

गतित्रस–उन जीवो को कहते हे जिनको उदय तो स्थावर नामकर्म का होता है, किन्तु गतिक्रिया पाई जाती है ।

गति नामकर्म–जिसके उदय से आत्मा मनुष्यादि गतियो मे गमन करे उसे गति कहते है ।

गमिक श्रुत–आदि, मध्य और अवसान मे कुछ विशेपता से उसी सूत्र को वार-वार कहना गमिक श्रुत है ।

गुणाणु–पाँच शरीरो के योग्य परमाणुओ की रस-शक्ति का बुद्धि के द्वारा खडन करने पर जो अविभागी अश होता है, उसे गुणाणु या भावाणु कहते है ।

गुणप्रत्यय अवधिज्ञान–जो अवधिज्ञान जन्म लेने से नही किन्तु जन्म लेने के बाद यम नियम और व्रत आदि अनुष्ठान के बल से उत्पन्न होता है उसको क्षायोपशमिक अवधिज्ञान भी कहते है ।

गुणस्थान–ज्ञान आदि गुणो की शुद्धि और अशुद्धि के न्यूनाधिक भाव से होने वाले जीव के स्वरूप विशेष को कहते हैं ।

ज्ञान, दर्शन चारित्र आदि जीव के स्वभाव को गुण कहते हैं और उनके स्थान अर्थात् गुणो की शुद्धि-अशुद्धि के उत्कर्ष एव अपकर्ष-जन्य स्वरूप विशेष का भेद गुणस्थान कहलाता है ।

दर्शन मोहनीय आदि कर्मों की उदय, उपशम क्षय, क्षयोपशम आदि अवस्थाओ के होने पर उत्पन्न होने वाले जिन भावो से जीव लक्षित होते हैं उन भावो को गुणस्थान कहते हैं ।

गुणस्थान क्रम–आत्मिक गुणो के न्यूनाधिक क्रमिक विकास की अवस्था ।

गुणसक्रमण–पहले की बधी हुई अशुभ प्रकृतियो को वर्तमान मे बँधने वाली शुभ प्रकृतियो के रूप मे परिणत कर देना ।

गुणश्रेणी–जिन कर्मदलिको का स्थितिघात किया जाता है उनको समय के क्रम से अन्तर्मुहूर्त मे स्थापित कर देना गुणश्रेणी है । अथवा ऊपर की स्थिति मे उदय क्षण से लेकर प्रति समय असख्यातगुण असख्यातगुण कर्मदलिको की रचना को गुणश्रेणी कहते हैं ।

गुणश्रेणी निर्जरा–अल्प अल्प समय मे उत्तरोत्तर अधिक अधिक कर्म परमाणुओ का क्षय करना ।

गुणहानि–प्रथम निषेक अवस्थिति हानि से जितना दूर जाकर आधा होता है उस अन्तराल को गुणहानि कहते हैं । अथवा अपनी अपनी वर्गणा के वर्ग मे अपनी-अपनी प्रथम वर्गणा के वर्ग से एक-एक अविभागी प्रतिच्छेद अनुक्रम से बढता है एस स्पर्धकों के समूह का नाम गुणहानि है ।

गुरुभक्ति–गुरुजनो (माता पिता धर्माचार्य विद्यागुरु ज्येष्ठ भाई बहिन आदि) की सेवा आदर-सत्कार करना ।

गुरुलघु–आठ स्पर्श वाले बादर रूपी द्रव्य को गुरुलघु कहा जाता है ।

गुरुस्पर्श नामकर्म–जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर चाहे जैसा भारी हो ।

गव्यूत–दो हजार धनुप का एक गव्यूत होता है ।

गोत्रकर्म—जो कर्म जीव को उच्च-नीच गोत्र—कुल में उत्पन्न करावे अथवा जिस कर्म के उदय से जीव में पूज्यता-अपूज्यता का भाव उत्पन्न हो, जीव उच्च-नीच कहलाये।

ग्रन्थि—कर्मों से होने वाले जीव के तीव्र राग-द्वेष रूप परिणाम।

(घ)

घटिका—साढे अडतीस लव का समय। इसका दूसरा नाम 'नाली' है।

घातिकर्म—आत्मा के अनुजीवी गुणो का, आत्मा के वास्तविक स्वरूप का घात करने वाले कर्म।

घातिनी प्रकृति—जो कर्मप्रकृति आत्मिक-गुणो—ज्ञानादिक का घात करती है।

घन—तीन समान सख्याओ का परस्पर गुणा करने पर प्राप्त सख्या।

(च)

चक्षुदर्शन—चक्षु के द्वारा होने वाले पदार्थ के सामान्य धर्म के बोध को कहते ह।

चक्षुदर्शनावरण कर्म—चक्षु के द्वारा होने वाले वस्तु के सामान्य धर्म के ग्रहण को रोकने वाला कर्म।

चतुरिन्द्रियजाति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को चार इन्द्रियाँ—शरीर, जीभ, नाक और आँख प्राप्त हो।

चतु स्थानिक—कर्मप्रकृतियो मे स्वाभाविक अनुभाग से चौगुने अनुभाग—फलजनक शक्ति का पाया जाना।

चारित्रमोहनीयकर्म—आत्मा के स्वभाव की प्राप्ति या उसमे रमण करना चारित्र है। चारित्रगुण को घात करने वाला कर्म चारित्रमोहनीयकर्म कहलाता है।

चूलिका—चौरासी लाख चूलिकाग की एक चूलिका होती है।

चूलिकाग—चौरासी लाख-नयुत का एक चूलिकाग होता है।

चैत्यनिन्दा—ज्ञान, दर्शन, चारित्र-सपन्न गुणी महात्मा तपस्वी आदि की अथवा लौकिक दृष्टि से स्मारक, स्तूप, प्रतिमा आदि की निन्दा करना चैत्यनिंदा कहलाती है।

छ

छाद्मस्थिक—वे जीव जिनको मोहनीयकर्म का क्षय होने पर भी अन्य छद्मो (घातिकर्मों) का सद्भाव पाया जाता है।

छाद्मस्थिक यथाख्यातसंयम—ग्यारहवें (उपशान्तमोह) और बारहवें (क्षीणमोह) गुणस्थानवर्ती जीवों को होने वाला संयम।

छेदोपस्थापनीय संयम—पूर्व संयम पर्याय को छेदकर फिर से उपस्थापन (व्रतारोपण) करना।

ज

जघन्य अनन्तानन्त—उत्कृष्ट युक्तानन्त की संख्या में एक को मिलाने पर प्राप्त राशि।

जघन्य असंख्यातासंख्यात—उत्कृष्ट युक्तासंख्यात की राशि में एक को मिलाने पर प्राप्त संख्या।

जघन्य परीतानन्त—उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात में एक को मिला देने पर प्राप्त राशि।

जघन्य परीतासंख्यात—उत्कृष्ट संख्यात में एक को मिलाने पर प्राप्त संख्या।

जघन्य युक्तानन्त—उत्कृष्ट परीतानन्त की संख्या में एक को मिलाने पर प्राप्त राशि।

जघन्य युक्तासंख्यात—उत्कृष्ट परीतासंख्यात की राशि में एक को मिलाने पर प्राप्त राशि।

जघन्य बंध—सबसे कम स्थिति वाला बंध।

जघन्य संख्यात—दो की संख्या।

जलकाय—जलरूप शरीर, जो जल परमाणुओं से बनता है।

जाति—वह शब्द जिसके जानने या सुनने से सभी समान गुणधर्म वाले पदार्थों का ग्रहण हो जाय।

जाति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव स्पर्शन, रसन आदि पांच इन्द्रियों में से क्रमशः एक, दो, तीन, चार, पांच इन्द्रियां प्राप्त करके एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय कहलाता है।

जाति भव्य—जो भव्य मोक्ष की योग्यता रखते हुए भी उसको प्राप्त नहीं कर पाते हैं। उन्हें ऐसी अनुकूल सामग्री नहीं मिल पाती है जिससे मोक्ष प्राप्त कर सकें।

जिन—स्वरूपोपलब्धि में बाधक राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोध आदि भाव कर्मों एवं ज्ञानावरण आदि द्रव्य कर्मों को जीतकर अपने अनन्तज्ञान, दर्शन आदि आत्मगुणों को प्राप्त कर लेते हैं और जिन कहलाते हैं।

जिन निन्दा—जिन भगवान, निरावरण केवलज्ञानी की निन्दा, गर्हा करना, असत्य दोषो का आरोपण करना।

जीव—जो द्रव्य प्राण (इन्द्रिय, बल, आयु, श्वासोच्छ्वास) और भाव प्राण (ज्ञान, दर्शन आदि स्वाभाविक गुण) से जीता था, जीता है और जीयेगा, उसे जीव कहते है।

जीवविपाकी प्रकृति—जो प्रकृति जीव मे ही उसके ज्ञानादि स्वरूप का घात करने रूप फल देती है।

जीवसमास—जिन समान पर्याय रूप धर्मों के द्वारा अनन्त जीवो का सग्रह किया जाता है, उन्हे जीवसमास या जीवस्थान कहते हैं।

जुगुप्सा मोहनीयकर्म—जिस कर्म के उदय से सकारण या बिना कारण के ही वीभत्स—घृणाजनक पदार्थो को देखकर घृणा उत्पन्न होती है।

ज्ञान—जिसके द्वारा जीव त्रिकाल विषयक भूत, वर्तमान और भविष्य सम्बन्धी समस्त द्रव्य और उनके गुण और पर्यायो को जाने। अथवा सामान्य-विशेषात्मक वस्तु मे से उसके विशेष अश को जानने वाले आत्मा के व्यापार को ज्ञान कहते है।

ज्ञानावरण कर्म—आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करने वाला कर्म।

ज्ञानोपयोग—प्रत्येक पदार्थ को उन-उनकी विशेषताओ की मुख्यता से विकल्प करके पृथक् पृथक् ग्रहण करना।

(त)

तिक्तरस नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर-रस सोठ या काली-मिर्च जैसा चरपरा हो।

तिर्यंच—जो मन, वचन, काय की कुटिलता को प्राप्त है, जिनके आहार आदि सज्ञायें सुव्यक्त हैं, निकृष्ट अज्ञानी हैं, तिरछे गमन करते है और जिनमे अत्यधिक पाप की बहुलता पाई जाती है, उन्हे तिर्यंच कहते है।

जिनको तिर्यंचगति नामकर्म का उदय हो, उन्हे तिर्यंच कहते हैं।

तिर्यंचगति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से होने वाली पर्याय द्वारा जीव तिर्यंच कहलाता है।

तिर्यंचायु—जिसके उदय से तिर्यंचगति का जीवन व्यतीत करना पडता है।

तीर्थंकर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से तीर्थंकर पद की प्राप्ति होती है।

तेजोलेश्या—तोते की चोंच के समान रक्त वर्ण के लेश्या पुद्गलों से आत्मा में होने वाले वे परिणाम जिनसे नम्रता आती है, धर्मरुचि दृढ होती है दूसरे का हित करने की इच्छा होती है आदि।

तैजस कार्मणबंधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से तैजस शरीर पुद्गलों का कार्मण पुद्गलों के साथ सम्बन्ध हो।

तैजसतैजसबंधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से पूर्वगृहीत तैजस शरीर पुद्गलों के साथ गृह्यमाण तैजस पुद्गलों का परस्पर सम्बन्ध होता है।

तैजसवर्गणा—जिन वर्गणाओं से तैजस शरीर बनता है।

तैजसशरीर—तैजस पुद्गलों से बने हुए आहार को पचाने वाले और तेजोलेश्या साधक शरीर को तैजस शरीर कहते हैं।

तैजसशरीर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को तैजस शरीर की प्राप्ति हो।

तैजसशरीरप्रायोग्य उत्कृष्ट वर्गणा—तैजसशरीरप्रायोग्य जघन्य वर्गणा के अनंतवें भाग अधिक प्रदेश वाले स्कंधों की उत्कृष्ट वर्गणा।

तैजसशरीरप्रायोग्य जघन्य वर्गणा—आहारक शरीर की ग्रहणयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा के अनन्तर की अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा से एक प्रदेश अधिक स्कंधों की वर्गणा तैजसशरीर के योग्य जघन्य वर्गणा होती है।

तैजससंघातन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से तैजस शरीर रूप परिणत पुद्गलों का परस्पर सान्निध्य हो।

तैजससमुद्घात—जीवों के अनुग्रह या विनाश करने के समय तैजस शरीर की रचना के लिये किया जाने वाला समुद्घात।

त्रसकाय—जो शरीर चल फिर सकता है और जो त्रस नामकर्म के उदय से प्राप्त होता है।

त्रस नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को त्रसकाय की प्राप्ति होती है।

त्रसरेणु—आठ उर्ध्वरेणु का एक त्रसरेणु होता है।

त्रिस्थानिक—कर्म प्रकृति के स्वाभाविक अनुभाग से तिगुना अनुभाग।

त्रीन्द्रिय जीव—जिन जीवों को त्रीन्द्रिय जाति नामकर्म के उदय से स्पर्शन, रसन और घ्राण यह तीन इन्द्रियाँ प्राप्त हैं, उन्हें त्रीन्द्रिय जीव कहते हैं।

त्रुटितांग—चौरासी लाख पूर्व के समय को कहते हैं।

(द)

दंड समुद्घात--मयोगिकेवली गुणस्थानवर्ती जीव के द्वारा पहले समय मे अपने शरीर के बाहुल्य प्रमाण आत्म प्रदेशो को ऊपर से नीचे तक लोक पर्यन्त रचने को दड समुद्घात कहते है।

दर्शन--सामान्य धर्म की अपेक्षा जो पदार्थ की सत्ता का प्रतिभास होता है, उसे दर्शन कहते ह।

सामान्य विशेपात्मक वस्तुस्वरूप मे से वस्तु के सामान्य अश के वोधरूप चेतना के व्यापार को दर्शन कहते है। अथवा सामान्य की मुख्यता पूर्वक विशेप को गौण करके पदार्थ के जानने को दर्शन कहते हैं।

दर्शनावरण कर्म--आत्मा के दर्शन गुण को आच्छादित करने वाला कर्म।

दर्शनमोहनीय—तत्त्वार्थ श्रद्धा को दर्शन कहते है और उसको घात करने वाले, आवृत करने वाले कर्म को दर्शनमोहनीय कर्म।

दर्शनोपयोग—प्रत्येक वस्तु मे सामान्य और विशेष यह दो प्रकार के धर्म पाये जाते है, उनमे से सामान्य धर्म को ग्रहण करने वाले उपयोग को दर्शनोपयोग कहते हे।

दानान्तराय कर्म—दान की इच्छा होने पर भी जिस कर्म के उदय से जीव मे दान देने का उत्साह नही होता।

दीर्घकालिकी संज्ञा—उस सज्ञा को कहते हे, जिसमे भूत, वर्तमान और भविष्य काल सवधी क्रमवद्ध ज्ञान होता है कि अमुक कार्य कर चुका हूँ, अमुक कार्य कर रहा हूँ और अमुक कार्य करूँगा।

दीपक् सम्यक्त्व–जिनोक्त क्रियाओ से होने वाले लाभो का समर्थन, प्रचार, प्रसार करना दीपक सम्यक्त्व कहलाता है।

दुर्भग नामकर्म–जिस कर्म के उदय से जीव उपकार करने पर भी सभी को अप्रिय लगता हो, दूसरे जीव शत्रुता एव वैरभाव रखे।

दुरभिगंध नामकर्म–जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर मे लहसुन अथवा सड़े-गले पदार्थों जैसी गध हो।

दुरभिनिवेश—यथार्थ वक्ता मिलने पर भी श्रद्धा का विपरीत वना रहना।

दु स्वर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का स्वर व वचन श्रोता को अप्रिय व कर्कश प्रतीत हो।

दूर भव्य—जो भव्य जीव बहुत काल के बाद मोक्ष प्राप्त करने वाला है।

देव-देवगति नामकर्म के उदय होने पर नाना प्रकार की बाह्य विभूति से द्वीप समुद्र आदि अनेक स्थानों पर इच्छानुसार क्रीडा करते हैं, विशिष्ट ऐश्वर्य का अनुभव करते है, दिव्य वस्त्राभूषणों की समृद्धि तथा अपने शरीर की साहजिक कांति से जो दीप्तमान रहते है वे देव कहलाते है।

देवगति नामकर्म–जिस कर्म के उदय से जीव को ऐसी अवस्था प्राप्त हो कि जिससे यह देव है' ऐसा कहा जाये।

देवायु—जिसके कारण से देवगति का जीवन बिताना पडता है, उसे देवायु कहते है।

देशघाती प्रकृति–अपने घातने योग्य गुण का आंशिक रूप से घात करने वाली प्रकृति।

देशविरति—अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय न होने के कारण जो जीव देश (अंश) से पापजनक क्रियाओं से अलग हो सकते है वे देशविरत कहलाते हैं।

देशविरत गुणस्थान—देशविरत जीवों का स्वरूप विशेष।

देशविरत सयम—कर्मबंधजनक आरंभ, समारंभ से आंशिक निवृत होना, निरपराध त्रस जीवों की संकल्पपूर्वक हिंसा न करना देशविरति सयम है।

द्रव्यकर्म—ज्ञानावरण आदि कर्मरूप परिणाम को प्राप्त हुए पुद्गल।

द्रव्यप्राण—इन्द्रिय बल, आयु और श्वासोच्छ्वास।

द्रव्यलेश्या—वर्ण नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुए शरीर के वर्ण को द्रव्यलेश्या कहते हैं।

द्रव्यवेद—मथुनेच्छा की पूर्ति के योग्य नामकर्म के उदय से प्रगट बाह्य चिह्न विशेष।

द्वीन्द्रिय—जिन जीवों के स्पर्शन और रसन यह दो इन्द्रियां है तथा द्वीन्द्रिय जाति नामकर्म का उदय है।

द्वीन्द्रियजाति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को दो इन्द्रियाँ—शरीर (स्पर्शन) और जिह्वा (रसना) प्राप्त हो।

द्वितीयस्थिति—अन्तर स्थान से ऊपर की स्थिति को कहते है।

द्वितीयोपशम सम्यक्त्व–जो वेदक सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबंधी कषाय और

दर्शनमोहनीय का उपशम करके उपशम सम्यक्त्व को प्राप्त होता है, उसे द्वितीयोपशम सम्यक्त्व कहते हैं।

द्विस्थानिक—कर्म प्रकृतियों के स्वाभाविक अनुभाग से दुगना अनुभाग।

(ध)

धनुष—चार हाथ के माप को धनुष कहा जाता है।

धारणा—अवाय के द्वारा जाने हुए पदार्थ का कालान्तर में विस्मरण न हो, इस प्रकार के संस्कार वाले ज्ञान को धारणा कहते हैं।

ध्रुवोदया प्रकृति—अपने उदयकाल पर्यन्त प्रत्येक समय जीव को जिस प्रकृति का उदय बराबर बिना रुके होता रहता है।

ध्रुवबन्ध—जो बंध न कभी विच्छिन्न हुआ और न होगा।

ध्रुवबंधिनी प्रकृति—योग्य कारण होने पर जिस प्रकृति का बंध अवश्य होता है।

ध्रुवसत्ताक प्रकृति—जो अनादि मिथ्यात्व जीव को निरन्तर सत्ता में होती है, सर्वदा विद्यमान रहती है।

(न)

नपुंसक वेद—स्त्री एवं पुरुष दोनों के साथ रमण करने की इच्छा।

नयुत—चौरासी लाख नयुतांग का एक नयुत होता है।

नयुतांग—चौरासी लाख प्रयुत के समय को कहते हैं।

नरकगति नामकर्म—जिसके उदय से जीव नारक कहलाता है।

नरकायु—जिसके उदय से जीव को नरकगति का जीवन बिताना पड़ता है।

नलिन—चौरासी लाख नलिनांग का एक नलिन होता है।

नलिनांग—चौरासी लाख पद्म का एक नलिनांग कहलाता है।

नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगति प्राप्त करके अच्छी-बुरी विविध पर्यायें प्राप्त करता है, अथवा जिस कर्म से आत्मा गति आदि नाना पर्यायों को अनुभव करे अथवा शरीर आदि बने, उसे नामकर्म कहते हैं।

नारक—जिनको नरकगति नामकर्म का उदय हो। अथवा जीवों को क्लेश पहुँचाये। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से जो स्वयं तथा परस्पर में प्रीति को प्राप्त न करते हों।

नाराचसंहनन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से हड्डियों की रचना में दोनों तरफ मर्कट बंध हो, लेकिन वेठन और कील न हो।

नाली—साढे अडतीस लव के समय को नाली कहते हैं ।

निकाचन—उद्वतना, अपवतना, सक्रमण और उदीरणा इन चार अवस्थाओ के न होने की स्थिति का नाम निकाचन है ।

निकाचित प्रकृति—जिस प्रकृति म कोई भी करण नही लगता । उसे निकाचित प्रकृति कहते ह ।

निजरा—आत्मा के साथ नीर क्षीर की तरह आपस म मिले हुए कम पुद्गलो का एकदेश क्षय होना ।

निद्रा—जिस कम के उदय स जीव को एसी नीद आय कि सुखपूवक जाग सक जगाने म मेहनत न करनी पड़े ।

निद्रा निद्रा—जिस कम के उदय स जीव को जगाना दुष्कर हो, एसी नीद आय ।

निधत्ति—कम की उदीरणा और सक्रमण क सवथा अभाव की स्थिति ।

निर्माण नामकम—जिस कम के उदय स शरीर म अग प्रत्यग अपनी अपनी जगह व्यवस्थित होते हैं ।

निरतिचार छेदोपस्थापनीय सयम—जिसको इत्वर सामायिक सयम वाले बडी दीक्षा के रूप म ग्रहण करत हैं ।

निवत्तिबादर गुणस्थान—वह अवस्था, जिसम अप्रमत्त आत्मा अनन्तानुबधी, *अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण* इन तीनो चतुष्क रूपी बादर कषाय से निवृत्त हो जाती है । इसम स्थितिघात आदि का अपूव विधान होने स इसे अपूवकरण गुणस्थान भी कहत ह ।

निवृत्ति द्रव्येन्द्रिय—इन्द्रियो की आकार रचना ।

निरुपक्रम आयु—जिस आयु का अपवतन घात नही होता ।

निर्विशमान—परिहार विशुद्धि सयम को धारण करने वालो को कहत हैं ।

निर्विष्टकायिक—परिहारविशुद्धि सयम धारको की सेवा करने वाले ।

निश्चय सम्यक्त्व—जीवादि तत्वो का यथारूप से श्रद्धान ।

निह्नव—मानवश ज्ञानदाता गुरु का नाम छिपाना, अमुक विषय का जानत हुए भी मैं नही जानता, उत्सूत्र प्ररूपणा करना आदि निह्नव कहलाता है ।

नीच कुल—अधम और अनीति करने से जिस कुल ने चिरकाल स अप्रसिद्धि व अपकीर्ति प्राप्त की है ।

नीच गोत्र कम—जिस कम के उदय से जीव नीच कुल म जन्म लेता है ।

नीललेश्या—अशोक वृक्ष के समान नीले रग के लेश्या पुद्गलो से आत्मा मे ऐसा परिणाम उत्पन्न होना कि जिससे ईर्ष्या, असहिष्णुता, छल-कपट आदि होने लगे ।

नीलवर्ण नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर तोते के पख के जैसा हरा हो ।

नोकषाय—जो स्वय तो कषाय न हो किन्तु कषाय के उदय के साथ जिसका उदय होता है अथवा कषायो को पैदा करने मे, उत्तेजित करने मे सहायक हो ।

न्यग्रोधपरिमडलसंस्थान नामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर की आकृति न्यग्रोध (वटवृक्ष) के समान हो अर्थात् शरीर मे नाभि से ऊपर के अवयव पूर्ण मोटे हो और नाभि से नीचे के अवयव हीन—पतले हो ।

(प)

पचेन्द्रिय जाति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को पाँचो इन्द्रियाँ प्राप्त हो ।

पंडित वीर्यान्तराय कर्म—सम्यग्दृष्टि साधु मोक्ष की चाह रखते हुए भी जिस कर्म के उदय से उसके योग्य क्रियाओ को न कर सकें ।

पतद्ग्रह प्रकृति—आकर पडने वाले कर्म दलिको को ग्रहण करने वाली प्रकृति ।

पद—प्रत्येक कर्म प्रकृति को पद कहते है ।

पदवृन्द—पदो के समुदाय को पदवृन्द कहा जाता है ।

पदश्रुत—अर्थविबोधक अक्षरो के समुदाय को पद और उसके ज्ञान को पदश्रुत कहते है ।

पदसमासश्रुत—पदो के समुदाय का ज्ञान ।

पद्म—चौरासी लाख पद्मांग का एक पद्म होता है ।

पद्म लेश्या—हल्दी के समान पीले रग के लेश्या पुद्गलो से आत्मा मे ऐसे परिणामो का होना जिससे काषायिक प्रवृत्ति काफी अशो मे कम हो, चित्त प्रशान्त रहता हो, आत्म-सयम और जितेन्द्रियता की वृत्ति आती हो ।

पद्मांग—चौरासी लाख उत्पल का एक पद्मांग होता है ।

पराघात नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव बड़े-बड़े बलवानो की दृष्टि मे भी अजेय मालूम हो ।

परावर्तमाना प्रकृति—किसी दूसरी प्रकृति के बंध उदय अथवा दोनों को रोक कर जिस प्रकृति का बंध उदय अथवा दोनों होते हैं।

परिहारविशुद्धि संयम—परिहार का अर्थ है तपोविशेष और उस तपोविशेष से जिस चारित्र में विशुद्धि प्राप्त की जाती है, उसे परिहारविशुद्धि संयम कहते हैं। अथवा जिसमें परिहारविशुद्धि नामक तपस्या की जाती है, वह परिहारविशुद्धि संयम है।

पर्याप्त नामकर्म—पर्याप्त नामकर्म के उदय वाले जीवों को पर्याप्त कहते हैं और जिस कर्म के उदय से जीव अपनी पर्याप्तियों से युक्त होते हैं वह पर्याप्त नामकर्म है।

पर्याप्ति—जीव की वह शक्ति जिसके द्वारा पुद्गलों को ग्रहण करने तथा उनको आहार, शरीर आदि के रूप में बदल देने का कार्य होता है।

पर्याय श्रुत—उत्पत्ति के प्रथम समय में लब्ध्यपर्याप्त सूक्ष्म निगोदिया जीव के होने वाले कुश्रुत के अंश से दूसरे समय में ज्ञान का जितना अंश बढ़ता है, वह पर्यायश्रुत है।

पर्याय समास श्रुत—पर्याय श्रुत का समुदाय।

पल्य—अनाज वगैरह भरने के गोलाकार स्थान को पल्य कहते हैं।

पल्योपम—काल की जिस लम्बी अवधि को पल्य की उपमा दी जाती है, उसको पल्योपम कहते हैं। एक योजन लम्बे, एक योजन चौड़े एवं एक योजन गहरे गोलाकार कूप की उपमा से जो काल गिना जाता है उसे पल्योपम कहते हैं।

परोक्ष—मन और इन्द्रिय आदि बाह्य निमित्तों की सहायता से होने वाला पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान।

पश्चादानुपूर्वी—अंत से प्रारम्भ कर आदि तक की गणना करना।

पाद—छह उत्सेधांगुल का एक पाद होता है।

पाप—जिसके उदय से दुःख की प्राप्ति हो, आत्मा शुभ कार्यों से पृथक रहे।

पाप प्रकृति—जिसका फल अशुभ होता है।

पारिणामिकी बुद्धि—दीर्घायु के कारण बहुत काल तक संसार के अनुभवों से प्राप्त होने वाली बुद्धि।

पारिणामिक भाव—जिसके कारण मूल वस्तु में किसी प्रकार का परिवर्तन न हो किन्तु स्वभाव में ही परिणत होते रहना पारिणामिक भाव है। अथवा

कर्म के उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशम की अपेक्षा न रखने वाले द्रव्य की स्वाभाविक अनादि पारिणामिक शक्ति से ही आविर्भूत भाव को पारिणामिक भाव कहते है।

पिंड प्रकृति—अपने मे अन्य प्रकृतियो को गर्भित करने वाली प्रकृति।

पुण्य—जिस कर्म के उदय से जीव को सुख का अनुभव होता है।

पुण्य कर्म—जो कर्म सुख का वेदन कराता है।

पुण्य प्रकृति—जिस प्रकृति का विपाक-फल शुभ होता है।

पुद्‌गलपरावर्त—ग्रहण योग्य आठ वर्गणाओ (औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस शरीर, भाषा, श्वासोच्छ्‌वास, मन, कार्मण वर्गणा) मे से आहारक शरीर वर्गणा को छोडकर शेष औदारिक आदि प्रकार से रूपी द्रव्यो को ग्रहण करते हुए एक जीव द्वारा समस्त लोकाकाश के पुद्‌गलो का स्पर्श करना।

पुद्‌गलविपाकी प्रकृति—जो कर्म प्रकृति पुद्‌गल मे फल प्रदान करने के सन्मुख हो अर्थात् जिस प्रकृति का फल आत्मा पुद्‌गल द्वारा अनुभव करे। औदारिक आदि नामकर्म के उदय से ग्रहण किये गये पुद्‌गलो मे जो कर्म प्रकृति अपनी शक्ति को दिखावे, वह पुद्‌गलविपाकी प्रकृति है।

पुरुषवेद—जिसके उदय से पुरुष को स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा हो।

पूर्व—चौरासी लाख पूर्वाङ्ग का एक पूर्व होता है।

पूर्वश्रुत—अनेक वस्तुओ का एक पूर्व होता है। उसमे से एक का ज्ञान पूर्वश्रुत कहलाता है।

पूर्वसमासश्रुत—दो-चार आदि चौदह पूर्वों तक का ज्ञान।

पूर्वाङ्ग—चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वाङ्ग होता है।

पूर्वानुपूर्वी—जो पदार्थ जिस क्रम से उत्पन्न हुआ हो या जिस क्रम से सूत्रकार के द्वारा स्थापित किया गया हो, उसकी उसी क्रम से गणना करना।

पृथ्वीकाय—पृथ्वी से बनने वाला पार्थिव शरीर।

प्रकृति—कर्म के स्वभाव को प्रकृति कहते है।

प्रकृति बध—जीव द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म पुद्‌गलो मे भिन्न-भिन्न शक्तियो—स्वभावो का उत्पन्न होना, अथवा कर्म परमाणुओ का ज्ञानावरण आदि के रूप मे परिणत होना।

प्रकृतिविकल्प—प्रकृतियो के भेद से होने वाले भग।

प्रकृति स्थान—दो या तीन आदि प्रकृतियो का समुदाय ।
प्रचला—जिस कम के उदय से बठे-बठे या खड़े खड़े ही नीद आन लगे ।
प्रचला प्रचला—जिस कम के उदय से चलते फिरते ही नीद आ जाय ।
प्रतर—श्रेणि के वग को प्रतर कहते हैं ।
प्रतिपत्ति श्रुत—गति, इन्द्रिय आदि द्वारो म से किसी एक द्वार के जरिए समस्त ससार के जीवो को जानना ।
प्रतिपत्तिसमास श्रुत—गति आदि दो चार द्वारा के जरिए जीवो का नान होना ।
प्रतिपाती अवधिज्ञान—जगमगाते दीपक क वायु के थाक स एकाएक बुझ जाने के समान एकदम लुप्त होने वाला अवधिनान ।
प्रतिशलाका पल्य—प्रतिसाक्षीभूत सरसो क दानो स भरा जान वाला पल्य ।
प्रतिश्रवणानुमति—पुत्र आदि किसी सम्बन्धी के द्वारा किये गय पाप कर्मों को कवल सुनना और सुनकर भी उन कर्मों के करने से उनको न रोकना ।
प्रतिसेवनानुमति—अपने या दूसरे क किये हुए भोजन आदि का उपयोग करना ।
प्रत्यक्ष—मन इन्द्रिय, परोपदेश आदि पद निमित्तो की अपेक्षा रखे बिना एव मात्र आत्मस्वरूप स ही समस्त द्रव्या और उनकी पर्यायो को जानना ।
प्रत्यनीकत्व—नान, नानी और नान के साधनो के प्रतिकूल आचरण करना ।
प्रत्याख्यानावरण कषाय—जिस कषाय के प्रभाव से आत्मा को सवविरति चारित्र प्राप्त करने म बाधा हो, अर्थात श्रमणधम की प्राप्ति न हो ।
प्रत्येक नामकम—जिस कम के उदय से एक शरीर का स्वामी एक ही जीव हो ।
प्रथमस्थिति—अन्तर स्थान से नीचे की स्थिति ।
प्रदेश—कमदलिका को प्रदेश कहते हैं ।

पुद्गल के एक परमाणु के अवगाह स्थान की सज्ञा भी प्रदेश है ।
प्रदेशबध—जीव के साथ न्यूनाधिक परमाणु वाले कम स्कन्धो का सम्बन्ध होना ।
प्रदेशोदय—बधे हुए कर्मों का अन्य रूप से अनुभव होना । अर्थात जिन कर्मों के दलिक बाधे हैं उनका रस दूसरे भोगे जाने वाले सजातीय प्रकृतियो के निषेको के साथ भोगा जाय, बद्ध प्रकृति स्वय अपना विपाक न बता सके ।
प्रद्वेष—नानियो और नान के साधनो पर द्वेष रखना, अरुचि रखना प्रद्वेष कहलाता है ।

प्रमत्तसंयत—जो जीव पापजनक व्यापारो से विधिपूर्वक सर्वथा निवृत्त हो जाते है, वे सयत (मुनि) है लेकिन सयत भी जब तक प्रमाद का सेवन करते है तब तक प्रमत्तसयत कहलाते है ।

प्रमत्तसयत गुणस्थान—प्रमत्तसयत के स्वरूप विशेष को कहते है ।

प्रमाणांगुल—उत्सेधागुल से अढाई गुणा विस्तार वाला और चारसौ गुण लम्बा प्रमाणागुल होता है ।

प्रमाद—आत्मविस्मरण होना, कुशल कर्मों मे आदर न रखना, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की स्मृति के लिए सावधान न रहना ।

प्रयुत—चौरासी लाख प्रयुताग का एक प्रयुत होता है ।

प्रयुतांग—चौरासी लाख अयुत के समय को एक प्रयुताग कहते है ।

प्राभृत श्रुत—अनेक प्राभृत-प्राभृतो का एक प्राभृत होता है । उस एक प्राभृत का ज्ञान ।

प्राभृत-प्राभृत श्रुत—दृष्टिवाद अग मे प्राभृत-प्राभृत नामक अधिकार है उनमे से किसी एक का ज्ञान होना ।

प्राभृत-प्राभृतसमास श्रुत—दो चार प्राभृत-प्राभृतो का ज्ञान ।

प्राभृतसमास श्रुत—एक से अधिक प्राभृतो का ज्ञान ।

(ब)

वन्ध—मिथ्यात्व आदि कारणो द्वारा काजल से भरी हुई डिबिया के समान पौद्गलिक द्रव्य से परिव्याप्त लोक मे कर्मयोग्य पुद्गल वर्गणाओ का आत्मा के साथ नीर-क्षीर अथवा अग्नि और लोहपिंड की भाँति एक-दूसरे मे अनुप्रवेश—अभेदात्मक एकक्षेत्रावगाह रूप सबध होने को बध कहते है । अथवा—आत्मा और कर्म परमाणुओ के सबध विशेष को बध कहते है । अथवा अभिनव नवीन कर्मो के ग्रहण को बध कहते है ।

बधकाल—परभव सबधी आयु के बंधकाल की अवस्था ।

बधविच्छेद—आगे के किसी भी गुणस्थान मे उस कर्म का बध न होना ।

बधस्थान—एक जीव के एक समय मे जितनी कर्म प्रकृतियो का बध एक साथ (युगपत्) हो उनका समुदाय ।

बंधहेतु—मिथ्यात्व आदि जिन वैभाविक परिणामो (कर्मोदय जन्य) आत्मा के

परिणाम—क्रोध आदि) से कर्म योग्य पुद्गल कर्मरूप परिणत हो जाते है।

बधनकरण— आत्मा की जिस शक्ति—वीर्य विशेष से कर्म का बध होता है।

बधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से पूर्वगृहीत औदारिक आदि शरीर पुद्गलो के साथ नवीन ग्रहण किये जाने वाले पुद्गलो का सबध हो।

बादर अद्धा पल्योपम—बादर उद्धार पल्य मे से सौ सौ वर्ष के बाद एक एक केशाग्र निकालने पर जितने समय मे वह खाली हो उतने समय को बादर अद्धा पल्योपम कहते है।

बादर अद्धा सागरोपम—दस कोटा कोटी बादर अद्धा पल्योपम के काल को बादर अद्धा सागरोपम कहा जाता है।

बादर उद्धार पल्योपम—उत्सेधागुल के द्वारा निष्पन्न एक योजन प्रमाण लम्बे, एक योजन प्रमाण चौडे और एक योजन प्रमाण गहरे एक गोल पल्य—गड्ढे को एक दिन से लेकर सात दिन तक के उगे बालाग्रो से ठसाठस भरकर कि जिसको न आग जला सके, न वायु उडा सके और न जल का ही प्रवेश हो सके, प्रति समय एक एक बालाग्र के निकालने पर जितने समय मे वह पल्य खाली हो जाय, उस काल को बादर उद्धार पल्योपम कहते है।

बादर उद्धार सागरोपम—दस कोटा कोटी बादर उद्धार पल्योपम के काल को कहा जाता है।

बादर काल पुद्गल परावर्त—जिसमे बीस कोटा कोटी सागरोपम के एक काल चक्र के प्रत्येक समय को क्रम या अक्रम से जीव अपने मरण द्वारा स्पर्श कर लेता है।

बादर क्षेत्र पुद्गल परावर्त—जितने काल मे एक जीव समस्त लोक मे रहने वाले सब परमाणुओ को आहारक शरीर वर्गणा के सिवाय शेष औदारिक शरीर आदि सातो वर्गणा रूप से ग्रहण करके छोड देता है।

बादर भाव पुद्गल परावर्त—एक जीव अपने मरण के द्वारा क्रम से या बिना क्रम के अनुभाग बध के कारणभूत समस्त कषाय स्थानो को जितने समय मे स्पर्श कर लेता है।

बाल तपस्वी—आत्मस्वरूप को न समझकर अज्ञानपूर्वक कायक्लेश आदि तप करने वाला।

वाल पंडित वीर्यान्तराय—देशविरति के पालन की इच्छा रखता हुआ भी जीव जिसके उदय से उसका पालन न कर सके।

वाल वीर्यान्तराय—सांसारिक कार्यो को करने की सामर्थ्य होने पर भी जीव जिसके उदय से उनको न कर सके।

वाह्य निवृत्ति—इन्द्रियो के वाह्य-आकार की रचना।

(भ)

भय मोहनीयकर्म—जिस कर्म के उदय से कारणवशात् या विना कारण डर पैदा हो।

भयप्रत्यय अवधिज्ञान—जिसके लिए सयम आदि अनुष्ठान की अपेक्षा न हो किन्तु जो अवधिज्ञान उस गति मे जन्म लेने से ही प्रगट होता हे।

भव विपाकी प्रकृति—भव की प्रधानता से अपना फल देने वाली प्रकृति।

भव्य—जो मोक्ष प्राप्त करते है या पाने की योग्यता रखते है अथवा जिनमे सम्यग्दर्शन आदि भाव प्रगट होने की योग्यता है।

भाव—जीव और अजीव द्रव्यो का अपने-अपने स्वभाव रूप से परिणमन होना।

भाव अनुयोगद्वार—जिसमे विवक्षित धर्म के भाव का विचार किया जाता है।

भावकर्म—जीव के मिथ्यात्व आदि वे वैभाविक स्वरूप जिनके निमित्त से कर्म-पुद्गल कर्म रूप हो जाते हैं।

भावप्राण—ज्ञान, दर्शन, चेतना आदि जीव के गुण।

भावलेश्या—योग और सक्लेश से अनुगत आत्मा का परिणाम विशेप। सक्लेश का कारण कपायोदय है अत. कपायोदय से अनुरजित योग प्रवृत्ति को भावलेश्या कहते है। मोहकर्म के उदय या क्षयोपशम या उपशम या क्षय से होने वाली जीव के प्रदेशो मे चचलता को भावलेश्या कहते हे।

भाववेद—मैथुनेच्छा की पूर्ति के योग्य नामकर्म के उदय से प्रगट वाह्य चिन्ह विशेप के अनुरूप अभिलाषा अथवा चारित्र मोहनीय की नोकषाय की वेद प्रकृतियो के कारण स्त्री, पुरुष आदि से रमण करने की इच्छा रूप आत्म परिणाम।

भावश्रुत—इन्द्रिय और मन के निमित्त से उत्पन्न होने वाला ज्ञान जो कि

नियत अर्थ को कहने में समर्थ है तथा श्रुतानुसारी (शब्द और अर्थ के विकल्प से युक्त) है उसे भावश्रुत कहते हैं।

भावेन्द्रिय—मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न आत्म विशुद्धि अथवा उस विशुद्धि से उत्पन्न होने वाला ज्ञान।

भाषा—शब्दोच्चार को भाषा कहते हैं।

भाषा पर्याप्ति—उस शक्ति की पूर्णता को कहते हैं जिससे जीव भाषावर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके भाषा रूप परिणमावे और उसका आधार लेकर अनेक प्रकार की ध्वनि रूप में छोड़े।

भाषाप्रायोग्य उत्कृष्ट वर्गणा—भाषाप्रायोग्य जघन्य वर्गणा से एक एक प्रदेश बढ़ते-बढ़ते जघन्य वर्गणा के अनन्तवें भाग अधिक प्रदेश वाले स्कंधों की भाषाप्रायोग्य उत्कृष्ट वर्गणा होती है।

भाषाप्रायोग्य जघन्य वर्गणा—तैजस शरीर की ग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा के बाद की अग्रहण योग्य उत्कृष्ट वर्गणा से एक प्रदेश अधिक स्कंधों की जो वर्गणा होती है, वह भाषा प्रायोग्यजघन्य वर्गणा है।

भूयस्कार बंध—पहले समय में कम प्रकृतियों का बंध करके दूसरे समय में उससे अधिक कर्म प्रकृतियों के बंध को भूयस्कार बंध कहते हैं।

भोग उपभोग—एक बार भोगे जाने वाले पदार्थों को भोग और बार-बार भोगे जाने वाले पदार्थों को उपभोग कहते हैं।

भोगान्तराय कर्म—भोग के साधन होते हुए भी जिस कर्म के उदय से जीव भोग्य वस्तुओं का भोग न कर सके।

(म)

मतिज्ञान—इंद्रिय और मन के द्वारा यथायोग्य स्थान में अवस्थित वस्तु का होने वाला ज्ञान।

मति-अज्ञान—मिथ्यादर्शन के उदय से होने वाला विपरीत मति उपयोग रूप ज्ञान।

मतिज्ञानावरण कर्म—मति ज्ञान का आवरण करने वाला कर्म।

मधुररस नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर रस मिश्री आदि मीठे पदार्थों जैसा हो।

मध्यम अनन्तानन्त—जघन्य अनन्तानन्त के आगे की सब संख्याएँ।

मध्यम असख्यातासख्यात—जघन्य और उत्कृष्ट असख्यातसख्यात के मध्य की राशि ।

मध्यम परीतासंख्यात—जघन्य परीतासख्यात को एक सख्या से युक्त करने पर जहाँ तक उत्कृष्ट परीतासख्यात न हो, वहाँ तक की सख्या ।

मध्यम परीतानन्त—जघन्य और उत्कृष्ट परीतानन्त के मध्य की सख्या ।

मध्यम युक्तानन्त—जघन्य और उत्कृष्ट युक्तानन्त के वीच की सख्या ।

मध्यम युक्तासंख्यात—जघन्य और उत्कृष्ट युक्तासख्यात के वीच की सख्या ।

मध्यम सख्यात—दो से ऊपर (तीन से लेकर) और उत्कृष्ट सख्यात से एक कम तक की सख्या ।

मन—विचार करने का साधन ।

मन पर्याय ज्ञान—इन्द्रिय और मन की अपेक्षा न रखते हुए, मर्यादा के लिए हुए सज्ञी जीवो के मनोगत भावो को जानना मन पर्याय ज्ञान है अथवा-मन के चिन्तनीय परिणामो को जिस ज्ञान से प्रत्यक्ष किया जाता है, उसे मन पर्याय ज्ञान कहते है ।

मन पर्याय ज्ञानावरण—मन पर्यायज्ञान का आवरण करने वाला कर्म ।

मन पर्याप्ति—जिस शक्ति से जीव मन के योग्य मनोवर्गणा के पुद्गलो को ग्रहण करके मन रूप परिणमन करे और उसकी शक्ति विशेष से उन पुद्गलो को वापस छोड़े, उसकी पूर्णता को मन पर्याप्ति कहते है ।

मनुष्य—जो मन के द्वारा नित्य ही हेय-उपादेय, तत्त्व-अतत्त्व, आप्त-अनाप्त, धर्म-अधर्म आदि का विचार करते है, कर्म करने मे निपुण है, उत्कृष्ट मन के धारक है, विवेकशील होने से न्याय-नीतिपूर्वक आचरण करने वाले है, उन्हे मनुष्य कहते है ।

मनुष्यगति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को वह अवस्था प्राप्त हो कि जिसमे 'यह मनुष्य है' ऐसा कहा जाये ।

मनुष्यायु—जिसके उदय से मनुष्यगति मे जन्म हो ।

मनोद्रव्य योग्य उत्कृष्ट वर्गणा—मनोद्रव्य योग्य जघन्य वर्गणा के ऊपर एक-एक प्रदेश वढते-वढते जघन्य वर्गणा के स्कन्ध के प्रदेशो के अनन्तवे भाग अधिक प्रदेश वाले स्कन्धो की मनोद्रव्य योग्य उत्कृष्ट वर्गणा होती है ।

मनोद्रव्य योग्य जघन्य वर्गणा—श्वासोच्छ्वास योग्य उत्कृष्ट वर्गणा के बाद की

अग्रहणयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा के स्कन्धों से एक प्रदेश अधिक स्कन्धों की मनोद्रव्ययोग्य जघन्यवर्गणा होती है।

मनोयोग—जीव का वह व्यापार जो औदारिक वैक्रिय या आहारक शरीर के द्वारा ग्रहण किये हुए मनप्रायोग्य वर्गणा की सहायता से होता है। अथवा काययोग के द्वारा मनप्रायोग्य वर्गणाओं को ग्रहण करके मनोयोग से मनरूप परिणत हुए वस्तु विचारात्मक द्रव्य को मन कहते हैं और उस मन के सहचारी कारणभूत योग को मनोयोग कहते हैं। अथवा जिस योग का विषय मन है अथवा मनोवर्गणा से निष्पन्न हुए द्रव्य मन के अवलंबन से जीव का जो संकोच विकोच होता है वह मनोयोग है।

महाकमल—चौरासी लाख महाकमलांग का एक महाकमल होता है।

महाकमलांग—चौरासी लाख कमल के समय को एक महाकमलांग कहते हैं।

महाकुमुद—चौरासी लाख महाकुमुदांग का एक महाकुमुद होता है।

महाकुमुदांग—चौरासी लाख कुमुद का एक महाकुमुदांग होता है।

महालता—चौरासी लाख महालतांग के समय को एक महालता कहते हैं।

महालतांग—चौरासी लाख लता का एक महालतांग कहलाता है।

महाशलाका पल्य—महासाक्षीभूत सरसों के दानों द्वारा भरे जाने वाले पल्य को महाशलाका पल्य कहते हैं।

मान—जिस दोष से दूसरे के प्रति नमन की वृत्ति न हो, छोटे बड़े के प्रति उचित नम्र भाव न रखा जाता हो, जाति कुल, तप आदि के अहंकार से दूसरे के प्रति तिरस्कार रूप वृत्ति हो उसे मान कहते हैं।

माया—आत्मा का कुटिल भाव। दूसरे को ठगने के लिए जो कुटिलता या छल आदि किये जाते हैं, अपने हृदय के विचारों को छिपाने की जो चेष्टा की जाती है, वह माया है। अथवा विचार और प्रवृत्ति में एकरूपता के अभाव को माया कहते हैं।

मार्गनाश—संसार निवृत्ति और मुक्ति प्राप्ति के मार्ग का अपलाप करना।

मार्गणा—उन अवस्थाओं को कहते हैं जिनमें गति आदि अवस्थाओं को लेकर जीव में गुणस्थान, जीवस्थान आदि की मार्गणा—विचारणा—गवेषणा की जाती है। अथवा जिन अवस्थाओं—पर्यायों आदि से जीवों को देखा

जाता है उनकी उसी रूप मे विचारणा, गवेषणा करना मार्गणा कहलाता है।

मारणान्तिक समुद्घात—मरण के पहले उस निमित्त जो समुद्घात होता है, उसे मारणान्तिक समुद्घात कहते हैं।

मिथ्यात्व—पदार्थों का अयथार्थ श्रद्धान।

मिथ्यादृष्टि गुणस्थान—मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से जीव की दृष्टि (श्रद्धा, प्रतिपत्ति) मिथ्या (विपरीत) हो जाना मिथ्यादृष्टि है और मिथ्यादृष्टि जीव के स्वरूप विशेष को मिथ्यादृष्टि गुणस्थान कहते है।

मिथ्यात्व मोहनीय—जिसके उदय से जीव को तत्वो के यथार्थ स्वरूप की रुचि न हो। मिथ्यात्व के अशुद्ध दलिको को मिथ्यात्व मोहनीय कहते है।

मिथ्यात्व श्रुत—मिथ्यादृष्टि जीवो के श्रुत को मिथ्यात्व श्रुत कहा जाता है।

मिश्र गुणस्थान—मिथ्यात्व के अर्ध शुद्ध पुद्गलो का उदय होने से जव जीव की दृष्टि कुछ सम्यक् (शुद्ध) और कुछ मिथ्या (अशुद्ध) अर्थात् मिश्र हो जाती है तव वह जीव मिश्रदृष्टि कहलाता है और उसके स्वरूप विशेष को मिश्र गुणस्थान कहते है। इसका दूसरा नाम सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थान भी है।

मिश्र मनोयोग—किसी अश मे यथार्थ और किसी अश मे अयथार्थ ऐसा चिन्तन जिस मनोयोग के द्वारा हो उसे मिश्र मनोयोग कहते हे।

मिश्र मोहनीय—जिस कर्म के उदय से जीव को यथार्थ की रुचि या अरुचि न होकर दोलायमान स्थिति रहे। मिथ्यात्व के अर्धशुद्ध दलिको को भी मिश्र मोहनीय कहा जाता है।

मिश्र सम्यक्त्व—सम्यग्मिथ्यात्व मोहनीयकर्म के उदय से तत्त्व और अतत्त्व इन दोनो की रुचि रूप लेने वाला मिश्र परिणाम।

मुक्त जीव—सपूर्ण कर्मो का क्षय करके जो अपने ज्ञान, दर्शन आदि भाव प्राणो से युक्त होकर आत्मस्वरूप मे अवस्थित है, वे मुक्त जीव कहलाते है।

मुहूर्त—दो घटिका या ४८ मिनट का समय।

मूल प्रकृति—कर्मों के मुख्य भेदो को मूल प्रकृति कहते है।

मृदुस्पर्श नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर मक्खन जैसा कोमल हो।

मोक्ष—सम्पूर्ण कर्मों का क्षय हो जाना।

मोहनीय कर्म—जीव को स्वपर विवेक तथा स्वरूप रमण में बाधा पहुंचाने वाला कर्म, अथवा आत्मा के सम्यक्त्व और चारित्र गुण का घात करने वाले कर्म को मोहनीयकर्म कहते हैं।

(य)

यथाख्यात संयम—समस्त मोहनीयकर्म के उपशम या क्षय से जैसा आत्मा का स्वभाव बताया है, उस अवस्था रूप वीतराग संयम।

यथाप्रवृत्तकरण—जिस परिणाम शुद्धि के कारण जीव आयुकर्म के सिवाय शेष सात कर्मों की स्थिति पल्योपम के असंख्यातवें भाग कम एक कोड़ा कोड़ी सागरोपम जितनी कर देता है। जिसमें करण से पहले के समान अवस्था (स्थिति) बनी रहे उसे यथाप्रवृत्तकरण कहते हैं।

यत्रतत्रानुपूर्वी—जहां कहीं से अथवा अपने इच्छित पदार्थ को प्रथम मानकर गणना करना यत्रतत्रानुपूर्वी है।

यवमध्यभाग—आठ यूका का एक यवमध्यभाग होता है।

यश:कीर्ति—किसी एक दिशा में प्रशंसा फैले उसे कीर्ति और सब दिशाओं में प्रशंसा फैले उसे यशःकीर्ति कहते हैं। अथवा दान तप आदि से नाम का होना कीर्ति और शत्रु पर विजय प्राप्ति से नाम का होना यश है।

यश:कीर्ति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव की संसार में यश और कीर्ति फैले।

यावत्कथित सामायिक—जो सामायिक ग्रहण करने के समय से जीवनपर्यन्त पाली जाती है।

युग—पांच वर्ष का समय।

यूका—आठ लीख की एक यूका (जूं) होती है।

योग—तत्त्वाचार का पालन करना संयम योग है।

आत्मप्रदेशों में परिस्पन्दन होने को योग कहते हैं।

आत्मप्रदेशों में अथवा आत्मशक्ति में परिस्पन्दन मन, वचन, काय के द्वारा होता है, अतः मन वचन काय के कर्म व्यापार को अथवा पुद्गल

विपाकी शरीर नामकर्म के उदय से मन, वचन, काय से युक्त जीव की कर्मों के ग्रहण करने मे कारणभूत शक्ति को योग कहा जाता है।

योगस्थान—स्पर्द्धकों के समूह को योगस्थान कहते हैं।

योजन—चार गव्यूत या आठ हजार धनुष का एक योजन होता है।

(र)

रति मोहनीय—जिस कर्म के उदय से सकारण या अकारण पदार्थों मे राग-प्रेम हो।

रथरेणु—आठ त्रसरेणु का एक रथरेणु होता है।

रस-गौरव—मधुर, अम्ल आदि रसो से अपना गौरव समझना।

रसघात—बधे हुए ज्ञानावरण आदि कर्मों की फल देने की तीव्र शक्ति को अपवर्तनाकरण के द्वारा मद कर देना।

रस नामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर मे तिक्त, मधुर आदि शुभ, अशुभ रसो की उत्पत्ति हो।

रसबंध—जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म पुद्गलो मे फल देने की न्यूनाधिक शक्ति का होना।

रसविपाकी—रस के आश्रय अर्थात् रस (अनुभाग) की मुख्यता से निर्दिश्यमान विपाक जिस प्रकृति का होता है, उस प्रकृति को रस विपाकी कहते है।

रसाणु—पुद्गल द्रव्य की शक्ति का सबसे छोटा अश।

रसोदय—बधे हुए कर्मों का साक्षात् अनुभव करना।

राजू—प्रमाणागुल से निष्पन्न असख्यात कोटा-कोटी योजन का एक राजू होता है। अथवा श्रेणि के सातवें भाग को राजू कहते है।

रूक्षस्पर्श नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर बालू जैसा रूखा हो।

ऋजुमति मन पर्यायज्ञान—दूसरो के मन मे स्थित पदार्थ के सामान्यस्वरूप को जानना।

ऋद्धि गौरव—धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य को ऋद्धि कहते है और उससे अपने को महत्त्वशाली समझना ऋद्धि गौरव है।

ऋषभनाराचसंहनन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से हड्डियो की रचना

विशेष म दोनो तरफ हड्डी का मर्कटबंध हो, तीसरी हड्डी का वेठन भी हो, लेकिन तीनो को भेदने वाली हड्डी की कील न हो।

रोचक सम्यक्त्व—जिनोक्त क्रियाओ म रुचि रखना।

(ल)

लघु स्पर्श नामकर्म—जिस कर्म के उदय स जीव का शरीर आक की रूई जसा हल्का हो।

लता—चौरासी लाख लतांग के समय को एक लता कहते हैं।

लतांग—चौरासी लाख पूर्व का एक लतांग होता है।

लब्धि—ज्ञानावरणकर्म क क्षयोपशम विशेष को लब्धि कहते हैं।

लब्धित्रस—व जीव जिन्ह त्रस नामकर्म का उदय होता है और चलते फिरते भी हैं।

लब्धि पर्याप्त—व जीव जिनको पर्याप्ति नामकर्म का उदय हो और अपनी योग्य पर्याप्तिया को पूर्ण करके मरते हैं, पहले नही।

लब्धि प्रत्यय वक्रिय शरीर—वक्रियलब्धिजन्य जिस वक्रिय शरीर स मनुष्य और तिर्यचों द्वारा विविध विक्रियायें की जाती हैं।

लब्धि भावेन्द्रिय—मतिज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम स चेतना शक्ति की योग्यता विशेष।

लब्ध्यक्षर—शब्द को सुनकर या रूप को देखकर अर्थ का अनुभवपूर्वक पर्यालोचन करना।

लब्ध्यपर्याप्त—व जीव जो स्वयोग्य पर्याप्तिया का पूर्ण किये बिना ही मर जाते है।

लय—सात स्तोक का समय।

लाभान्तराय कर्म—जिस कर्म क उदय स जीव को इष्ट वस्तु की प्राप्ति न हो सके।

लीख—भरत और एरावत क्षेत्र के मनुष्यो क आठ बालाग्रो की एक लीख होती है।

लेश्या—जीव क एस परिणाम जिनक द्वारा आत्मा कर्मों स लिप्त हो अथवा कषायोदय स अनुरंजित योग प्रवृत्ति।

लोभ—धन आदि की तीव्र आकाक्षा या गृद्धता बाह्य पदार्थों म 'यह मेरा है' इस प्रकार की अनुराग बुद्धि, ममता आदि रूप परिणाम।

लोमाहार—स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा ग्रहण किये जाने वाला आहार।

लोहित वर्ण नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर सिन्दूर जैसा लाल हो।

(व)

वर्ग—समान दो सख्याओ का आपस मे गुणा करने पर प्राप्त राशि।

सजातीय प्रकृतियो के समुदाय।

अविभागी प्रतिच्छेदो का समूह।

वर्गणा—समान जातीय पुद्गलो का समूह।

वचनयोग—जीव के उस व्यापार को कहते हैं जो औदारिक, वैक्रिय या आहारक शरीर की क्रिया द्वारा संचय किये हुए भाषा द्रव्य की सहायता से होता है। अथवा भाषा परिणामरूपता को प्राप्त हुए पुद्गल को वचन कहते हे और उस सहकारी कारणभूत वचन के द्वारा होने वाले योग को वचनयोग कहते हैं। अथवा वचन को विजय करने वाले योग को या भाषावर्गणा सम्बन्धी पुद्गल स्कन्धो के अवलवन से जो जीव प्रदेशो मे संकोच-विकोच होता है, उसे वचनयोग कहते हैं।

वज्रऋषभनाराचसहनन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से हड्डियो की रचना विशेप मे वज्र-कीली, ऋषभ-वेष्ठन, पट्टी और नाराच—दोनो ओर मर्कट वध हो, अर्थात् दोनो ओर से मर्कट वव से वधी हुई दो हड्डियो पर तीसरी हड्डी का वेठन हो और उन तीनो हड्डियो को भेदने वाली हड्डी की कीली लगी हुई हो।

वर्णनामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर मे कृष्ण गौर आदि रंग होते हे।

वर्धमान अवधिज्ञान—अपनी उत्पत्ति के समय अल्प विपय वाला होने पर भी परिणाम-विशुद्धि के साथ उत्तरोत्तर अधिकाधिक विपय होने वाला।

वनस्पति काय—जिन जीवो का शरीर वनस्पति मय होता है।

वस्तु श्रुत—अनेक प्राभृतो का एक वस्तु अधिकार होता है। एक वस्तु अधिकार के ज्ञान को वस्तुश्रुत कहते हैं।

वस्तु समास श्रुत—दो-चार वस्तु अधिकारो का ज्ञान।

वामन सस्थान नामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर वामन (बौना) हो।

वायुकाय—वायु से बनने वाला वायवीय शरीर।

विकल प्रत्यक्ष—चेतना शक्ति के अपूर्ण विकास के कारण जो ज्ञान मूर्त पदार्थों की समग्र पर्यायों भावों को जानने में असमर्थ हो।

वितस्ति—दो पाद की एक वितस्ति होती है।

विनय मिथ्यात्व—सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि देव, गुरु और उनके कहे हुए शास्त्रों में समान बुद्धि रखना।

विपाक—कर्मप्रकृति की विशिष्ट अथवा विविध प्रकार के फल देने की शक्ति को और फल देने के अभिमुख होने को विपाक कहते हैं।

विपाक काल—कर्म प्रकृतियों का अपने फल देने के अभिमुख होने का समय।

विपरीतमिथ्यात्व—धर्मादिक के स्वरूप को विपरीत रूप मानना।

विपुलमति मन पर्यायज्ञान—चिन्तनीय वस्तु की पर्यायों को विविध विशेषताओं सहित स्फुटता से जानना।

विभंगज्ञान—मिथ्यात्व के उदय से रूपी पदार्थों के विपरीत अवधिज्ञान को विभंगज्ञान कहते हैं।

विरति—हिंसादि सावद्य व्यापारों अर्थात् पापजनक प्रयत्नों से अलग हो जाना।

विशुद्धयमानक सूक्ष्मसंपराय संयम—उपशमश्रेणि या क्षपकश्रेणि का आरोहण करने वालों का दसवें गुणस्थान की प्राप्ति के समय होने वाला संयम।

विशेषबंध—किसी खास गुणस्थान या किसी खास गति आदि को लेकर जो बंध कहा जाता है उसे विशेषबंध कहते हैं।

विसंयोजना—प्रकृति के क्षय होने पर भी पुनः बंध की सम्भावना बनी रहे।

विहायोगति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव की चाल हाथी, बैल आदि की चाल के समान शुभ या ऊँट, गधे की चाल के समान अशुभ होती है।

वीर्यान्तरायकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव शक्तिशाली और निरोग होते हुए भी कार्य विशेष में पराक्रम न कर सके, शक्ति सामर्थ्य का उपयोग न कर सके।

वेद—जिसके द्वारा इन्द्रियजन्य संयोगजन्य सुख का वेदन किया जाय। अथवा मैथुन सेवन करने की अभिलाषा को वेद कहते हैं। अथवा वेद मोहनीय कर्म के उदय, उदीरणा से होने वाला जीव के परिणामों का सम्मोह (चंचलता) जिससे गुण दोष का विवेक नहीं रहता।

वेदक सम्यक्त्व—क्षायोपशमिक सम्यक्त्व मे विद्यमान जीव सम्यक्त्व मोहनीय के अन्तिम पुद्गल के रस का अनुभव करता है उस समय के उसके परिणाम।

वेदना समुद्घात—तीव्र वेदना के कारण होने वाला समुद्घात।

वेदनीय कर्म—जिसके उदय से जीव को सासारिक इन्द्रियजन्य सुख-दुःख का अनुभव हो।

वैक्रिय अंगोपाग नामकर्म—जिस कर्म के उदय से वैक्रिय शरीर रूप परिणत पुद्गलो से अगोपाग रूप अवयव निर्मित होते है।

वैक्रियकाययोग—वैक्रिय शरीर के द्वारा होने वाले वीर्य-शक्ति के व्यापार को वैक्रिय काययोग कहते है। अथवा वैक्रिय शरीर के अवलम्बन से उत्पन्न हुए परिस्पन्द द्वारा जो प्रयत्न होता है, उसे वैक्रियकाययोग कहा जाता है।

वैक्रियकार्मणवंधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से वैक्रिय शरीर पुद्गलो का कार्मण पुद्गलो के साथ सम्वन्ध हो।

वैक्रियतैजसकार्मणवधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से वैक्रिय शरीर पुद्गलो का तैजस-कार्मण पुद्गलो के साथ सम्बन्ध हो।

वैक्रियतैजसवंधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से वैक्रिय शरीर पुद्गलो का तैजस पुद्गलो के साथ सम्बन्ध हो।

वैक्रियमिश्र काय—वैक्रिय शरीर की उत्पत्ति प्रारम्भ होने के प्रथम समय से लगाकर शरीर पर्याप्ति पूर्ण होने तक अन्तर्मुहूर्त के मध्यवर्ती अपूर्ण शरीर को वैक्रियमिश्र काय कहते है।

वैक्रियमिश्र काययोग—वैक्रिय और कार्मण तथा वैक्रिय और औदारिक इन दो-दो शरीरो के मिश्रत्व के द्वारा होने वाला वीर्य-शक्ति का व्यापार।

वैक्रियवैक्रियवंधन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से पूर्वगृहीत वैक्रिय शरीर पुद्गलो के साथ गृह्यमाण वैक्रिय शरीर पुद्गलो का आपस मे मेल होता है।

वैक्रिय वर्गणा—वे वर्गणाएँ जिनसे वैक्रिय शरीर वनता है।

वैक्रिय शरीर—जिस शरीर के द्वारा छोटे-वड़े, एक-अनेक, विविध विचित्र रूप वनाने की शक्ति प्राप्त हो तथा जो शरीर वैक्रिय शरीर वर्गणाओ से निष्पन्न हो।

वक्रियशरीर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव को वक्रियशरीर प्राप्त हो।

वक्रियशरीरयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा—वक्रियशरीर के ग्रहणयोग्य जघन्य वर्गणा से उसके अनन्तवें भाग अधिक स्कन्धों की वक्रियशरीरयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा होती है।

वक्रियशरीरयोग्य जघन्य वर्गणा—औदारिक शरीर के अग्रहणयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा के स्कन्धों से एक अधिक परमाणु वाले स्कन्धों की समूह रूप वर्गणा।

वक्रियसंघातन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से वक्रिय शरीर रूप परिणत पुद्गलों का परस्पर सान्निध्य हो।

वक्रियसमुद्घात—वक्रिय शरीर के निमित्त से होने वाला समुद्घात।

वनयिकी बुद्धि—गुरुजनों आदि की सेवा से प्राप्त होने वाली बुद्धि।

व्यंजन—पदार्थ के ज्ञान को अथवा जिसके द्वारा पदार्थ का बोध किया जाता है।

व्यंजनाक्षर—जिससे अकार आदि अक्षरों के अर्थ का स्पष्ट बोध हो। अथवा अक्षरों के उच्चारण को व्यंजनाक्षर कहते हैं।

व्यंजनावग्रह—अव्यक्त ज्ञान रूप अर्थावग्रह से पहले होने वाला अत्यन्त अव्यक्त ज्ञान।

व्यवहार परमाणु—अनन्त निश्चय परमाणुओं का एक व्यवहार परमाणु होता है।

व्यवहार सम्यक्त्व—कुगुरु, कुदेव और कुमार्ग का त्याग कर सुगुरु, सुदेव और सुमार्ग का स्वीकार करना, उनकी श्रद्धा करना।

व्रतयुक्तता—हिंसादि पापों से विरत होना व्रत है। अणुव्रतों या महाव्रतों के पालन करने को व्रतयुक्तता कहते हैं।

(श)

शरीर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव के औदारिक, वक्रिय आदि शरीर बनें अथवा औदारिक आदि शरीरों की प्राप्ति हो।

शरीर पर्याप्ति—रस के रूप में बदल दिये गये आहार को रक्त आदि सात धातुओं के रूप में परिणमाने की जीव की शक्ति की पूर्णता।

शलाकापल्य—जिस पल्य को एक एक साक्षीभूत सरसों के दाने से भरा जाता है, उसे शलाकापल्य कहते हैं।

शीतस्पर्श नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर वर्फ जैसा ठडा हो।

शीर्षप्रहेलिका—चौरासी लाख शीर्पप्रहेलिकाग की एक शीर्पप्रहेलिका होती है।

शीर्षप्रहेलिकांग—चौरासी लाख चूलिका का एक शीर्पप्रहेलिकाग कहलाता है।

शुक्ललेश्या—शख के समान श्वेतवर्ण के लेश्या जातीय पुद्गलो के सम्वन्ध से आत्मा के ऐसे परिणामो का होना कि जिनसे कपाय उपशान्त रहती है, वीतराग-भाव सम्पादन करने की अनुकूलता आ जाती है।

शुभ नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर मे नाभि से ऊपर के अवयव शुभ हो।

शुभविहायोगति नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव की चाल हाथी, वैल की चाल की तरह शुभ हो।

श्रुतज्ञान—जो ज्ञान श्रुतानुसारी है जिसमे शब्द और अर्थ का सम्वन्ध भासित होता है, जो मतिज्ञान के वाद होता है तथा शब्द और अर्थ की पर्यालोचना के अनुसरणपूर्वक इन्द्रिय व मन के निमित्त से होने वाला है, उसे श्रुतज्ञान कहते है।

श्रुतअज्ञान—मिथ्यात्व के उदय से सहचरित श्रुतज्ञान।

श्रुतज्ञानावरणकर्म—श्रुतज्ञान का आवरण करने वाला कर्म।

श्रेणि—सात राजू लवी आकाश के एक-एक प्रदेश की पक्ति।

श्रेणिगत सासादनसम्यग्दृष्टि—वह जीव जो उपशमश्रेणि से गिरकर सासादन गुणस्थान को प्राप्त होता है।

शैलेशी अवस्था—मेरु पर्वत के समान निश्चल अथवा सर्व सवर रूप योग निरोध की अवस्था।

शैलेशीकरण—वेदनीय, नाम और गोत्र इन तीन कर्मों की असख्यात गुणश्रेणि से और आयुकर्म की यथास्थिति से निर्जरा करना।

शोकमोहनीय—जिस कर्म के उदय से कारणवश या विना कारण ही शोक होता है।

श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका—आठ उत्श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका की एक श्लक्ष्णश्लक्ष्णिका होती है।

श्वासोच्छ्वास—शरीर से वाहर की वायु को नाक के द्वारा अन्दर खीचना और अन्दर की हवा को वाहर निकालना श्वासोच्छ्वास कहलाता है।

श्वासोच्छ्वास काल—रोगरहित निश्चिन्त तरुण पुरुष के एक बार श्वास लेने और त्यागने का काल।

श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति—श्वासोच्छ्वासयोग्य पुद्गलों को ग्रहण कर श्वासोच्छ्वास रूप परिणत करके उनका सार ग्रहण करके उन्हें वापस छोड़ने की जीव की शक्ति की पूर्णता।

श्वासोच्छ्वासयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा—श्वासोच्छ्वासयोग्य जघन्य वर्गणा के ऊपर एक-एक प्रदेश बढ़ते-बढ़ते जघन्य वर्गणा के स्कन्ध के प्रदेशों के अनन्तवें भाग अधिक प्रदेश वाले स्कन्धों की श्वासोच्छ्वासयोग्य उत्कृष्ट वर्गणा होती है।

श्वासोच्छ्वासयोग्य जघन्य वर्गणा—भाषायोग्य उत्कृष्ट वर्गणा के बाद की उत्कृष्ट अग्रहणयोग्य वर्गणा के स्कन्धों से एक प्रदेश अधिक स्कन्धों की वर्गणा श्वासोच्छ्वासयोग्य जघन्य वर्गणा होती है।

(स)

संक्लिश्यमान सूक्ष्मसंपराय संयम—उपशमश्रेणि से गिरने वाले जीवों के दसवें गुणस्थान की प्राप्ति के समय होने वाला संयम।

संक्रमण—एक कर्म रूप में स्थित प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश का अन्य सजातीय कर्म रूप में बदल जाना अथवा वीर्यविशेष से कर्म का अपनी ही दूसरी सजातीय कर्म प्रकृति स्वरूप को प्राप्त कर लेना।

संख्या—भेदों की गणना को संख्या कहा जाता है।

संख्या अनुयोगद्वार—जिस अनुयोग द्वार में विवक्षित धर्म वाले जीवों की संख्या का विवेचन हो।

संख्याताणुवर्गणा—संख्यात प्रदेशी स्कन्धों की संख्याताणुवर्गणा होती है।

संघनिन्दा—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप संघ की निन्दा, गर्हा करने को संघनिन्दा कहते हैं।

संघात नामकर्म—जिस कर्म के उदय से प्रथम ग्रहण किये हुए शरीर पुद्गलों पर नवीन ग्रहण किये जा रहे शरीरयोग्य पुद्गल व्यवस्थित रूप से स्थापित किये जाते हैं।

संघात श्रुत—गति आदि चौदह मार्गणाओं में से किसी एक मार्गणा का एकदेश ज्ञान।

संघात समासश्रुत—किसी एक मार्गणा के अनेक अवयवो का ज्ञान ।

संज्वलन कषाय—जिस कपाय के उदय से आत्मा को यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति न हो तथा सर्वविरति चारित्र के पालन मे वाघा हो ।

संज्ञा—नोइन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम या तज्जन्य ज्ञान को अथवा अभिलापा को सज्ञा कहते है ।

संज्ञाक्षर—अक्षर की आकृति, बनावट, सस्थान आदि जिसके द्वारा यह जाना जाये कि यह अमुक अक्षर है ।

सज्ञित्व—विशिष्ट मनशक्ति, दीर्घकालिकी सज्ञा का होना ।

संज्ञी—बुद्धिपूर्वक इष्ट-अनिष्ट मे प्रवृत्ति-निवृत्ति करने वाले जीव । अथवा सम्यग्ज्ञान रूपी सज्ञा जिनको हो, उन्हे सज्ञी कहते है । जिनके लब्धि या उपयोग रूप मन पाया जाये उन जीवो को सज्ञी कहते है ।

संज्ञीश्रुत—सज्ञी जीवो का श्रुत ।

संभव सत्ता—किसी कर्म प्रकृति की अमुक समय मे सत्ता न होने पर भी भविष्य मे सत्ता की सभावना मानना ।

संयम—सावद्य योगो—पापजनक प्रवृत्तियो—से उपरत हो जाना, अथवा पापजनक व्यापार—आरम्भ-समारम्भ से आत्मा को जिसके द्वारा सयमित-नियमित किया जाता है उसे सयम कहते है अथवा पाँच महाव्रतो रूप यमो के पालन करने या पाँच इन्द्रियो के जय को सयम कहते है ।

संवर—आस्रव का निरोध सवर कहलाता है ।

संवासानुमति—पुत्र आदि अपने सम्बन्धियो के पापकर्म मे प्रवृत्त होने पर भी उन पर सिर्फ ममता रखना ।

सवेध—परस्पर एक समय मे अविरोध रूप से मिलना ।

संस्थान नामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर के भिन्न-भिन्न शुभ या अशुभ आकार बनें ।

संसारी जीव—जो अपने यथायोग्य द्रव्यप्राणो और ज्ञानादि भावप्राणो से युक्त होकर नरकादि चतुर्गति रूप ससार मे परिभ्रमण करते है ।

सहनन नामकर्म—जिस कर्म के उदय से हाडो का आपस मे जुड जाना अर्थात् रचना विशेप होती है ।

साशयिक मिथ्यात्व—समीचीन और असमीचीन दोनो प्रकार के पदार्थों मे से

किसी भी एक का निश्चय न होना। अथवा सशय स उत्पन्न होने वाला मिथ्यात्व। अथवा-देव गुरु-धम क विषय म सदेहशील बने रहना।

सकलप्रत्यक्ष—सम्पूण पदार्थों का उनकी त्रिकालवर्ती पर्यायो सहित युगपत जानन वाला नान।

सत्ता—बध समय या सक्रमण समय से लेकर जब तक उन कम परमाणुओ का अ य प्रकृति रूप म सक्रमण नही होता या उनकी निजरा नही होती तब तक उनका आत्मा स लगे रहना।

वधादि के द्वारा स्व स्वरूप को प्राप्त करने वाले कर्मों की स्थिति।

सत्तास्थान—जिन प्रकृतिया की सत्ता एक साथ पाई जाय उनका समुदाय।

सत्य मनोयोग—जिस मनोयोग के द्वारा वस्तु क यथाथ स्वरूप का विचार किया जाता है। अथवा सद्‌भाव अर्थात समीचीन पदार्थों का विषय करने वाले मन को सत्यमन और उसके द्वारा होने वाले योग को सत्य मनोयोग कहते हैं।

सत्यमृषा मनोयोग—सत्य और मृषा (असत्य) से मिश्रित मनोयोग।

सत्यमृषा वचनयोग—सत्य और मषा स मिश्रित वचनयोग।

सत्य वचनयोग—जिस वचनयोग के द्वारा वस्तु के यथाथ स्वरूप का कथन किया जाता है। सत्य वचन वगणा के निमित्त से होने वाला योग।

सदनुयोगद्वार—विवक्षित धम का मागणाओ म बतलाया जाना कि किन मागणाओ म वह धम है और किन मागणाओ म नहीं है।

सद्‌भाव सत्ता—जिस कम की सत्ता अपने स्वरूप स हो।

सपयवसित श्रुत—अतहीन श्रुत।

समचतुरस्र—पालथी मारकर बठन पर जिस शरीर के चारो कोण समान हो, यानी आसन और कपाल का अन्तर, दोनो घुटनो का अन्तर दाहिने कधे और बायें जानु का अन्तर बायें कधे और दाहिने जानु का अन्तर समान हो।

समचतुरस्र सस्थान नामकम—जिस कम के उदय स समचतुरस्र सस्थान की प्राप्ति हो अथवा सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार जिस शरीर के सम्पूण अव यव शुभ हो।

समय—काल का अत्यन्त सूक्ष्म अविभागी अश।

समास—अधिक, समुदाय या सग्रह ।

समुद्घात—मूल शरीर को छोडे बिना ही आत्मा के प्रदेशो का बाहर निकलना ।

सयोगिकेवली—वे जीव जिन्होने चार घातिकर्मों का क्षय करके केवलज्ञान और दर्शन प्राप्त कर लिया है जो पदार्थ के जानने देखने मे इन्द्रिय आलोक आदि की अपेक्षा नही रखते और योग (आत्मवीर्य शक्ति उत्साह पराक्रम) से सहित है।

सयोगिकेवली गुणस्थान—सयोगिकेवली के स्वरूप विशेष को कहते हैं ।

सयोगिकेवली यथाख्यातसंयम—सयोगिकेवली का यथाख्यातसयम ।

सम्यक् श्रुत—सम्यग्दृष्टि जीवो का श्रुत ।

सम्यक्त्व—छह द्रव्य, पंच अस्तिकाय, नव तत्त्वो का जिनेन्द्र देव ने जैसा कथन किया है, उसी प्रकार से उनका श्रद्धान करना अथवा तत्त्वार्थ श्रद्धान् ।

मोक्ष के अविरोधी आत्मा के परिणाम को सम्यक्त्व कहते है ।

सम्यक्त्वमोहनीय—जिसका उदय तात्त्विक रुचि का निमित्त होकर भी औपशमिक या क्षायिक भाव वाली तत्त्व रुचि का प्रतिवध करता है ।

सम्यक्त्व का घात करने मे असमर्थ मिथ्यात्व के शुद्ध दलिको को सम्यक्त्व मोहनीय कहते है ।

सविपाक निर्जरा—यथाक्रम से परिपाक काल को प्राप्त और अनुभव के लिए उदयावलि के स्रोत मे प्रविष्ट हुए शुभाशुभ कर्मों का फल देकर निवृत्त होना ।

सागरोपम—दस कोडाकोडी पल्योपम का एक सागरोपम होता है ।

सात गौरव—शरीर के स्वास्थ्य, सौन्दर्य आदि का अभिमान करना ।

सातावेदनीय कर्म—जिस कर्म के उदय से आत्मा को इन्द्रिय-विषय सम्बन्धी सुख का अनुभव हो ।

सातिचार छेदोपस्थापनीय संयम—जो किसी कारण से मूल गुणो–महाव्रतो के भग हो जाने पर पुन ग्रहण किया जाता है ।

सादि-अनन्त—जो आदि सहित होकर भी अनन्त हो ।

सादि बंध—वह वध जो रुककर पुन होने लगता है ।

सादिश्रुत—जिस श्रुत ज्ञान की आदि (आरम्भ शुरूआत) हो ।

सादिसान्त—जो वध या उदय बीच मे रुककर पुन. प्रारम्भ होता है और कालान्तर मे पुनः व्युच्छिन्न हो जाता है ।

सादिसस्थान नामकर्म—जिस कर्म के उदय से नाभि से ऊपर के अवयव हीन पतले और नाभि से नीचे के अवयव पूर्ण मोटे हों।

साधारण नामकर्म—जिस कर्म के उदय से अनन्त जीवों का एक शरीर हो अर्थात् अनन्त जीव एक शरीर के स्वामी बनें।

सान्निपातिक भाव—दो या दो से अधिक मिले हुए भाव।

सान्तर स्थिति—प्रथम और द्वितीय स्थिति के बीच में कर्म दलिकों से शून्य अवस्था।

सामायिक—रागद्वेष के अभाव को समभाव कहते हैं और जिस संयम से समभाव की प्राप्ति हो अथवा ज्ञान-दर्शन चारित्र को सम कहते हैं और उनकी आय-लाभ प्राप्ति होने को समाय तथा समाय के भाव को अथवा समाय को सामायिक कहा जाता है।

सासादन सम्यक्त्व—उपशम सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व के अभिमुख हुआ जीव जब तक मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं करता है तब तक के उसके परिणाम विशेष को सासादन सम्यक्त्व कहते हैं।

सासादन सम्यग्दृष्टि—जो औपशमिक सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबंधी कषाय के उदय से सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व की ओर अभिमुख हो रहा है, किन्तु अभी मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं हुआ, उतने समय के लिए वह जीव सासादन सम्यग्दृष्टि कहलाता है।

सासादन गुणस्थान—सासादन सम्यग्दृष्टि जीव के स्वरूप विशेष को कहते हैं।

सितवर्ण नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर शंख जैसा सफेद हो।

सिद्ध पद—जिन ग्रन्थों के सब पद सर्वज्ञोक्त अर्थ का अनुसरण करने वाले होने से सुप्रतिष्ठित है उन ग्रन्थों को, अथवा जीवस्थान गुणस्थानों को सिद्ध पद कहते हैं।

सुभग नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव किसी प्रकार का उपकार न करने पर भी और किसी प्रकार का सम्बन्ध न होने पर भी सभी को प्रिय लगता हो।

सुरभिगन्ध नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव के शरीर में कपूर, कस्तूरी आदि पदार्थों जैसी सुगन्ध हो।

सुस्वर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का स्वर श्रोता को प्रिय लगता है।

सूक्ष्म नामकर्म—जिस कर्म के उदय से परस्पर व्याघात से रहित सूक्ष्म शरीर की प्राप्ति हो। यह शरीर स्वय न किसी से रुकता है और न अन्य किसी को रोकता है।

सूक्ष्म अद्धापल्योपम—सूक्ष्म उद्धार पल्य मे से सौ-सौ वर्ष के बाद केशाग्र का एक-एक खड निकालने पर जितने समय मे वह पल्य खाली हो जाता है उतने समय को सूक्ष्म अद्धापल्योपम कहते हैं।

सूक्ष्म अद्धासागरोपम—दस कोटा-कोटी सूक्ष्म अद्धापल्योपम का एक सूक्ष्म अद्धा-सागरोपम कहलाता है।

सूक्ष्म उद्धार पल्योपम—द्रव्य, क्षेत्र की अपेक्षा असंख्यातगुणी सूक्ष्म अवगाहना वाले केशाग्र खडो से पल्य को ठसाठस भरकर प्रति समय उन केशाग्र खडो मे से एक-एक खड को निकालने पर जितने समय मे वह पल्य खाली हो, उतने समय को सूक्ष्म उद्धार पल्योपम कहते है।

सूक्ष्म उद्धार सागरोपम—दस कोटाकोटी सूक्ष्म उद्धार पल्योपम का एक सूक्ष्म उद्धार सागरोपम होता है।

सूक्ष्मकाल पुद्गल परावर्त—जितने समय मे एक जीव अपने मरण के द्वारा उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के समयो को क्रम से स्पर्श कर लेता है।

सूक्ष्मक्रिया निवृत्ति शुक्लध्यान—जिस शुक्लध्यान मे सर्वज्ञ भगवान द्वारा योग निरोध के क्रम मे अनन्त सूक्ष्म काययोग के आश्रय से अन्य योगो को रोक दिया जाता है।

सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम—बादर क्षेत्र पल्य के बालाग्रो मे से प्रत्येक के असख्यात खड करके पल्य को ठसाठस भर दो। वे खड उस पल्य मे आकाश के जितने प्रदेशो को स्पर्श करे और जिन प्रदेशो को स्पर्श न करें, उनसे प्रति समय एक-एक प्रदेश का अवहरण करते-करते जितने समय मे स्पृष्ट और अस्पृष्ट सभी प्रदेशो का अवहरण किया जाता है, उतने समय को एक सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम कहते है।

सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त—कोई एक जीव ससार मे भ्रमण करते हुए आकाश

क किसी एक प्रदेश म मरण करके पुन उस प्रदेश के समीपवर्ती दूसरे प्रदेश म मरण करता है पुन उसके निकटवर्ती तीसरे प्रदेश म मरण करता है। इस प्रकार अनन्तर अनन्तर प्रदेश म मरण करते हुए जब समस्त लोकाकाश के प्रदेशा म मरण कर लेता है तब उतने समय को सूक्ष्म क्षेत्रपुद्गल परावत कहते हैं।

सूक्ष्मक्षेत्र सागरोपम—दस कोटाकोटी सूक्ष्म क्षेत्र पल्योपम का एक सूक्ष्मक्षेत्र सागरोपम होता है।

सूक्ष्मद्रव्यपुद्गल परावत—जितने समय मे समस्त परमाणुओ को औदारिक आदि साता वगणाओ म स किसी एक वगणा रूप से ग्रहण करके छोड देता है।

सूक्ष्मभावपुद्गल परावत—जितने समय म एक जीव अपने मरण के द्वारा अनुभाग बध के कारणभूत कषायस्थानो को क्रम से स्पश कर लेता है।

सूक्ष्मसपराय गुणस्थान—जिसम सपराय अर्थात् लोभ कषाय के सूक्ष्म खडा का ही उदय हो।

सूक्ष्मसपराय सयम—क्रोधादि कषायो द्वारा ससार म परिभ्रमण होता है अत, उनको सपराय कहते हैं। जिस सयम म सपराय (कषाय का उदय) सूक्ष्म (अतिस्वल्प) रहता है।

सेवार्तसहनन नामकम—जिस कम के उदय से हड्डियो की रचना म मकट बध, वेठन और कीलन न होकर दो ही हड्डियाँ आपस म जुडी हों।

स्तिबुकसक्रम—अनुदयवर्ती कम प्रकृतिया के दलिको को सजातीय और तुल्य स्थितिवाली उदयवर्ती कमप्रकृतिया क रूप म बदलकर उनके दलिका क साथ भोग लेना।

स्तोक—सात श्वासोच्छ्वास काल के समय प्रमाण को स्तोक कहते हैं।

स्त्यानद्धि—जिस कम के उदय स जाग्रत अवस्था म सोचे हुए काय को निद्रा वस्था म करने की सामथ्य प्रकट हो जाए। अथवा जिस निद्रा के उदय स निद्रित अवस्था म विशेष बल प्रगट हो जाए। अथवा जिस निद्रा म दिन म चिन्तित अथ और साधन विषयक आकाक्षा का एकत्रीकरण हो जाय।

स्त्रीवेद—जिस कम क उदय स पुरुष क साथ रमण करने की इच्छा हो।

स्थावर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव स्थिर रहे, सर्दी-गर्मी से बचने का प्रयत्न करने की शक्ति न हो।

स्थितकल्पी—जो आचेलक्य, औद्देशिक, शय्यातर पिंड, राजपिंड, कृतिकर्म, व्रत, ज्येष्ठ, प्रतिक्रमण, मास और पर्यूषण इन दस कल्पो मे स्थित है।

स्थितास्थितकल्पी—जो शय्यातरपिंड, व्रत, ज्येष्ठ और कृति कर्म इन चार कल्पो मे स्थित तथा शेष छह कल्पो मे अस्थित है।

स्थिति—विवक्षित कर्म के आत्मा के साथ लगे रहने का काल।

स्थितिघात—कर्मो की बडी स्थिति को अपवर्तनाकरण द्वारा घटा देने अर्थात् जो कर्म दलिक आगे उदय मे आने वाले है उन्हे अपवर्तनाकरण के द्वारा अपने उदय के नियत समय से हटा देना स्थितिघात है।

स्थितिबंध—जीव के द्वारा ग्रहण किये हुए कर्म पुद्गलो मे अमुक समय तक अपने-अपने स्वभाव का त्याग न कर जीव के साथ रहने की काल मर्यादा का होना।

स्थितिबंध अध्यवसाय—कषाय के उदय से होने वाले जीव के जिन परिणाम विशेषो से स्थितिबध होता है, उन परिणामो को स्थितिबंध अध्यवसाय कहते हैं।

स्थितिस्थान—किसी कर्म प्रकृति की जघन्य स्थिति से लेकर एक-एक समय बढ़ते-बढते उत्कृष्ट स्थिति पर्यन्त स्थिति के भेद।

स्थिर नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव के दांत, हड्डी, ग्रीवा आदि शरीर के अवयव स्थिर हो अपने-अपने स्थान पर रहे।

स्निग्धस्पर्श नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर घी के समान चिकना हो।

स्पर्द्धक—वर्गणाओ के समूह को स्पर्द्धक कहते है।

स्पर्श नामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर का स्पर्श कर्कश, मृदु, स्निग्ध, रूक्ष आदि रूप हो।

स्पर्शन अनुयोगद्वार—विवक्षित धर्म वाले जीवो द्वारा किये जाने वाले क्षेत्र स्पर्श का समुच्चय रूप से निर्देश करना।

स्पर्शनेन्द्रिय व्यंजनावग्रह—स्पर्शनेन्द्रिय के द्वारा होने वाला अत्यन्त अव्यक्त ज्ञान।

(ह)

हाथ—दो वितस्ति के माप को हाथ कहते हैं।

हारिद्रवर्ण नामकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव का शरीर हल्दी जैसा पीला हो।

हास्य मोहनीय—जिस कर्म के उदय से कारणवश अथवा बिना कारण के हँसी आती है।

हीयमान अवधिज्ञान—अपनी उत्पत्ति के समय अधिक विषय वाला होने पर भी परिणामों की अशुद्धि के कारण दिनोंदिन क्रमशः अल्प, अल्पतर, अल्पतम विषयक होने वाला अवधिज्ञान।

हुंडसंस्थान नामकर्म—जिस कर्म के उदय से शरीर के सभी अवयव बेडौल हों, *यथायोग्य प्रमाण युक्त न हों।*

हुहु—चौरासी लाख हुहु-अंग का एक हुहु होता है।

हुहु-अंग—चौरासी लाख अवव की संख्या।

हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा—अपने शरीर के पालन के लिए इष्ट में प्रवृत्ति और अनिष्ट वस्तु से निवृत्ति के लिए उपयोगी सिर्फ वर्तमानकालिक ज्ञान जिससे होता है, वह हेतुवादोपदेशिकी संज्ञा है।

हेतुविपाकी—पुद्गलादि रूप हेतु के आश्रय से जिस प्रकृति का विपाक—फलानुभव होता है।

परिशिष्ट ३

कर्मग्रन्थों की गाथाओं एवं व्याख्या में आगत पिण्डप्रकृति-सूचक शब्दों का कोष

(अ)

अगुरुलघुचतुष्क—अगुरुलघु नाम, उपघातनाम, पराघातनाम, उच्छ्वासनाम।

अघातिचतुष्क—वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र कर्म।

अज्ञानत्रिक—मतिअज्ञान, श्रुतअज्ञान, विभगज्ञान (अवधि-अज्ञान)

अनन्तानुवधी एकत्रिंशत्–(अनन्तानुवधी क्रोध आदि ३१ प्रकृतियाँ) अनन्तानुवधी क्रोध, मान, माया, लोभ, न्यग्रोध परिमडल, सादि, वामन, कुब्ज सस्थान, वज्रऋषभनाराच सहनन, ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका सहनन, अशुभ विहायोगति, नीचगोत्र, स्त्रीवेद, दुर्भग नाम, दु.स्वर नाम, अनादेय नाम, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्द्धि, उद्योत नाम, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु; मनुष्यायु, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर, औदारिक अगोपाग।

अनन्तानुवंधी चतुर्विंशति—(अनन्तानुवधी क्रोध आदि २४ प्रकृतियाँ) अनन्तानुवधी क्रोध, मान, माया, लोभ, न्यग्रोध परिमडल, सादि, वामन, कुब्ज सस्थान, ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका सहनन, अशुभ विहायोगति, नीच गोत्र, स्त्रीवेद, दुर्भग नाम, दु स्वर नाम, अनादेय नाम, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला, स्त्यानर्द्धि, उद्योत नाम, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी।

अनन्तानुवंधीचतुष्क—अनन्तानुवधी, क्रोध मान, माया, लोभ।

अनन्तानुवंधी षड्विंशति—(अनन्तानुवधी क्रोध आदि २६ प्रकृतियाँ) अनन्तानुवधी क्रोध, मान, माया, लोभ, न्यग्रोधपरिमडल, सादि, वामन, कुब्ज संस्थान, ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका सहनन; अशुभ विहायोगति, नीचगोत्र, स्त्रीवेद, दुर्भग नाम, दु स्वर नाम, अनादेय नाम,

निद्रा निद्रा प्रचला प्रचला, स्त्यानर्द्धि, उद्योत नाम, तिर्यचगति, तिर्यचानुपूर्वी, तिर्यचायु मनुष्यायु ।

अनादेयद्विक—अनादेय नाम, अयश कीर्ति नाम ।

अगोपागत्रिक—औदारिक अगोपाग वैक्रिय अगोपाग, आहारक अगोपाग ।

अतरायपचक—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय उपभोगान्तराय, वीर्यान्तराय ।

अतिम सहननत्रिक—अधनाराच, कीलिका सेवात सहनन ।

अप्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध मान, माया लोभ ।

अपर्याप्तषटक—अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असज्ञी पचेन्द्रिय ।

अवधिद्विक—अवधिज्ञान, अवधिदर्शन ।

अस्थिरद्विक—अस्थिर नाम, अशुभ नाम ।

अस्थिरषटक—अस्थिर नाम अशुभ नाम, दुर्भग नाम दुस्वर नाम अनादेय नाम, अयश कीर्ति नाम ।

(आ)

आकृतित्रिक—(१) समचतुरस्र न्यग्रोधपरिमण्डल, सादि, वामन, कुब्ज, हुड सस्थान, (२) वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अधनाराच, कीलिका, सेवात सहनन, (३) एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पचेन्द्रिय जाति ।

आतपद्विक—आतप नाम, उद्योत नाम ।

आयुत्रिक—नरकायु तिर्यचायु, मनुष्यायु ।

आवरण नवक—मति, श्रुत अवधि मन पर्याय, केवल ज्ञानावरण, चक्षु अचक्षु, अवधि, केवल दर्शनावरण ।

आहारकद्विक—आहारक शरीर नाम, आहारक अगोपाग नाम ।

आहारकसप्तक—आहारक शरीर आहारक अगोपाग आहारक सघात, आहारक-आहारक बधन आहारक-तैजस बधन, आहारक-कार्मण बधन, आहारक-तैजस-कार्मण बधन नाम ।

आहारकषटक—आहारक शरीर, आहारक अगोपाग, देवायु, नरकगति नरकानुपूर्वी, नरकायु ।

(उ)

उच्छ्वासचतुष्क—उच्छ्वास, आतप, उद्योत, पराघात नाम ।

उद्योतचतुष्क—उद्योत नाम, तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु ।

उद्योतत्रिक—उद्योत नाम, आतप नाम, पराघात नाम ।

उद्योतद्विक—उद्योत नाम, आतप नाम ।

(ए)

एकेन्द्रियत्रिक—एकेन्द्रिय जाति, स्थावर नाम, आतप नाम ।

(औ)

औदारिकद्विक—औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग नाम ।

औदारिकसप्तक—औदारिक शरीर, औदारिक अंगोपांग, औदारिक संघात औदारिक-औदारिक बंधन, औदारिक-तैजस बंधन, औदारिक कार्मण बंधन, औदारिक-तैजस-कार्मण बंधन नाम ।

(क)

कषायपंचविंशतिः—(कषाय मोहनीय के २५ भेद) अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ; हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद ।

कषायषोडशक—अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ; अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ; संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ।

केवलद्विक—केवलज्ञानावरण, केवलदर्शनावरण ।

(ख)

खगतिद्विक—शुभ विहायोगति नाम, अशुभ विहायोगति नाम ।

(ग)

गंधद्विक—सुरभिगंध नाम, दुरभिगंध नाम ।

गतित्रिक—गति नाम, आनुपूर्वी नाम, आयुकर्म ।

गतिद्विक—गति नाम, आनुपूर्वी नामकर्म ।

गोत्रद्विक—नीचगोत्र, उच्चगोत्र कर्म ।

ज्ञानत्रिक—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान ।

तिर्यंचत्रिक—तिर्यंच गति, तिर्यंचानुपूर्वी, तिर्यंचायु ।
तिर्यंचद्विक—तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी ।
तृतीय कषाय—प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ ।
तैजसकार्मणसप्तक—तैजस शरीर, कार्मण शरीर, तैजस-तैजस बंधन, तैजस-कार्मण बंधन, कार्मण-कार्मण बंधन, तैजस संघातन, कार्मण संघातन ।
तैजसचतुष्क—तैजस, कार्मण, अगुरुलघु, निर्माण नाम ।
त्रसचतुष्क—त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक नाम ।
त्रसत्रिक—त्रस, बादर, पर्याप्त नाम ।
त्रसदशक—त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश कीर्ति नाम ।
त्रसद्विक—त्रस नाम, बादर नाम ।
त्रसनवक—त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय नाम ।
त्रसषट्क—त्रस नाम, बादर नाम, पर्याप्त नाम, प्रत्येक नाम, स्थिर नाम, शुभ नाम ।
त्रसादि बीस—त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर, आदेय, यश.कीर्ति, स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, अयश कीर्ति नाम ।

(द)

दर्शनचतुष्क—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, केवलदर्शन ।
दर्शनत्रिक—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन ।
दर्शनद्विक—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन ।
दर्शनावरणचतुष्क—चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवलदर्शनावरण ।
दर्शनावरणषट्क—चक्षुदर्शनावरण, अचक्षुदर्शनावरण, अवधिदर्शनावरण, केवल-दर्शनावरण, निद्रा, प्रचला ।
दर्शनमोहत्रिक—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मोहनीय ।
दर्शनमोहसप्तक—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्त्व मोहनीय, अनन्तानु-बंधी क्रोध, मान, माया, लोभ ।
दुर्भगचतुष्क—दुर्भग, दु स्वर, अनादेय, अयश.कीर्ति नाम ।

दुर्भगत्रिक—दुर्भग नाम, दुःस्वर नाम, अनादेय नाम।
द्वितीय कषाय—अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान माया, लोभ।
देवत्रिक—देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु।
देवद्विक—देवगति, देवानुपूर्वी।
दो युगल—हास्य रति, शोक अरति।

(न)

नपुंसक चतुष्क—नपुंसक वेद, मिथ्यात्व मोहनीय, हुंडसंस्थान, सेवार्तसंहनन।
नरत्रिक—मनुष्य गति, मनुष्यानुपूर्वी मनुष्यायु।
नरद्विक—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी।
नरकत्रिक—नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु।
नरकद्विक—नरकगति, नरकानुपूर्वी।
नरकद्वादश—नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु सूक्ष्म, साधारण अपर्याप्त, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति, स्थावर नाम, आतप नाम।
नरकनवक—नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु, सूक्ष्म साधारण, अपर्याप्त, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जाति।
नरकषोडश—(नरकगति आदि १६ प्रकृतियाँ) नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, स्थावर नाम सूक्ष्म नाम अपर्याप्त नाम साधारण नाम हुंड संस्थान, सेवार्त संहनन, आतप नाम नपुंसकवेद, मिथ्यात्वमोहनीय।
निद्राद्विक—निद्रा, प्रचला।
निद्रापंचक—निद्रा, निद्रा निद्रा, प्रचला प्रचला प्रचला स्त्यानर्द्धि।
नोकषायनवक—हास्य, रति, अरति, शोक भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद।

(प)

पराघात सप्तक—पराघात, उच्छ्वास, आतप, उद्योत, अगुरुलघु, तीर्थंकर, निर्माण नाम।
प्रत्याख्यानावरणकषायचतुष्क—प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ।
पराघातअष्टक—पराघात, उच्छ्वास आतप, उद्योत अगुरुलघु तीर्थंकर, निर्माण, उपघात नाम।

(ब)

बंधनपंचक—औदारिक शरीर बंधन, वैक्रिय शरीर बंधन, आहारक शरीर बंधन, तैजस शरीर बंधन, कार्मण शरीर बंधन नाम।

बंधकपंचदश—औदारिक-औदारिक बंधन, औदारिक-तैजस बंधन, औदारिक-कार्मण बंधन, औदारिक-तैजस-कार्मण बंधन, वैक्रिय-वैक्रिय बंधन, वैक्रिय-तैजस बंधन, वैक्रिय-कार्मण बंधन, वैक्रिय-तैजस-कार्मण बंधन, आहारक-आहारक बंधन, आहारक-तैजस बंधन, आहारक-कार्मण बंधन, आहारक-तैजस-कार्मण बंधन, तैजस-तैजस बंधन, तैजस-कार्मण बंधन, कार्मण-कार्मण बंधन नाम।

(म)

मध्यमसंस्थानचतुष्क—न्यग्रोधपरिमंडल, सादि, वामन, कुब्ज संस्थान।

मध्यमसंहननचतुष्क—ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका संहनन।

मनुष्यत्रिक—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी मनुष्यायु।

मनुष्यद्विक—मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी।

मिथ्यात्वत्रिक—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र दृष्टि।

मिथ्यात्वद्विक—मिथ्यात्व, सासादन।

(र)

रसपंचक—तिक्तरस, कटुरस, कषायरस, अम्लरस, मधुररस।

(व)

वर्णचतुष्क नाम (वर्ण)—वर्णनाम, गंधनाम, रसनाम, स्पर्शनाम।

वर्णपंचक—कृष्ण वर्ण, नील वर्ण, लोहित वर्ण, हारिद्र वर्ण, श्वेत वर्ण नाम।

वर्णादि बीस—पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध, आठ स्पर्श नामकर्म।

विकलत्रिक—द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति नाम।

विहायोगतिद्विक—शुभ विहायोगति, अशुभ विहायोगति नाम।

वेदत्रिक—स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसकवेद।

वेदनीयद्विक—सातावेदनीय, असातावेदनीय।

वैक्रिय-अष्टक—वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अंगोपांग, देवगति, देवानुपूर्वी, देवायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु।

वैक्रिय-एकादश—देवगति, देवानुपूर्वी, नरकगति, नरकानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर,

वक्रिय अगोपाग, वक्रिय सघात, वक्रिय वक्रिय वधन, वक्रिय तैजस वधन, वक्रिय-कामण वधन, वक्रिय तजस-कामण वधन ।

वक्रियद्विक—वक्रिय शरीर, वक्रिय अगोपाग ।

वक्रियषटक—वक्रिय शरीर, वक्रिय अगोपाग नरकगति, नरकानुपूर्वी, देवगति, देवानुपूर्वी ।

(श)

शरीरपचक—औदारिक शरीर, वक्रिय शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर, कामण शरीर नाम ।

(स)

सघातनपचक—औदारिक सघातन, वक्रिय सघातन, आहारक सघातन, तजस सघातन, कामण सघातन नाम ।

सज्वलनकषायचतुष्क—सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ ।

सज्वलनकषायत्रिक—सज्वलन क्रोध, मान, माया ।

सज्ञीद्विक—सनी पचेन्द्रिय पर्याप्त, सनी पचन्द्रिय अपर्याप्त ।

सस्थानषटक—समचतुरस्र, यग्रोधपरिमडल, सादि, वामन, कुब्ज, हुड सस्थान ।

सहननषटक—वज्रऋषभनाराच, ऋषभनाराच, नाराच, अधनाराच, कीलिका, सेवात सहनन ।

सम्यक्त्वत्रिक—औपशमिक सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व ।

सम्यक्त्वद्विक—क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व ।

सुभगचतुष्क—सुभग नाम, सुस्वर नाम, आदय नाम, यश कीर्ति नाम ।

सुभगत्रिक—सुभग नाम, सुस्वर नाम, आदेय नाम ।

सुरत्रिक—दवगति, देवानुपूर्वी, देवायु ।

सुरद्विक—देवगति, देवानुपूर्वी ।

सूक्ष्मत्रयोदशक—(सूक्ष्म नाम आदि १३ प्रकृतियाँ) सूक्ष्म नाम, साधारण नाम, अपर्याप्त नाम, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, स्थावर नाम, आतप नाम, नपुसकवेद, मिथ्यात्व मोहनीय, हुड सस्थान सेवार्त सहनन ।

सूक्ष्मत्रिक—सूक्ष्म नाम, साधारण नाम, अपर्याप्त नाम ।

सुरैकोनविंशति—(देवगति आदि १९ प्रकृतियां) देवगति, देवानुपूर्वी, वैक्रिय शरीर, वैक्रिय अगोपाग, आहारक शरीर, आहारक अगोपाग, देवायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी, नरकायु, सूक्ष्म नाम, साधारण नाम, अपर्याप्त नाम, एकेन्द्रिय जाति, द्वीन्द्रिय जाति, त्रीन्द्रिय जाति, चतुरिन्द्रिय जाति, स्थावर नाम, आतप नाम ।

स्त्यानर्द्धित्रिक—स्त्यानर्द्धि, निद्रा-निद्रा, प्रचला-प्रचला ।

स्थावरचतुष्क—स्थावर नाम, सूक्ष्म नाम, अपर्याप्त नाम, साधारण नाम ।

स्थावरदशक—स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दु.स्वर, अनादेय, अयश.कीर्ति नाम ।

स्थावरद्विक—स्थावर नाम, सूक्ष्म नाम ।

स्पर्श-अष्टक—कर्कश स्पर्श, मृदु स्पर्श, गुरु स्पर्श, लघु स्पर्श, शीत स्पर्श, उष्ण स्पर्श, स्निग्ध स्पर्श, रूक्ष स्पर्श नाम ।

स्थिरषट्क—स्थिर नाम, शुभ नाम, सुभगनाम, सुस्वर नाम, आदेय नाम, यश कीर्ति नाम ।

(ह)

हास्यषट्क—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा मोहनीय ।

परिशिष्ट ४

सप्ततिका प्रकरण की गाथाओ का अकारादि अनुक्रम

(द)

(न)

(प)

(ब)

(म)

(व)

(स)

परिशिष्ट ५

कमग्रन्थों की व्याख्या मे प्रयुक्त सहायक ग्रन्थो की सूची

अनुयोगद्वारसूत्र—आगमोदय समिति सूरत
अनुयोगद्वारसूत्र टीका (मलधारी हेमचन्द्र सूरि) आगमोदय समिति, सूरत
आचारागसूत्र टीका (शीलाकाचाय)
आचारागसूत्र नियुक्ति (भद्रबाहु स्वामी)
आप्तमीमासा (स्वामि समन्तभद्र) जन सिद्धा त प्रकाशिनी सस्था, कलकत्ता
आवश्यकनियुक्ति (भद्रबाहु स्वामी) आगमोदय समिति, सूरत
आवश्यकनियुक्ति टीका (हरिभद्रसूरि)
आवश्यकनियुक्ति टीका (मलयगिरि) आगमोदय समिति, सूरत
उत्तराध्ययनसूत्र
उत्तराध्ययनसूत्र टीका (शातिसूरि)
उपासकदशाग सूत्र
औपपातिक सूत्र—आगमोदय समिति, सूरत
कमप्रकृति—मुक्ताबाई ज्ञान मन्दिर डभोई
कम प्रकृति चूर्णि—मुक्ताबाई ज्ञान मन्दिर, डभोई
कमप्रकृति टीका (उपाध्याय यशोविजय) मुक्ताबाई ज्ञान मन्दिर डभोई
कमप्रकृति टीका (मलयगिरि) मुक्ताबाई ज्ञान मन्दिर डभोई
कषायपाहुड (गुणधर आचाय)
कषायपाहुड चूर्णि (स्थविर यतिवृषभ)
काललोकप्रकाश—देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार सस्था सूरत
क्षपणासार (नमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती) भारतीय जन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्था, कलकत्ता
गोम्मटसार कमकाण्ड (नमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती) रायचन्द जन ग्रन्थमाला बम्बई
गोम्मटसार जीवकाण्ड (नमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती) रायचन्द जन ग्रन्थमाला, बम्बई

जयधवला (वीरसेन आचार्य)
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति—सस्कृत टीका
जीवाभिगमसूत्र
जीवस्थानचूलिका—स्थान समुत्कीर्तन—जैन साहित्योद्धारक फंड, अमरावती
ज्योतिपकरण्डक—श्री ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वे० सस्था, रतलाम
ज्ञानविन्दु (उपाध्याय यशोविजय)
तत्त्वार्थसूत्र (उमास्वाति)
तत्त्वार्थ राजवार्तिक (अकलकदेव) श्री जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्था, कलकत्ता
तत्त्वार्थाधिगमभाष्य (उमास्वाति)
त्रिलोकसार (नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती) श्री माणिकचन्द दि० जैन ग्रन्थमाला, वम्बई
द्रव्यलोकप्रकाश—देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार सस्था, सूरत
द्रव्यसग्रह (नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती)
धवला उदयाधिकार (वीरसेन आचार्य)
धवला उदीरणाधिकार (वीरसेन आचार्य)
नन्दीसूत्र (देवर्धिगणि क्षमाश्रमण)
नन्दीसूत्र टीका (मलयगिरि)
नवीन प्रथम कर्मग्रन्थ स्वोपज्ञ टीका (देवेन्द्रसूरि) श्री आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
नवीन द्वितीय कर्मग्रन्थ स्वोपज्ञ टीका (देवेन्द्रसूरि) श्री आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
नवीन तृतीय कर्मग्रन्थ अवचूरिका टीका (देवेन्द्रसूरि) श्री आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
नवीन चतुर्थ कर्मग्रन्थ स्वोपज्ञ टीका (देवेन्द्रसूरि) श्री आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
नवीन पचम कर्मग्रन्थ स्वोपज्ञ टीका (देवेन्द्रसूरि) श्री आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
नवीन कर्मग्रन्थो के टवा (जयसोमसूरि, जीवविजय)

नवीन कर्मग्रन्थ के गुजराती अनुवाद—जैन श्रेयस्कर मंडल, महेसाना
नियमसार (कुन्दकुन्दाचार्य)
न्यायदर्शन (गौतम ऋषि)
पंचसंग्रह (चन्द्रर्षि महत्तर) श्वेताम्बर संस्था, रतलाम
पंचसंग्रह (अमितगति) श्री माणिकचन्द दि० जैन ग्रन्थमाला, बम्बई
पंचसंग्रह टीका (मलयगिरि) मुक्ताबाई ज्ञान मन्दिर, डभोई
पंचसंग्रहप्राकृत
पंचसंग्रह सप्ततिका—मुक्ताबाई ज्ञान मन्दिर, डभोई
पंचास्तिकाय (कुन्दकुन्दाचार्य) रायचन्द जैन शास्त्रमाला, बम्बई
पंचाशक (हरिभद्रसूरि) श्वेताम्बर संस्था, रतलाम
पातंजल योगदर्शन (पतंजलि)
प्रकरण रत्नाकर—भीमसी माणक बम्बई
प्रशमरति प्रकरण (उमास्वाति)
प्रवचनसार टीका (अमृतचन्द्राचार्य) रायचन्द जैन शास्त्रमाला, बम्बई
प्रवचनसारोद्धार—देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार संस्था, सूरत
प्रवचनसारोद्धार टीका—देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार संस्था, सूरत
प्रशस्तपादभाष्य
प्रमेयकमलमार्तण्ड (प्रभाचन्द्राचार्य) निर्णयसागर प्रेस, बम्बई
प्रज्ञापनासूत्र
प्रज्ञापनासूत्र चूर्णि
प्रज्ञापनासूत्र टीका (मलयगिरि)
प्राचीन चतुर्थ कर्मग्रन्थ (जिनवल्लभगणि)
प्राचीन चतुर्थ कर्मग्रन्थ भाष्य
प्राचीन चतुर्थ कर्मग्रन्थ टीका (मलयगिरि)
प्राचीन चतुर्थ कर्मग्रन्थ टीका (हरिभद्रसूरि)
प्राचीन बंध स्वामित्व
प्राचीन प्रथम कर्मग्रन्थ बृहच्चूर्णि
भगवती आराधना
भगवतीसूत्र

भगवतीसूत्र टीका (अभयदेव सूरि)
महाभारत (वेदव्यास)
मोक्षमार्ग प्रकाश—अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला, बम्बई
योगदर्शन भाष्य टीका आदि सहित
योगवासिष्ठ
लब्धिसार (नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती) भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्था, कलकत्ता
लोकप्रकाश—देवचन्द लालभाई पुस्तकोद्धार सस्था, सूरत
विशेषावश्यक भाष्य (जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण)
विशेषावश्यकभाष्य टीका (कोट्याचार्य) श्वेताम्बर सस्था, रतलाम
विशेषावश्यकभाष्य टीका (मलधारी हेमचन्द्र)
विशेषावश्यकभाष्य बृहद्वृत्ति—यशोविजय ग्रन्थमाला, काशी
विशेषणवती (जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण) श्वेताम्बर सस्था, रतलाम
बृहत्कर्मस्तवभाष्य
बृहत्सग्रहणी (जिनभद्रगणिक्षमाश्रमण)
बृहत्सग्रहणी टीका (मलयगिरि)
वैशेषिक दर्शन (कणाद)
षट्पाहुड (कुन्दकुन्दाचार्य)
सग्रहणीसूत्र (चन्दसूरि)
सप्ततिकाचूर्णि
सप्ततिकाप्रकरण टीका (मलयगिरि) श्री आत्मानन्द जैन सभा, भावनगर
सन्मतितर्क (सिद्धसेन दिवाकर)
सर्वार्थसिद्धि (पूज्यपादाचार्य)
साख्यकारिका
साख्यदर्शन (कपिल ऋषि)
सूत्रकृतागसूत्र टीका (शीलाकाचार्य)
सूत्रकृताग निर्युक्ति (भद्रबाहु स्वामी)
स्वामी कीर्तिकेयानुप्रेक्षा (आचार्य कार्तिकेय) भारतीय जैन सिद्धान्त प्रकाशिनी सस्था, कलकत्ता

श्रीमरुधरकेसरी साहित्य प्रकाशन समिति,

(प्रवचन प्रकाशन विभाग)

सदस्यो की शुभ नामावली

विशिष्ट सदस्य

१ श्री घीसुलाल जी मोहनलाल जी सठिया मसूर
२ श्री वच्छराज जी जोधराज जी सुराणा, मला, (सोजत सिटी)
३ श्री रखचन्द जी साहब राका, मद्रास (वगडी नगर)
४ श्री बलवतराज जी खाटेड, मद्रास (वगडी-नगर)
५ श्री नेमीचन्द जी वाँठिया, मद्रास (वगडी-नगर)
६ श्री मिश्रीलाल जी लूकड, मद्रास (वगडी-नगर)
७ श्री माणकचन्द जी बाग्रेला मद्रास (वगडी-नगर)
८ श्री रतनलाल जी कवलचन्द जी कोठारी मद्रास (निम्बोल)
९ श्री अनोपचन्द जी किशनलाल जी बोहरा, अटपडा
१० श्री गणेशमल जी खावसरा, मद्रास (पूजलू)
११ शा० रतनलाल जी पारसमल जी चतर, चतर एण्ड कम्पनी ब्यावर
१२ शा० बस्तीमल जी बोहरा C/o सिरेमल जी घुलाजी
गाणा की गली उदयपुरिया बाजार, पाली
१३ शा० आलमचद जी मदनलाल जी राका सिकन्द्राबाद, (रायपुर)
१४ शा० धूलचन्द जी अभयराज जी बाफदिया, कुलन्दा (मारवाड)
१५ शा० चम्पालाल जी कन्हैयालाल जी छलाणी मद्रानकम, मद्रास
१६ शा० कालूराम जी हस्तीमल जी मुथा, रायचूर

प्रथम श्रेणी

१ म० वी सी ओसवाल जवाहर रोड, रत्नागिरी (सिरियारी)
२ शा० इन्द्रसिंह जी मुनोत जालोरी गेट जोधपुर
३ शा० नादूराम जी छाजेड, ब्यावर (राजस्थान)

४ शा० चम्पालाल जी डूगरवाल, नगरथपेठ, वेगलोर सिटी (करमावास)
५ शा० कामदार प्रेमराज जी, जुमामस्जिद रोड, वेगलोर सिटी (चावडिया)
६ शा० चादमल जी मानमल जी पोकरना, पेरम्बूर मद्रास, ११ (चावंडिया)
७ जे० वस्तीमल जी जैन, जयनगर, वेगलोर ११ (पूजलू)
८ शा० पुखराज जी सीसोदिया, व्यावर
९ शा० वालचद जी रूपचद जी वाफना,
११८/१२० जवेरी वाजार वम्वई–२ (सादडी निवासी)
१० शा० वालावगस जी चपालाल जी वोहरा, राणीवाल
११ शा० केवलचद जी सोहनलाल जी वोहरा राणीवाल
१२ शा० अमोलकचद जी धर्मीचद जी आच्छा, वडाकाचीपुरम्, मद्रास (सोजत रोड)
१३ शा० भूरमल जी मीठालाल जी वाफना, तिरकोयलूर, मद्रास (आगेवा)
१४ शा० पारसमल जी कावेडिया, आरकाट, मद्रास (सादडी)
१५ शा० पुखराज जी अनराज जी कटारिया, आरकोनम्, मद्रास (सेवाज)
१६ शा० सिमरतमल जी सखलेचा, मद्रास (वीजाजी का गुडा)
१७ शा० प्रेमसुख जी मोतीलाल जी नाहर, मद्रास (कालू)
१८ शा० गूदडमल जी शातिलाल जी तलेसरा, एनावरम्, मद्रास
१९ शा० चपालाल जी नेमीचद, जवलपुर, (जैतारण)
२० शा० रतनलाल जी पारसमल जी चतर, व्यावर
२१ शा० सम्पतराज जी कन्हैयालाल जी मूथा, कूपल (मारवाड-मादलिया)
२२ शा० हीराचद जी लालचद जी धोका, नक्शावाजार, मद्रास
२३ शा० नेमीचद जी धर्मीचद जी आच्छा, चगलपेट, मद्रास
२४ शा० एच० घीसुलाल जी, पोकरना, एण्ड सन्स, आरकाट—N.A.D.T. (वगडी-नगर)
२५ शा० घीसुलाल जी पारसमल जी सिंघवी, चागलपेट, मद्रास
२६ शा० अमोलकचद जी भवरलाल जी विनायकिया, नक्शावाजार, मद्रास
२७ शा० पी० वीजराज नेमीचद जी धारीवाल, तीरुवेलूर
२८ शा० रूपचद जी माणकचद जी वोरा, वुशी
२९ शा० जेठमल जी राणमल जी सर्राफ, वुशी
३० शा० पारसमल जी सोहनलाल जी सुराणा कुभकोणम्, मद्रास

५५ शा० मिश्रीलाल जी उत्तमचन्द जी ४२४/३ चीकपेट-बैंगलोर २ A

५६ शा० एच० एम० काकरिया २६६, O P H. रोड, बैंगलोर १

५७ शा० सन्तोषचद जी प्रेमराज जी सुराणा मु० पो० मनमाड जि० नासिक (महाराष्ट्र)

५८ शा० जुगराज जी जवाहरलाल जी नाहर, नेहरू बाजार नं० १६ श्रीनिवास अयर स्ट्रीट, मद्रास १

५९ मदनलाल जी राका (वकील), व्यावर

६० पारसमल जी राका C/o वकील भवरलाल जी राका, व्यावर

६१ शा० धनराज जी पन्नालाल जी जागडा नयामोडा, जालना (महाराष्ट्र)

६२ शा० एम० जवाहरलाल जी बोहरा ६६ स्वामी पण्डारम् स्ट्रीट, चीन्ताधर-पेट, मद्रास २

६३ शा० नेमीचद जी आनन्दकुमार जी राका C/o जोहरीलाल जी नेमीचंद जी जैन, बापूजी रोड, सलूरपेठ (A P)

६४ शा० जुगराज जी पारसमल जी छोदरी, २५ नारायण नायकन स्ट्रीट, पुडुपेट मद्रास २

६५ चैनराज जी सुराणा गाधी बाजार, शिमोगा (कर्नाटक)

६६ पी० बस्तीमल जी मोहनलाल जी बोहरा (जाडण), राबर्टसन पेठ (K G F)

६७ सरदारमल जी उमरावमल जी सचेती, सरदारपुरा (जोधपुर)

६८ चपाराम जी मीठालाल जी सकलेचा, जालना (महाराष्ट्र)

६९ पुखराज जी ज्ञानचद जी मुणोत, मद्रास

७० सपतराज जी प्यारेलाल जी जैन, मद्रास

७१ चंपालाल जी उत्तमचद जी गाधी जवाली, मद्रास

७२ पुखराज जी किशनलाल जी तातेड, सिकन्दराबाद (रायपुर वाले)

७३ श्रीमान् शा० चेनराजी सुराना वर्धमान क्लोथ स्टोर, गाधी बाजार, सीमोगा (कर्नाटक)

७४ शा० बस्तीमल जी मोहनलाल जी बोहरा जाडण No 1, क्रासरोड राबर्टसन पेट (K G F)

७५ श्रीमान् शा० सरदारमल जी उमरावमल जी सचेती, सरदारपुरा, जोधपुर

७६ शा० चपालाल जी मीठालाल जी सञ्चेचा (बलूदा) ट्रासपोट प्रा० लि० जालना, महाराष्ट्र
७७ शा० पुखराज जी नानचद जी मुथा C/o F पुखराज जन No 168 वेलाचरी रोड ताम्बरम, मद्रास 59
७८ शा० सपतराज जी प्यारेलाल जी जन No 3 वासुस्वामी स्ट्रीट नगनतुर, मद्रास 61
७६ शा० C चपालाल जी उत्तमचन्द जी गाधी (जवाली) ज्वेलरी मर्चेन्ट No C 114 T H रोड, मद्रास
८० शा० पुखराज जी किशनलाल जी तातेड पोट मार्केट सिकन्द्राबाद A P
८१ शा० लालचन्द जी भवरलाल जी सचेती जुरोवावास पाली, (राजस्थान)
८२ शा० जी० सुवालाल जी महावीरचद जी करणावट, जमनगर (वेन्दि द)
८३ शा० सुगराजी चान्मल जी गुगलीया, जमनगर (वेन्दि द)
८४ श्रीमान शा० मुगनचद जी गणेशमल जी भडारी (निम्बाज) वेंगलोर
८५ श्री डी० रतनलाल जी करणावट त्वरापावम, मद्रास
८६ श्री जबरीलाल जी पारसमल जी नाहिया मु० पाली (राजस्थान)
८७ श्री चुन्नीलाल जी कन्हैयालाल जी दुधेरिया भुवानगिरि, मद्रास

द्वितीय श्रेणी

१ श्री लालचद जी श्री श्रीमाल ब्यावर
२ श्री सूरजमल जी इन्दरचन्द जी मकनेचा, जोधपुर
३ श्री मुन्नालाल जी प्रकाशचद जी नम्बरिया चौधरी चौक, कटक
४ श्री घेवरचद जी रातडिया, गवटमनपेठ
५ श्री वगतावरमल जी अनलचद जी सीनमरा ताम्बरम्, मद्रास
६ श्री छोगमल जी सायबचन्द जी सीवसरा, वीपारी
७ श्री गणेशमल जी मदनलाल जी भडारी, नीमली
८ श्री माणकचद जी गुलछा, ब्यावर
६ श्री पुखराज जी बाहरा राणीवाल वाला हाल मुकाम-पीपलिया कलाँ
१० श्री धर्मीचद जी बाहरा जुगवाला हाल मुकाम-पीपलिया कलाँ
११ श्री रायमल जी मोहनलाल जी लूणिया, चडावल
१२ श्री पारसमल जी चान्नीलाल जी ललवाणी, बिनाडा

१३ श्री जुगराज जी मुणोत, मारवाड जंक्शन
१४ श्री रतनचंद जी शान्तीलाल जी मेहता, मादडी (मारवाड़)
१५ श्री मोहनलाल जी पारसमल जी भंडारी, बिलाडा
१६ श्री चंपालाल जी नेमीचंद जी कटारिया, बिलाडा
१७ श्री गुलाबचंद जी गंभीरमल जी मेहता, गोलवड
[तालुका डेणु—जिला थाणा (महाराष्ट्र)]
१८ श्री भंवरलाल जी गौतमचंद जी पगारिया, कुशालपुरा
१९ श्री चनणमल जी भीकमचंद जी रांका, कुशालपुरा
२० श्री मोहनलाल जी भंवरलाल जी बोहरा, कुशालपुरा
२१ श्री संतोकचंद जी जवरीलाल जी जामड,
१४६ बाजार रोड, मदरान्तकम्
२२ श्री कन्हैयालाल जी गादिया, आरकोणम्
२३ श्री धरमीचंद जी ज्ञानचंद जी मूथा, बगडानगर
२४ श्री मिश्रीमल श्री नगराज जी गोठी, बिलाड़ा
२५ श्री दुलराज इन्दरचंद जी कोठारी
११४ तैयप्पा मुदली स्ट्रीट, मद्रास-१
२६ श्री गुमानलाल जी मांगीलाल जी चौरडिया चिन्ताद्री पेठ मद्रास-१
२७ श्री सायरचंद जी चौरडिया, ६० एलीफेन्ट गेट मद्रास-१
२८ श्री जीवराज जी जवरचंद जी चौरडिया, मेड़तासिटी
२९ श्री हजारीमल जी निहालचंद जी गादिया १६२ कोयम्बतूर, मद्रास
३० श्री केसरीमल जी झूमरलाल जी तलेसरा, पाली
३१ श्री धनराज जी हस्तीमल जी आच्छा, मु० कावेरी पाक
३२ श्री मोहनराज जी शान्तिप्रकाश जी सचेती, जोधपुर
३३ श्री चंपालाल जी भंवरलाल जी सुराना, कालाऊना
३४ श्री मांगीलाल जी शंकरलाल जी भसाली,
२७ लक्ष्मीअमन कोयल स्ट्रीट, पैरम्बूर मद्रास-१२
३५ श्री हेमराज जी शान्तिलाल जी सिंघी,
११ बाजार रोड, राय पेठ मद्रास-१४
३६ शा० अम्बूलाल जी प्रेमराज जी जैन, गुडियातम
३७ शा० रामसिंह जी चौधरी, ब्यावर

३८ शा० प्रतापमल जी मगराज जी मलवर—केसरीसिंह जी का गुडा
३९ शा० सपतराज जी चोरडिया, मद्रास
४० शा० पारसमल जी कोठारी, मद्रास
४१ शा० मीवमचन्द जी चोरडिया, मद्रास
४२ शा० शान्तिलाल जी कोठारी, उतशेट
४३ शा० जब्बरचद जी गोरलचद जी काठारी, ब्यावर
४४ शा० जवरीलाल जी धरमीचद जी गादिया, लाविया
४५ श्री मेंममन जी बारीवाल, बगडीनगर (राज०)
४६ ज० नौरतमल जी बाहरा १०१८ के० टी० स्ट्रीट, मसूर १
४७ उदयचद जी नौरतमल जी मूथा
C/o हजारीमल जी तिग्धीलाल जी मूथा मवाडी बाजार ब्यावर
४८ हस्तामल जा तारन्वीचद जी नाहर, पो० कौमाना (जोधपुर)
४९ श्री आर० पारसमल जी गुणावत ४१-बाजार रोड, मद्रास
५० श्री मोहनलाल जी मीठालाल जी, बम्बई २
५१ श्री पारसमल जी मोहनलाल जी पोरवाल, बेंगलोर
५२ श्री मीठालाल जी ताराचद जा छाजड मद्रास
५३ श्री अनराज जी शान्तिलाल जा तिलायकिया, मद्रास ११
५४ श्री पारसमल जी लालचन्द जी ललवाणी, मद्रास १४
५५ श्री लालचन्द जी तजराज जी ललवाणी, त्रिवयालूर
५६ श्री गुमनराज जी गौतमचद जी जन, तमिलनाडु
५७ श्री के० मागालाल जा काठारी मद्रास १६
५८ श्री एम० जवरीलाल जी जैन मद्रास ५२
५९ श्री मगरीमल जी जुगराज जी सिंघवी वगलूर २
६० श्री गुनराज जी शान्तिलाल जी मागना, तीरुवल्लुर
६१ श्री पुखराज जी जुगराज जा कोठारी, मु० पा० चावडिया
६२ श्री नवरतमल जी ताराचद जी ललवाणी, मद्रास
६३ श्री रूपचद जी बापना चदावल
६४ श्री पुखराज जी दिलचन्द जी रांका, मद्रास
६५ श्री मागमल जी प्रकाशचद जी चोरडिया, पीचियाव
६६ श्री मीनमल जी घामामल जी नूगिया, पीचियाव

६७ श्री जँवतराज जी मुगमचन्द जी वाफणा, वेंगलोर (कुशालपुरा)
६८ श्री घेवरचद जी मानीराम जी चाणोदिया, मु० ज्नाली
६९ शा० नेमीचद जी कोठारी न० १२ रामानुजम अयर स्ट्रीट मद्रास-१
७० शा० मागीलाल जी मोहनलाल जी रातडीआ C/o नरेन्द्र एयर्टरी कम स्टोर, चीकपेट, वेगलोर-४
७१ शा० जवरीलाल जी सुराणा अलन्दूर, मद्रास १६
७२ शा० लुमचद जी मगलचद जी तालेडा अशोका रोड, मैसूर
७३ शा० हमराजजी जसवतराजजी सुराणा मु० पो० मोजतसिटी
७४ शा० हरकचदजी नेमीचदजी मनसाली मु० पो० घोटी जि० ईगतपुरी (नासिक, महाराष्ट्र)
७५ शा० समीरमलजी टोडरमलजी छोदरी फलो का वास मु० पो० जालोर
७६ शा० वी० सजनराजजी पीपाडा मार्कीट कुनुर जि० नीलगिरी (मद्रास)
७७ शा० चम्पालालजी कान्तीलालजी अन्ड० कुन्टे न० ४५८९७७/१४१ भवानी शकर रोड, वीमावा विल्डिग, दादर, वोम्बे न० २८
७८ शा० मिश्रीमलजी वीजेराजजी नाहर मु० पो० वायद जि० पाली (राज०)
७९ शा० किसोरचदजी चादमलजी सोलकी C/o K C Jain 14 M C Lain II Floor 29 Cross Kilai Road, Banglore 53
८० शा० निरमलकुमारजी मागीलालजी खीवसरा ७२, धनजी स्ट्रीट पारसी गली, गनपत भवन, वम्बई ३
८१ श्रीमती सोरमवाई, धर्मपत्नी पुकराजजी मुनोत मु० पो० राणावास
८२ शा० एच० पुकराजजी जैन (वोपारी) मु० पो० खरतावाद, हैदरावाद ५००००४
८३ शा० मुगालचदजी उत्तमचंदजी कटारीया रेडीलस, मद्रास ५२
८४ शा० जवरीलालजी लुकड (कोटडी) C/o धमडीराम सोहनराज एण्ड क० ४८६/२ रेवडी वाजार अहमदावाद-२
८५ शा० गौतमचदजी नाहटा (पीपलिया) न० ८, वाद्दु पलीयार कोयल स्ट्रीट, साहुकार पेट, मद्रास १
८६ शा० नथमलजी जवरीलालजी जैन (पटारीक्रमावस) वस स्टेण्ड रोड यहलका वेंगलोर (नार्थ)

८७ शा० मदनलालजी छाजेड मोती ट्रेडस १५७ ओपनकारा स्ट्रीट, कोयम्बतूर (मद्रास)
८८ शा० सीमरथमलजी पारसमलजी कातरेला जूना जलखाना के सामने सिकन्दराबाद (A P)
८९ शा० एम० पुकराजजी एण्ड कम्पनी ग्रास बाजार दूकान न० ६, कुनूर (नीलगिरी)
९० शा० चम्पालालजी मूलचन्दजी नागोनरा सोलकी मु० पोस्ट—राणा वायापाली (राजस्थान)
९१ शा० वस्तीमलजी सम्पतराजजी खारीवाल (पाली)
C/o लक्ष्मी इलक्ट्रीकल्स न० ९५ नेताजी सुभाषचन्द्र रोड, मद्रास १
९२ माणकचदजी ललवानी (मडतासिटी) मद्रास
९३ मागीलालजी टीपरावत (टाकरवास) मद्रास
९४ सायरचन्दजी गाधी पाली (मारवाट)
९५ मागीलालजी लुणावत, उदयपुर (राज०)
९६ सरदारचन्दजी अजितचन्दजी मडारी, त्रिपोलीया बाजार (जोधपुर)
९७ मुगालचदजी अनराजजी मूथा मद्रास
९८ लालचदजी सपतराजजी कोठारी, बेंगलोर
९९ माणकचन्दजी महेन्द्रकुमारजी ओस्तवाल, बेंगलोर
१०० वक्तावरमलजी अनराजजी छलाणी (जनारण) राबटसन पेट K G F
१०१ शा० माणकचदजी ललवाणी मेडतासिटी (मद्रास)
१०२ शा० मागीलालजी टपरावत ठाकरवास (मद्रास)
१०३ शा० सायरचदजी गाधी पाली (मारवाड)
१०४ शा० मागीलालजी लूणावत उदयपुर (मारवाड)
१०५ शा० महारी सरदारचदजी अजीतचदजी, जोधपुर
१०६ शा० सुगालचदजी अनराजी मूथा मद्रास, (परमपुर)
१०७ शा० लालचदजी सपतराजजी कोठारी बेंगलोर
१०८ माणकचदजी महेन्द्रकुमार ओस्तवाल बेंगलोर
१०९ B अनराजजीछलाणी, राबटसन पेट K G F
११० शा० मदनलालजी रीखबचन्दजी चोरडीया भेरुन्दा
१११ शा० घनराजी महावीरचदजी लूणावत बेंगलोर

११२ शा० बुधराजी रूपचदजी आमड मेडतामीटी
११३ शा० भवरलालजी सीवराजी मेहता पाली, मारवाड
११४ शा० माणकचदजी लाभचदजी गुलेछा, पाली
११५ शा० धीमुलालजी सम्पतराजजी चोपडा, पाली
११६ शा० उदयराजजी पारसमलजी तिलसरा, पाली
११७ शा० जमराजी धनराजी घारोनीया, पाली
११८ शा० धनराजी भीकमचदजी पगारीया, पाली
११९ शा० फुलचदजी महावीरचदजी वोरुन्दीया जमनगर, केकिन्द
१२० शा० चतुरभुजो सम्पतराजी गादीया जमनगर, केकिन्द (मदुरीन्तरम)
१२१ शा० सेममलजी महावीरचदजी सेठीया वेंगलोर
१२२ सेममलजी सीरेमलजी वोहरा पीमागन (सीरकाली)
१२३ श्रीमान मोतीलालजी वोरुन्दिया, मदुरान्तकम् मद्रास
१२४ श्रीमान शुकलचदजी मुन्नालालजी लोढा, पाली (राज०)
१२५ श्रीमान सूरजकरणजी माणकचदजी आंचलिया, जसनगर (राज०)
१२६ श्रीमान घीमूलालजी धर्मीचदजी गादिया, हैद्रावाद
१२७ श्रीमान वी० रामचद्रजी वस्तीमलजी पटवा, पुदुपेट, मद्रास

तृतीय श्रेणी

१ श्री नेमीचद जी कर्णावट, जोधपुर
२ श्री गजराज जी भडारी, जोधपुर
३ श्री मोतीलाल जी सोहनलाल जी वोहरा, व्यावर
४ श्री लालचद जी मोहनलाल जी कोठारी, गोठन
५ श्री सुमरेमल जी गाधी, मिरियारी
६ श्री जवरचद जी वम्ब, सिन्धनूर
७ श्री मोहनलाल जी चतर, व्यावर
८ श्री जुगराज जी भवरलाल जी राका, व्यावर
९ श्री पारसमल जी जवरीलाल जी धोका, सोजत
१० श्री छगनमल जी वस्तीमल जी वोहरा, व्यावर
११ श्री चनणमलजी थानमल जी खीवसरा, मु० वोपारा
१२ श्री पन्नालाल जी भवरलाल जी ललवाणी, विलाड़ा

४३ शा० मिट्ठालाल जी कातरेला, बगटीनगर
४४ शा० पारसमल जी लक्ष्मीचद जी काठेड, ब्यावर
४५ शा० धनराज जी महावीरचद जी खीवसरा, बंगलोर-३०
४६ शा० पी० एम० चौरडिया, मद्रास
४७ शा० अमरचद जी नेमीचद जी पारसमल जी नागोरी, मद्रास
४८ शा० वनेचद जी हीराचद जी जैन, मोजतरोड (पाली)
४९ शा० झूमरमल जी मागीलाल जी गूदेचा, मोजतरोड (पाली)
५० श्री जयतीलाल जी सागरमल जी पुनमिया, मादडी
५१ श्री गजराज जी भडारी एडवोकेट, वाली
५२ श्री मागीलाल जी रैड, जोधपुर
५३ श्री ताराचद जी वम्ब, ब्यावर
५४ श्री फतेहचद जी कावडिया, ब्यावर
५५ श्री गुलावचद जी चौरडिया, विजयनगर
५६ श्री मिघराज जी नाहर, ब्यावर
५७ श्री गिरधारीलाल जी कटारिया, सहवाज
५८ श्री मीठालाल जी पवनकवर जी कटारिया, सहवाज
५९ श्री मदनलाल जी सुरेन्द्रराज जी ललवाणी, विलाडा
६० श्री विनोदीलाल जी महावीरचद जी मकाणा, ब्यावर
६१ श्री जुगराज जी सम्पतराज जी वोहरा, मद्रास
६२ श्री जीवनमल जी पारसमल जी रेड, तिरुपति (आ० प्रदेश)
६३ श्री वकतावरमल जी दानमल जी पूनमिया, सादडी (मारवाड)
६४ श्री मैं० चन्दनमल पगारिया, औरगावाद
६५ श्री जसवतराज जी सज्जनराज जी दुगड, कुरडाया
६६ श्री वी० भवरलाल जैन, मद्रास (पाटवा)
६७ श्री पुखराज जी कन्हैयालाल जी मूथा, वेडकला
६८ श्री आर० प्रसन्नचद चोरडिया, मद्रास
६९ श्री मिश्रीलाल जी सज्जनलाल जी कटारिया, सिकन्द्रावाद
७० श्री सुकनचद जी चादमल जी कटारिया, इलकल
७१ श्री पारसमल जी कातीलाल जी वोरा, इलकल
७२ श्री मोहनलाल जी भंवरलाल जी जैन (पाली) बैंगलूर

७३ शा० जी० एम० मङ्गलचद जी जन (सोजतसिटी)
C/o मङ्गल टेक्सटाईल्स २६/७८ फस्ट फ्लोर मूलचद मारकेट
गोडाउन स्ट्रीट मद्रास १

७४ श्रीमती रतनक्वर बाई धमपत्नी शातीलालजी कटारिया C/o पृथ्वीराजजी
प्रकाशचद जी फतेपुरिया की पोल मु० पो० पाली (राज०)

७५ शा० मगराज जी रूपचद खीवसरा C/o रूपचद विमलकुमार
पो० पेरमपालम, जिला चगलपेट

७६ शा० माणकचद जी भवरीलाल जी पगारिया C/o नेमीचद मोहनलाल जन
१७ बिन्नी मिल रोड बेंगलोर ५३

७७ शा० ताराचद जी जवरीलाल जी जन कदोई बाजार, जोधपुर (महामदिर)

७८ शा० इन्दरमलजी भण्डारी—मु० पो० नीमाज

७९ शा० भीकमचन्द जी पारख्णा १९ गोडाउन स्ट्रीट, मद्रास १

८० शा० चम्पालाल जी रतनचदजी जन (सेवाज)
C/o सी० रतनचद जन—४०३/७ बाजार रोड रेडीलस मद्रास ५२

८१ शा० मगराज जी माधोलाल जी कोठारी मु० पो० बोरून्दा वाया पीपाड
सिटी (राज०)

८२ शा० जुगराज जी चम्पालाल जी नाहर C/o चदन इलैक्ट्रीकल ६६५
चीकपेट, बेंगलोर ५३

८३ शा० नथमल जी पुखराज जी मीठालाल जी नाहर C/o हीराचद नथमल
जैन No ८६ मनरोड मुनीरडी पालीयम बेंगलोर ६

८४ शा० एच० मोतीलाल जी शातीलाल जी समदरिया सामराज पेट न०
६८/७ क्रोस रोड, बगलोर १८

८५ शा० मगलचद जी नेमीचदजी वोहरा C/o मानीराम गणेसमल एण्ड सन्स
Ho ५६ सलाम पालीयम बेंगलोर २

८६ शा० धनराज जी चम्पालाल जी समदरिया जी० १२९ मीलरोड
बेंगलोर ५३

८७ शा० मिश्रीलाल जी पूनमचन्द जी दरला C/o मदनलाल मोतीलाल जैन,
सीवरामपेट, मैसूर

८८ शा० चम्पालाल जी दीपचदजी सीगी (सीरीयारी) C/o दीपक स्टोर
हैदरगुडा ३/६/२९४/२/३ हैदराबाद (A P)
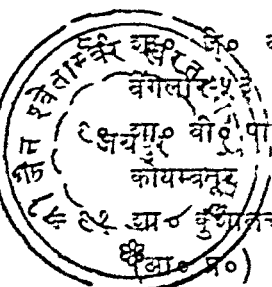
८९ शा० जे० बीजेराज जी कोठारी C/o कीचयालेन काटन पेट, बेंगलोर-५३

९० शा० बी० पोरसमल जी सोलंकी C/o श्री विनोद ट्रेडर्स राजास्ट्रीट कोयम्बतूर

९१ शा० कुशलचंद जी रीखबचंद जी सुराणा ७२६ सदर बाजार, बोलारम (आ० प्र०)

९२ शा० प्रेमराज जी मीकमचंद जी खीवसरा मु० पो० बोपारी वाया, राणावास

९३ शा० पारसमल जी टक (मारू) C/o नाथवचंद जी पारसमल जैन म० न० १२/५/१४८ मु० पो० लालागुड़ा सिकन्द्राबाद (A. P)

९४ शा० सोमाचंद जी प्रकाशचंद जी गुगलीया C/o जुगराज हीराचंद एण्ड कं० मण्डीपेट—दावनगिरी—कर्णाटक

९५ श्रीमती सोमारानी जी रांका C/o भंवरलाल जी रांका मु० पो० व्यावर

९६ श्रीमती निरमलादेवी रांका C/o वकील भवरलाल जी रांका मु० पो० व्यावर

९७ शा० जम्बूकुमार जैन दालमील, भैरो बाजार, बेलनगंज, आगरा-४

९८ शा० सोहनलाल जी-मेटतीया सिंहपोल मु० पो० जोधपुर

९९ भंवरलाल जी श्यामलाल जी बोरा, व्यावर

१०० चम्पालाल जी कांटेड़, पाली (मारवाड़)

१०१ सम्पतराज जी जयचंद जी सुराणा पाली मारवाड़ (सोजत)

१०२ हीरालाल जी खावीया पाली मारवाड़

१०३ B चैनराज जी तातेड अलसुर, बेंगलोर (बीलाड़ा)

१०४ रतनलाल जी धीसुलाल जी ममदटीया, खड़की पूना

१०५ सौ० नितन्द्र कुमार जी जैन मु० पो० धार (म० प्र०)

१०६ श्रीमान भवरलाल जी श्यामलाल जी बोहरा व्यावर

१०७ श्रीमान चंपालाल जी खांटेर (दलाल) पाली

१०८ श्रीमान सपतराज जी जयचंद जी सुराणा (सोजत) पाली

१०९ श्रीमान हीरालाल जी खावीया पाली

११० श्रीमान B. चेनराज पॉन ब्रोकर, बेंगलोर

१११ श्रीमान रतनलाल जी धीसुलाल जी ममदड़ीया (केलवाज) पूना

११२ श्रीमान निलेन्द्र कुमार सराफ धार M P
११३ श्रीमान सीरेमल जी पारसमल जी पगारिया, निमार मंडी
११४ श्रीमान पुखराज जी मुथा, पाली (मारवाड)
११५ श्रीमान सुखनराज जी भवरलाल जी (पच) सुराणा, पाली
११६ श्रीमान सोहनराज जी हेमावसवाला, पाली
११७ श्रीमान बागमल जी धनराज जी कोठेड, पाली
११८ श्रीमान भेरुमल जी तलेसरा पाली
११९ श्रीमान वस्तीमल जी कान्तीलाल जी धोका, पाली
१२० श्रीमान जुगराज जी नानराज जी मुथा, पाली
१२१ श्रीमान ताराचद जी हुक्मीचद जी तातेड पाली
१२२ श्रीमान सोहनराज जी वरडीया पाली
१२३ श्रीमान वस्तीमल जी डोसी पाली
१२४ श्रीमान K वस्तीमल जी राजेन्द्रकुमार वोहरा जसनगर (मद्रास)
१२५ श्रीमान वस्तीमल जी जुगराज जी वोरुन्दिया जसनगर (मद्रास)
१२६ श्रीमान जे० सज्जनराम जी मन्लचा, मुलाई क्त्थलम, (मद्रास)

□ □

हमारा महत्त्वपूर्ण साहित्य

१ प्रवचन-सुधा	५)
२ प्रवचन-प्रभा	५)
३ धवल ज्ञान धारा	५)
४ साधना के पथ पर	५)
५ जैनधर्म मे तप स्वरूप और विश्लेपण	१०)
६ दशवैकालिक सूत्र [व्याख्या पद्यानुवाद]	१५)
७ तकदीर की तस्वीर	—
८ कर्मग्रन्थ [प्रथम—कर्मविपाक]	१०)
९ कर्मग्रन्थ [द्वितीय—कर्मस्तव]	१०)
१० कर्मग्रन्थ [तृतीय—वन्ध-स्वामित्व]	१०)
११ कर्मग्रन्थ (चतुर्थ-पडशीति)	१५)
१२ कर्मग्रन्थ (पचम-शतक)	१५)
१३ कर्मग्रन्थ (पष्ठ-सप्ततिका प्रकरण)	१५)
१४ तीर्थंकर महावीर	१०)
१५ विश्वबन्धु वर्धमान	१)
१६ सुधर्म प्रवचनमाला [१ से १०] [दस श्रमण-धर्म पर दस पुस्तके]	६)

श्री मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति,

पीपलिया बाजार, ब्यावर